कैलास महारहस्यम्



राम शास्त्री

राष्ट्रीय अध्यात्मिक पुनर्जागरण अभियान

प्रकाशक
राष्ट्रीय अध्यात्मिक पुनर्जागरण अभियान,
परमार्थ न्यास,
71, आर्य नगर, अलवर 301001 एनसीआर राजस्थान, भारत
91-141-2334439 # 91-9810267700
adhyatmikpunarjagran@gmail.com
फोटो टाईप संयोजन : श्री मनोज चौहान
कैलास चित्र : सीए–श्री पंकज बंसल–श्री विजय चौपड़ा
जयपुर राजगुरु तूलिकाकार : श्री पी.एन. तिवारी
श्रीशरभदेव चित्रकार : श्री एम.जी. कुमार – श्रीमती शर्मिष्ठा
कैलास मानचित्र : साभार स्वामी प्रणवानन्द पुस्त्क

अंग्रेजी रूपान्तरण : श्री अतुल कौशिश

शोध संदर्भ के लिए आभार :
श्रीमद जगदगुरु शंकराचार्य स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वती, आचार्य पण्डित रविशंकर शास्त्री (शंकराचार्य पीठ पण्डित), स्वामी ब्रह्मविद्यानन्द, श्री महन्त कैलासनाथ योगी (नीलकण्ठ), डॉ. वागीश शुक्ल, आचार्य जयप्रकाश शास्त्री, प्रोफेसर श्याम शर्मा, श्री टीपू जोशी (जयपुर), श्रीमती शकीला बिजोय, डॉ. मंजू भट्ट, श्री विक्रम भारद्वाज, श्री नरेन्द्र कुमार चौधरी, श्री धर्मवीर पाँचाल (दस बार कैलास यात्रा)

श्री किशोर लाल, श्री तेजकरण जैन, श्री कैलासपति शर्मा, श्रीमती शुभ्रा सुरोलिया (कैलासी), श्रीमती सुधा शास्त्री

सुधि पाठकों से वर्तनीगत त्रुटियों के लिए अग्रिम क्षमा।

सम्वत् 2076 सन् 2020 : प्रथम ब्रह्मकमल
मुद्रक
The Gondals Press Inc.
P-12, Connaught Place,
New Delhi 110001 # acgondal@gmail.com

श्री कैलासपति
नीलकण्ठ महादेव
को
समर्पित
ब्रह्मकमल

कैलास महारहस्यम्

कैलास महारहस्यम्

भूमिका

सर्वोत्कृष्ट कैलास

सुमेरु–मेरु–मदरांचल–कैलास शताब्दियों और शताब्दियों से मिथकीय तिलिस्मी महारहस्य लोक है। परब्रह्म देवों के देव महादेव के कैलास में परमबुद्ध, प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ और ताओ दिव्य स्वरूप में अवतरित हुए। शिवलोक कैलास में धूर्जटी अविनाशी सदाशिव के कोप से श्री कामदेव मदन का संहार हुआ। यहीं विश्वेश्वर के घोरतम, रौद्रतम, महासंहारक, महामहाकाल, महामहाविघ्वंसक स्वरूप श्री वीर शरभसालुव पक्षीराज आकाश भैरव श्रीहरिविष्णु के उग्रावतार श्रीनृसिंह के संहार के निमित्त उत्पन्न हुए। असुरराज बाणासुर के तीन पुरों में से एक को साम्बसदाशिव के एक बाण से नष्ट कर कैलास की ओर ढ़केला। दैत्यराज भष्मासुर भी मोहिनी मोहन से कैलास में भष्मीभूत हुए। महापण्डित दशकन्धर दशानन लंकेश्वर रावण ने सहस्त्रों–सहस्त्रों वर्षों की कठोर तपश्चर्या और ताण्डव स्त्ोत्र से ओढ़रदानी शम्भु को प्रसन्न कर तीनों लोकों को विजित किया। श्री लंकेश्वर ने कैलास में सदाशिव से दिव्य अस्त्र–शस्त्रों की प्रौद्योगिकी प्राप्त की।

श्रीआदिहनुमत कैलासमें भक्ति में लीन हैं। आर्ष ग्रन्थों के अनुसार श्री आदिराम, योगीराज कृष्ण, श्री सूर्यदेव आदि शिवस्वरूप हैं। आर्ष ग्रन्थों में मेरुप्रासाद का वर्णन भी अद्भुत है। आर्षग्रन्थों में यह भी रहस्योद्घाटन किया गया कि महादेव के डमरू से मातृकाओं की उत्पत्ति हुई। यह स्मरण रहे कि महायोगीश्वर ने महादेवी उमा को अक्षरों की दिव्य शक्ति, देवता, वर्ण, रंग और भौतिक दिव्य अध्यात्मिक शक्ति का गोपनीय से गोपनीय ज्ञान दिया। महामहाकाल शिव की नाभि से ही महादेवी श्रीविद्या राजराजेश्वरी का प्रादुर्भाव हुआ। इसकी दुर्लभ महामुद्रा में महादेव शिव के नीचे सर्वश्री ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर स्त्म्भवत हैं।

श्री वागीश शिव आदिदेव हैं और पृथिवी लोक की धुरी मेरु सुमेरु कैलास में योगमुद्रा में विराजमान हैं। सभी लोकों से देवी देवता, अर्हत, यक्ष, किन्नर, गन्धर्व, सिद्ध, ऋषि, मुनि, योगी आदि कैलास एवं पवित्रतम मानस सरोवर समीप साधना एवं तपश्चर्या में लीन हैं। पवित्र कैलास एवं मानस दोनों का अपना अध्यात्मिक दिव्य तान्त्रिक पक्ष है। तन्त्र मन्त्र शास्त्र में उल्लेख मिलता है कि मेरु को हृदय में स्थित करें यानी मेरु सगुण साकार सकाम ब्रह्म से निराकार निर्गुण निष्काम परब्रह्म का रूपाकार लेता है। आध्यात्म में साधना का अनुभवगम्य भाव पक्ष है। इसका प्रतीकात्मक संकेत श्रीमद आदिशंकराचार्य ने कैलास क्षेत्रवाले

सुमेरु मठ में किया है। उर्ध्वाम्नायवाले दार्शनिक अध्यात्मिक भावात्मक प्रतिकात्मक संकेतात्मक सुमेरु अथवा मेरु मठ के आचार्य स्वयं ईश्वर एवं देवता निरंजन हैं।

कैलास के रहस्य समझने का पहला कदम मातृकाओं का गहन अध्ययन एवं ज्ञान, अक्षर ब्रह्म की दिव्य शक्ति और आध्यात्म की गोपन ब्रह्मविद्या की जानकारी समझ होना है। अर्थात् कैलास, मानस, शिव, शरभ, राम, हनुमत आदि शब्दों के उच्चारण से उत्पन्न स्फोत, स्पंदन, ध्वनि, अनुरणन, कंपन, तरंग आदि की दिव्य विधायकी शक्ति भौतिक दैविक अध्यात्मिक प्रभाव आदि की समझ को विकसित् करना मूलभूत आवश्यकता है। आध्यात्म स्व के भाव में लौटना, आन्तरिक ब्रह्माण्ड की यात्रा है।

हम यह भी समझ लें कि वेदीक देव रुद्र अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड के शास्त्ा हैं। वेद सृष्टि विज्ञान और मानव धर्म है। शिवलोक कैलासवासी रुद्र नैतिकता मर्यादा के नियंता हैं और उसका उल्लंघन करनेवाले ब्रह्मा, प्रजापति दक्षराज, कामदेव, मानस पुत्र, यमराज आदि को कठोरतम दण्ड देने में कोई संकोच नहीं करते हैं। नियंता–शास्त्ा कैलासवासी वेदीक रुद्र यक्षराज पुष्पदंत के श्री शिवमहिम्न स्त्ोत्र (निराकार निर्गुण निष्काम ब्रह्म) और श्री लंकेश्वर के ताण्डव स्त्ोत्र में समभाव की स्तुति से पलक झपकते क्षणभर में प्रसन्न होते हैं।

सदाशिव की कृपा से ही श्रीहरि विष्णु को सुदर्शन चक्र मिला, यद्यपि दक्षराज प्रजापति के यज्ञ भंग के समय श्री विष्णु ने महादेव पर सुदर्शन छोड़ने का दुस्साहस किया। फलस्वरूप वे पाषाणवत हुए। कैलास के मानस में महासर्पों का निवास एवं मध्य में दिव्य कल्पवृक्ष होना माना गया है। दिव्य वृक्ष के फल के मानस में गिरते ही जम्ब की ध्वनि होती है और इसके परिणामस्वरूप द्वीप का नामकरण जम्बूद्वीप हुआ। मानस सरोवर में पाँचरंगी रेत, पीली रेत, कैलासाकार लघु पत्थर, सुनहरी आभावन सालिग्राम, श्वेत भष्म, अर्धरत्न, रत्न आदि मिलना रहस्यमय हैं।

विश्व के वैज्ञानिक चकित हैं कि शिवलोक कैलास में अदृश्य असाधारण विद्युत्त चुम्बकीय प्रचण्ड प्रवाह, सामान्य से अधिक परमाणुधर्मी विकिरण, तेजोकिरण आदि कैसे है ? नवीनतम हिमालय क्षेत्र में शिवपुरी का कैलास साढ़े पाँच करोड़ वर्ष प्राचीन कठोरतम ग्रेनाइट का कैसे है? श्री ब्रह्मा के विचार मात्र से निर्मित मानस सरोवर में शून्य से नीचे पचास डिग्री में अचानक अप्रत्याशित रूप से दस फीट बर्फ टूटकर आसमान में कैसे उछलती है? मानस सरोवर का पवित्र जल कहीं हिमवत ठंडा और कहीं गर्म खौलता कैसे है? मानस के राजहंस शाकाहारी क्यों कर हैं?

कैलासवासी मानस सरोवर–श्री लंकेश्वर रावण ताल में मछली क्यों नहीं मारते ? कैलास में वेदीक परम्परा के अनुसार शवदाह और कपाल क्रिया होती है। कैलास क्षेत्र में बारह वर्ष में तालो मेला महाकुम्भ का स्मरण करता है। क्षेत्र में पूर्णिमा को श्री अवलोकितेश्वर का व्रत, स्तुति, कीर्तन एवं सत्संग भारतीय पूर्णिमा श्रीसत्यनारायण कथा व्रत से मेल खाता है। बीजाक्षरों को वेदी में अंकित कर हवन का भी कैलास में चलन में है। वज्रयान के साधकों की तान्त्रिक साधना के मंत्र आर्ष ग्रन्थों के अनुरूप हैं। भारतीय श्रीयन्त्र की ही तरह त्रिकोणात्मक यन्त्र कैलास क्षेत्र के कुछ मठ–मन्दिरों में सजे हैं। मन्दिरों में पवित्र ध्वजा एवं अखण्ड जोत प्रचलन में है। कैलास–मानस के मठ–मन्दिरों में कैलास पुराण का नित्यपाठ किया जाता है।

महातीर्थ के मठ–मन्दिरों में श्री विष्णु (अवलोकितेश्वर), श्री ब्रह्मा (मंजूश्री) एवं श्री सदाशिव (वज्रपाणि) की भव्य प्रतिमायें हैं। मठ–मन्दिरों के देवता श्री धर्मपाल का चित्र श्री स्वच्छन्दभैरव तन्त्र के श्री अघोरेश्वर की प्रतिकृति है। कैलास के समीप जगत जननी शक्तिस्वरूपा माता भगवती गौरी पार्वती का गौरीकुण्ड जल चमत्कारी है। प्रथम जैन तीर्थंकर आदिनाथ भगवान् का अष्टपद महापर्वत कैलास प्रदक्षिणा में है।

देवभूमि उत्तराखण्ड के चार धाम तीर्थ की भांति शिवलोक कैलास में प्रवेश से पहले यमद्वार के दर्शन भक्तिभाव को ओर तीव्र कराता है। श्री कैलास क्षेत्र प्रवेश से पहले भारतीय क्षेत्र में ओम पर्वत है (चार धाम यात्रा में भी यमद्वार से तीर्थ में प्रवेश होता है।)। कैलास–मानस के मठ–मन्दिरों में यमराज और नरक के चित्रपट होना चौंकाता है। श्रीसाम्बसदाशिव के कण्ठहार वासुकी महान्ाग के फन की आकृतिवाला श्वेत हिम का पर्वत भी रहस्यमय है। आर्षग्रन्थों में मेरु–सुमेरु–कैलास को स्वर्णमय एवं रत्नमय वर्णित किया है। इतिहास–रामायण में प्रसंग आता है कि भगवान् श्री राम ने अश्वमेध यज्ञ के समय कैलास से स्वर्ण यानी सोना मंगवाया। श्री कैलासक्षेत्र में स्वर्ण एवं बहुमूल्य रत्नों की खानें इसकी जीवन्त गवाह हैं। यद्यपि महादेव के कोप से सोने की खानें बन्द हैं। इसीलिए भारतीय मनीषा में रामायण–महाभारत को इतिहास की संज्ञा दी गई।

मेरु पर श्री आदिहनुमत की उभरी आकृति भी रहस्य है। कठोरतम ग्रेनाइट पर इसका तक्षण मानव नहीं केवल देवता श्री विश्वकर्मा ही कर सकते हैं। श्री हनुमत एवं श्री महागणपति मुखाकृति के पर्वत मंत्रमुग्ध करते हैं। महातीर्थ की महायात्रा में यह जानना आवश्यक है कि वास्त्व में श्री शिवतत्त्व–कैलास तत्त्व–मानस तत्त्व–हनुमत तत्त्व–गौरी तत्त्व–बीजाक्षर तत्त्व–पाँचमहाभूत तत्त्व आदि क्या है ? श्री

कैलास क्षेत्र पर्यटन का विषय नहीं है। महातीर्थ अथवा तीर्थ के कथित धार्मिक पर्यटन ने धर्म–आध्यात्म–दर्शन–संस्कृति–वेदीक विज्ञान के मूलाधार पर मारक भीषण प्रहार किया है। लेकिन देवों के देव महादेव के पृथिवी पर पवित्रतम कैलास–मानस क्षेत्र में सात्त्विक–दैविक–शुभ प्रचण्ड स्फोत स्पंदन कंपन प्रवाह विद्यमान है और उसके दिव्य आश्रमों में दीक्षित समय समय भारत में अलख निरंजन का महाघोष करते रहे हैं (स्वामी विशुद्धानन्द परमहंस, श्री राम ठाकुर, जगदगुरु शंकराचार्य स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती, जयपुर के राजगुरु श्रीविद्यानाथ ओझा आदि)।

इस पुस्त्क में इन्ही विषयों को रेखांकित करने का क्षुद्र प्रयास किया है। मूलतः यह अधिकारिक प्रमाणिक आर्ष ग्रन्थों एवं प्राचीन तथ्य प्रमाणों की नवप्रस्तुति अथवा संहिता मात्र है। यह बहुत ही असम्भव कार्य है कि महादेव साम्बसदाशिव के कैलासलोक का समूचा अध्यात्मिक दैविक एवं भौतिक वर्णन किया जाए। श्रीवागीश नीलकण्ठेश्वर महादेव ने जितना चाहा, उतना ही प्रस्तुत हैं।

शेष महादेव नीलकण्ठ की इच्छा पर। हिन्दी की त्रुटियों के लिए अग्रिम क्षमा।

श्री कैलाशपति महादेव को ब्रह्मकमल कैलास सादर समर्पित है।

विषय सूची



Mahadev Shiv



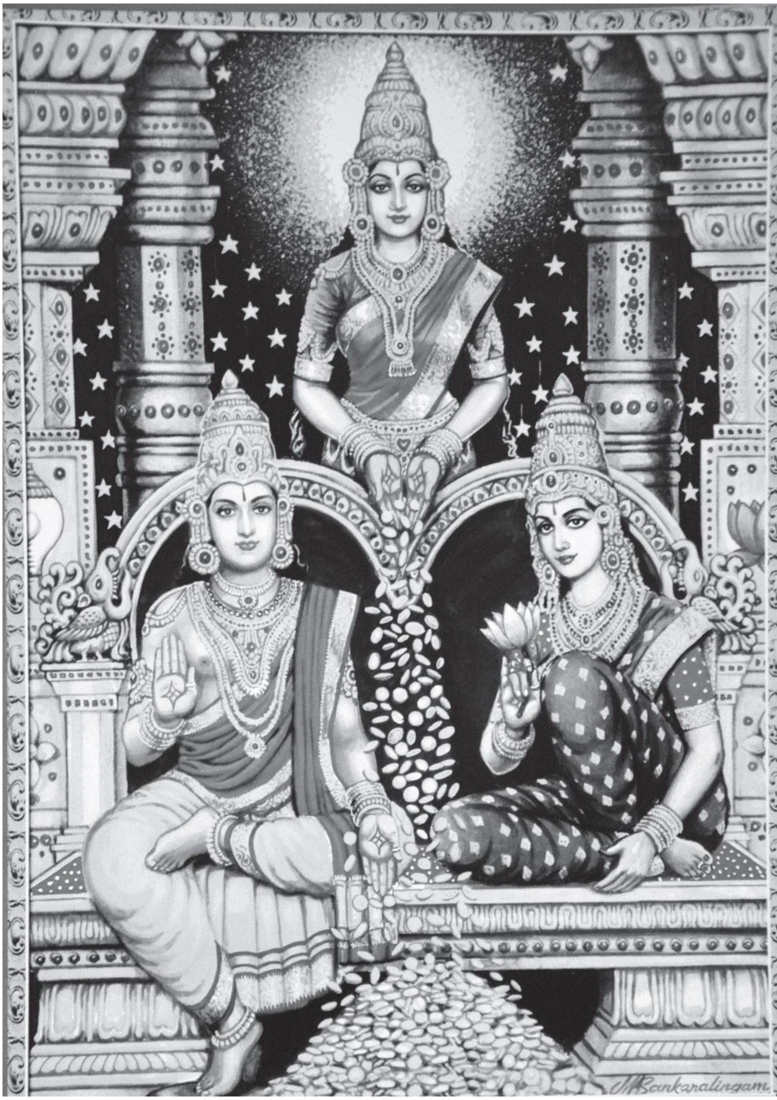
Holy Om Parvat



Gauri Kund Kailas



Shri Sharabh Dev



Shri Kuber



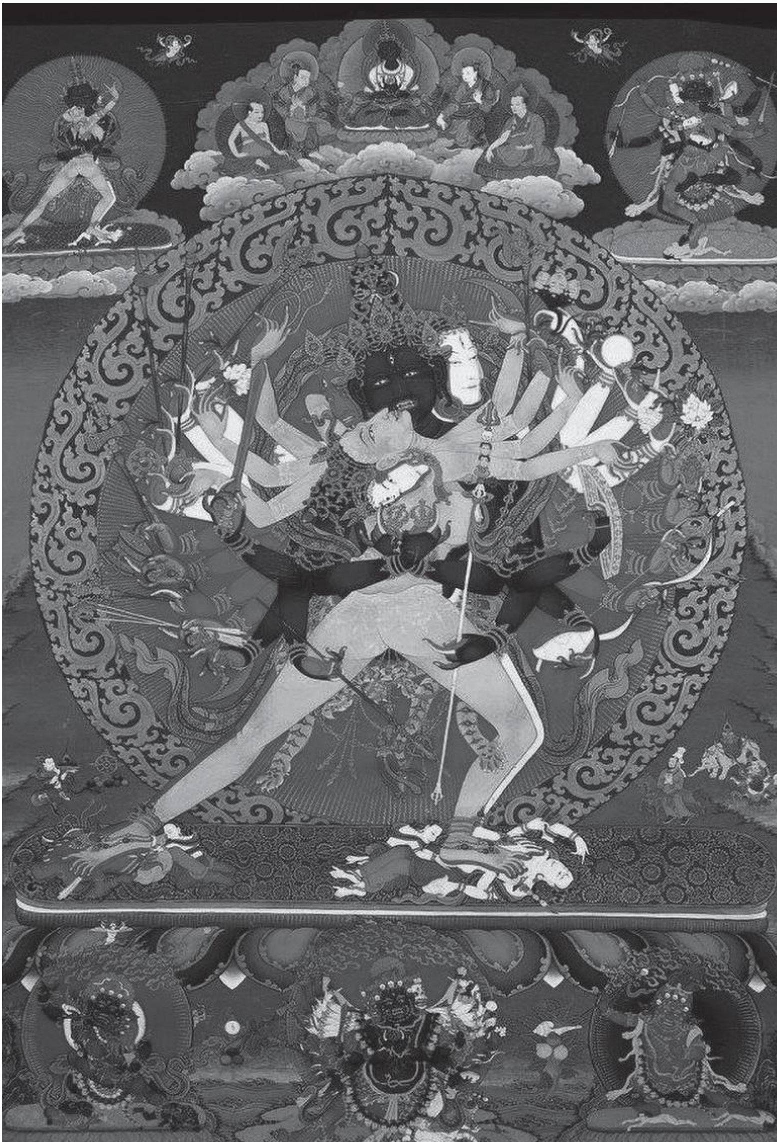
Shri Raj Rajeshwari



Shri Hanuman



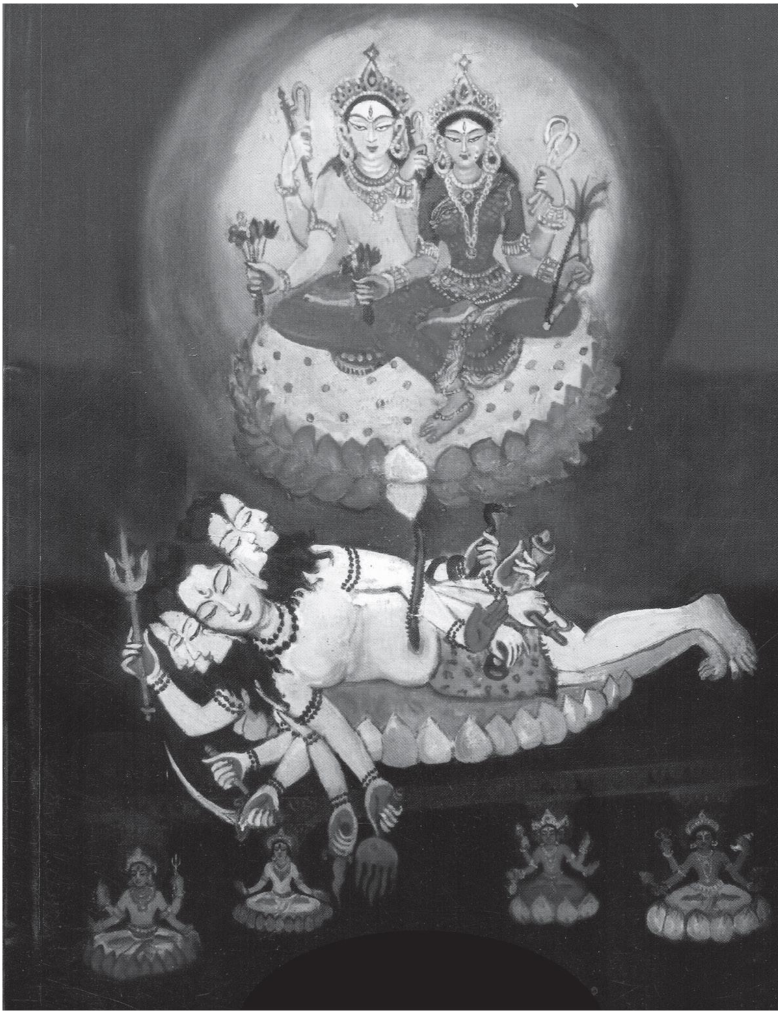
Shri Swacchand Bhairav



Shri Dharampal



Shri Tara Devi



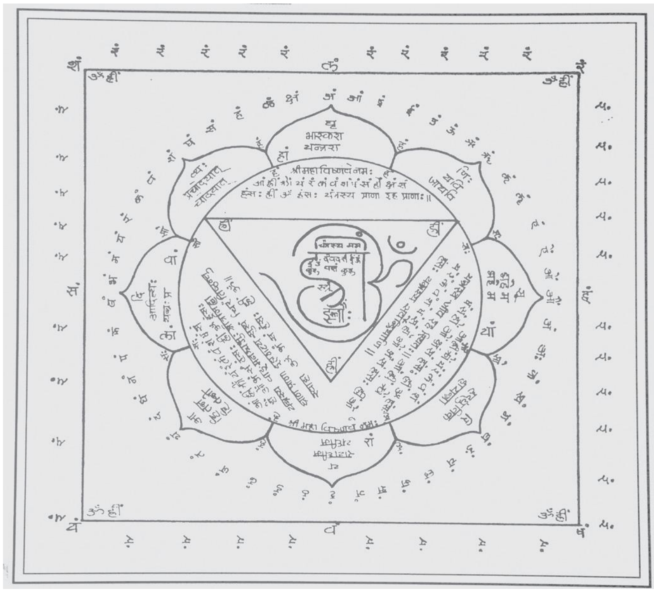
Shri Kameshwar
Shri Kameshwari



Shri Maharishi Bhardwaj

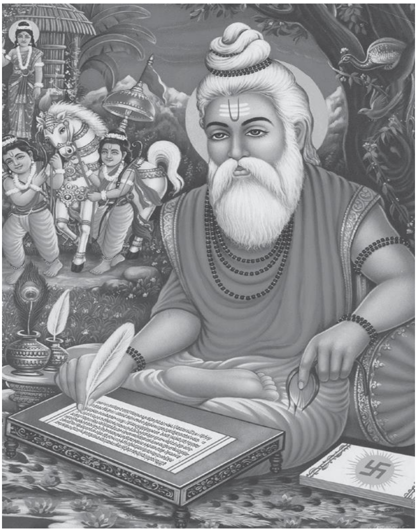


Shri Dashanan Ravan



Shri Surya Yantra

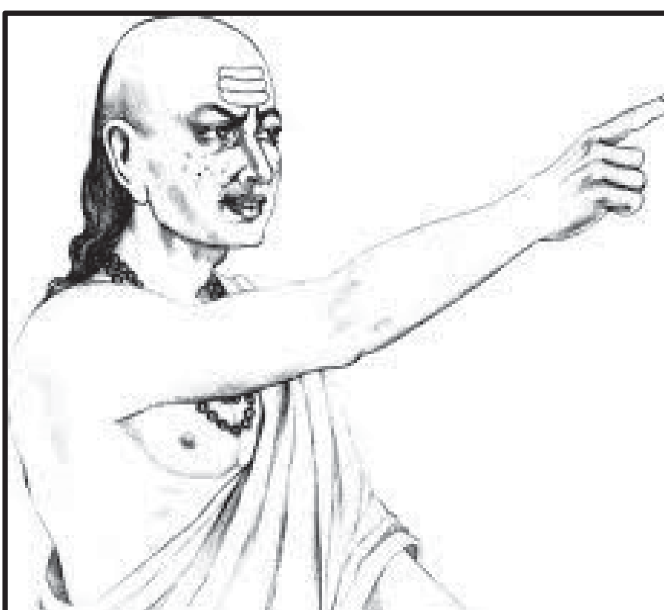




Shri Maharishi Valmiki



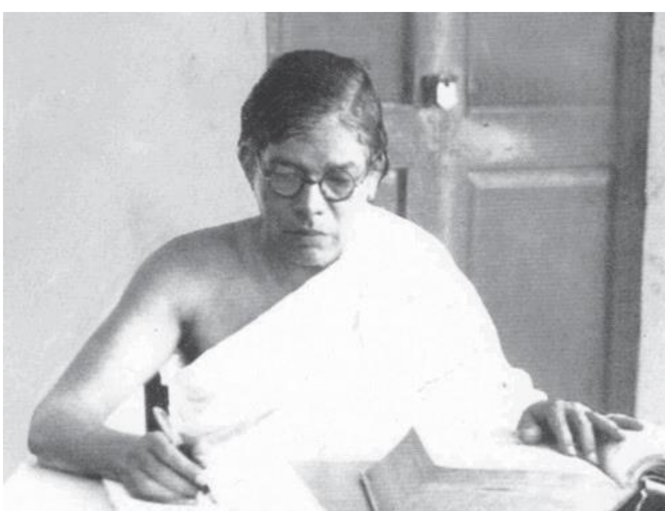
Shri Parshuram



Shri Chanakya



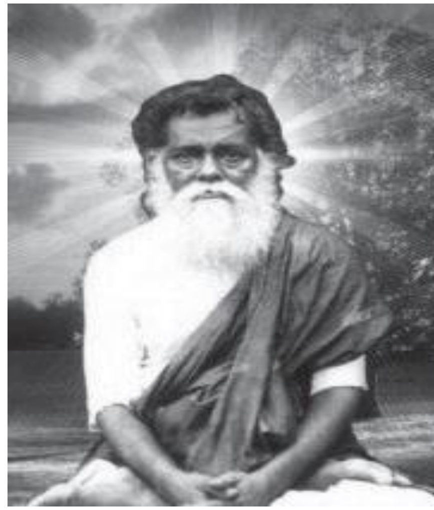
Shri Adishankaracharya



Shri T. V. Kapali Sastry



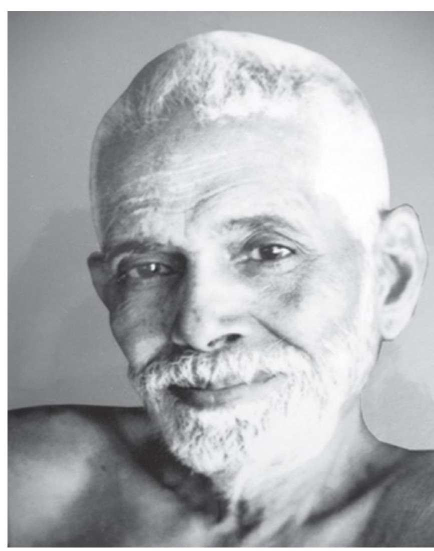
Shri Mahatapa Gyanganj



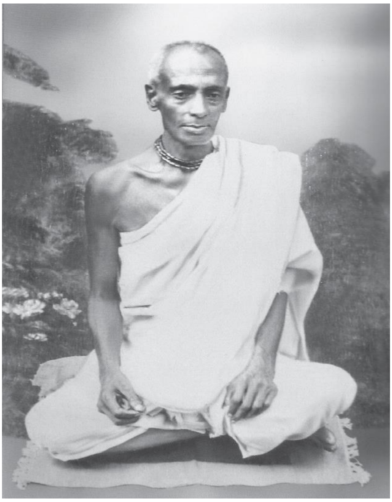
Shri Vishuddhananda Paramahansa



Shri Shankaracharya Brahmananda Saraswati



Shri Maharshi Ramana



Shri Ram Thakur



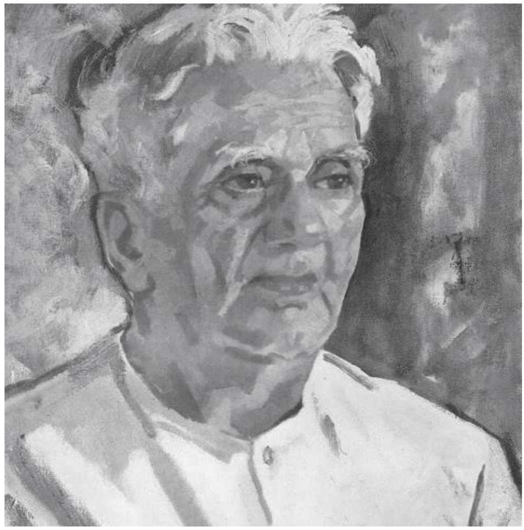
Shri T. Subba Rao



Madam Helena Blavatsky



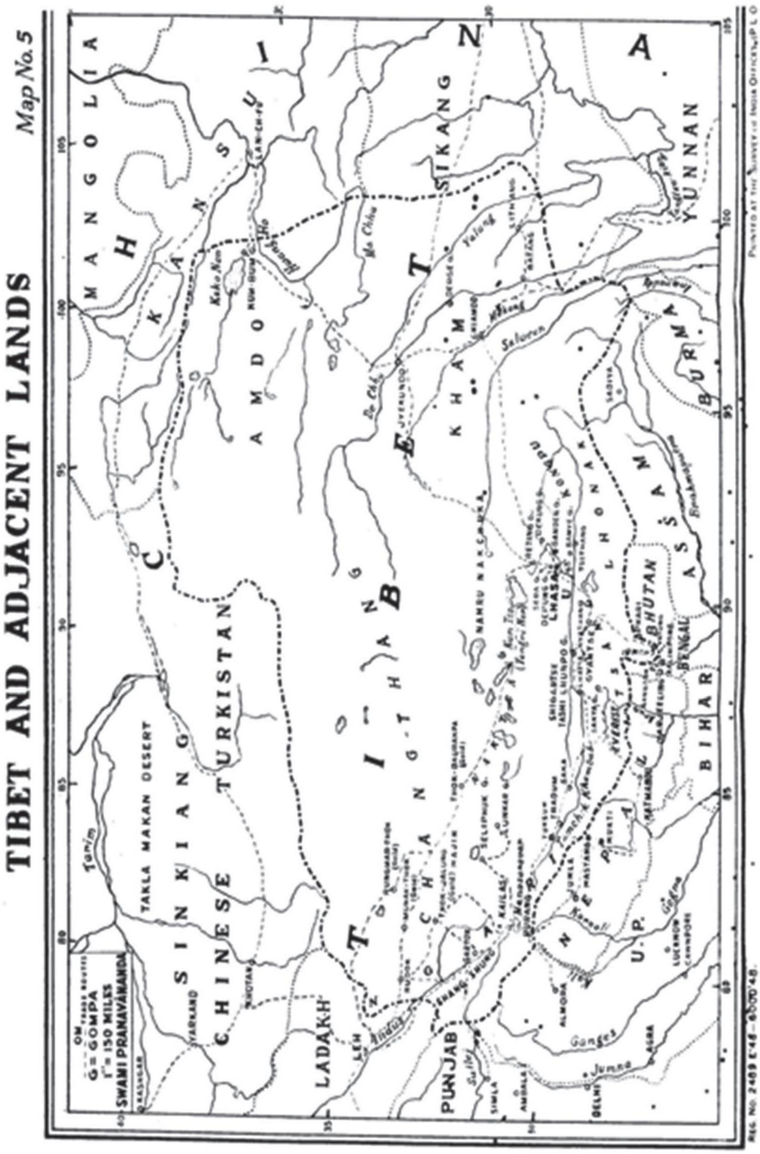
Shri Rajguru Shri
Vidyanath Ojha



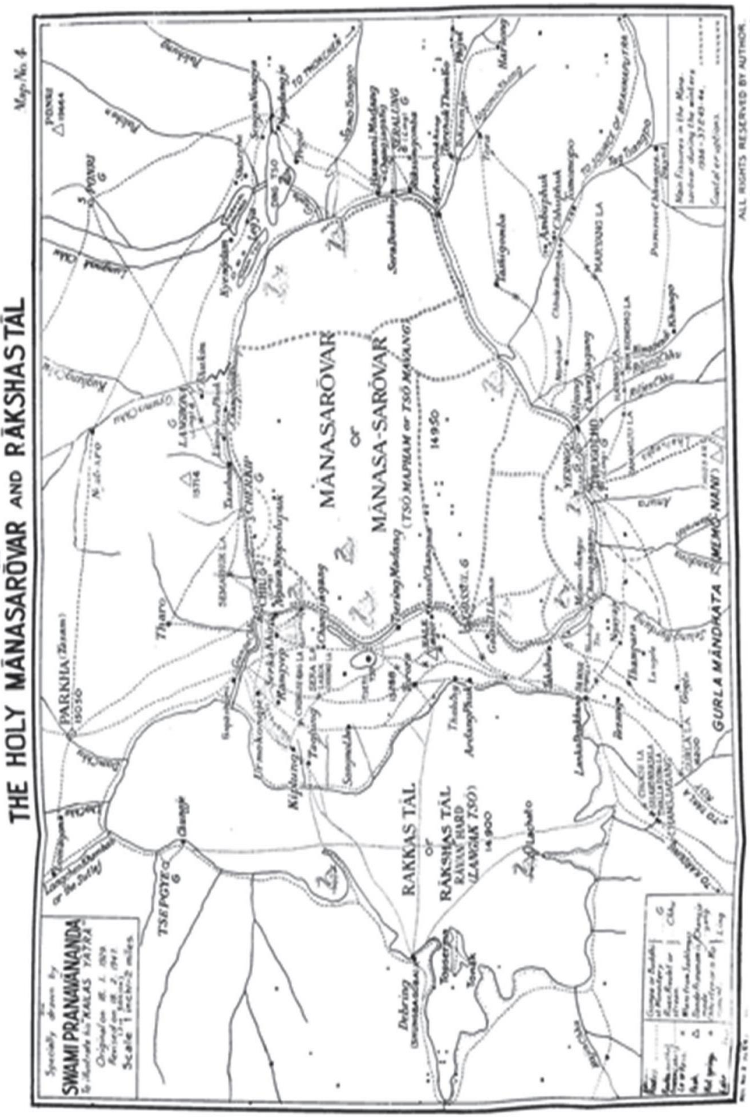
Shripad Damodar Satwalekar



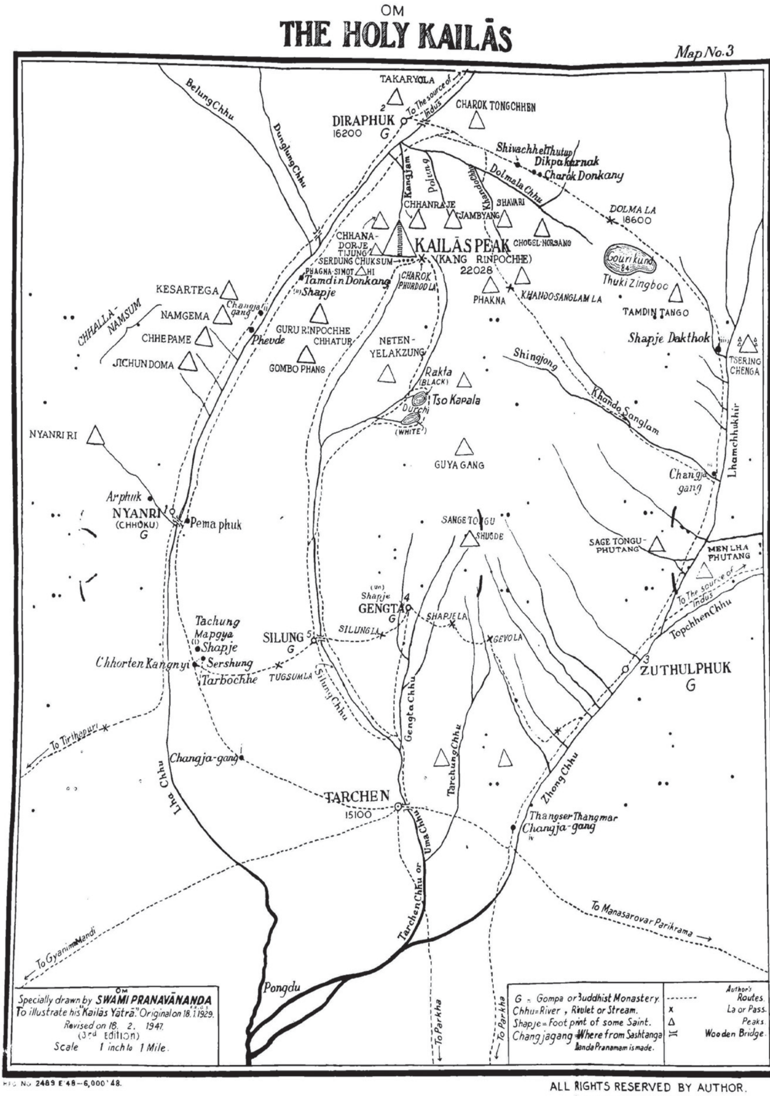
Shri Birbal



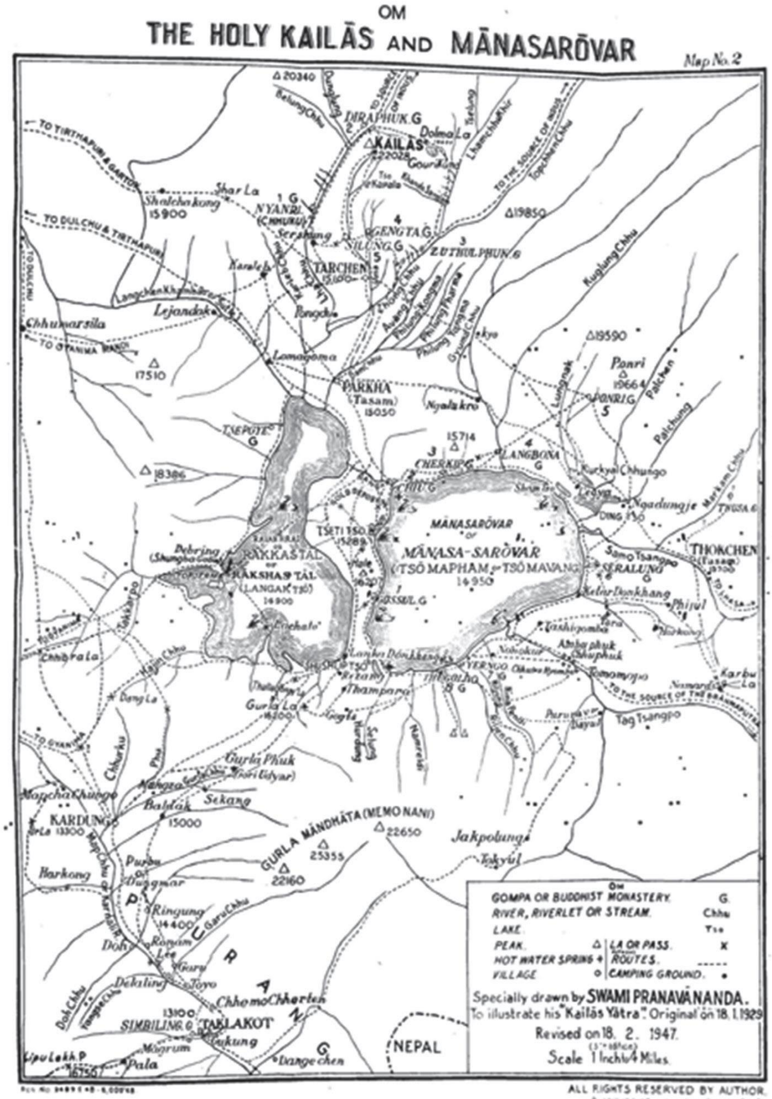
तिब्बत एवं सम्बद्ध का मानचित्र
साभारः स्वामी प्रणवानन्द पुस्तक



पवित्र मानसरोवर एवं राक्षसताल
साभारः स्वामी प्रणवानन्द पुस्तक



पवित्र कैलास मानचित्र
साभारः स्वामी प्रणवानन्द पुस्तक



पवित्र कैलास एवं मानस
साभारः स्वामी प्रणवानन्द पुस्तक



Shri Gorakhnath



कैलास मानस सरोवर – रहस्यविद्या मदरांचल
मेरु कैलास में देवताओं का गोधूली दिव्य नर्तन

दिव्य कैलास शिवपुरी के पवित्र मानस सरोवर में देवलोक से देवता एवं परमेश्वर गोधूली प्रदोषकाल में आकर दैवीय नर्तन करते हैं। पवित्र मानस सरोवर में दोपहर ढ़ले अनन्त ब्रह्माण्डों से देवता सूक्ष्म प्रकाश के रूप में धीरे से अवतरित होते हैं और दिव्य सरोवर की गहराइयों में विलीन होते हैं।

सबसे अन्त में बृहद प्रकाशपुंज आकाश से मानस सरोवर का रूख करता है। यह प्रकाश पुंज पलक झपकते समूची मानस सरोवर की सत्ह पर नृत्य करता हुआ मध्य में आता है। यह पल भर में मानस सरोवर में समा जाता है। मात्र कुछ घण्टों या पाँच घटी में सभी प्रकाश मानस सरोवर से निकलकर अपने अपने सौर मण्डल की राह पकड़ते हैं। कैलास मानस सरोवर का यह दृश्य हृदय में सदा के लिए अंकित होता

है। देवशास्त्र के अनुसार प्रदोषकाल में ही देवों के देव महादेव रुद्र शिव का ताण्डव नृत्य शुरू होता है। इस देव नृत्य में विष्णु सहित सभी देवी देवता वाद्यवृन्द वादन करते हैं। महादेव शिव के दिव्य नृत्य का रसपान देवता, यक्ष, किन्नर, शिवगण आदि ही करते है। मानस सरोवर में ज्योतिपुंज और बृहद रश्मिपुंज का नर्तन भी इसकी कड़ी माना जा रहा है।

विश्व के अध्यात्मिक विज्ञानदां महादेव शिव को दूसरे लोक का अति उन्नत प्रौद्योगिकी सम्पन्न मानते हैं (भारतीय आध्यात्म में अनन्त ब्रह्माण्ड में शिवलोक स्थित है। महादेव शिव अलौकिक चमत्कारिक दिव्य विज्ञान ब्रह्मदेवविद्या के अधिष्ठाता हैं। हमारे ब्रह्माण्ड के पृथिवी लोक पर महादेव शिव का निवास स्फटिक समान मेरु सुमेरु मदरांचल– कैलास महापर्वत पर माना गया है।)। विदेशी अध्यात्मिकों का मानना है कि कैलास एवं मानस सरोवर में प्रौद्योगिकी में चरमोत्कर्षवाले ग्रह स्वामी शिव एवं उनके विज्ञानदां रहते हैं। उनके अनुसार कैलास मानस सरोवर में आणुविक विकिरण सामान्य से अधिक है। कैलास एक विशाल आणुविक स्त्म्भ–पिरामिड आकार में है। जिसमें कैलास शिखर से महादेव शिव के ग्रह से सम्पर्क लगातार रहता है। यह रोचक है कि वे अनेक पर्तोंवाले कैलास को महादेव शिव के ग्रह के विश्वकर्माओं की रचना कहते हैं। उनकी दृष्टि में दूसरे ग्रह के निवासी मानस सरोवर के जल से अंतरिक्ष से आते जाते रहते हैं।

कैलास के पिण्डारी हिमनद में सोना, माणक, पिरोजा, हिमफुली (स्फटिक के समान श्वेत), सुहागा, स्फटिक आदि की खान बहुतायत में हैं। वेदीक काल में ही हिमालय एवं कैलास का वर्णन मिलता है। अथर्ववेद के अनुसार कैलास आदि महासमुद्र महाअर्णव में छिपा रहा : ''यार्णवेऽधि सलिलमग्र आसीद।'' ऋग्वेद के अनुसार पृथिवी के कम्पित होने से हिमालय कैलास प्रकट हुआ : ''यः पृथिवीं व्यथमानामादृहद। यः पर्वतान प्रकुपिताँ अरम्णात।'' स्कन्दपुराण के मानसखण्ड, वायुपुराण, महाभारत, मनुस्मृति आदि में शिवलोक मेरु का वर्णन मिलता है। मनुस्मृति में लिखा है :''मध्ये हिमवत्तः पृष्ठे कैलासो नाम पर्वतः।'' जम्बूद्वीप की मीठी कथा भी कैलास के मानस सरोवर से ही जुड़ी है। कैलास का एक अर्थ ''स्फटिक'' है। कैलास में महान् शिवभक्त लंकेश्वर

रावण की कथा पुराण – रामायण के अलावा जैन पद्मपुराण से लेकर बौद्धों की तिब्बती कैलास पुराण (तिब्बती नामान्तरण कड.री करछक) में मिलती हैं (यह सबसे दुखद है कि महादेव शिव के मेरु कैलास, मानस सरोवर का इतिहास पुराकथा का अलग से कोई आर्ष ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है। सभी पुराणों वेद और स्मृतियों से कैलास मानस सरोवर की सामग्री एकीकृत करना अभी शेष है।)। तिब्बती कैलास पुराण भी भारत और तिब्बत में नहीं मिलती है। यह समझा जाता है कि तिब्बती कैलास पुराण की पाण्डुलिपि एवं प्रकाशित प्रति में 124 एवं 24 पृष्ठ हैं। बौद्ध विहारों में उसे 14 पृष्ठ के कैलास पुराण के गुटके के नित्य पाठ की परम्परा रही। तिब्बती में पवित्र दिव्य कैलास को काड.रिमपोछे के सम्मानीय नाम से पुकारा जाता है। मानस सरोवर को छो मफम और धनुषाकार–छो मवड. नाम से सम्बोधित करते हैं।

मानस सरोवर के दिव्य जल को ठुगोल्हो–सोना, चांदी, पिरोजा, मूंगा, मोती युक्त मानते हैं। तिब्बती पुराण के अनुसार कैलास पर परमबुद्ध अमिताभ बुद्ध का निवास है। कङरी करछक में "अधिष्ठातृ देवता देमछोक धर्मपाल या पावो है।" देवता देमछोक बाघाम्बर लपेटे नरमुण्डों की माला पहने हैं। पावो के एक हाथ में त्रिशूल एवं दूसरे हाथ में डमरू है। समूचा शरीर भष्म पुता हुआ है। उसकी रक्षा पंक्ति में इसीप्रकार आभूषणवाले हैं। उनकी अग्रिम कतारें 990 हैं। जिनमें समान पोशाकवान देव खड़े हैं। उनके पीछे देवी खडी एकाजती है। कैलास काड.रिमपोछे के दक्षिण में हनुमानजू शिखर है। भगवान् परमबुद्ध ने कैलास को यक्षों द्वारा उठाकर ले जाने से रोकने के लिए चारों तरफ से पैर से दबाया हुआ है। कैलास में परमबुद्ध के चार पदचिन्ह चरण हैं। इसके अलावा नाग कैलास को उठाकर नागलोक (दूसरे ब्रह्माण्ड स्थित) ले जाने का खतरा मंडराता है। परमबुद्ध ने कैलास की नागों से रक्षा के लिए विशाल सांकल से बांधा हुआ है। मानस सरोवर में भयानक नाग रहते हैं और बीच में दिव्यकल्पवृक्ष है। जिससे गिरनेवाले फलों का नाग खाने के लिए मुंह खोले रहते हैं। फिर भी दिव्यवृक्ष का फल मानस सरोवर में जल को छूते ही "जम्ब" की ध्वनि करता है और जल में प्रवेश करते ही शुद्ध सोने में बदलता है। दिव्यफल की जम्ब ध्वनि से 'जम्बूद्वीप' नामकरण हुआ। कैलास मानस सरोवर में कदम्ब, अश्वत्थ

पीपल, जम्बू एवं औदूंबर (वट) के वृक्ष होना लिखा है (पण्डित जयचन्द कृत भारतभूमि)।

तिब्बती कैलास पुराण में लिखा है कि लड.गक छो–रावणह्रद के राजा गौबोफेड. ने कैलास से परमबुद्ध के स्वर्ण स्वरूप को ले जाना का मन बनाया। रावणह्रद के राक्षस राजा ने कैलास को रस्सी से बांधा। इससे अधिष्ठातृ देवता बाघम्बर–मुण्डमाल–त्रिशूल–डमरूधारी कुपित हुए। पाँच सौ बोधिसत्त्व तपस्या त्यागकर हंस रूप में उड़े। राक्षस राजा के सामने मोहिने रूप में सम्मोहक नृत्य किया। राक्षस राजा नृत्य में डूबकर कैलास को ले जाना कुछ पल रूका। इतने में सूर्योदय हुआ। देवता देमछोक पावो ने राक्षस राजा गोंबोफेड को पत्थर बनने का शॉप दिया। कैलास के समीप गोंबोफेड. छोटी पहाडी है।

गोंबोफेड. पर रस्सी के निशान त्रेता काल के इतिहास के साक्षी हैं। यही लंकेश्वर रावण की रस्सी के रूप में चिन्हित की गई। कैलास के पश्चिम में टचुड.मपग्या पर्वत पर 500 पद चिन्हों का वर्णन है। कैलास में हनुमानजू होना भी चकित करता है (चीन में एक समय कपि देव (हनुमान) रहे।)। बौद्ध ग्रन्थों में मानस सरोवर को ''अनतवतप्त'' (शीतोष्णादि दुःखों से मुक्त) बताया गया है। कैलास के समीपी पर्वतों पर मणिमंत्र लिखे सुन्दर पत्थर लगे है। ऊँ मणि पद्मे हूँ ह्रीं मूलमंत्र है। यह मंत्र पाँचाक्षर है। शिव मंत्र भी पाँचाक्षर है। इसका अर्थ आत्मा रूपी कमल रूप के मध्य मणि है अथवा भगवान् बुद्ध की जय हो। जैन ग्रन्थों में कैलास को अष्टपद माना गया है। प्रथम तीर्थंकर भगवान् आदिनाथ का पवित्र स्थल कैलास है। भगवान् आदिनाथ के साधना स्थल पर तिब्बती परम्परा में स्तूप है।।ऊँ।।

जम्बूलिड. रहस्यलोकः
बारह वर्ष में कैलासी महाकुम्भः परमेश्वर तालो

शिवलोक कैलास में बारह वर्षों में एक बार बैशाख पूर्णिमा को महाकुम्भ सरीखा महाकुम्भ तालो होता है। वैसे प्रतिवर्ष बैशाख पूर्णिमा को देश विदेश श्रद्धालु कैलास दिव्य महापर्वत के समीप पवित्र मानस सरोवर पर एकत्र होते रहे हैं।

तिब्बत पर चीन के आधिपत्य से पहले शाक्य मुनि बुद्ध के अनुयायी धर्माचार्य साईबेरिया, मंगोलिया, जापान, चीन, कम्बदेश, चम्पा देश, प्राचीन ब्रह्मा देश–श्रीलंका, श्रीदेश–गांधार–पारस और भारत से एकत्र होते रहे। जम्बूद्वीप भारत से सात्वत सनातन धर्म के अनुयायी भी इसी दिन आदिगुरु आदिनाथ महादेव शिव और व्यासजी महाराज की अर्चना दिव्य शिवपुरी कैलास मानस सरोवर में करते रहे। जैन धर्म के माननेवाले भी कैलास में प्रथम तीर्थंकर श्रीआदिनाथ की विशेष अर्चना का आयोजन करते रहे। उधर लाओत्से के "ताओ" के अध्यात्मिक दर्शन पर भी शास्त्रार्थ होता रहा। इस प्रकार महादेव शिव के कैलास मानस सरोवर में वेदीक धर्म, ताओ, बोन, पोन, शिन्तो, बौद्धधर्म और जैनधर्म की गंगोत्री एक साथ होना स्वयं में आनन्ददायक होता। धर्मप्रेमी रंगबिरंगी पताकाओं की कतारों से मानस सरोवर के तीर को सजाते रहे। संस्कृत–प्राकृत–पाली– तिब्बती–जापानी–सिंहली–पारसी के मंत्रों से कैलासलोक गूंजायमान होता। कैलास के आसपास के पर्वतों की गुफाओं में वर्षों से साधनारत सिद्ध साधक निकलते हैं। कुछ साधु मात्र लंगोटी और बदन पर भष्म मले नंगे पार होते। उधर कुछ साधु सिंह चर्म–मृगछाल लपेटे, भष्म मले, जटाजूट त्रिशूल के साथ होते। जिन शासन के सन्यासी दिगम्बर और श्वेताम्बर होते हैं। हीनयान–महायान के सिद्ध लामा परम्परागत गेरूए–पीत–लाल वस्त्र में होते हैं। उनके हाथों में धर्मचक्र घूमता। इन संतों के दर्शनमात्र से तीर्थयात्री रोमांच से भर जाते।

वर्तमान में भी तीर्थयात्री प्रतीक रूप में रंगीन पताकायें डोर से बांधकर सजाते हैं। यह दुर्लभ संयोग ही होगा की बाघाम्बरधारी साधु तीर्थयात्री को सूक्ष्म यज्ञ करवाये। यह विशेषता है कि कैलास की सिद्ध साधु आपके मन में आये मंत्र को शक्ति से जानकर उच्चारणकर चकित करेगा। कैलासवासी साधु के अनुसार 12 वर्षों में होनेवाला विशेष महापर्व "तालो मेला" है (सात्वत भागवत्त धर्म में 12 वर्षों में कुम्भ होता है।)। तालो के दौरान कैलास मानस सरोवर की परिक्रमा का धार्मिक अध्यात्मिक रूप से विशेष महत्व समझा जाता है। यह मान्यता है कि साक्षात महादेव कैलास की कम से कम 3 परिक्रमा से सभी कष्ट दूर होते है एवं मनोकामना पूर्ण होती है। कैलास की 10 परिक्रमा से सभी कल्पों के पाप नाश, 12 परिक्रमा कर्ता का मुनि या देवता का रूप लेना, 13 परिक्रमा से परमज्ञान की प्राप्ति आत्मा का चैतन्य स्वरूप होना जैसे बुद्ध होना और 108 परिक्रमा से निर्वाण का उल्लेख है। कैलास की परिक्रमा (साष्टांगदण्डवतसे) 15 दिन में और मानस सरोवर की 28 दिन में की जाती रही। पोनधर्म के तिब्बती कैलास मानस सरोवर की परिक्रमा उलटी शुरू करते हैं।

तरछेन से दिव्य शिवपुरी कैलास की पवित्र 'यात्रा' प्रारम्भ होती है। कैलास के समीप सम्राट मांधाता पर्वत बोन बौद्ध–जैन–ताओ–भागवत धर्म की साधनास्थली का सिंहद्वार पर्वत है। कैलास से लगभग 45 किलोमीटर पर भष्मासुर के विनाश का पर्वत तीर्थपुरी है। जहाँ माया में मोहित भष्मासुर ने सभी को भष्म करनेवाली शिवशक्ति के हाथ अपने ही सिर पर रखे और राख के ढ़ेर में बदल गया। तीर्थपुरी में गर्म पानी का स्त्रोत है और चूने के सफेद पत्थर भष्मासुर कथा को जीवन्त कर रहे हैं। कैलास के तीर्थयात्री दिव्य चूने के पत्थर की रजकण साथ लाते हैं। तीर्थयात्री तिब्बती परम्परा में 'अकाल मृत्यु' से बचने के लिए चार थुटुप पर लेटकर मरने का श्वांग करते हैं और केश – रक्त चढ़ाते हैं। कैलास की परिक्रमा में नमस्कार के चार स्थल – तरछेन के पास, न्यनरी गोम्पा के पास, डोलमा ला (देवी तारा) के पास और खंडोसड.लम छू के पास हैं। इन पर परमेश्वर को प्रणाम आवश्यक बताया गया है। परिक्रमा के प्रारम्भ में ही छो कपाला आता है। इस पर्वतीय क्षेत्र में दो तालाब हैं। यह दिव्य चमत्कार है कि एक का पानी सफेद दूरची और दूसरे का

काला रूक्ती है। तिब्बती धर्म गुरु बताते हैं कि छो कपाला की परिक्रमा कैलास की 13 परिक्रमा के बाद करें। कपाली सरोवर में प्रस्त्रावशेष 19 करोड़ वर्ष पुराने पाये गए।

दिव्य कैलास की उत्तरी दिशा में वज्रपाणि परमशिव– छानादोर्जे और अन्य में अवलोकितेश्वर विष्णु दो शिखर है। कैलास के पूर्व में डोलमा ला के समीप गौरीकुण्ड – ठुकीजिङ्.बू है। गौरीकुण्ड के दिव्य जल में स्नान को जन्म जन्मान्तर के पापों का नाश करनेवाला बताया गया है। अध्यात्मिक दृष्टि से लद्दाख से कैलासवाले पश्चिमी तिब्बत को शक्ति चक्र तीन–ड.री कोरसुम माना गया है। आर्ष ग्रन्थों में तिब्बत का नाम त्रिविष्टप – किन्नरदेश – कैलासपुरी – स्वर्णभूमि – स्वर्गलोक – शिवपुरी – सुमेरुलोक मिलता है। पवित्र से निकली नदियों के नाम पश्चिम में ल्हाछू, पूर्व में झोड.छू, बीच में तरछेन छू हैं। तिब्बती धर्मग्रन्थों में इडा (कड.मा, रेडन्मा), पिंगला और सुषुम्ना कहा गया है। तिब्बत में कैलास को "ब्रह्मरन्ध्र सहस्त्रार" स्वीकारा गया है। शिव संहिता में योग में 'दसवें कहीं बारहवें चक्र सहस्त्रार' को खोलने अथवा चेतना प्राप्ति को सर्वोच्च कहा गया है। लगभग 2600 वर्ष पहले आदिशंकराचार्य ब्रह्मरन्ध्र सहस्त्रार में सर्वोच्च साधना के लिए शिवलोक कैलास मानस सरोवर गए। कैलास और मानस सरोवर के आसपास आदिशंकराचार्य की तपोस्थली की गुफा विस्मृति के गर्भ में है। दूसरे तिब्बती भोंट भाषा में आदिशंकराचार्य का नाम कुछ अलग ही होगा। यह परम आश्चर्य है कि वर्षों हिमांक शून्य से नीचे 50 डिग्री में आदिशंकराचार्य कैसे रहे ? आदिशंकराचार्य ने दिव्य आश्रमों से कैलास से प्राप्त स्फटिक शिवलिंगों को जाग्रत किया। जम्बूद्वीप में अद्वैत की पुनर्स्थापना, आध्यात्म एवं सात्वत धर्म के पुनर्जागरण के बाद अंत में आदिशंकराचार्य अपने आराध्य की शिवपुरी में लौटे। समझा जाता है कि कैलास – सुमेरु में आदिशंकराचार्य ने अन्तिम साधना की।

विश्व की छत माने जानेवाले सुमेरु कैलास में आदिनाथ महादेव शिव – परमबुद्ध – जैन तीर्थंकर आदिनाथ – ताओ के चार चरण – पश्चिम ध्वजा से टचुड.मपग्या, तमडिन डोड.खड, शपजे डक्योक (गौरी कुण्ड के पास), जंठुलफुक एवं गेड.टा गोम्पा (दक्षिण) में हैं। चार चक्तक सांकल – गेड.तागोम्पा, लड.चेनफुक, चरोक डोड.खड. और तहलम

थरथक तोलमो करमो के पास मानी जाती हैं। तिब्बती मानस सरोवर के इर्द गिर्द को "जम्बूलिड." से सम्बोधित करते है (अर्थात् जम्बूद्वीप का उदगम केन्द्र शिवपुरी कैलास की मानस सरोवर ही रहा।)। तिब्बती मांधाता को नमोनानी या मेमोनामी कहते हैं। कैलास पुराण में कैलास में दिव्य जड़ी बूटी "कड.लुड." का उल्लेख है। कड.लुड. के सेवन से पृथिवी पर कहीं भी देखने अथवा सम्पूर्ण सृष्टि को देखने की दिव्य दृष्टि मिलने का वर्णन है। कैलास में अनेक चमत्कारिक जड़ी बूटी पाये जाने का भी ब्योरा है। दिव्य कैलास का आर्ष ग्रन्थों में चतुवर्णानुसार पूर्व भागमें श्वेत (ब्रह्मविद्याविद ब्राह्मण) रंग, दक्षिण में पीत पीला (वैश्य), उत्तर में रक्तवर्ण (क्षत्रिय योद्धा) और पश्चिम में श्याम वर्ण (शुद्र–सेवा कार्य) माना गया है। शिवपुरी में सूर्योदय पर कैलास की हिम के बदलते रंग दिव्य कला से साक्षात्कार कराते हैं। ऊँ

रजताभा ग्रेनाइट के साढ़े पाँच करोड़ वर्ष प्राचीन कैलास में बीजाक्षरों में हवन

आर्ष पोथियों में वर्णित भूलोक की धुरी मेरु कैलास का ग्रेनाइट का रजतआभा का पश्चिम दक्षिण शिखर उषाकाल 5.5 करोड़ वर्ष प्राचीन है। यद्यपि अभी तक यही माना जाता रहा कि हिमालय देवभूमि के पर्वत नवीन है। कैलास के पूरब में गौरीकुण्ड में 19 लाख पुराने मत्स्य के जीवाश्म मिले हैं। कैलास के उत्तरी शिखर का भाग कांग्लोमोरेट का है। बहिर्गिरि हिमवत क्षेत्र का मेरु अनन्त काल से हिम की श्वेत मोटी परतों से ढ़का स्फटिक के समान चकाचौंध करता रहा है और कर रहा है।

वेदीक साहित्य में मेरु अथवा सुमेरु महापर्वत का उल्लेख मिलता है। यही कैलास पौराणिक गंधमादन दिव्य पर्वत है। इसी गंधमादन से त्रेता युग में मर्यादा पुरूषोत्तम श्रीराम ने अश्वमेध यज्ञ के समय आवश्यकता अनुसार सोना मंगवाया (कैलास मानस सरोवर में प्रचुर मात्रा में सोना है। वेदीक पौराणिक ऋषि कीमियागर होने से सीसे या

रांगे से सोना बनाने की कला जानते थे।)। आर्षग्रन्थों के आख्यानों के अनुसार प्रजापति ब्रह्मा के मन में विचार मात्र से सृजित दिव्य मानस सरोवर "स्वयंभू स्वर्ण रेखावाले शालग्राम (शालिग्राम)" उगलता है। सात्वत सनातन धर्म में शालग्राम को श्रीहरिविष्णु मानकर पूजा जाता है। ये स्वर्ण रेख शालग्राम – नृसिंह, उग्रनृसिंह, हिरण्यगर्भ, लक्ष्मीनारायण, गोपाल, दामोदर आदि स्वरूप रूपाकार के पाये जाते हैं। मानस सरोवर की लहरों में तले से "कैलास आकृति के लघुतम रूप पत्थर" भी प्रकट होते हैं। महातीर्थ यात्री इन्हे महारुद्र का पवित्र प्रसाद रूप स्वीकारते हैं। ये लघुतम महारुद्र कैलास प्रतिकृति अभिष्ट वरसिद्धिदायक होती हैं।

महालिंगाकार कैलास की 46 किलोमीटर की अर्द्ध प्रदक्षिणा में संयोग से कहा : "कैलास में अब सिद्ध योगी कहाँ हैं?" यह भी दैविक संयोग हुआ कि बाघ चर्म लपटे जटाजूटधारी साधु प्रकट हुआ। साधु ने बहुत ही सहजता से कहा : "कैलास मानस में दिव्य शक्ति सम्पन्न सिद्धों की क्या कमी है ? पर किसी से क्यों मिलें ? कैलास परिक्रमा में मन में हवन इच्छा उत्पन्न करते ही बाघाम्बर धारण किए साधु अचानक पर्वत की घाटियों गुप्त गुफाओं से निकलकर आते हवन करने का प्रस्ताव देते हैं। परिक्रमा के मार्ग के पाँच मन्दिर एवं मठ में भगवान् रुद्र शिव (वज्रपाणि), प्रजापति ब्रह्मा (मंजूश्री), श्रीहरिविष्णु (अवलोकितेश्वर), महाकाल, देवी तारा (महाकाली का रूप), क्षेत्रपाल, अभिताभ बुद्ध आदि प्रतिमायें और चित्र सजे हैं। कपड़ों के चित्रपट थांका भी लुभाते हैं। तिब्बत के कैलास मानस सरोवर में वेदीक काल से यज्ञ हवन की लम्बी परम्परा है। यह परम्परा तिब्बत में प्राचीन बोन अथवा पोनधर्म और प्रकारान्तर में तन्त्र प्रधान बौद्ध धर्म वज्रयान में (हवन) जारी रही।

यह सबसे उल्लेखनीय है कि तिब्बत के संत द्वारा पाँच महाभूतों के बीजाक्षरों को यज्ञवेदी में स्थित किया जाता है। मातृका शक्ति, एकाक्षरनामकोषसंग्रह, श्रीशरभतन्त्र आदि के अनुसार पृथ्वी बीज 'लं', जल बीज 'वं', अग्निबीज 'रं', वायुबीज 'यं' और आकाश बीज 'खं' हैं। तिब्बती साधक पृथ्वीबीज लं को लिखकर समचतुर्भुज यज्ञवेदी की रचना करते हैं। वेदी का रंग नीचे लाल, ऊपर श्वेत रंगा जाता है। यह यज्ञ युद्ध में विजय, शांति के लिए और सुख समृद्धि पापनाश के लिए किया जाता है। यह हवन मरने के बाद शुद्धि के लिए भी करने का भी चलन है।

जलबीज 'वं' को केन्द्र में रखकर कमल के गोलाकार यज्ञ वेदी को नीला रंगते हैं। यह यज्ञ शत्रु पर विजय के लिए किया जाता है। 'लं' का देव जिबेई जिनसेक एवं 'वं' का वाड.ी जिनसेक है। अग्निबीज को त्रिकोण यज्ञवेदी के तल में लिखकर अकाल मृत्यु लानेवाली पाप आत्माओं के नाश के लिए ट्रकपो जिनसेक का आह्वान होता है। यह यज्ञकुण्ड स्याह काला होता है। समस्त् ऐश्वर्य के लिए अर्ध चन्द्राकार पीले रंग से सजी यज्ञवेदी में वायुबीज 'यं' लिखा जाता है। यह ग्यस्पाई जिनसे का हवन है। कैलास के लामा बौद्ध साधु षष्ठि संवत्सर के बृहस्पति चक्र के प्रभव को मानते हैं। यह पाँच उपचक्रों में विभाजित है। प्रत्येक उपचक्र में 12 वर्ष होते हैं। बारहवें वर्ष (भारतीय कुम्भकी तरह) ''तालो'' मेला लगता है।

इन चार प्रकार के हवन कराने में मठों के लामा दक्ष हैं। लामा यमराज को चोइग्येल्पो कहते हैं। वैसे विष्णु के 'विराटस्वरूप' का भव्य दर्शन बौद्ध मठों में होता है। जितेन गोबो–चुचिक छोड. की 11 मुखी मूर्ति ठुगोल्हो गोम्पा में है। श्रीविष्णु–अवलोकितेश्वर की 3, 8, 11 और 1000 मुख प्रतिमा परिक्रमा में मिलती है। मठ में हवन में घी और घन्य की आहुति काष्ठ समिधा में दी जाती है। तिब्बती आहुति के समय जिनसेक चिनसेग (संस्कृत में स्वाहा) का उच्चारण करते हैं। मन्दिर मठ में चौबीस घण्टे घी मक्खन की अखण्ड जोत जलने का प्रचलन है। कैलास क्षेत्र के मन्दिर मठों में – शंख, घंटी, घंटा, डमरू, ताल, तुरही, ढोल, वज्र, घुतह, मनुष्य कपाल आदि मुख्य देवता के सामने रखे होते हैं। प्रतिमा के सामने कटोरों में घी का दीपक, सत्तू, शुष्क मांस, चपाती, जौ, छड., मयूर पंख एवं जलपात्र रखा होता है। देव जल में केसर घोली जाती है। यह दिव्य पवित्र जल चरणामृत प्रसाद स्वरूप मिलता है। बारह माहों शीतलहर के कारण देव प्रतिमाओं को मक्खन, ऊन और रंग से सजाया जाता है (भारत में शीतकाल में हनुमत, दुर्गा, श्रीगणेश, कार्तिकेय, महादेवजी आदि के श्वेत बिना नमक के मक्खन से सजाकर प्रसन्न करने की लम्बी परम्परा है। कहीं कहीं महालिंगों का चावल (पके हुए से श्रृंगार) (दक्षिण में) श्रृंगार का चलन है। यह चावल प्रसाद में बांटा जाता है।)।

यह स्पष्ट है कि मेरु के आंगन में वेदीक हवन यज्ञ, मंत्रपाठ आदि भाषा विभेद के उपरान्त भी यथावत जारी हैं। भारतीय परम्परा का निर्वहन करते हुए मन्दिर मठ गोम्पा में दिन रात जलनेवाले अखण्ड दीपक में मन भर घी/मक्खन या चालीस सेर भरकर रखने का रिवाज है। यह मक्खन/घी तिब्बती धर्मालु लाकर चढ़ाते हैं। मठों में प्रतिमा चित्र कक्ष में भारतीय कर्मकाण्ड के पदचिन्हों पर चलते हुए धूप–दीपक–नैवेद्य चढ़ाते हैं। कैलास क्षेत्र में फूलों की कमी और वर्षभर हिमपात के कारण बुना हुआ अंग वस्त्र प्रतिमा को पहनाने की परम्परा है। इसे खत्तक कहते हैं। आमतौर पर कैलास के चारों तरफ बने मन्दिर मठ गोम्पा के लामा और साधारण साधु डाबा भाषा के अलगाव आदि के कारण बहुत ही कम मेलजोल बनाते हैं। गोम्पा के अन्दर लाल कपड़ों में पत्राकार पुस्त्कों का कारूं का खजाना दिखता है। ऊँ

दिव्य कैलास महातीर्थ में ऋग्वेद के रुद्र धर्मपाल तेजोग्ररूप में

तीर्थों के तीर्थ–महातीर्थ दिव्य कैलास में ऋग्वेद के रुद्र धर्मपाल साक्षात मिलते हैं। तिब्बती कैलास पुराण काश्मीर की नीलमत पुराण, शारदा क्षेत्र के स्वच्छन्दभैरवतन्त्र के अघोरेश्वर और शैवोपनिषद महादेव शिव के "धर्मपालक" रूप से परिचय करवाते हैं।

महातीर्थ कैलास का प्रवेश "यमद्वार" है। उधर देवभूमि उत्तराखण्ड में चारधाम तीर्थों का प्रवेशद्वार रुद्रस्वरूप सूर्य की सुपुत्री "यमुनोत्री" यमद्वार है। यमुनोत्री में पूजा अर्चना के बाद ही ब्रह्माण्ड के दिव्य अप जल की गंगोत्री और नरनारायण ऋषि द्वारा हजारों वर्ष पार्थिव शिव की उपासना स्थल केदारनाथ अथवा रामेश्वरम जाने का विधान है। महातीर्थ कैलास की कथा तिब्बती कैलास पुराण में मिलती है। कैलास पुराण में कैलास, लापची एवं चारों दिव्य महापर्वतों के अधिष्ठातृ देवता धर्मपाल (तिब्बती में उच्चारण देमछोग या देमछोक) है।

तिब्बती धार्मिक गाथा बहुत ही रोचक है। धर्मपाल को 'परम शक्तिवान' स्वीकारा गया है। धर्मपाल को परमबुद्ध के समकक्ष माना गया है।

सिम्बलिंग चैत्य के लामा नवकुशक की पुस्त्क 'यिदम देमछोग' धर्मपाल के दिव्य स्वरूप का रहस्य परत दर परत खोलती है। यिदम का अर्थ ईष्ट देवता से है। शक्तियों में तारा यानी तिब्बती डोलमा को सर्वशक्तिमान के रूप में पूजा जाता है। धर्मपाल के चार सिर हैं। उनका मध्य का सिर नीला, दाहिना सिर श्वेत, बायां सिर लाल और पीछे का सिर स्याह काला है। ये चार शीर्ष चार महाभूत –'पृथिवी, जल, अग्नि (तेज) और वायु का प्रतिनिधित्व करते हैं।' साथ ही प्रेम, समभाव, करुणा, स्नेह को भी प्रदर्शित कर रहे हैं। सभी शीर्षों पर 'तीन नेत्र' हैं। स्वाभाविक रूप से धर्मपाल भूत, भविष्य, वर्तमान तीनों के ज्ञाता सर्वज्ञ हैं। वे तीनों लोकों–पृथिवी, पाताल, स्वर्ग के नियंता हैं।

धर्मपाल देमछोग के चारों गलों में पाँच पाँच कपालों की माला है। ये पाँचज्ञान विद्या का सूचक है। सभी के मुंह रुद्र की भांति रौद्र मुद्रा में डरावने और विशाल दांत बाहर निकले हैं। ऋग्वेद के रुद्र और रुद्री के रुद्र का रूप भी महाभयानक है। धर्मपाल की एक जटा में कपाल बंधे हैं। यह समस्त् विद्या की परिपूर्णता को दर्शित करता रहा हैं। हड्डियों का चक्र 'साधना' का प्रतीक है। धर्मपाल के कर्णकुण्डल, सीने का विचित्र हार, हाथों के कंगन सभी का अध्यात्मिक अर्थ है। देमछोग की द्वादश बारह भुजायें बारह विद्याओं के जीव से सम्बन्धों को बताती हैं। ये अविद्या (भौतिक विद्या), संस्कार, विज्ञान, नामरूप, स्पर्श, वेदना, तृष्णा, उपादान, भाव, जरा–मरण एवं शादायातना हैं। धर्मपाल के ऊपरी हाथ के जोड़े में वज्र (दोरजी), घण्टा (टिल्बू) है। धर्मपाल के हाथों में पाश, डमरू और गजचर्म है। डमरू 'नाद' का सूचक है। वहीं धर्मपाल परशु (तारी) और तलवार (दी) थामे हैं। छठे हाथ में त्रिशक्ति त्रिगुणात्मक सत्–रज–तम के प्रतीक रूप में त्रिशूल (खाटम) और खटवांग (अमृत कलश) है। धर्मपाल अपने हाथों में कपाल और थागपा सम्हाले हैं। कपाल यह बताता है कि सभी विचार, पदार्थ नश्वर हैं। देमछोग के हाथों में चार सिरवाले ब्रह्मा छांग्पा का कटा भाग भी है। यह संसार की सभी मायाओं के पाश को समाप्त करने का संकेत है।

रौद्र मुद्रावान धर्मपाल के बायें पैर में काला दानवी सर्प लिपटा है। यह दानवी सर्प ही धर्मपाल को काल का भी महाकाल कालातीत सिद्ध करता है। यह सबसे उल्लेखनीय है : "धर्मपाल कमर में बाघ–सिंह का चर्म धारण किए है।" बाघाम्बर धर्मपाल के महातेज, महाविकरालता और महायोद्धा होने का यक्षगान करता है। देमछोग के महोग्र रूप में और सौम्य दोनों ही रूपों में पूजे जाते हैं। उनके वक्ष (सीने) पर उनकी दिव्य पत्नी वज्रवराही दोरजे फेन्गमो लिपटी हैं। दिव्य कैलास के पश्चिम में पिरामिड आकार की चोटी तिजंग पर वज्रवराही का निवास है। वज्रवराही के केश खुलें और शरीर दिगम्बर है। यह वज्रवराही की निर्वस्त्रता सभी विकारों काम से मुक्त होने का संदेश देती है। अध्यात्मिक रूप से धर्मपाल 'परम पुरूष' और वज्रवराही 'प्रकृति' है। तिब्बती चित्रकारों ने धर्मपाल के चित्रों में नीले रंग का विशेष प्रयोग किया है। धर्मपाल की तरह 'वज्रवराही भी त्रिनेत्रा' है।

स्वच्छन्दभैरव तन्त्र के अघोरेश्वर का स्वरूप समान है। काश्मीर शैव मत में स्वच्छन्दभैरव की तान्त्रिक उपासना की हजारों वर्ष पुरानी परम्परा है। इसमें श्याम वर्ण के स्वच्छन्द भैरव के दो हाथों पर अघोरेश्वर विराजमान हैं। अघोरेश्वर के पाँच सिर हैं (महादेव शिव के पाँच मुखी शिवलिंग को पशुपतिनाथ कहा गया। इन पाँचों मुखों के अलग अलग रंग है। प्रत्येक रंग का अपना अध्यात्मिक अर्थ है)। अघोरेश्वर के गले में कपालों की मुण्डमाला और वासुकी नाग है। अघोरेश्वर के हाथों में त्रिशूल, वृषभ ध्वजा, कपाल, पिनाकी धनुष, खडग, परशु आदि सभी आयुध हैं। गले में सर्पराज हैं। सभी आयुध प्रतीकात्मक अध्यात्मिक संकेतात्मक गूढ़ अर्थ लिए हैं। अघोरेश्वर का नील रंग समभाव को प्रदर्शित करता है। अघोरेश्वर की जंघा पर महादेवी सौम्य मुद्रा में बैठी हैं। वैसे शैवमत में चतुर्मुखी शिव का भी उल्लेख मिलता है। जिसमें पाँचम मुख 'अदृश्य' होता है।

ऋग्वेद में रुद्र को देव मर्यादाओं का नियंता अथवा धर्मपालक के रूप में स्वीकारा गया है। वेदीक रुद्र मर्यादाओं के पालन के लिए प्रजापति को उनकी काम लोलुपता के लिए दण्ड में धनुष से सिर काटते हैं। यही कटा सिर मृगशिरा नक्षत्र है। इस घटना से वेदों में रुद्र की प्रधानता को पूरीतरह स्वीकारा गया। रुद्र धर्मपालन के मार्ग में सम्बन्धों

को कोई महत्व ही नहीं देते। रुद्र महादेव ने दक्षराज प्रजापति (अपने श्वसुर), देवी पार्वती उमा के मानसपुत्र गणेश, श्रीहरिविष्णु के रौद्र अवतार नृसिंह, प्रजापति ब्रह्मा, कामदेव, काल आदि को दण्ड देने में कोई हिचक नहीं की। रुद्र महादेव ने देवता–राक्षस–मानुस तीनों में कोई भेद नहीं किया और श्रीराम की सेना से सेना से लड़ने स्वयं आये (एक राजा ने अपने राज्य का शासक रुद्र को घोषित किया हुआ था। ऐसे में अश्वमेध में राजा अधीनता कैसे स्वीकारता? अतः रुद्र को प्रकट होकर अश्वमेधी सेना का सामना करना पड़ा।)। वेदीक रुद्र ही अघोरेश्वर, पशुपतिनाथ, महाकाल, धर्मपाल, शिव शंकर, महादेव, महाकाल आदि कहलाये।

कैलास पुराण काङ.री करछप और अघोरेश्वर का स्वरूप शत प्रतिशत एक ही है। वेदीक काल के रुद्र के स्वरूप पौराणिक काल तक विस्त्]ार पा चुके थे। शैव मत में तान्त्रिक अनुष्ठान पद्धति ने मायावी रूपाकार लिया। आदिशंकराचार्य के समय 2600 वर्ष पहले शारदा क्षेत्र काश्मीर से लेकर दिव्य कैलास तक रुद्रोपासना का चलन रहा। सम्भवतः यही कारण रहा कि दिव्य कैलास में बौद्धों को भी धर्मपाल देमछोग को अधिष्ठातृ देवता स्वीकारना पड़ा। ऊँ

परमपवित्र स्फटिक कैलास महालिंग
"आधी परिक्रमा"

सात्वत सनातन धर्म के महातीर्थ कैलास के महापर्वत महालिंग की आधी ही परिक्रमा होती है। दिरफुक–डिरफुक देरफुक पर्वतमाला तरछेन या दरचेन से आनेवालों का रास्त्]ा रोकती है। दिरफुक डिरफुक 16400 फीट की ऊँचाई पर है। साथ ही कैलास की खड़ी दीवार है। डोलमा ला गौरीकुण्ड से आगे पुनः परिक्रमा चलती है। गौरी कुण्ड पर्वत की तलहटी पर है। तिब्बत ने दिरफुक या डिरफुक के समीप और गौरीकुण्ड से आगे प्रदक्षिणा पथ निर्मित किया है।

रुद्रार्चना के आगम में शिवलिंग की जलझरी की सम्पूर्ण परिक्रमा "नहीं" लगाने का कठोर विधान है। फलस्वरूप निराकार लिंगस्वरूप रुद्र की प्रदक्षिणा आधी की जाती है। शिव मन्दिर (शिव परिवार नहीं) के गर्भ गृह के रूपाकार में जलझरी से सटी दीवार होती है। 'स्थावराणां हिमालय' (श्रीमदगीता) : योगीराज श्रीकृष्ण स्थावरों में स्वयं को हिमालय कहते हैं। "केलयोर्जलभूम्योः आसनम् स्थितिः यस्य कैलासः स्फटिकम्, तस्याऽयम् कैलासः (स्फटिक रूप कैलास जल और भूमि के बीच स्थित है। स्फटिक रूप होने के कारण कैलास कहा गया।)" दूसरे, महादेव रुद्र के मित्र कुबेर का स्थान कैलास है : "कुबेरस्य स्थानम् कैलासः।" पर्वतराज की चोटी पर महेश्वर कामेश्वर एवं कामेश्वरी श्रीत्रिपुरमहासुन्दरी महेश्वरी के युग्ल नृत्य के कारण नामकरण कैलास हुआ : "के शिरसि शिवयोः लासः नृत्यम् अस्मिन् इति कैलासः।" यह महातीर्थ दिव्य क्रियाओं का केन्द्र कैल है। उन्ही के कारण कैलास कहलाया (यहाँ कैल का अर्थ नटराज महादेव और महादेवी से है।) : "कैलीनाम समूहः कैलम् तेन आस्यते स्थीयत इति कैलासः।" देवताओं के जादुई वास्तुकार शिल्पी विश्वकर्मा ने दैविक कला का चमत्कारिक परिचय कैलास के रूप में किया है। भूलोक के केन्द्र मेरु अथवा कैलास में अध्यात्मिक आभा मण्डल, अध्यात्मिक सात्त्विक स्फोत, तरंग, स्पन्दन, कंपन, प्राकृतिक सम्मोहक सौन्दर्य, निर्मल आकाश, स्फटिक की हजारों सूर्यों के समान जगमगाहट 'समाधि' लगाने के भाव पैदा करते हैं।

पूर्व वेदीक काल यानी 40 लाख वर्ष से प्राचीन कैलास, मानस सरोवर कृतयुग से वर्तमान 7 वें मनु के कलियुग में आध्यात्म के जिज्ञासुओं, ब्रह्मविदों को बाहें फैलाये आमन्त्रित करता रहा। स्कन्द पुराण के मानस खण्ड में उल्लेख मिलता है : "मेरुः शिखरिणामहम्" (पर्वत शिखरों में मैं (परमेश्वर) मेरु कैलास हूँ।)। कृतयुग में सम्राट मांधाताने कैलास क्षेत्र में आकर कठोर तपस्या की। इसकी गवाही मानस सरोवर के पास गुरला मांधाता मेमोनानी (25355 फीट शिखरवाला) पर्वत दे रहा है। त्रिदेवों के अंशावतार नाथों के नाथ महर्षि दत्तात्रेय ने कैलास में आकर शिव शिवा की उपासना की और उन्हे दोनों ने दर्शन दिए। भगवान् महारुद्र ने भूलोक में सबसे पवित्र कैलास मानसरोवर को बताते हुए कहा कि इसके दर्शन अथवा स्मरण मात्र से सभी पापों का नाश

होता है। मेरा (साम्बसदाशिव का) मूल स्थान कैलास है। कैलास के चरणों में धनपाल कुबेर की नगरी अलकापुरी है। कैलास के समीप मायावी "कुबेर ताल" है। कुबेर पर्वत अभी अज्ञात है। अलकापुरी के अवशेष तक दिखाई नहीं देते हैं।

सतयुग, त्रेतायुग और द्वापर में लंकेश्वर दशानन रावण, नर नारायण ऋषि, परशुराम, मुचकुन्द, कणाद, गौतम, कपिल, अत्रि, भरद्वाज, वसिष्ठ, उपमन्यु, विश्वामित्र एवं देवराज इन्द्र के मानसपुत्र अर्जुन ने कैलास में साम्बसदाशिव (पार्वती सहित शिव) की कठोर तपस्या की। द्वापर एवं कलिकाल की संधि के समय कृष्णद्वैपायन व्यासजी महाराज, योगीराज श्रीकृष्ण, वेदीक पवन के पुत्र भीम भी कैलास आये (योगीराज श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर को अपने गुरु ऋषि उपमन्यु द्वारा प्रदान श्रीशिव सहस्त्रनाम सुनाया।)। वेदीक पौराणिक ऋषियों अध्यात्मिक शक्तिपुंज कैलास के आभा मण्डल में हिमनदों के बीच अदृश्य आश्रम जैसे वसिष्ठाश्रम, कौशकिआश्रम, विश्वमित्राश्रम, भरद्वाजाश्रम, दत्तात्रेयाश्रम, गौतमाश्रम, अगस्त्याश्रम, कणादाश्रम, अत्रिआश्रम, कपिलाश्रम, परशुरामाश्रम, ज्ञानगंज आश्रम आदि की स्थापना की। हजारों वर्ष से सिद्ध ऋषि वेदीक ब्रह्मविद्या की गंगोत्री बहा रहे हैं (देखें– तालबोट मुण्डी कृत नाईन अननोन, स्वामी विशुद्धानन्द परमहंस, महामहोपाध्याय गोपीनाथ कविराज की ज्ञानगंज आदि।)। इन महर्षियों के आश्रमों में तपस्या, साधना का क्रम वर्तमान में भी निरन्तर जारी है। छब्बीस सौ वर्ष पहले अद्वैत को पुनर्जीवित करनेवाले आचार्य शंकर (आदिशंकराचार्य) एवं उनके गुरु गोविन्द गौडपाद ने कैलास मानसरोवर में तपस्या की और अज्ञात आश्रमों में गए। आचार्य शंकर कैलास में शिवसाधना से पाँच दिव्य स्फटिक शिवलिंग लाए। आचार्य शंकर 32 वर्षीय जीवन की सांझ पर दोबारा कैलास लौटे। जैनधर्म के प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव – आदिनाथ ने भी कैलास में महानिर्वाण प्राप्त किया। समझा जाता है कि लाओत्से भी हिमालय के महान्दों में ताओ के 84 सूत्र लिखकर खो गए। यह माना जाता है कि ताओ यक्षराज पुष्पदन्त के शिव महिम्न स्त्ोत्र के निराकार महेश्वर परमेश्वर हैं। निगम आगम के महर्षि सनक, सनंदन, सनत्कुमार, सनत्सुजात आदि ने भी कैलास में रुद्र को प्रसन्न करने के लिए कठोर तपस्या की। ईसा पूर्व सम्राट अशोक महान् ने तिब्बत

दिग्विजय प्राप्त की। संस्कृत महाकाव्य मेघदूत, कुमार सम्भव आदि में कैलास–मानस के दिव्य सौन्दर्य का वर्णन है। वैसे पिछले दो हजार वर्षों में कैलास अध्यात्मिक साधकों का गुप्त केन्द्र बना। वर्तमान छठी शताब्दी तक हूण देश तिब्बत पर आर्यवर्त ब्रह्मवर्त का राज रहा (चीनी यात्री ह्वेन सांग, इछिड. ग्रन्थ) तक्षशिला, विक्रमशिला, नालन्दा विश्वविद्यालयों के सुनाम आचार्य भी कैलास आते रहे। नालन्दा के आचार्य शांतिरक्षित ने नवीं शती में कैलास में मंदिर बनवाया। तिब्बत एवं कैलास में सबसे अधिक पूजित पद्मसम्भव आचार्य का भी कैलास से गहरा सम्बन्ध रहा। ग्यारहवीं शती ने शारदाखण्ड (काश्मीर) के सोमनाथ ने कैलास में कालचक्र ज्योतिष को तिब्बती रूप दिया। महान् तांत्रिक तिलोपा (बंगाल), नरोपा (काश्मीर) के दिव्य शिष्य मिलारेपा ने कैलास में वर्षों साधना की। आचार्य दीपंकर के मानस सरोवर में सिद्धी प्राप्त की। तांत्रिक बीरबल के परामर्श पर चमत्कारों की लम्बी गाथा है। उनके अवशेष तारा मंदिर में रखे हैं।

इतिहास गोस्वामी तुलसीदास की कैलास यात्रा का वर्णन मिलता हैं। मध्यकाल में बीरबल के परामर्श पर बादशाह अकबर ने कैलास खण्ड एवं दिव्य नदी गंगा के सम्बन्धों के रहस्य को जानने के लिए विशेष दस्ते् भेजे। अठारहवीं शती में भी कैलास कुमाऊँ के अधीन रहा। अठारहवीं से बीसवीं शताब्दी तक कैलास मानस जाकर तपस्या साधना करनेवालों में प्रमुख जापानी बौद्ध संत एकई कावगूची, महाराष्ट्रके श्रीहंसस्वामी, आन्ध्र के श्रीतेंलगस्वामी, मयूरपंखीबाबा, स्वामीविशुद्धानन्द परमहंस, जगदगुरुशंकराचार्य स्वामीब्रह्मानन्दसरस्वती, स्वामीसत्यदेवपरिव्राजक, स्वामीज्ञानानन्दगिरि, स्वामीजयेन्द्रपुरी, स्वामीशिवानन्द ऋषिकेश, श्रीअद्वैतानंद, स्वामीस्वयंज्योति, आनसिंहबाबा, स्वामीकृष्णाचार्य, स्वामीओमसत्यम्, गुजरातके नारायणस्वामी, ब्रह्मचारी रामानंदजटाशंकर, भास्करब्रह्मचारी, श्रीरामठाकुर, स्वामीलद्दाखीछवा, स्वामीनित्यानन्दसरस्वती, बुद्धाबोस, स्वामीप्रणवानन्द, रोमन पादरी डेसीडरी, आनन्दमयी माता आदि रहे। उमाशंकर मुखर्जी ने 1934 में कैलास मानस पर 30 मिनिट की फिल्म का निर्माण किया। कैलास में ही गंधमादन स्वर्ण देनेवाला पर्वत है।।ऊँ।।

मेरु रहस्य : रुद्रलोक मेरु कैलास मानसरोवर में गुप्त दिव्य शक्तिपात

आर्षग्रन्थों में मेरु पर्वत के रुद्रलोक के आश्चर्यजनक दिव्य क्रियाओं का वर्णन मिलता है। यही मेरु पर्वत पृथिवी भूलोक पर हिमालय में कैलास है और दैविक मानस सरोवर हैं। कैलास पर ऋग्वेद में वर्णित वेदीक देवताओं के नियामक महामहाकाल रुद्र प्रगल्भ अवस्था में ध्यान में लीन है। महादेव रुद्र के अर्धनील नेत्र मोहते हैं (मेरु : भारतभूमि ग्रन्थ)।

ब्रह्मविद्या समाज थियोसोफिकल सोसायटी के श्री सी.डब्ल्यू. लीडबीटर ने ''दा मास्टर्स पथ'' में त्रिविष्टप (तिब्बत) की दिव्य घाटी में 'परमेश्वर' (परमबुद्ध) के प्रतिवर्ष अवतरण का ब्योरा लिखा है। श्री लीडबीटर ने रहस्योद्घाटन किया कि वर्ष में निश्चित दिन परमेश्वर धर्मात्माओं को 'दिव्य शक्पित' करते हैं। उन्होंने इसका चित्र भी दिया है। भारतीय इतिहास रामायण, महाभारत में कैलास मेरु को क्रौंच पर्वत एवं हेमकुट के नाम से सम्बोधित किया है। तिब्बती में कैलास को ''पवित्र हिम–कड. रिम्पोछे या तिसी भी कहा जाता है। सनातन हिमवाले हिमनदियोंवाले पर्वतीय क्षेत्र में स्कन्दपुराण का कल्पान्त तक 'कलापग्राम' है। वेदीक ऋषियों ने सहस्त्रों सहस्त्रों वर्षों से ब्रह्मविद्या की दिव्य शक्ति में दीक्षा के रहस्यमय आश्रम स्थापित किए हुए हैं। इन आश्रमों में अधिष्ठाता स्वयं संचित शुभकर्मोंवालों का चयन भारतवर्ष में घूम घूमकर करते हैं।

हिमनदियों के बीच दिव्य चमत्कारिक शक्ति ब्रह्मविद्या के हजारों–हजारों वर्ष पुराने आश्रम उपग्रह की तीसरी आंख और भूगर्भ भेदी संवेदन (रिमाटे सैंसिंग) को भी छलावा देकर रहस्य बने हैं (देखें स्वामी विशुद्धानन्द परमहंस, ज्योतिष्पीठ के जगदगुरु शंकराचार्य रहे स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती की साधना वृतान्त)। तिब्बती मन्दिर चैत्य–मठ–गोम्पा–विहार में बड़े बड़े किलकोर किड.कोर यंत्र बनाकर तांत्रिक सिद्धि में साधक लगे मिलते हैं। मारण–वशीकर–मोहन में

गोमछेन चलता है। जिसमें डाकिनी खंडोमा की सिद्धि से शत्रु को विजित करनेवाली "अभिमंत्रित तलवार–फुरवा" प्राप्त होती है। समझा जाता है कि तांत्रिक ताबीज पहनने से गोली भी बेअसर रहती है। अणिमादि सिद्धि से साधक वायु में उड़ने की चमत्कारिक शक्ति प्राप्त करता है (भारतीय आगम में मंत्र–बल उड्डीश मंत्र से साधक शरीर को हल्का सूक्ष्म बनाकर वायु में स्वतन्त्र विचरण कर सकने का उल्लेख है।)। योग में भी शरीर को भाररहित करने की क्रिया मिलती है। नाथ के महान् सिद्ध गोरक्षनाथ हवा में विचरण करने की दिव्य शक्ति रखते थे। स्वयं महामहोपाध्याय गोपीनाथ कविराज ने जब किसी कारणवश ऋषिकेश के समीप नीलकण्ठ के शिखर से जीवन त्यागने का मानस बनाया तब श्रीज्ञानगंज के साधक ने (वायु मार्ग से आकर) अंधियारी रात में बचाया। स्वामी विशुद्धानन्द परमहंस भी सूक्ष्म देह से सैकड़ों मील यात्रा करते थे। जैन धर्म के दिव्य महात्मा महाप्रज्ञ भी आधी रात सूक्ष्म देह से यात्रा करते थे। तिब्बती योगी को नलजोरपा–नलहयोरपा के नाम से पुकारते है। एक समय मानस सरोवर के घेरे के चैत्यों में सिद्ध जौ की बाल की नोंक पर आसन जमाकर हठयोग करते बताये जाते हैं। मानस सरोवर और कैलास के बीच पर्वतमालाओं में नंगे साधु भीषण सर्दी से बचने के लिए "एक विशेष पौधे की पत्ती अथवा विशेष पत्थर की कणि जिह्वा के नीचे दबाते हैं" (महातीर्थ के अंतिम यात्री पुस्त्क में श्री बिमल डे ने स्वयं इन दोनों के काम में लेने का उल्लेख किया है।)।

कैलासवासी इस बर्फीली सर्दी से बचानेवाली औषधि को विषपाचक बूटी कहते हैं। कैलास की तलहटी की आर्चा डालू बूटी तेज बुखार में काम आती है। इस रेवदचीनी के नाम से भी पुकारते हैं। इसके पौधे से निकला रस टींचर घाव में उपयोग होता है। सोलह सौ फीट की ऊँचाई पर वत्सनाभ तेलिया मीठी मानस खण्ड का अमृत है। वैसे कैलास मानस खण्ड की वज्रपात हड्डी (बिजली हड्डी– इसकी उत्पत्ति आकाश से बिजली गिरने से मानी जाती है।), ऊँटाघुरा कुडंरी बिड.री में मिलनेवाला थनेरी पत्थर, ऊँचे शिखरों पर मिलनेवाली कैलास विभूति (शिवपुरी की भष्म), मानस सरोवर की पाँचरंगी रेत, हरित–रक्ताभ–गुलाबी–भूरा–सफेद जहरमोरा अर्धरत्न, सांप बिच्छू का विष उतारनेवाली 'निर्विषी' जड़ी, हींग

सरीखी उंबो जड़ (उंबो जड़ धूप में उपयोग ली जाती है।), मानस की आयोडीन सी गन्धांति घास आदि भी शिवपुरी का चमत्कार है।

शिवपुरी में सृष्टि के धनपाल कुबेर को समर्पित मायावी अदृश्य "कुबेर ताल" है। इतिहास पुराण आख्यानों के अनुसार महादेव शिव के परम भक्त लंकेश्वर रावण ने मंत्र शक्ति से सुमेरु पर स्वर्णमय नगरी निर्माण की शुरूआत की। जिसे महायोगीश्वर शिव ने अस्वीकार किया। मेरु पर्वत मानस खण्ड में "सोने की खानें" इसी कथानक की पुष्टि करता है। लोक इतिहास के अनुसार सोने की खान की खुदाई करनेवाले, ठेकेदार आदि की शिव के तीसरे नेत्र के प्रकोप से एकाएक कथित रहस्यमय मृत्यु हुई। फलस्वरूप वर्षों से सोने की खान को छुआ नहीं गया। एक समय स्थानीय बासिन्दे सभी रोगों में मानस सरोवर की पाँचरंगी रेत को खाते थे। कैलास में "कामदेव को भष्म करनेवाला स्थल अभी अज्ञात है। यही स्थिति कुबेर के आसन एवं नगरी अलकापुरी की है।" जैन धर्म के प्रथम तीर्थंकर भगवान् आदिनाथ ऋषभनाथ का कैलास से गहरा संबंध रहा है। भगवान् आदिनाथ को कैलास पर्वतमाला में "अष्टपद" समर्पित है। अष्टपद जाने की कठिन चढाई है। दुर्गम पर्वत में मीलों धर मंजल धर कूंच के बाद शिखर पर बौद्ध शैली में सहस्त्रों वर्ष पुराना भगवान् आदिनाथ स्तूप है। जहां से कैलास, मंधाता के दिव्यदर्शन होते हैं। आदिनाथ अष्टपद पर्वत पर मंत्र जाप, साधन तत्काल फलित होने का विधान है। एक तीर्थयात्री के अनुसार उसे अष्टपद पर सिंह चर्मधारी साधु मिले और हवन करा कर देखते देखते विलुप्त हुए।

मानस सरोवर—मानसराज—सरोवरराज—मानसरोवर एवं कैलास में "राजहंस और सर्वप्रथम रामायण सुननेवाले काक भुषण्डि" भी दैवीय कृति है। पिण्डारी हिमनदियों में अद्‌भुत पीली चोंच, लाल पंजेवाले विचित्र क्रोंच (कौओे) काक भुषण्डि के वंशज या प्रतिनिधि के रूप में स्वीकारे जाते हैं। राजहंस के कलियुगी संस्करण में पंजे और लाल चोंच एवं श्वेत शरीर है। मानस सरोवर के राजहंस महादेव शिव की कृपादृष्टि के लिए "शाकाहारी" बने है। राजहंसों द्वारा मछली, घोंघा, सीप का नहीं खाना चकित करता है। तिब्बती इन्हे ड.ड.बी कहते हैं। इनका अंडा मुर्गी के अण्डे से तीन गुना बड़ा होता है। महादेव शिव, जगत जननी शक्ति स्वरूपा सुगन्ध प्रिय हैं, सो कस्तूरी मृग घूमते हैं। महादेव महादेवी को

चंवर गाय "चंवर" झलती हैं। मानस सरोवर के हिमवत होने पर राजहंस–चंवरी गाय कस्तूरी मृग भी सुरक्षित स्थान लौटते हैं। मानस सरोवर में राजहंस एवं बतख दोनों का मिश्रित चकरमा जलपक्षी भी आकर्षक है। इसकी चोंच–पूंछ काला एवं भूरा और शरीर सफेद होता है। इन्हे चकराता या ड.रूसिरचुड. कहा जाता है। ड.ड.बा और चकराता दोनों की प्रवृत्ति में दिन रात का अन्तर है।

कुमबुम मठ छोततेन के चैत्य में बंद वृक्ष पर मणि मंत्र "ऊँ मणि पद्मे हुँ" अंकित होने का रहस्यमय दावा किया जाता है। मणिमंत्र अंकन के कारण दिव्यवृक्ष के अंश को गुप्त रखा जाता रहा (समझा जाता है कि वर्तमान वृक्ष पर ऊँ मणि पद्मे हुँ दिखाई नहीं देता है। वह अदृश्य है।)"। गुरला ला के समीप पर्वत शिखर पर श्वेत पत्थर (लपचे) और मणि पत्थर मिलते हैं (वास्त्व में वर्तुलाकार पत्थर पर ऊँ मणि पद्मे हुँ तक्षित कर मणि पत्थर बनाया है।)। मणि पत्थर को स्थापित करने से दिव्य शुभ स्पंदन तरंगें कंपन आने की पुरानी मान्यता है।)।।ऊँ।।

कैलास प्रदक्षिणा मठों में दुर्लभ असंख्य कंजूर तंजूर तंत्र पत्राकार पोथियों का दुर्लभ खजाना

"मेरु प्रदक्षिणा नित्यगर्तयो नृलोके" (सर्वार्थसिद्धि वचानिका : पण्डित जयचन्द, सम्वत 1833 शके) : देवलोक से आकर देवता मेरु की प्रदक्षिणा करते हैं। भूलोक की धुरी समुद्र मंथन के जीवान्त साक्षी मदरांचल–मेरु–सुमेरु–कैलास की प्रदक्षिणा के मठों में तन्त्र के दुर्लभ पत्राकार ग्रन्थों–पाण्डुलिपियों का रहस्यमय खजाना है।

कैलास की प्रदक्षिणा में पूरब में पाँच पर्वत और दायें दो पर्वत हैं। पीछे दिरफुक–डिरफुक–देरफुक–डेरफुक हिमालयी दीवार बना है। प्रदक्षिणा में पश्चिम में न्यनरी छुकू मठ (गोम्पा), पूर्व में जुंठुलफुक मठ, उत्तर में डेरफुक (डिरफुक–दिरफुक) मठ, दक्षिण में गेडन्टा मठ और सिलुड.मठ है। उत्तराखण्ड के इतिहासकार न्यनरी छुकू मठ को ईसा पूर्व

अढ़ाई शती सम्राट अशोक के समय का कहते हैं। सम्राट अशोक के समय से सत्रहवीं शती तक कैलास मानसरोवर कुमायूँ के अधीन रहा। तिब्बत में बौद्धधर्म सातवीं शताब्दी में प्रारम्भ हुआ। बौद्धधर्म में हीनयान महायान एवं अंत में वज्रयान की धारायें गंगा यमुना की तरह बही। पश्चिमी से पूर्वी तिब्बत में बौद्ध धर्म में "तांत्रिक अनुष्ठानों कर्मकाण्ड" का अहम् स्थान है। कैलास प्रदक्षिणा के प्रथम मठ न्यनरी छुकू मठ के दुवड. के प्रधान देवता छुकू रिंपोछे की श्वेत संगमरमर की मोहिनी प्रतिमा और प्राचीन हस्त्ी दंत हैं। मठ में दूसरी भव्य प्रतिमा लम्बी दाढ़ीवाले ड.ावा नम्ग्यल की है। मठ के ऊपरी भाग में कड.री ल्हम्चेन, महाकाल, महाकाली की रौद्र प्रतिमायें विराजमान हैं। प्रतिमाओं के दायें बायें हाथी दांत सजे हैं।

छुकू मठ में कैलास विजित करनेवाले भारतीय सेनापति जोरावर सिंह का कवच, तलवार, राईफल, गैंडे के चमड़े की ढ़ाल, लट्ठ और अन्य भी सजाकर रखे हैं। मठ में बड़ी संख्या में कंजूर और दूसरे तांत्रिक ग्रन्थ लाल वस्त्रों में लपेटकर रखे हैं। कं–ग्यूर कंजूर का अर्थ है : भगवान् बुद्ध के अमृत वचन। वहीं शास्त्र तं–ग्युर तंजूर (शास्त्रों का अनुवाद) तंजूर हैं। कंजूर 108 खण्डों में और तंजूर 235 खण्डों में हैं। मूल पालि के त्रिपिटकों का तिब्बती (काश्मीर की शारदा लिपि, संस्कृत का मिश्रण) में कंजूर 108 वेष्टनों में मिलता है (तिब्बती मानते हैं कि इनकी 700 से भी अधिक है।)। तंजूर फलकों में दर्शन, सूर्यविज्ञान (ज्योतिष), व्याकरण, साहित्य, आयुर्वेद, देवशास्त्र, तंत्र, मंत्र, यंत्र, देवार्चना आदि का रहस्य समझाया गया है। तंजूर ग्रन्थों में नागार्जुन, आर्यदेव, असंग, पद्मसम्भव, दिड.नाग, बसबंधु, शान्तिरक्षित, दीपंकर, चन्द्रकीर्ति, कमलशील, चन्द्रगोमी, कालिदास, दंडी, हर्षवर्धन, क्षेमेन्द्र आदि की रचनाओं का भण्डार सुरक्षित है। तिब्बती धर्म इतिहास को छोजुड. और जीवनवृत को नमथर कहते हैं। भगवान् बुद्ध के दिव्य वचनों को दुलवा भिक्षु नियम, शेरचिन, पलचेन, कोनछेग, दोसूत्र, म्यंगड़ा एवं ग्युट में विभाजित किया गया है। वहीं तंजूर दो भागों–तंत्र ग्युट और सूत्र में विभाजित हैं। मठ में तिब्बती कैलास पुराण कड.री करछक को होना भी लगभग अनिवार्य है। इसका नित्यपाठ होता है।

मठ में देवस्वरूप में छानादोर्जे वज्रपाणि (महादेव शिव), जंबयड्रू. मंजूश्री (ब्रह्मा), चेनरेसी अवलोकितेश्वर (विष्णु), सायी निड.पो (क्षितिगर्भ), आकाशगर्भ नमका निड.पो, मैत्रेय चंपा, कुंटुछड.पो (समंत भद्र), डिपपा नंपर सेल (सर्व कष्ट निवारण विष्कंमी), महाकाल, महाकाली, धर्मपाल, हरी तारा, श्वेत तारा, ल्हमो आदि के चित्र अथवा रखने का विधान है। तिब्बती कलाकारों ने देव के उग्र, रंजक और शांत तीन तरह का रूपाकार दिया है। कैलास के अधिष्ठातृ देव धर्मपाल का चित्र उग्ररूप में ही प्रचलित है। धर्मपाल का रूपाकार साम्ब सदाशिव के अघोरेश्वर (स्वच्छन्द तन्त्र) की ही प्रतिकृति है। इसके चारों सिर नर कपालों की माला पहने हैं। धर्मपाल सिंह एवं गज चर्म धारणकर त्रिशूल, डमरू, सर्प, पाश आदि लिए लिए हैं। यह स्पष्ट है कि कैलास पुराण में शिव का रौद्र रूप है। मठ की दीवारों पर थांके वस्त्र चित्रपट टंगे रहते हैं। मणिमंत्र 'ऊँ मणिपद्मे हूँ' का विशेष स्थान है। मठ में धर्म, कर्मकांड, वैद्यक, मूर्ति निर्माण, चित्रकला और पाण्डुलिपि मुद्रण प्रकाशन की शिक्षा दी जाती रही है। विगत में मठ में अधिष्ठातृ रवनपोके अलावा ड़ाक्टर (लहरपा), आचार्य (गरगेन), दिव्यज्ञानी गेशे, गेलोड., उपजे एवं गिग्ल होते रहे। मठ में महातीर्थ यात्री दान करने के उत्सुक रहते हैं। मठ के लामा वर्तमान परिस्थिति में भारतीय तीर्थयात्री कैलासी से निश्चित दूरी बनाए रहते हैं। मठ के पत्राकार ग्रन्थों को तिब्बती भाषा ज्ञान के अभाव में देखना बेकार है।

मठ में कागज एवं सूती वस्त्र की लुग्दी से छोटी मूर्तियां और कागज की रचना भी चलती रही है। कागज और थांकों पर तीन बीजाक्षर ऊँ अं हूँ भी लिखने की भी परम्परा है। मठ में मणि मंत्र का कोरलो होता है। जिसमें अनन्त बार मणि मंत्र लिखकर रखा जाता है। इस कोरलो मणि को घूमाने से मंत्र पाठ का लाभ मिलता है। कैलास का दूसरे मठ डिरफुक (डिर्थिनुफुक) के मुख्यदेव 'शाक्यपेंदे' है। इस भव्य प्रतिमा के पेट में विभिन्न देव प्रदर्शित है। मठ का मन्दिर भाग चित्रलिखित करता है। मठ की विशेषता यह है :"यहाँ तिब्बती कैलास पुराण का मुद्रण होता रहा।" तिब्बती अखरोट की लकड़ी के अक्षरों से कैलास पुराण का प्रकाशन करते रहे। यह मुद्रण सामान्य, उत्तम और सर्वोत्तम प्रकार का होता। जिनमें कागज की किस्म, रंग एवं मुद्रण की

रंगीन और सुनहरी स्याही का भेद होता। यह मठ के सामने कैलास महातीर्थ के शिखरों के नाम वज्रपाणि, कड.रिपोछे श्रीकैलास, अवलोकितेश्वर, मंजुश्री एवं छोगेल नोरसड. हैं। मठ के समीप गुफा में गोजड.बा की भव्य प्रतिमा है।

श्रीकैलास प्रदक्षिणा के तीसरे जुंठुलफुक मठ की गुफा में महान् साधक तिलोपा, निलोपा के पट्टशिष्य मिलारेपा और देवी देवताओं की वशीकरण करती प्रतिमायें हैं। मठ की वेदी पर ड.ावानमग्यल की आकर्षक मूरत है। मठ के आंगन में पत्थर का लगभग 7 फीट का मिलारेपा का लट्ठ है। मठ में कंजूर और तंजूर रक्तिम आवरण में लिपटे रखे हैं। प्रदक्षिणा में पर्वत पर दुर्ग रूप में निर्मित गेड.टा गोम्पा चौथा मन्दिर है। गेड.टा से कड.रिपोछे श्रीकैलास के दर्शन नहीं होते हैं। यहाँ मन्दिर का अधिष्ठातृ देव छोलोकेश्वर और चकड. प्रमुख खंडो है। गेड.टा मठ में कंजूर, तंजूर का बड़ा खजाना है। आमतौर पर तीर्थयात्री गेड.टा मठ को दूर से प्रणाम करते हैं। मठ का ध्वजा मीलों दूर से दिखाई देती है। मठ के समीप ही (लगभग 3.25 किमी) पर कैलास का पाँचवाँ सिलुड. मठ सबसे छोटे आकार का है। इसके मन्दिर के दुवड. में दोर्जेछड., ड.ोजुन डुथ्थो की और चकड. में अप्ची की मनोरम प्रतिमाये हैं। जिन्हे लामाओं ने भलीभांति सजाया हुआ है। मठ में तान्त्रिक पत्राकार ग्रन्थ बहुत ही सावधानी से रखे हुए हैं। लामा और डाबा (सामान्य सन्यासी) दिन रात पाँचाक्षरी मंत्र की साधना में होठ हिलाते रहते हैं। यहाँ लिड.सिड.जेन में पत्थर चट्टान पर दिव्य अश्व के चरण हैं।।ऊँ।।

मानस–सरोवर में कल्पवृक्ष
सिंहगर्जना गजचिंघाड़ बाघगुर्राहट का रहस्य

श्रीस्कन्द पुराण के मानसखण्ड में मेरु दिव्य महापर्वत के क्षेत्र में श्रीब्रह्मा द्वारा सृजित पवित्रतम मानस सरोवर है। जम्बूद्वीप के भरतखण्ड

की धुरी दिव्य मेरु (कैलास–स्फटिक प्रतीत होनेवाले) महापर्वत के मानस सरोवर के मध्य समस्त् कामनायें पलभर में पूरी करनेवाला अलौकिक ''कल्पवृक्ष'' स्थित माना गया है।

यह भी उल्लेख मिलता है कि कभी मानस सरोवर के किनारों की परिधि पर भी चमत्कारिक दैविक शक्ति सम्पन्न कल्पवृक्ष रहे। कल्पवृक्ष के नीचे पल–भर में उच्चत्तर साधना सम्पन्न होती रही। कलियुग के वर्तमान दौर में मानस सरोवर के बीच ''कल्पवृक्ष अदृश्य'' हो गया। आर्ष ग्रन्थों में कैलास मानस सरोवर को देवताओं, सिद्ध, यक्ष, गन्धर्व, किन्नर, विद्याधर, नाग, अप्सरा, हाहा हूहू, किंपुरूष, असुर (दानव राक्षस) और मनुष्यों की ''तपोस्थली'' स्वीकारा गया। मानस सरोवर में नाग–सर्पों के रहने का भी विवरण है। श्रीनीलमत पुराण के अनुसार दक्षायिणी देवी सत्ी द्वारा दक्षराज प्रजापति के यज्ञकुण्ड में दाह के बाद महादेव शिव ने रौद्ररूप धारण किया। शिव ने दक्षयज्ञ भंग करने के बाद ताण्डव शुरू किया और पृथ्वी पर प्रलय (चारों तरफ जलप्रलय) आई। शिव के रौद्र नर्तन से अनन्त ब्रह्माण्डों के ग्रह चकनाचूर होने लगे। इस भीषण परिस्थिति में शिव नीलकण्ठ के लिपटे ''वासुकी नाग'' ने महादेव शिव की आज्ञा से रहने का स्थान पूछा। दैविक वासुकी नाग ने हिमवत क्षेत्र चुना। मेरु के समीप जल में ''नागों का निवास'' हो गया। इसलिए मानस सरोवर में नागों का रहना स्वाभाविक है।

तिब्बती (बौद्ध) कैलास पुराण भी पुष्टि करती है कि मानस सरोवर में नागों का वास रहा। नाग मेरु अर्थात् कैलास को ''नाग लोक ले जाना चाहते हैं।'' अमिताभ बुद्ध अनन्त यानी कोटि सूर्यों के प्रकाशवान कैलास को नागलोक ले जाने से रोके हैं। मानस सरोवर के नाग ही देवलोक के कल्पवृक्ष के फलों को खाते हैं। कैलास महातीर्थ यात्री सिद्ध ने कल्पवृक्ष के अदृश्य होने के दावे को सिद्ध करने के उद्देश्य से महादेवजी का स्मरणकर वस्त्र फेंका। यह वस्त्र सरोवर के बीच लटककर लहराया। तिब्बती और भारतीय साधक ब्रह्मा के संकल्पमात्र से उत्पन्न सरोवर को देवतुल्य मानकर नौका विहार अथवा सर्दी में सरोवर में 10 फीट मोटी हिम (बर्फ) परत जमने पर चलने का दुस्साहस नहीं करते हैं। मानस सरोवर में तैरनेवालों की रहस्यमय मृत्यु की कथायें आम सुनाई जाती हैं। मानस की सैर अशुभ को खुला आमन्त्रण मानी जाती

है। कैलास क्षेत्र में समूचे वर्ष रहनेवाले स्वामी प्रणवानन्द लिखते हैं कि शीतकाल में वे सरोवर में बर्फ की मोटी परत पर चले कि अप्रत्याशित रूप से बर्फ टूटने लगी।

यह भी आश्चर्यनक है कि कभी गुरला मांघाता पर्वत से भयानक आंधी चलने लगती है। जिसमें भेड़, बकरी, कस्तूरी हिरण, मनुष्य आदि लोट–पोट हो जाते हैं। महाकवि कालिदास ने ब्रह्माजी और राजहंसों के माध्यम से मानस सरोवर का मोहक रूपक उकेरा है। मानस सरोवर की गहराई किनारों पर 20 से 30 फीट और बीच में 300 फीट तक आंकी गई है। यह रहस्य है कि मानस में ''जल कहाँ से आता है ?'' मानस की दूसरी विशेषता यह है कि उसका नीला जल इतना शुद्ध है कि एक पाट से दूसरे पाट तक लगभग 80 किलोमीटर के घेरे में साफ दिखाई देता है। मानस सरोवर के एक छोर पर जल गर्म तो दूसरे छोर पर बर्फ के समान ठंड़ा है। वैज्ञानिकों का मानना है कि कपालाकार मानस के भीतर ज्वालामुखी श्रृंखला है। यह भी समझा जाता है कि गंधक के कारण मानसखण्ड में ''गर्म पानी के सोते हैं।'' सरोवर का जल प्रातः अपने किनारे छोड़कर संकुचित होता दिखाई देता है। सरोवर में एकाएक दिन चढ़ने पर ज्वार की लहरें उठना चौंकाता है। वैज्ञानिक रूप से मानस के संकुचन और ज्वार का कोई भौतिक वैज्ञानिक कारण नहीं है।

महातीर्थ के यात्री सरोवर में विचित्र आवाजों–ध्वनियों से चकित रहते हैं। शीतकाल में सरोवर में एकाएक भयानक सैंकड़ों सिंहों की दहाड़ सरीखी आवाज भयभीत करती है। कभी सिंह–मृग–गरूड़–सर्प का मिलाजुला घोष बुलन्द होता है। इस स्वर से मानस के याक, जंगली घोड़े, कस्तूरी मृग, भेड़, बकरी आदि में अफरातफरी मचने के संकेत मिलते हैं। यह घोष भगवान् सदाशिव के घोरतम रूप श्रीशरभ का माना जाता है। श्रीशरभ सिंह के लिए महाकाल माना गया है। कभी–कभी रात्रि में मानस सरोवर के जल से हाथियों के झुंड़ के चिंघाड़ने का स्वर कंपकपी लाता है। मानस जल के अन्दर से बाघों के काफिले को सम्मिलित गुर्राहट मानसखण्ड को थराथराती है। रात और भोर पर दिव्य पक्षियों का कलरव भी मोहता है। सरोवर से अप्रत्याशित रूप से दैत्याकार यन्त्र चलने जैसे रेलगाड़ी आदि के स्वर भी रहस्य भरे हैं। वसंतागमन पर मानस में विचित्र स्वरों का नाद भी सुनाई देता है। इसके

ठीक विपरीत मानस से संगीतमय ध्वनि भी हृदय को आनन्दित करती है। इन्हें घण्टे, घडियाल, शंख, मंजीरा, झांझ और डमरू घण्टी का सम्मिलित रूप भी नाम दे सकते हैं।

मानस शीतकाल में जमने के समय दधि समुद्र लगती है। मानस का जल तटों से जमना शुरू करता है और शून्यांक से 50 डिग्री नीचे तापमान पर 10 फीट से अधिक गहरे तक हिम में बदल जाता है। इस महाशीत में मानक की दिव्यलीला प्रारम्भ होती है। मानस के तल पर भयावह विस्फोट के साथ बर्फ में गहरी दरारें पड़ती है। ये सामान्यतः 10 फीट अथवा 60 फीट तक की होती हैं। सरोवर में बर्फ के सागर में दरार से बर्फ के दैत्याकार खण्ड आकाश में उछलकर दूर गिरते हैं। जैसे मानस हिमखण्डों को महाविशाल अनगढ़ गेंद से खेल रहा हो। इनमें कुछ अधिक जमी बर्फ शीशे की तरह टूटकर बिखरती है। मानस में अनेक स्थानों पर दरारें और उसके दोनों तरफ विशाल बर्फ का ढ़ेर लगता है। मानस के अन्दर हिमखण्डों के उछलने का रहस्य उजागर होना शेष है। मानस पर छह से 10 फीट बर्फ के लघु टीले चौंकाते हैं। मानस के तटों के पास भी जमी बर्फ में रहस्यमय दरारें और तल पर बर्फ का ढ़ेर देखा जा सकता है। यह अचरज है कि धीरे–धीरे बर्फ के सरोवर की दरारों के दोनों किनारे स्वतः ही जुड़ भी जाते हैं।

यह अनुत्तरित है कि मानस के बर्फ के सरोवर में गहरी दरारों, बर्फ के आसमान में उछलने और टीला बनाने का कारण क्या है ? तिब्बती मानस के जमने पर दरारों को मयूर कहकर नमन करते हैं। समझा जाता है कि पवित्र दिव्यमानस को बर्फ में जमने और पिछलने में ''त्रिगुणात्मक सत्ता के अनुरूप तीन दिन'' लगते हैं। मानस का पूर्णिमा को जमने का भी अध्यात्मिक सम्बन्ध है।।ऊँ।।

दिव्य पवित्र मानस सरोवर
परिधि में त्रिकशक्ति के नौ मन्दिर

श्रीकैलासलोक की दिव्य मानस सरोवर का अध्यात्मिक स्पंदन तरंग मानवीय विचार व्यवहार में आमूलचूल परिवर्तन का धर्मचक्र घुमाता है। भारत ही नहीं एशिया के दूसरे देशों में भी मानस सरोवर की चरणजल और जल को दैविक शक्ति सम्पन्न माना जाता है।

मानस के दिव्य जल से स्नान की इच्छा मानस से निकले गंगा छो नहर के गर्म जल में अथवा किनारे करके पूरी की जाती रही है। मानस जल गंगा छो के माध्यम से रावणह्रद रावण ताल–राक्षसताल में जाता है। रावणताल को शताब्दियों तक अपवित्र माना गया और स्नान निषेध रहा। कालान्तर में मानस की स्वर्ण मत्स्यों के राक्षस ताल में आगमन से उसकी दिव्य शक्तियाँ पुनः लौटी (तिब्बती कैलास पुराण)। मानस में परिधि में सनत, सनंदन, सनत्सुजात, नर नारायण, भरद्वाज, वसिष्ठ, गौतम, कणाद, कपिल, अत्रि, मुचकुन्द, विश्वमित्र, दत्तात्रेय, अगस्त्य, कौशिक, उपमन्यु, कृष्ण द्वैपायन व्यास, परशुराम, मांधाता पराशर आदि महान् ऋषियों एवं देवताओं आदि ने कल्पों कल्पों (हजारों–हजारों वर्ष) श्रीसाम्बसदाशिव के प्रसन्न करने दर्शन के लिए कठोरतम साधना की। वेदीक–पौराणिक ऋषियों की तपोस्थली के केन्द्र मानस के चारों ओर मन्दिर–मठ–गुफाओं का तिलिस्म फैला है। स्वामी विशुद्धानन्द परमहंस के अनुसार (श्रीकैलासखण्ड) के ज्ञानगंज के प्रमुख श्रीविद्याकी देवी राजराजेश्वरी मठ के महान् आराधक श्रीमहातपा डेढ़ हजार वर्ष से अधिक आयु के रहे। हिमपर्वत कैलास ऋंखला की हिम गुफा में राजराजेश्वरी मठ है।

पवित्र मानस की परिधि 78 किलोमीटर, क्षेत्रफल 414 किलोमीटर है। यह उत्तर दक्षिण में 19 किमी और पूरब पश्चिम में 21 किमी लम्बी है। यानी मानस पौराणिक आख्यानों के अनुसार कपालाकार होने की पुष्टि करती है। मानस प्रदक्षिणा के दौरान मुख्यतः गोछलमठ,

ज्यू मठ, चेरकिप मठ, लडन्पोना मठ, पोनरी मठ, सेरालड. मठ, येनगोमठ, ठुगोल्होमठ आदि हैं। नवम् मठ विस्मृति के गर्भ में है। प्रथम गोछुल मठ के नित्य पूजा देवगृह (चकड.) गोंबोसेटुप एवं देवमंदिर (दुवड.) में थुजीछिंबो, अवलोकितेश्वर (चेनरेसी), केंगुनजिंबानुरबू–कड.री–लामाशकबर आदि की सुन्दर चिताकर्षक मूर्तियां है। अवलोकितेश्वर की मूर्ति ग्यारह सिर और दो भुजावाली है। अभिताभ बुद्ध के पुत्र अवलोकितेश्वर अर्थात् श्रीहरिविष्णु की एकादश सिर की प्रतिमा में शिल्पियों ने अपनी तक्षणकला का जादू संजोया है। महातांत्रिक आतिशा ने खोचरनाथ जाते यहाँ प्रवासकर मानस की उपासना की। मठ के समीप ही डगवाडने डुपुक साधना गुफा है। समीप की पहाड़ी पर 200 फीट चढ़ने पर श्रीकैलास के मनोरम दर्शन होते हैं। मठ में श्रीबुद्ध के वचन और तंत्र–मंत्र–यंत्र–दर्शन–पुराण को अमूल्य निधि लाल बस्त्रों में रखी है। मठ के पास ही शालग्राम सरीखे चिकने पत्थर मानस से निकलते हैं। यहाँ समीप ही गर्म पानी है।

प्रथम मठ से 12 किमी पर दूसरा मठ च्यू अथवा ज्यू में के देवघर में पवित्र दिव्य गुरु (रिंपोछ) की सम्मोहन करती प्रतिमा है। यही देवघर नित्यपूजा घर के काम आता है। मन्दिर के प्रवेशद्वार पर धर्म पताका लहराती है। मठ का रूपाकार बहुत ही छोटा है। इसकी दीवारें मोटी हैं। ज्यू मठ में बहुत ही कम कंजूर, तंजूर की पाण्डुलिपियाँ एवं प्रतियां हैं। मठ ऐसे कोण पर स्थित है कि पवित्र कैलास, राक्षसत्ताल और मानस तीनों के रूप का रसपान कर सकते हैं। सरोवर के तीसरे मठ चेरकिप का रास्त्ता विकट चढाई का है। मठ बहुत ही साधारण है। मठ में थांका (मंत्र देव चित्र), देवचित्र आदि की सजावट है। मानस के किनारे डेढ़ किसी तक पाँचाक्षरी मणिमंत्र के पत्थरों की दीवार है। मठ से दिव्य राजहंसों के दर्शन होते हैं। मठ के पास ही मानसोमुखी गुफायें हैं।

लड.पोना मन्दिर के देवघर में शाक्य मुनि बुद्ध एवं नित्य पूजाघर चकड. में ल्हमो, ल्हप्सेन आदि तिब्बती देवों की संवाद करती प्रतिमायें हैं। यह प्रकृति का चमत्कार है कि मंदिर से मात्र 40 मीटर पर विशाल चट्टान का एक हिस्सा हाथी की सूंड़कार यानी गणेश सिर का है। यहाँ कियड. अर्थात् जंगली घोड़ों का झुंड़ चरने आते हैं। प्रत्येक

जगली घोड़ों के झुंड़ का एक घोड़ा नायक भी होता है। मठ के बाहर विशाल धर्मध्वज है। बर्फ की सफेद चांदी से ढ़के पोनरी चोटी के बीच एक विकट पतली घाटी में पोनरी मन्दिर है। पोनरी मन्दिर में भगवान् बुद्ध के वचनामृत किंजूर के बस्ते् रखे हैं। मन्दिर के मुख्य देवघर में ल्हप्सेन और नित्य पूजाघर में गेबाचंबा की मूर्तियाँ हैं और उनकी विभिन्न रंगों और वस्त्रों से सज्जा की गई है। मन्दिर मणिमंत्र के थांके लहरा रहे हैं। मानस और पोनरी मध्य देवताओं का स्नानागार ''कुर्म्यल छो तालाब'' है। वहीं शम छो एवं डिड. छो भी हैं। कुर्म्यल छो से 4 किमी परिखा है। मानस सरोवर के छठा सेरालुड. मन्दिर कथा में अवतारी लामा का उल्लेख आता है। मन्दिर के निकट शेष होते अवशेषवाली धर्मशाला, मणिपत्थरवाली दीवार, डेरे और वज्रपाणि (शिव), अवलोकितेश्वर (विष्णु), मंजुश्री (ब्रह्मा) नामक तीन टीले हैं। डोमोशड. छू—छो के किनारे वीरान धर्मशाला भारतीय तीर्थयात्रियों की टोली त्रिशक्ति की आराधना में लीन रहती है। मन्दिर के निकट ही गर्म पानी सोते (स्त्रोत) हैं। मन्दिर से तीन से पाँच किमी पर पुरूख में तिब्बती बाजार लगता है। नीमापेंडी में तिब्बती काले तम्बू लगाकर प्रवास करते हैं। मन्दिर में थांकों, देवचित्रपटों की भरमार है।

रिलजेन छू (नदी) को पार कर मानस का सातवां मठ येर्नगो पहुंचते हैं। रिजलेन मन्दिर में देवघर एवं नित्य पूजा स्थल एकाकार है। मन्दिर में पवित्र गुरु रिम्पोछे की प्रतिमा है। सामने मक्खन का दीपक, नैवेद्य रखे हैं। मंन्दिर में कंजूर एवं तंजूर बस्त्ों में बधे दिखे। मन्दिर का धर्मध्वज काल को चुनौती मुद्रा में हैं। मानस का आठवां ठुगोल्हो मन्दिर पूर्वोभिमुख है। तिब्बती में ठुगोल्हो का अर्थ दक्षिण में सिर सहित स्थान है। इसी पवित्र मन्दिर के आसपास मानस के जल में तिब्बती, भारतीय आदि स्नान करते हैं। यह मन्दिर शेष सात मन्दिरों की तुलना में विशालकार है। यही कारण रहा कि इसे प्रधान मन्दिर का स्थान मिला। मन्दिर के देवघर में कड.री ल्हप्सेन और नित्य पूजाघर में दोर्जेछड़. की मंत्रमुग्ध करती मूर्तियां हैं। लामा और डाबाओं ने मूर्तियों को मानक मणकों की माला से सजाया है। ठुगोल्हो में परम्परागत अखण्डजोत और धर्मध्वजा भी आकर्षक है। यह समझा जाता है कि मन्दिर में तंत्र—मंत्र—यंत्र ज्योतिष कर्मकाण्ड की दुर्लभ पोथियों का अनुवाद प्रकाशन

समय की मांग है। मन्दिर के अवतारी लामा नौ कुशाक ला रहे । विगत शताब्दी के पूर्वार्द्ध में ठुगोल्हो के आंगन में वेदीक यज्ञ का आयोजन हुआ। ऊँ

कैलास मानस में पूर्णिमा को अवलोकितेश्वर पूजा संकीर्तन एवं सत्यनारायण कथा

स्वर्गभूमि श्रीकैलास मानस खण्ड में पूर्णिमा के दिन उपवास एवं कथा पूजा का प्रचलन है। अवलोकितेश्वर भगवान् विष्णुस्वरूप हैं। प्रत्येक महिने की चतुदर्शी को निरामिष रहकर अन्न भी ग्रहण नहीं करते हैं। पूर्णिमा को मौन रहकर उपवास करते हुए पूजा उपासना की जाती है। अवलोकितेश्वर के सामने रखे पात्रों को मांजकर साफ किया जाता है। पूर्णिमा के दूसरे दिन पूजा जप पाठ सम्पूर्ण कर प्रसाद ग्रहण करते हैं। सांझ ढ़ले सकीर्तन चलता है। चतुदर्शी पूर्णिमा और दूसरे दिन नर नारी अवलोकितेश्वर को साष्टांग दण्डवत करते हैं।

श्रीकैलास खण्ड के गोम्पा–चैत्य–विहार–मठ मन्दिर में अवलोकितेश्वर की विशेष पूजा प्रत्येक माह की पूर्णिमा करने की सदीयों पुरानी परम्परा है। सातवें माह नवधान्य अनाज पैदा होने पर भी पूर्णिमा को पूजापाठ कथा का भी चलन है। जम्बूद्वीप भरतखण्ड में पूर्णिमा को भगवान् विष्णु सत्यनारायणजी की कथा की समृद्ध परम्परा है। स्कन्द पुराण में ''सत्य की महिमा का बखान करते हुए सत्यनारायण महात्म कथा का उल्लेख मिलता है। वेद से लेकर पुराण, निगम से लेकर आगम में ''तीनों कालों में सत्य को ही परमेश्वर स्वीकारा गया है। अर्थात् सत्य ही नारायण है।'' पाँचदेव उपासना में ''सर्वत्र व्याप्त विष्णु को सत् का प्रतीक माना गया है।'' सात्वत धर्म में ''आध्यात्म का सम्बन्ध भाव जगत से है।'' इसीलिए कहा गयाः ''जैसी दृष्टि, वैसी सृष्टि।'' पूर्णिमा को सत्यनारायण अथवा अवलोकितेश्वर (श्रीविष्णु) की पूजा और पाठ का अपना शास्त्रीय पक्ष है। पूर्णिमा को चन्द्रमा सम्पूर्ण होता है। सूर्यविज्ञान

में ''चन्द्रदेव को मन का स्वामी'' बताया गया है। पूर्णिमा को चन्द्रमा मनुष्य को सर्वाधिक ''सत्'' की ओर आकर्षित करने में समर्थ है। सूर्य विज्ञान और शास्त्र दोनों की दृष्टि से हर पूर्णिमा को सत् तत्त्व के सत्यनारायण या अवलोकितेश्वर की पूजा संकीर्तन शुभ फलदायक है। कैलासखण्ड में आठवें माह की पूर्णिमा को 'छोडन्दू' मेले का आयोजन होता है। मन्दिरों मठों में धार्मिक अनुष्ठान चलते हैं।

श्रीकैलासखण्ड में सन् 1027 से काश्मीर के आचार्य सोमनाथ का भारतीय कालचक्र ज्योतिष लोक में छाया। आचार्य सोमनाथ नीलमत पुराण क्षेत्र काश्मीर के थे। उन्होंने देश काल परिस्थिति के अनुसार षष्ठि संवत्सर को लोक में पेश किया। इसमें देवगुरु बृहस्पति चक्र बारह–बारह वर्ष के पाँच उपचक्रों में (कुल 60 वर्ष) (तिब्बती नाम खम) में विभाजित किया है। ये उपचक्र पाँच महाभूत ऋत–प्रथम–अग्नि (मे), द्वितीय–पृथ्वी (सा), तृतीय–लोह (चक), चतुर्थ–जल (छ) एवं पाँचम–वृक्ष (शिंग) हैं। इनके रंग अग्नि–ला (मरपो), पृथ्वी–पवीना (सिरपो), लोह–सफेद (करपो), जल–नीला (ड.ोपो) और वृक्ष हरा (जंकू) हैं। खम अथवा उपचक्र के बारह वर्ष (भारत में बारह राशियाँ नौ ग्रह और 27 नक्षत्र हैं।) क्रमश : मूषक चीका, वृष लड., व्याघ्रटग, शशयो, नता हुक, सर्प डुल, अश्वता, मेष लुक, वानरटयू, पक्षी च्यू, श्वान रवी और वराह शूकर फक हैं।

खम के बारह वर्षों में अश्व वर्ष में तालो मेला लगता है। भागवत धर्म में समुद्र मंथन में अमृत गिरने के स्थानों पर 12 वर्ष में महाकुम्भ होता है। श्रीकैलास खण्ड–तिब्बत के बारह वर्षों में अश्व वर्ष में तालों और भारतीय कुम्भ के मध्य सम्बन्ध अभी उद्घाटित होना शेष है। इसका सम्बन्ध बादरायण से होना समझा जाता है। पाँचाग में 7 दिनों के वारों के नाम सोमवार–दावा, मंगलवार–मिड.मर, बुधवार–ल्हकपा, बृहस्पति गुरुवार–फरबू, शुक्रवार ल्पसड., शनिवार–पेन्पा एवं रविवार–नयीमा हैं। चतुर्ऋतुओं के नाम ग्रीष्म–यारका, शरद–तांगा, शिशिर–गंगा और हेमन्त–चीगा बोले जाते हैं। पाँचाग और ''वर्ष का प्रारम्भ मार्गशीर्ष–च्यूचिकवा प्रतिपदा शुक्ल पक्ष को होता है।'' आचार्य सोमनाथ शारदा क्षेत्र ने माना कि इस दिन शुक्ल उत्तरायण होता है। प्राचीन इतिहास यानी महाभारत काल में भी यही प्रचलन था। श्रीकैलास

खण्ड एवं पश्चिमी तिब्बत के किसान पौष ज्यूड.ीबा की शुक्ल प्रतिपदा को नया वर्ष मनाते हैं। मार्गशीर्ष शुक्ल प्रतिपदा को गोम्पा मन्दिर में विशेष पूजा करते हैं। गाम्पा–मठ–मन्दिर और घरों में हर महिने शुक्ल पक्ष की अष्टमी को देवी उपासना का विधान है। भारत में जगतजननी भगवती का प्रिय दिन अष्टमी ही माना जाता है। श्रीकैलास एवं मानस सरोवर के मन्दिरों मठों (कुल 13) में हर अमावस्या को देवी देवताओं विशेषकर धर्मपाल, महाकाल आदि की तांत्रिक पूजा का विधान है। दसवें माह कार्तिक च्यूवा की पूर्णिमा को रातभर मठों में भगवती के 21 नामों का विशेष अखण्डजप चलता है। भारत में कार्तिक में स्नान और पूजा की लोक परम्परा है।

लामाओं के अनुसार शास्त्रों में सृष्टि के जीव छह स्त्रों–देवता ल्हा, मनुष्य–मी, असुर राक्षस–ल्हामायिन, पशु–डुडो, नरक के प्रेत–थिगडे ओर रौरव नरक के प्राणी–डाल हैं। सभी को यमराज–चोइग्येल्पो–शिड.डे अनके कर्मों के अनुसार रौरव नरक, अन्य नरक में भयानक दण्ड देता है। कैलास मानस खण्ड के लामाओं और शास्त्रों के अनुसार नरक से छुटकारे, जीवनमरण महाचक्र से मुक्ति का एकमात्र उपाय–''गलत विचारों–दुष्ट कामनाओं का निरोध, सत्संग और निरन्तर पाँचाक्षरी–षडाक्षरी मणिमंत्र का जप, धर्मपाल, मंजुश्री, अवलोकितेश्वर, भगवती तारा आदि की हठयोगी उपासना है। इसलिए 108 रुद्राक्ष, लकड़ी, स्फटिक, फिरोजा, जहरमोरा, माणिक अथवा हड्डी की माला से ऊँ वज्रपाणि हुँ, ऊँ मणि पद्मे हुँ, ऊँ मणि पद्मे हुँ ह्रीं, ऊँ मंजूश्री हुँ, ऊँ वज्रगुरु पद्मसिद्धि हुँ आदि मंत्रों का पाठ मुँह बंद करके करना सबसे अच्छा समझा जाता है। मठों मन्दिरों के शास्त्रों तंजूर में (भारतीय सात्वत भागवत धर्म के अनुसार) देवासुर संग्राम, समुद्र मंथन और अमृत प्राप्ति आदि की कथायें मिलती हैं। समुद्र मंथन में मदरांचल मेरु बिलोने के लिए रई के रूप में काम में लिया गया। सृष्टि के रक्षक देवाओं के आयुधों में वज्र (दोर्जे), त्रिशुल (खटम), पाश (थगपा), तलवार कील (फुरबू) और कपाल (कपाला) ही हैं। महादेव शिव का त्रिशूल, पाश और कपालमाला उल्लेखित है। वज्रको देवराज इन्द्र का सर्वशक्तिमान अस्त्र कहा गया है।

मानसखण्ड के सिंहद्वार तकलाकोट से 20 किमी पर खोचरनाथ मन्दिर की दीवारों पर भगवती देवी के 21 अवतारों के भीत्ति चित्र, 8 फीट के उग्ररूप की अवलोकितेश्वर की प्रतिमायें हैं। मन्दिर के नित्यपूजा देवघर में पाँच फीट के सुन्दर अष्टधातु सिंहासन पर मंजूश्री, वज्रपाणि एवं अवलोकितेश्वर की 7 से 8 फीट ऊँची भव्य मोहक प्रतिमा विराजमान हैं। खोचर पुराण के अनुसार ये प्रतिमायें 7 बार देववाणी उच्चारण कर चुकी हैं। इनके 13 वीं बार बोलते ही प्रलय होगी। मन्दिर के दूसरे विशाल कक्ष में 22 फीट की मैत्रेय बुद्ध की और एक कक्षों में महाकाल, सप्त बुद्ध, एकादश रुद्र आदि की भव्य मूर्तियां हैं। '' ऊँ

कैलास में शंकराचार्य को 'शिवरहस्य' गुह्यज्ञान दिया

कैलास में आदिशंकराचार्य–आचार्य शंकर को पच्चीस शती पूर्व महादेव शिव ने ''शिवरहस्य का गुह्यज्ञान'' दिया। यद्यपि श्रीशंकरचरितके कुछ रचनाकार दूसरे स्थान पर परब्रह्म रुद्र द्वारा आचार्य शंकर को शिव रहस्य प्रदान करना लिखते हैं। आचार्य शंकर को मिली दुर्लभ दिव्य कृति शिवरहस्य तिलिस्म बनी है।

आर्ष ग्रन्थों में महादेव द्वारा प्रदान शिव रहस्य का उल्लेख बारम्बार आता है। शिवरहस्य की विषयवस्तु और गुह्यब्रह्मविद्या स्वयं में रहस्य बनी है। ऋग्वेद से अथर्ववेद तक रुद्र महादेव (देवताओं में महान्) और त्र्यम्बक (अर्थात् जिनके तीन पिता – पृथिवी, आकाश एवं द्यु हैं) कहलाये। वेदीक रुद्र का आवास उत्तरी हिमवत पर्वतों में मानने से शिवधाम कैलास बना। वेदीक रुद्र की केशियों, मुनियों आदि के सहचर्य से महायोगी स्वरूप की उत्पत्ति हुई। पौराणिक काल से उपनिषद काल में रुद्र का दार्शनिक अध्यात्मिक स्वरूप सामने आता है। द्वैतवाद से अद्वैत की महायात्रा शुरू होती है।

औपनिषदिक काल में श्वेताश्वतर उपनिषद रुद्र उपासना का दार्शनिक स्वरूप प्रस्तुत करती है। आचार्य शंकर के लिए "सूक्ष्मातिसूक्ष्मं कलिलस्य मध्ये, विश्वस्य स्त्राष्टारमनेकरूपम्। विश्वस्यैकं परिवेष्टितारं, ज्ञात्वा शिवं शान्तिमत्यन्तमेति।।" मार्ग दर्शक बना। अथर्ववेद के सूक्त एवं मंत्रों में रुद्र के अध्यात्मिक रूप का वर्णन करते हुए 13वें काण्ड में लिखा है : "रश्मिमिर्नभ आभृतं महेन्द्र एत्यावृतः।।/स रुद्रो वसुवनिर्वसुदये नामोवाके वषट्कारोऽनुसंहितः।।/तस्येमे सर्वे यातव उप प्रशिषमासते्।।/ तस्यामू सर्वा नक्षत्र वशे, चन्द्रमसा सह।। ।" श्वेताश्वतर उपनिषद में अद्वैत का सिंहनाद करते लिखाः "एको हि रुद्रो द्वितीयाय तस्थुर्य इमाँल्लोकान ईशत ईशनीभि प्रत्यंजनास्ति्ष्ठति संचुकोचान्तकाले संसृज्य विश्वा भुवनानि गोपाः।" रुद्र को महायोगी मानकर ही आगे कहा गयाः "तत्कारणं सांक्ययोगाधिगम्यं, ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः।"

महातीर्थ कैलास के कैलास पुराण अनुसार अधिष्ठातृ देवता धर्मपाल के चार सिर हैं और कपालों की माला पहने हैं। महर्षि वेदव्यास (बादरायणकृष्णद्वैपायनव्यास) द्वारा रचित महाभारतमें चतुर्मुख शिवका उल्लेख है। महाभारतके आदिपर्व के 200 वें अध्याय में स्पष्ट लिखा हैः "एवं चतुर्मुखः स्थाणुर्महादेवोऽभवत् पुरा।" इसीलिए आचार्य शंकर को धर्मपाल के चतुर्मखी स्वरूप पर आश्चर्य नहीं हुआ। आचार्य शंकर हिमालय कैलासवासी शिव के आर्ष ग्रन्थों के स्वरूपका अध्ययन कर चुके थेः "तत्र देवो गिरितटे हेमधातुविभूषिते। पर्यंकइव ब्रभाजन्नुपविष्टो महाद्युतिः।" महर्षि कपिल ने सम्राट भगीरथ का शिर्वाचना का आदेश देते हुए कहाः "कैलासं तं नरश्रेष्ठ गत्वा स्तुहि महेश्वरम्। तपः कुरू यथाशक्ति ततश्चेप्सित्माप्स्यसि।।" (भगीरथ को कैलास में तपस्या को कहा गया।) (नीलमत पुराण)। ब्रह्मा, विष्णु और शिव के अद्वैत की अलख जगाते हुए कहा गयाः "ब्रह्मा विष्णुः शिवश्चेति देवानां तु परस्परम्। त्रयाणामपि देवानां वेद्यमेकं परं हितत।।" "येन त्रयी धर्ममवेदय पूर्वं ब्रह्मादयस्त्त्र समीहिताश्च। एवं द्विधायेन कृतं शरीरं सोमेश्वरं तं शरणं ब्रजामि।"

यह स्पष्ट है कि त्रिदेव वास्त्व में एक ही परब्रह्म का रूप हैं। वेद त्रि को शिव के अधीन होने की घोषणा नीलमत पुराण में करते हुए

लिखा गयाः "न त्वां जानन्ति निगमा न देवा मुनियो च। न ब्रह्मा नापि वैकुण्ठी योऽसि सोऽसि नमोस्तुते।।" ब्रह्मवैवर्त पुराण में शिव को आदर्श महायोगी स्वीकारते हुए लिखाः "अनया देवसामग्रया मुनिदानवभीमया। दुःसाध्यः शंकरो देवः किं न वेत्सि जगत्प्रभो।।" सौरपुराण का माहेश्वर योग साधकों को आकर्षित करता रहा : "मय्येकचित्तता योग इति पूर्वं निरूपितम्। साधनान्यष्टधा तस्य प्रवक्ष्याम्यधुना श्रृणु। (साधना का अर्थ–यम, नियम, आसन, प्रणायाम, प्रत्याहार, धारणा, समाधि और ध्यान है।)।"

शिवरहस्य महादेव के दार्शनिक रूप को उजागर करता हैः "यदक्षरं निर्गुणम प्रमेयं, यज्ज्योतिरेकं प्रवदन्ति सन्तः। दूरंगमं देवमनन्त मूर्ति नमामि सूक्ष्मं परमं पवित्रम्।।" तन्त्र आगम में शिवरहस्य को गोपन रखने का कड़ा निर्देश है। कुलचूडामणितंत्र के अनुसार : "सर्वज्ञं सर्वदं गुह्यं तत्त्वबोध प्रबोधकम्।" प्रपाँचसार तंत्र में कलियुग में तंत्र (क्रिया) से ही मुक्ति के बारे में लिखा हैः "सत्यं सत्यं पुनः सत्यं सत्यं सत्यं मयोच्यते। विमा ह्यागममार्गेण कलौ नास्ति् गतिः प्रिये।।" यह सम्भव है कि कलियुग के प्रभाव को जानकर ही आचार्य शंकर ने तंत्रों – मंत्रों की रचना की।

आचार्य शंकर ऋग्वेद के विश्वदेवा मंत्र (प्र वः पान्तं रघुमन्वोऽन्धो यज्ञं रुद्राय मीह्षे भरध्वम्।) और वाकसूक्त (अहं रुद्राय धनुरातनोमि, ब्रह्मद्विषे शखे हन्तवा उ।।) में रुद्र के स्वरूप से प्रभावित होकर ही कैलास गए। कैलास में स्वयं महादेव ने आचार्य शंकर को शिवरहस्य का ब्रह्मज्ञान दिया। श्वेताश्वतर उपनिषद में सभी कुछ ब्रह्ममय का प्रचार शिखर पर रहा। ऋषियों ने अनुष्ठानिक कर्मकाण्ड को अस्वीकार कर आध्यात्म, अद्वैत, ध्यान और एकाग्रता पर अधिक जोर दिया। एकेश्वर उपासना के साधना प्रार्थना, ध्यान, अनन्त भक्ति और भजन के आदर्श संहिताओं के सूक्त बने।

माहेश्वरसूत्र पाणिनी काल में संस्कृति के व्याकरण का आधार बना। इतिहास – रामायण, महाभारत काल में रुद्र शिव उपासना के दो स्वरूप–लोक और दार्शनिक एक साथ प्रचलन में थे। दार्शनिक रूप से रुद्र शिव को पाणिनीकाल से पूर्व "परब्रह्म" स्वीकारा जा चुका था। श्वेताश्वतर उपनिषद के 'रुद्र वेद के ब्रह्म' हैं। शिव का योग भी

दार्शनिक पक्ष का अंग बना। ईसा संवत से पहले महादेव शिव के महादर्शन के बाद शंकराचार्य ने अद्वैतवाद का घोष किया (औपनिषदिक दर्शन का विकास अद्वैत रहा।)। इसमें परमब्रह्म का स्वरूप अद्वैत के अनुरूप ही है। प्रकृति और माया को परमब्रह्म की रचना मानकर अलग अलग माना जाता था। मोक्ष प्राप्ति को जीवात्मा के परमात्मा में पूर्ण विलय में नहीं बल्कि परमात्मा के सामने जीवात्मा की शाश्वत आनन्दमयी स्थिति को स्वीकारा गया था। अद्वैत में परब्रह्म एक मात्र सत्य और जीवात्मा साररूपेण उससे अभिन्न है। परब्रह्म की ही रचना–शक्ति, माया और प्रकृति है। श्वेताश्वतर उपनिषद शिव को परम सत्य, परम पुरूष और एक स्रष्टा घोषित करती है। महादेव शिव के "पुरूष" रूप के दिव्य साक्षात्कार ने आचार्य शंकर को अद्वैत की नई दृष्टि प्रदान की। उन्होंने परब्रह्म और जीवात्मा को ईकाई के जंजाल, कर्मकाण्ड, अनुष्ठान के संजाल के पाश से छुटकारा दिलवाने के उद्देश्य से सीधे सरल अद्वैत को प्रस्तुत किया। यहाँ यह जान लें कि ईसा पूर्व 2500 वर्ष पहले देवों के देव महादेव ने कलियुग में आचार्य शंकर को गोपनीय से गोपनीय शिवरहस्य की शिक्षा दी और उसका मक्खन अद्वैत दर्शन रूप में सामने आया। ऊँ

शाम्भाला मदरांचल मेरु कैलास में
शंकराचार्य आज भी विद्यमान हैं!

ब्रह्मविद्या समाज की मान्यता है कि पृथ्वी के सबसे पवित्र महातीर्थ कैलास मानसरोवर में आदिशंकराचार्य आज भी विद्यमान हैं। बदरिकाश्रम की गुहा से गोपन हिमनदों के मार्गों से आचार्य शंकर ढ़ाई हजार वर्ष पहले ओझल हुए।

यह सनसनीखेज रहस्योद्घाटन ब्रह्मविद्या समाज (थियोसोफिल सोसायटी) की सुश्री एच.पी. ब्लैवत्स्की ने सन 1910 में प्रकाशित गुप्तधर्म सिद्धान्त (सीक्रेट डाक्ट्राइन) पुस्तक में किया। गुप्त धर्म सिद्धान्त के 385

वें पृष्ठ का शीर्षकः "शंकराचार्य अभी जीवित (शंकराचार्य स्टिल लिविंग)" हैं। पुस्त्क में 380 वें पृष्ठ पर स्वीकारा है कि शंकराचार्य अवतार रहे। यद्यपि इस विचार को कुछ अस्वीकार कर सकते हैं। सुश्री ब्लैवत्स्की ने यहाँ तक लिखा कि यह प्रबल संभावना है कि शंकराचार्य की आत्मा की उपाधि शाक्य मुनि गौतम का पुनर्जन्म था (पृष्ठ 381)। शाक्यमुनिज प्लेस इन हिस्ट्री में पृष्ठ 234 में लिखा है कि एक दिन बुद्ध सत्तपन्नी गुहा में बैठेंगे और उनकी तुलना सात पत्तियोंवाले पौधे से होगी (प्रत्येक बुद्ध में सात बुद्ध होते हैं। सच्चा बुद्ध वही है, जो स्वयं में पवित्रता के दस प्रकारों को विकसित् करे और उन्हे एक ही विषय के अन्तर्गत करे।) (मनुस्मृति में धर्म के 10 लक्षणों का उल्लेख है।)।

गुप्त धर्म सिद्धान्त के अनुसार शंकराचार्य हिमालय की गुफा में प्रवेशकर अन्तर्ध्यान हो गए। शंकराचार्य ने हिमालय (श्रीकेदारनाथ अथवा श्रीबदरीनाथ में आदिगुरु दत्तात्रेय महाराज) की गुफा में प्रवेश से पहले सभी "चेलों–शिष्यों" को कठोर निर्देश दिया कि वे उनके पीछे नहीं आयें। आदिगुरु दत्तात्रेय की गुफा के गोपन रास्त् से शंकराचार्य महातीर्थ कैलास पहुंचे। क्या शंकराचार्य ने देहत्यागी? प्राचीन परम्पराओं और लोकमान्यताओं के अनुसार इसका उत्तर मिलता है – नहीं। गुप्तधर्म सिद्धान्त (सीक्रेट डाक्ट्राइन) इस 'रहस्य' को जानता है, लेकिन महान् दिव्यगुरु (शंकराचार्य) के सच्चे शिष्य को ही यह उजागर किया जा सकता है। यह अवश्य है कि सिद्ध और "अध्यात्मिक व्यक्ति" वर्तमान में अदृश्य सहायक बनते हैं। पर वे अपनी पहचान रहस्यमय ही रखते हैं। उन्हें भौतिक आंखों से देखा नहीं जा सकता है। पृथ्वी के 'पवित्रतम स्थान शाम्भाला' (दूसरे शब्दों में हिमालय का कैलास मानसरोवर) हिमालय में "गुप्त सहधर्मिता समाज" (बर्फ की मोटी चादर से ढ़के क्षेत्र में) में उनके दर्शन सम्भव हैं।

इस प्रकार ब्रह्मविद्या समाज (थियोसोफिकल सोसायटी) तथ्य और प्रमाणों के आधार पर शंकराचार्य की हिमनदों से घिरे पवित्र मेरु कैलास क्षेत्र में ढ़ाई हजार वर्ष बाद भी उपस्थिति का दावा करता है। यह बात अलग है कि सन 1910 से 2019 के 119 वर्षों में थियोसोफिकल सोसायटी और सुश्री ब्लैवत्स्की से शंकराचार्य के रहस्य को जानने की दिशा में क्या प्रयास हुए ? श्री टालबोट मुण्डी की पुस्त्क

"नाईन अननोन" के नौ अज्ञात दिव्यशक्ति सम्पन्न अज्ञात सिद्ध महामुनि कौन हैं? सुश्री ऐमा हार्डिंग ब्रिटन के घोस्ट लैण्ड के महासिद्ध कौन हैं? बिशप चार्ल्स डब्ल्यू. लीडबीटर दा मास्टर्स पथ में तिब्बत की बर्फ से ढ़की घाटियों में हजारों वर्षों के वेदविद्याविद के रहने का बखान करते हैं। सूर्यविज्ञानविद स्वामी विशुद्धानन्द परमहंस, ज्योतिष्पीठ बदरीनाथ के शंकराचार्य रहे स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती, महामहोपाध्याय पण्ड़ित गोपीनाथ कविराज, जयपुर के राजगुरू रहे पण्डित श्री विद्यानाथ ओझा, श्री राम ठाकुर आदि हिमालय के तिब्बत कैलास में हजारों वर्षों के महात्माओं की पुष्टि करते रहे। श्री बिमल दे ने महातीर्थ के अन्तिम यात्री (तिब्बत पर चीन के आधिपत्य से पहले सन 1956 में) पुस्त्क में चमत्कारी सिद्धों से साक्षात्कार के प्रसंग लिखे हैं।

आर्ष ग्रन्थों में सिद्ध सन्यासियों द्वारा "कायाकल्प" की अनेक और अनेक घटनाओं का उल्लेख है। सन 1708 में आदिदेव सविता सूर्य की ऋग्वेद की तीन ऋचाओं के आधार पर बीदर (कर्नाटक) के पूर्व प्रधानमंत्री श्री भाष्कराचार्य द्वारा कायाकल्प की पुष्टि तृच भाष्कर ग्रन्थ दे रहा है। वेदीक ऋषियों का कायाकल्प देव चिकित्सक दोनों अश्विनी कुमार (देखें – अश्विनी कुमारःश्रीपाद दामोदर सतवलेकर, स्वाध्याय मण्डल प्रकाशन) करते रहे। इसलिए 2500 वर्ष पहले शंकराचार्य के वर्तमान में होने पर चकित नहीं होना चाहिए। सिद्ध के मात्र संकल्प से कायाकल्प होना सम्भव है। यह महत्वपूर्ण है कि ब्रह्मविद्याविद ने पुस्त्क में "शंकराचार्य के जीवित होने का सिंहनाद किया और वे केवल उनके सिद्ध शिष्य को रहस्य बताने को आतुर रही।" ब्रह्मविद्याविद एवं महान् तान्त्रिक श्री टी. सुब्बाराव ने सुश्री एच.पी. ब्लैवतस्की को सलाह दी थी कि सीक्रेट डाक्ट्राइन का प्रकाशन नहीं किया जाए। अनेक रहस्यों से पर्दा नहीं उठाया जा सकता हैं। श्री सुब्बाराव ने सीक्रेट डाक्ट्राइन को सम्पादित करने का प्रस्त्ताव ठुकरा दिया था। श्री टी. सुब्बाराव ने तथ्यों एवं प्रमाणों (ब्राह्य एवं आंतरिक) से शंकराचार्य के 2517 वर्ष पूर्व होने की घोषणा की (सन 1910 : एस्टोरिक राईटिंग : श्री टी. सुब्बाराव)। श्री सुब्बाराव की मृत्यु मात्र 34 वर्ष की उम्र में हुई। श्री सुब्बाराव उस समय थियोसोफिकल सोसायटी के प्रमुख ब्रह्मविद्याविद थे। कर्नल हेनरी स्टील आल्कोट ने सन 1895 में प्रकाशित ओल्ड डायरी लिव्ज में हिमालय

(तिब्बत) में दिव्य रहस्यमय आश्रम होने का उल्लेख किया है। महान् साधक तेलंग स्वामी, साधिका आनन्दमयी माता आदि कैलास में दिव्य चेतना के आनन्द लेने गए। महापण्डित राहुल सांकृत्याथन तिब्बत से हजारों पाण्डुलिपि लाए।

विगत ढ़ाई हजार वर्षों में श्रीकैलास से महागुरु तिलोपा–निलोपा (दोनों बंगदेश, काश्मीर के) और मिलरिपा–मिलारेपा का सीधा संबंध रहा। भारत के प्रमुख आचार्य तिब्बत और कैलास गए। यह भारतीय प्रभाव रहा कि कैलास में बौद्ध महायान में तन्त्र–अनुष्ठान प्रधान वज्रयान छा गया। त्रिदेव–शिव (वज्रपाणि), ब्रह्मा (मंजूश्री), विष्णु (अवलोकितेश्वर), धर्मपाल (महादेव रुद्र), देवी तारा (देवी के उग्रतम रूप) आदि की कर्मकाण्ड प्रधान पूजा आरंभ हुई। यहाँ उल्लेख करना आवश्यक है कि अद्वैत का पुनर्जागरण करनेवाले शंकराचार्य को महादेव ने स्वयं शिवरहस्य का देवज्ञान दिया। श्री शंकराचार्य ने त्रिदेवों और शक्ति के अनेक स्त्ोत्र स्तुतियों की रचना की। शंकराचार्य मंत्र और तंत्रों में पारंगत थे (वाणी विलास प्रेसःशंकराचार्य समग्र, सन 1911)। क्या शंकराचार्य का प्रभाव कैलास एवं तिब्बत के बौद्धधर्म पर हुआ? शाक्यमुनि गौतम बुद्ध ने आत्मा, परमात्मा, पुनर्जन्म के प्रश्नों को "अनावश्यक मानते हुए कोई उत्तर नहीं दिया।" भाषा वैज्ञानिकों का कहना है कि प्रतिमा के लिए "बुत शब्द बुद्ध" का अपभ्रंश है। श्री शंकराचार्य की ईसा पूर्व से पिण्डारी ग्लेशियर (हिमनद) वाले कैलास में उपस्थिति का रहस्योद्घाटन स्वयं में हतप्रभ करनेवाला है। सत्य से साक्षात्कार होना शेष है। ऊँ

कैलास पार्श्व हिमनदों के हिमदलदलों में अभिमंत्रित सिद्धाश्रमों के गुप्तमार्ग

जम्बूद्वीप एशिया अफ्रीका यूरेशिया के "गुप्तसमाज के सिद्धाश्रम पश्चिमी त्रिविष्टम (तिब्बत) के कैलास के पार्श्व पीछे हिमपर्वतों के हिमदलदलों" में स्थित हैं। इन सिद्धाश्रमों के "अभिमंत्रित" होने से

आश्रम अधिष्ठाता की अनुमति से ही प्रवेश सम्भव है अथवा "अभिमंत्रित सिद्धाश्रम आंखों की दृष्टि से सामने होकर भी ओझल रहता है।" इतिहास रामायण–महाभारत में ऐसे अनेक आश्रमों का ब्यौरा मिलता है। शतियों से इन अभिमंत्रित आश्रमों में प्रवेश कठिन रहा।

कैलास की सिद्धभूमि पवित्रभूमि (शाम्भाला) के सिद्धाश्रमों की विशेषता यह है कि वे सूक्ष्मसत्ता से स्थूल एवं स्थूल से सूक्ष्म दोनों में पलक झपकते रूपाकार लेने में सक्षम हैं। आर्ष ग्रन्थों के अनुसार चारधाम यमुनोत्री–गंगोत्री–बदरिकाश्रम–श्रीकेदारनाथ बदरीनाथ से श्रीकैलास की पीछे मीलों–मीलों सिद्धमण्डल क्षेत्र है। बन्दरपूंछ सूर्यदेव की सुपुत्री यमुनोत्तरी से श्रीनन्दादेवी भी इसी सिद्धमण्डल का हिस्सा है। अफ्रीका–मिश्र के सूर्यमंदिर पिरामिड, दक्षिणी अमेरिका की माया संस्कृति और रूस के साईबेरिया आदि के सिद्धाश्रमों का "प्रधान शक्तिकेन्द्र कैलास" है। सभी के अदृश्य तार कैलास हिमालय के गुप्त स्थल से जुड़े हैं (गुर्जियेफ)। भरत खण्ड में कैलास के सिद्धमण्डल के गुप्त विश्व का तानाबाना दक्षिण में श्रीशैल पर्वत, नीलगिरिपर्वत, अरूणाचलपर्वत; पश्चिम में गिरनार भृगुकुच्छ–भरूकुच्छ– भरूकच्छ, आबू, नासिक आदि; उत्तरपूर्व में अरूणाचल एवं त्रिपुरा (उनाकोटि) और उत्तर में गृद्धकूट (बिहार), मत्स्य के सिद्धाश्रमों से जीवन्त सम्बन्ध बनाये हुए हैं।

आर्ष ग्रन्थों में कैलास के समीप "मणिमंत प्रदेश को" सिद्धों की गुप्तस्थली लिखा है। पौराणिक दिव्य पर्वत गंधमादन, माणा को अलकनन्दा के पश्चिम में स्वीकारा गया है। कैलास मानस सरोवर के घेरे में कपालग्राम, मानसत्‌ालाबाश्रम, कौशिकी आश्रम, वसिष्ठाश्रम, ज्ञानपुरी ज्ञानगंज आश्रम, तपोक्षेत्राश्रम, योगेश्वर, भार्गवपुरी, विश्वमित्राश्रम, दत्तात्रेय आश्रम आदि फैले हैं। पण्डित गोपीनाथ कविराज लिखते है कि ज्ञानगंज पहुंचने का रास्त्‌ा बहुत ही विकट है। इस रास्त्‌े में बर्फीली खाईयां (गिरिगह्वर), दर्रे, कठिन पर्वतीय चढ़ाई, प्रचण्ड वेग से बहती नदियां, हिमनदियां, हिमदलदल, हिंसक वन्यजीव, घने जंगल आदि हैं। जालंधर से गोगा और आगे बर्फीले इलाके की पैदल यात्रा महीनों चलती है।

बदरिकाश्रम श्रीकेदारनाथ श्रीबदरीविशाल के पीछे तपोवन के पार हिमवत पर्वतों की गुफा कन्दराओं से सीधा रास्त्‌ा कैलास जाता है। श्रीआदिशंकराचार्य बदरीवन की स्वामी दत्तात्रेय महाराज की गुफा से

पवित्रतम कैलास गए। पिछले 2517 वर्षों से स्वामी दत्तात्रेय की गुप्तगुफा रहस्यों के घेरे में है। साधक राम ठाकुर ने अपने गुरु के संग कैलास हिमनद स्थित कौशिकी आश्रम की यात्रा बदरिकाश्रम से बहुत ही गुप्त महागुफा से शुरू की। श्री राम ठाकुर के अनुसार बृहदगुफा में अनगिनत साधु साधनारत मिले। इन सिद्धों का शरीर आम से बहुत विशाल था। श्री राम ठाकुर खड़े होकर भी इनके सिर तक नहीं पहुंच पा रहे थे (स्वामी विशुद्धानन्द परमहंस ने भी असाधारण कद काठी के सिद्ध सन्यासियों का वर्णन बताया था। आर्ष ग्रन्थों में समुद्र को चुलु में पीनेवाले एवं राम रावण के महासंग्राम में राम को श्रीआदित्यहृदयम् का रहस्य समझानेवाले अगस्त्य मुनि भी विशालाकार रहे)। रहस्यमय कौशिकी आश्रम की यात्रा में श्री राम ठाकुर को 6 माह लगे। आमतौर पर बदरिकाश्रम से कौशिकी आश्रम 3 माह में पूरी होती है।

दिव्य अध्यात्मिक शक्ति सम्पन्न श्री राम ठाकुर विचित्र योगेश्वर आश्रम भी गए। योगेश्वर में चार छोरों पर स्त्म्भ हैं। नीचे भूमि जमी हुई बर्फ की तह स्फटिक सरीखी लगती है। इन स्त्म्भों के ऊपर रखी विशाल शिला पर जटाजूटधारी महर्षि विराजमान मिले। योगेश्वर आश्रम कैलास के निर्जन क्षेत्र में अप्रत्याशित रूप से अचानक किशोरी आकार नृत्य करती। किशोरी दिव्य पुष्पों के आभूषण पहने होती। नृत्य के अन्त में शिवगौरी को माला अर्पित करती। ऋषिगण द्वारा योगेश्वर में पर्वत के नीचे नदी से जल लाकर शिव का अभिषेक होता है। श्री राम ठाकुर की मान्यता रही कि कौशिकी पर्वत माला के आंचल में कौशिकी आश्रम वतुलाकार हिमरहित जमीन पर है। इसके नीचे तूफानी वेग से बहती नदी को आश्रमवासी "मन्दाकिनी" नाम से पुकारते हैं। यह अचरज है कि आश्रम के घेरे के वृक्षों में अद्भूत पुष्प एवं फल हैं। आश्रमवासी इन्हें ही खाते हैं।

कौशिकी आश्रम के आसपास ही प्रजापति ब्रह्मा के पुत्र गुरु वसिष्ठ का आश्रम है। वसिष्ठ आश्रम समीप अनेक गुफायें हैं। हिमालय के इस गुप्त स्थल पर जगतजननी भगवती शक्ति स्वरूपा महादेवी पार्वती के दर्शन "हर गौरी" के रूप में होते हैं। वसिष्ठाश्रम में शताब्दियों से सिद्ध तपस्या में लगे हैं। समझा जाता है कि यक्ष, गन्धर्व, किन्नर आदि इन सिद्धों के लिए कंदमूल फल आदि उपलब्ध कराते हैं। ये दिव्य

कंदमूल सामान्य आकार से बहुत विशालाकार और स्वादिष्ट होते हैं। संयोग से ही वसिष्ठाश्रम पथ से गुजरनेवालों को ये विशाल कंदमूल मिलते हैं।

इन्द्रभवन अर्थात् ज्ञानपुरी ज्ञानगंज कैलास क्षेत्र के सुर्खियों में आये सिद्धाश्रमों की कड़ी में प्रमुख है। बीसवीं शती में बंगाल के भोलानाथ प्रकारान्तर में स्वामी विशुद्धानन्द परमहंस के कारण ज्ञानगंज की गुप्त ज्ञानकारी सार्वजनिक हुई। इन्द्रभवन के स्वामी नीमानन्द परमहंस बालक भोलानाथ को "अध्यात्मिक शक्ति से आकाश मार्ग से ले गए।" विख्यात प्राच्यविद्या लेखक श्री पॉल ब्रन्टन को 500 वर्षीय ब्रह्मसुखानन्द ने स्वयं को स्वामी विशुद्धानन्द परमहंस का गुरु भाई बताया। ज्ञानगंज जाने का रास्ता हिमाचल और केदारनाथ–बदरीनाथ–यमुनोत्री–गंगोत्री के हिमनदों से है। माणा की पर्वतमाला की गुफा, गौमुख एवं यमुनोत्री बंदरपूंछ के ऊपर तपोवन सप्तऋषिकुण्ड़ और केदारनाथ की हिमगुहाओं से सीधे इन्द्रभवन पहुंचने का गुप्तमार्ग है। कहीं कहीं ये गुफायें हिमालय की बर्फीली घाटियों, बर्फ से ढ़के पर्वत की सकड़ी पगडण्डी में खुलती हैं। ज्ञानगंज के रास्त् में भयानक वेग से बहती नदियां आती हैं। तिब्बत, मंगोलिया, चीन, कम्बोडिया, वियतनाम, बर्मा, थाईलैण्ड, इण्डोनेशिया आदि के साधक ल्हासा से कैलास की राह पकड़कर ज्ञानगंज जाते रहे। समझा जाता है कि ज्ञानगंज के समूचे रास्त् में जिज्ञासु को एक के बाद एक दैविक संकटों की माया की कठोर परीक्षा से गुजरना होता है। ज्ञानगंज बर्फ से ढ़के पर्वतों के बीच हिमनद के बीचों बीच है। ज्ञानगंज को जल एवं बर्फ दलदल घेरे है। दिव्य इन्द्रभवन में महाभारतकालीन दिव्यास्त्र भी रखे हैं। ज्ञानगंज से ही सन 1941–42 में बदरीनाथ स्थित ज्योतिष्पीठ के जगदगुरु शंकराचार्य स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती रहे। स्वामी ब्रह्मानन्दजी भी बदरिकाश्रम की गुहासे ज्ञानगंज आश्रम गए।

पिण्डारी हिमनद की अज्ञात गुफा से कैलास के सिद्धमण्डल जाने के मार्ग वर्तमान में अज्ञात हैं। कैलास मानसरोवर महातीर्थ यात्रा करनेवाले "मानस तालाब आश्रम" से भी अनभिज्ञ हैं। यह मानस तालाब भी अदृश्य हैं। जहाँ देवलोक से आकर देवी देवता पवित्र स्नानकर परमशिव की उपासना करते है। मानस तालाब आश्रम में तपस्वियों को

कठोर लम्बी साधना और विकट परीक्षा से ही स्थान मिलता है। वेदीक काल से मानस तालाब आश्रम में महासिद्ध ऋषि परमशक्ति की आराधना में लगे हैं। उनके दिव्यतेज के आभामण्डल से परमाणुधर्मी विकिरण सरीखा तेज आकाश में निकलता है। देवों–सिद्धों–अरिहन्तों का दर्शन जन्म जन्मान्तर के संचित पुण्य कर्मों से होता है। यह स्पष्ट है कि मानस सरोवर और दिव्य मानस तालाब अलग–अलग हैं। मानस तालाब का दर्शन बहुत दुर्लभ ही होता हैं। ऊँ

कैलास मानस में जप उपासना सिद्ध करें : शिवपुरी कैलास में साम्बसदाशिव का जप, ध्यान तत्काल फलदायक

भूलोक के सबसे पवित्र हिमालय के कैलास मानस सरोवर महातीर्थ यात्रा साम्बसदाशिव के जप, ध्यान, उपासना आदि से ही सफल होती है। इसके विपरीत महातीर्थ के अधिकांश पर्यटक–यात्री अद्भुत अतुलनीय प्राकृतिक सौन्दर्य में सम्मोहित होकर रह जाते हैं।

अल्मोड़ा से तिब्बत की महायात्रा के महादुर्गम तीर्थपथ के कारवां हिमवत पर्वतमाला के परिदृश्य में ही खोये रहते हैं। मानस सरोवर के समीप पडाव में मानस वशीकरण करती है। मानस से शिवगौरी निवास कैलास प्रदक्षिणा में हिमवान पर्वत लुभाते हैं। प्रदक्षिणा के दौरान तीर्थयात्री थककर चूर हो जाते हैं। कैलास में शून्य से नीचे के तापमान में पर्वत शिखरों पर आक्सीजन की कमी में चढ़ना भी कठिन होता है। प्रदक्षिणा के कारवां को "निश्चित समय में" देरफुक अथवा दिरफुक डेरफुक पर्वत को उलांघकर पार करने में हड़बड़ी का माहौल रहता है। यही अदृश्य भय रहता है कि कारवां से बिछुड़े तो कहीं भी बर्फ के दलदल में फंस सकते हैं। यदि फंसे तो चार छह घण्टे बर्फ में धंसे रहो। सारसंक्षेप में प्रदक्षिणा की आपाधापी में सदाशिव की भक्ति

तिरोहित होना आम है। यह बात अलग है कि रस्मी यज्ञ और हवन होते हैं (यदि इससे आपकी भावना को ठेस लगे, आघात लगे तो क्षमा करें!)।

आर्ष ग्रन्थों के अनुसार देवलोक के देवतागण एवं वेदीककाल के ऋषि कैलास में परब्रह्म परमशिव की उपासना, तपस्या करते हैं। दैविक मानस तालाब में आज भी देवगण, सिद्धऋषि आदि तरणताल का आनंद उठाते हैं। सीक्रेट डाक्टराइन (सुश्री बी.पी. ब्लैवत्स्की) के अनुसार कैलास में वर्तमान में भी आदिशंकराचार्य जीवन्त और साधनारत हैं। इसी समृद्ध परम्परा में तीर्थयात्री को कैलास में परब्रह्म का भजन करना चाहिए: भजन्ति ये पुष्काराक्षं न ते यान्ति पराभव (जो परब्रह्म का भजन करता है, उसका पराभव नहीं होता।)।

कैलास दिव्य अध्यात्मिक तेज के आभा मण्डल में मंत्र, जप, स्त्ोत्र पाठ, स्तुति, रुद्रयज्ञ, रुद्राभिषेक और परमशिव के रूपों का स्मरण प्रचण्ड विधायात्मक शक्ति पुंज का संचार करता है। परन्तु ध्यान रहे कि संस्कृत पाठ आरोह अवरोह अनुरणन के साथ शुद्ध हो। अशुद्ध उच्चारण नहीं हो, अन्यथा हानि अनिष्ट भी हो सकता है। वेदीकाल से पौराणिक काल में नाम जप के बारे में कहा गया : "जपः तदर्थभावनम्" (जप को उसके अर्थ की भावना के साथ मन में स्थिर करके किया जाना चाहिए। उसके अर्थ में जपकर्ताका मन तन्मय हो जाए। अर्थात् जपकर्ताका मन जप के अर्थ से पूरी तरह ओतप्रोत हो।)। मंत्र को "मंत्रो मननात","मंत्रं चित्तं–चित्तं मंत्रं" कहा गया। प्राचीन भक्ति मार्ग में मंत्र का अर्थ जानकर उसका मनन करना चाहिए। हम यह जान लें कि प्रत्येक मंत्र का निश्चित अर्थ होता है। एकाक्षरनामकोषसंग्रह प्रत्येक अक्षर की दिव्य शक्ति से साक्षात्कार करता है। कैलास में शताब्दियों से देवगण, यज्ञ, गंधर्व, किन्नर, ऋषि (दृष्टा), सिद्ध, साधक आदियों की तपस्या से निषेधात्मक ऊर्जा समूह नहीं है। बल्कि दैविक सकारात्मक शक्ति महाविद्युत की भांति बह रही है। उस महाऊर्जाशक्ति से सीधा सम्बन्ध स्थापित होता है।

मानस सरोवर कैलास प्रदक्षिणा में भक्ति का अपना महत्व है। भक्ति के बारे में लिखा है : "भज सेवायां (जन जनार्दन की सेवा ईश भक्ति है।)।" कैलास जम्बूद्वीप भरतखण्ड की सनातन संस्कृति का पहरूवा है। सनातन का अर्थ मंत्रदृष्टा ऋषियों ने जनता के हित के

लिए, किए जाने वाले सेवाभाव का विस्तार प्रसार भी कहाँ ''संस्कृति को सुन्दर कृति रचना के रचना के स्थान पर सामूहिक वृत्ति, सम्यक्करण, सम्यक्निर्माण माना गया।'' संस्कृत में ''सं इति एकीभूय कृतिः (सांधिक रूप से की गई कृति) ही संस्कृति कहा गया है।'' कैलास में जप उपासना ध्यान से देवमय होना अनिवार्य शर्त है। ''यददेवा अकुर्वन तत करवाणि (मैं देवताओं के समान आचरण करूं।)।'' ऋग्वेद में सिंहगर्जना की गईः ''धियो विश्वा विराजति (पृथ्वी पर विचारों का शासन)।'' जप तप प्रक्रिया के दौरान कैलास मानस की किसी माया में ध्यान नहीं जाकर एकाग्रता में लीन होना आवश्यक है। कैलास में साधक को सबसे पहले यह सोचना है : ''सर्वं आनन्दमयं।'' सभी स्थिति में यानी शून्य से नीचे के तापमान शीत में आनन्द मन में स्थिर करके ही एकाग्रता से उपासना सम्भव है। आर्ष संस्कृति में ''एकस्त्था सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च (विश्व परमेश्वर रूप है। वह सब भूतान्तरात्मा प्रत्येक रूप में रह रहा है। साथ ही वह उस रूप के बाहर भी है।)।''

'अहं इन्द्रो न पराजिग्ये' (ऋग्वेद का मंत्र है : मैं इन्द्र हूँ, मेरा पराभव नहीं हो सकता।)। इस भावना से कैलास में जप करने से साधक को परम इच्छा आत्मशक्ति आना सुनिश्चित है। इस जप के समय मन में कोई दूसरा भाव नहीं आये। इसके लिए कष्ट साध्य सत्त अनुष्ठान एवं हरदम चेतना की आवश्यकता होती है। कैलास का वेदीक धर्म अनुष्ठानका एवं ध्यान आध्यात्म का धर्म है। कैलास की विकट जलवायु, कठोर अनुशासन में जप करना स्वयं में तपस्या है। कैलास में उपासना का मार्ग भयानक कष्ट भरा है। उपासना भक्ति मार्ग में नाम जप से साधक कठिन विपत्तियों से मुक्त हो जाता है : ''दुर्गाण्यतितरत्याशु पुरूषः।।'' कैलास में विपत्तियां आना प्राकृतिक है और नहीं आना अपवाद है।

ऋग्वेद के अनुसार ''इन्द्रो मायाभिः पुरूरूप ईयते।।'' (इन्द्र अपनी शक्ति से अनेक रूप धारण करता है।)। कैलास मानस में नाम जप जैसे जैसे एकाग्रता बढ़ती है, तैसे तैसे चमत्कारिक परिदृश्यों की महामाया लुभाती है। कैलासी के लिए महामाया के इन्द्रजाल से बचना लक्ष्य होना चाहिए। कैलासी को यक्षराज पुष्पदंत के शिवमहिम्न स्त्ोत्र एवं लंकेश्वर दशानन रावण के शिवताण्डव स्त्ोत्र का मर्म सदा ध्यान

रहे। शिव महिम्न स्त्ोत्र में यक्षराज पुष्पदंत ने निष्काम निर्गुण निराकार परशिव की उपासना शिवलिंग, पुष्प, धूप, दीपक, जल, विल्वपत्र, चन्दन आदि के बिना की है (यह परब्रह्म की मानसपूजा है। इसके लिए ब्राह्याचार की कोई जरूरत नहीं है।)। लंकेश्वर ने सदाशिव से राजा और प्रजा, झोंपड़ी एवं महल, स्वर्ण आभूषण एवं सांप, मणियों की माला एवं सांप की चमकती आंख, पक्ष एवं विपक्ष और शत्रु एवं मित्र के प्रति "समभाव" की कामना की। कैलासी के अनुष्ठान में "ईश की प्रसन्नता" की कामना करनी चाहिए (अर्थात् चतुर्पुर्षार्थ–धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की कामना नहीं करे। सर्वकल्याण एवं लोकसंग्रह की भावना हो।)। यह स्मरण रहे कि उपनिषदों में कहा है : "सर्वं खलु इदं ब्रह्म।" "आत्मैवेंद सर्वम्।।" यहाँ ब्रह्म का अर्थ महाशक्ति और आत्मा का अर्थ सबकी प्रेरक शक्ति है। वही शक्ति विश्व के रूप में हमारे सामने है।

कैलासी मंत्र, जप में ईष्ट के इतर विचारों को नहीं आने दे (यही विचार बंधन हैं : "मन एवं मनुष्याणां कारणं बंधमोक्षयोः।।" ।)। आर्ष ग्रन्थों में लिखा है : "सत्तत्त्व ऊँ।" कैलासी के अनुष्ठान में अनेक बाधायें आ सकती हैं। मानस का उग्ररूप भयभीत करनेवाली आवाजें, हिम ताण्डव के तूफान, वर्षा और घटाटोप बादल आदि इनमें सम्मिलित हैं। इनसे बचकर अविनाशी ओढ़रदानी वागीश शिव की कृपा मिलती है। अतः कैलास साधना से यात्रा को साधना, उपासना, जप, तप करके सफल बनाऐं। ऊँ

महायोगीश्वर के मेरु कैलास में निर्गुण निराकार निष्काम सगुण साकार साकाम के महाभक्त

अविनाशी महादेव के हिमवत मेरु–कैलास निर्गुण निराकार निष्काम ब्रह्म, सगुण एवं सगुण साकार साकाम ब्रह्म की उपासना की

वेदीक काल से औपनिषदिक और पौराणिक काल से इतिहासकाल (रामायण महाभारत) तक गुप्तरूप से चलती रही है।

पौराणिक ग्रन्थों के अनुसार श्रीहरिविष्णु ने अजेय दिव्यास्त्र प्राप्ति के लिए हिमवतक्षेत्र में महादेव रुद्र की 1000 कमल पुष्प चढ़ाने के संकल्प के साथ घोर तपस्या की (कुछ ग्रन्थों में यह स्थान गढ़वाल में और कुछ के अनुसार मेरु क्षेत्र कैलास है।)। महादेव शिव ने एक दिन श्रीहरिविष्णु की परीक्षा के लिए निर्धारित संख्या में एक कमल पुष्प कम किया। कमलनयन कहलानेवाले श्रीहरि विष्णु ने अपना एक नेत्र निकालकर महादेव रुद्र को अर्पित किया। सदाशिव ने श्रीहरिविष्णु की भक्ति से प्रसन्न होकर अपनी जंघा की हड्डी से निर्मित सुदर्शन महाचक्र प्रदान किया (अहिर्बुधन्य संहिता में शिव ने सुदर्शन चक्र रचना का रहस्य देवर्षि नारद को बताया।)। श्रीहरि द्वारा पूजित दिव्य पार्थिव शिवलिंग महादैविक शक्ति से सम्पन्न है।

शिवगीता में साम्बसदाशिव ने मर्यादा पुरूषोत्तम राम को उपासना का गूढ़तम रहस्य समझाया। महादेव शिव ने कहा कि (उनकी उपासना के लिए) तीर्थ क्षेत्र में जाने की आवश्यकता नहीं है। उपासना अर्चना के लिए अनुष्ठानिक कार्यवाही (लिंग, गंगाजल, विल्वपत्र, अष्टगंध चंदन–लाल चंदन–भष्म, पुष्प, दीपक, धूप, सुगंध) और किसी प्रकार के आसन विशेष भी गैरजरूरी है। जहाँ जिस आसन में चित्त में शान्ति–आनंद हो (मुझे) भजें। यद्यपि राम पार्थिव शिव लिंग निर्मितकर साम्ब सदाशिव की साधना कर रहे थे। परब्रह्म शिव की साधना ह्रदय में आत्म कैलास मानकर निराकार रूप में की जाए।

ओढ़रदानी शिव निर्गण निराकार निष्काम अध्यात्मिक स्वरूप और मेरु कैलास की महागाथा बहुत ही बृहद है। मेरु कैलास के अध्यात्मिक स्वरूप से कलियुग में साक्षात्कार, सामना असम्भव नहीं तो बहुत ही कठिन अवश्य है। यहाँ यह लिखना आवश्यक हैं कि महादेव द्वारा दक्ष यज्ञ भंग करने पर श्रीहरि विष्णु उनसे युद्ध के लिए आगे आये। श्रीहरिविष्णु ने सदाशिव महादेव पर उनके द्वारा प्रदान दिव्य सुदर्शन चक्र से भीषण प्रहार किया। महारौद्ररूपी महादेव के संकेत मात्र से विष्णु सहित सभी पत्थर की मूरत में बदल गए। इसीतरह श्रीहरि विष्णु के उग्रावतार नृसिंह हिरण्यकश्यप के संहार के बाद भी शान्त नहीं

हुए। भूलोक पर नृसिंहावतार संकट बने। प्रकारान्तर में कैलास में सदाशिव का पक्षी–पशु–सर्प का संयुक्त घोरतम "शरभावतार" प्रकट हुआ। शरभ ने श्रीनृसिंह का संहार किया (शरभतन्त्र, लिंगपुराण, शैवमत आदि ग्रन्थ)। अविनाशी महारुद्र के शिव रहस्य के करोड़वें अंश से भी कम को ही जाना जा सका है। आर्ष ग्रन्थों के अनुसार स्फटिक की भांति झिलमिलाते, चकाचौंध करते "कैलास लोक में अनेक ब्रह्मा अपना कार्यकाल पूरा कर तपस्या में लीन हैं।"

कैलास से पामीर के पठार तक विश्व की छत पर अनन्त ब्रह्माण्डों के पार शिवलोक से परब्रह्म के आने जाने की लीला निरन्तर चल रही है। महादेव के परमभक्तों ने उनके अध्यात्मिक निराकार निर्गुण निष्काम परब्रह्म और सगुण साकार साकाम परब्रह्म के दोनों रूपों को एक ही साथ सामने रखा। यक्षराज पुष्पदन्त की मीठी कथा है। पुष्पदन्त काशी की राजसी बगिया वाटिका से सुगन्धित, चित्ताकर्षक, सुन्दर फूल हर दिन लाकर कैलास में शिव की आराधना करते हैं। पुष्पदन्त यक्ष होने के कारण अदृश्य होने में सिद्धहस्त् हैं, सो अदृश्य होकर सुन्दर पुष्प चुनते हैं। इससे चिन्तित काशीराज ने सर्वेश्वर विश्वनाथ से ही पुष्प वाटिका की रक्षा की गुहार की। पुष्पदन्त के सामने विकट परिस्थिति उत्पन्न हुई। वे विश्वनाथ की दृष्टि से नहीं बच सकते। परिणामतः काशी से पुष्प ले जाकर कैलास में अर्पित नहीं कर सकते। पुष्पदन्त पहले निराश हुए परन्तु प्रकारान्तर में अविनाशी महायोगीश्वर की निराकार निर्गुण परब्रह्म के स्वरूप में आराधना "कैलास" में प्रस्फुटित हुई। शीशगंग अर्धंग पार्वति सदा विराजत कैलासी अविनाशी क्षेत्र में पुष्पदंत का यह स्त्ोत्र शताब्दियों से श्रेष्ठतम में सम्मिलित हुआ। शिवमहिम्न स्त्ोत्र का तांत्रिक रूप भी है। शिव महिम्न स्त्ोत्र कर्मकांड के पचड़े से दूर निराकार परब्रह्म का सबसे सरल सहज सुन्दर दिव्य अध्यात्मिक दर्शन है। महादेव शिव की "माया रही कि पुष्पदन्त व्यक्त से अव्यक्त, सगुण साकार ब्रह्म से निर्गुण निराकार अव्यक्त सर्वब्रह्ममय की अध्यात्मिक धारा का घोष करने लगे।" पुष्पदन्त ने शिवमय होकर ही महादेव को सूक्ष्म से भी सूक्ष्मतम एवं व्यापक से भी महाव्यापकतर से सम्बोधित किया:नमो नेदिष्ठाय प्रियदव! दविष्ठाय च नमो, नमः क्षोदिष्ठाय स्मरहर! महिष्ठाय च नमः।। यक्षराज ने शिव को निर्गुण तत्त्व के रूप में

कहाः "यदालोक्याह्लादं हद इव निमज्ज्यामृतमयै दधत्यन्तस्त्त्वं किमपि यमिनस्त्त्किल भवान।" स्वयं पुष्पदन्त ने इसे वाड्.मयी पूजा कहाँ निर्गुण निराकार ब्रह्म के रूप में महादेव को परमगुरु स्वीकारकर कहाः "अघोरान्नाऽपरो मन्त्रो नास्ति् तत्त्वं गुरोः परम्।।" मानस पूजा के बारे में स्पष्ट कहा कि दीक्षा, दान, जप, तीर्थ भ्रमण, उपासना, यागदि कर्म इसके सोलहवें अंश के बराबर भी नहीं है। सभी भोगों में सर्वोच्च शिव सायुज्य (कैलास) है। दूसरे शब्दों में कैलास में परमभक्त पुष्पदन्त ने निष्काम निराकार अव्यक्त निर्गुण परब्रह्म शिव की मानसिक भक्ति की गंगोत्री प्रवाहित की।

लंकेश्वर दशानन रावण ने कैलास में तपस्या और साधना में शिव की आराधना ताण्डव स्वरूप में की। यह ताण्डव स्त्रोत्र लंकेश्वर के अभेद ज्ञान, सर्जन एवं विसर्जन, शोक एवं आनन्द, भौतिक सुख एवं दुख (कष्ट), मित्र एवं शत्रु, अनुकूल एवं प्रतिकूल, मान और अपमान आदि को सम्यक स्थितिप्रज्ञ दृष्टिभाव से धारण करने का शैव दर्शन है। लंकेश्वर ने लय और प्रलय को नियति के रूप में स्वीकार कर "समभाव" का दर्शन प्रतिपादित किया। कैलास में महापण्डित और शिव के परमभक्त लंकेश्वर ने शिवतत्त्व को ही नादब्रह्म का प्रतिघोष, नादभैरव का नर्तन और सृष्टि के (जगत) कल्याण के लिए प्रलयंकर त्रितत्त्वों की त्रिवेणी को ताण्डव स्त्रोत्र में संजोया। महापण्डित लंकेश्वर ने व्यक्त और अव्यक्त सदाशिव की भक्ति में एक नया अध्याय जोड़ा। अध्यात्मिक रूप से निर्गुण निराकार रूप में ब्रह्म आराधना में अहंकार उत्पन्न होने का महासंकट रहता है। लंकेश्वर दशानन रावण शिवभक्ति से शिवमय हुए और सभी देवताओं को वश में (पराजित) किया। कैलास में त्रेतामें लंकेश्वरने सूर्य किरणों को विभाजित कर सोना (स्वर्ण) बनाने की रससिद्धि ब्रह्म विद्या विकसित् की। लंकेश्वर सत्युग से कलियुग तक शिवकृपा से अद्भुत यंत्रशास्त्रज्ञाता और विलक्षण वैज्ञानिक रहे। ये सभी ज्ञान लंकेश्वर दशानन रावण ने कैलास में सदाशिव की भक्ति (साधना, उपासना) से प्राप्त किये। सभी स्थितियों में लंकेश्वर का सम्यक स्थितिप्रज्ञ दृष्टिभाव सर्वोच्च दर्शन है। ऊँ

कैलास मानससरोवर मन्दिर मठों में भारतीय तांत्रिक यंत्रों का माया लोक

श्री कैलासलोक के मन्दिरों मठों में बौद्ध धर्म के साधकों ने ''भारतीय तांत्रिक यंत्रों'' का मायालोक रचा है। बौद्ध साधक तांत्रिक त्रिकोण एवं मण्डलों की रचना कर उसके मध्य केन्द्र में ''ईष्ट देवता'' को दिव्य बिन्दु में प्राणप्रतिष्ठित करते हैं। इन्हे तिब्बती में यिदम् और यब–युम मुद्रा कहते हैं।

ऋग्वेदीक काल के पवित्रतम मेरु महापर्वत कैलास और प्रजापति ब्रह्मा के मस्तिष्क में विचार मात्र से उत्पन्न मानस सरोवर की परिधी में प्राचीन काल से निर्मित मन्दिर–चैत्य–गोम्पा में बौद्ध लामा और सामान्य सन्यासी दिव्यतेज एवं शक्ति सम्पन्न यिदम और मण्डलों की ''गुप्त आराधना'' करते हैं। आम गृहस्थी को यिदमार्चना की मनाही समझी जाती है। प्राचीन भारत में मंत्र आदि को करने की विधि तंत्र और उसके दिव्य रेखा–बिन्दु में प्रतीकात्मक प्रदर्शन यंत्र रहा। त्रिगुणात्मक शक्ति–त्रितत्त्व–त्रिकसिद्धान्त अर्थात् सत्–रज–तम को आधारभूत बनाकर ''त्रिकोणात्मक तांत्रिक यंत्र'' सृजन का ईसा पूर्व से लाखों–लाखों वर्ष पुराना इतिहास मिलता है। प्राचीन भारतीय प्रतीक विद्या यंत्र तंत्र मंत्र की चमत्कारिक दिव्य महाशक्ति के रहस्य परत दर परत खोलती है।

शिवपुरी श्री कैलास सुमेरु में स्वर्णयुग, सत्युग, त्रेतायुग, द्वापरयुग से सातवें वैवस्वत मनु के कलियुग में जम्बूद्वीप भरत खण्ड के गुप्त साधक साधना के लिए जाते रहे। फलस्वरूप तिब्बत और मेरुक्षेत्र में सातवीं शताब्दी में बौद्धधर्म के वर्चस्व पर ''मंत्र–तंत्र–यंत्र'' प्रधान वज्रयान सम्प्रदाय उपासना में छा गया। त्रिकोण यिदम् में यब युम मुद्रा परमेश्वर एवं परमेश्वरी का प्रतिनिधित्व करते हैं। तिब्बती साधक इसे 'पुरूष (परमेश्वर) और प्रकृति' का मिलन कहते हैं। यब युम में यब

शिव–पुरूष–वज्रधातु और युम प्रकृति–शक्ति–काली–गर्भधातु हैं। इस यंत्र में दो त्रिकोण सीधे एवं उल्टे बनाये जाते हैं (श्रीयंत्र सरीखे)। इसे "वज्र मुद्रा" भी कहा जाता है। पहला त्रिकोण योनि–प्रकृति और दूसरा लिंग पुरूष है। इसके भीतर सृष्टि का "ब्रह्मानन्द चक्र'' समाहित है। दोनों में अक्षर ब्रह्म की दैविक शक्ति के लिए मातृका अंकित की जाती हैं। भारतीय एकाक्षरनामकोषसंग्रह में अक्षर की दैविक भौतिक शक्ति का रहस्योद्घाटन किया गया है। त्रिकोण, वर्गाकार अथवा बहुत्रिकोण यंत्र मण्डल में "अक्षर ब्रह्म" स्थापित कर सर्वशक्तिमान स्वरूप प्रदान होता है। प्राचीन भारतीय परम्परानुसार दिव्य यंत्र की रचना पाँचांग अनुसार शुभ दिन, शुभ घड़ी में विधिविधान से अष्टगंध चंदन युक्त रंगों से की जाती है। यंत्र रचना से पहले लामा मांत्रिक दिग्बंधन कर "अपवित्र दुष्ट आत्माओं'' का प्रवेश निषेध करता है। मन्दिर मठ में यिदम् यब युम यंत्रों को शक्ति सम्पन्न करने के लिए सूर्योदय से सांझ ढ़ले प्रदोषकाल तक मंत्र पाठ और तांत्रिक अनुष्ठान चलता है। साधक द्वारा लाखों–लाखों मंत्रपाठ से ईष्टदेवता की शक्ति यंत्र यिदम, यब युम मुद्रा यंत्र, मण्डल में आती है अथवा जाग्रत होती है।

लामा यंत्र को नेवैद्य के रूप में सत्तू, मक्खन का छोपा, चावल, गेंहू, तिल, सरसों, दुर्वा (दूब), पके हुए चावल अर्पित करते हैं और यज्ञ में आहूति देते हैं। श्रीकैलास एवं मानस के समीप की गुप्त गुफाओं में वर्षों लामा निराहार रहकर यंत्रों को सिद्ध करने के लिए मंत्रपाठ करते हैं। वे दिन में मात्र कुछ दुध लेते हैं। डाबाओं को निर्देश होता है कि वे गुपचुप गुफा द्वार पर दूध रखें। यिदम् का अपना यंत्र अथवा मण्डल होता है। मण्डल को भी बहुत ही सावधानी पवित्रता से प्राकृतिक रंगों से सजाया जाता है। ये मण्डल 4 से 5 फीट के वर्गाकार होते हैं। मण्डल में स्वास्तिक चार बिन्दु–विन्दु रूप होता है। मण्डल में विन्दु ही वर्गों के द्वार खुलते हैं। मण्डल चित्र सृष्टि को प्रकट करता है। मण्डल के वर्गों के द्वार पर बुद्ध, बोधिसत्व, वज्र, देवी, आराध्य देवता के प्रतीक रूप चित्र होते हैं। मण्डल में गूढ़ प्रतीक रंग संरचना होती है। मण्डल में शान्ति और संहार दोनों के देव विराजमान किए जाते हैं। मण्डल की प्रथम आकृति को कमल रूप दिया जाता है। मण्डल के मध्य

प्रतीक रूप में पाँच ध्यानी बुद्ध और पाँच प्रज्ञाओं के प्रतीक चित्रित करने की परम्परा है। सभी द्वारों पर नियामक देवता पधराये जाते हैं।

पाँच प्रज्ञाओं के नाम अमोधसिद्धि, अक्षोभ्य, रत्नसम्भव, अभिताम और वज्रसत्त्व हैं। संहारक शक्तिवाले मण्डल में अग्निज्वाला, विकराल, विचित्र आभूषण, गुप्त तरीके आदि होते हैं। यिदम् और मण्डल के केन्द्र में साधक को वर्षों की साधना के बाद केन्द्र में शांतिप्रिय शक्ति अथवा संहारक शक्ति के दिव्य दर्शन होते हैं। साधक की चेतना और मस्त्ष्कि में दिव्य ऊर्जा का जाग्रत होकर संचार भी होता है। बौद्ध पाँचप्रज्ञाओं को साधक के चेतना स्त्र से जोड़कर देखते हैं। वे निर्माण और संसार को प्रज्ञा शक्ति का ही खेल कहते हैं। भारतीय तंत्रशास्त्र का अनुसरण करते हुए मण्डल में "डाकिनी" को चेतना प्रज्ञाज्ञान की राह में अहम् मानते हैं। श्रीकैलास–मानस सरोवर के मन्दिरों में "दीक्षा" के समय साधक अपना "आराध्य देव अथवा देवी" चुनता है। लामाओं का कहना है कि महादेवी तारा श्रीस्वरूप है। तारा महादेवी के सर्वाधिक प्रचलित रूप–श्वेत, लाल और हरा है। उनकी (तारा) अर्चना में कहा जाता है : "गुरु यिदम् डाकिनी महा आर्याताराः।"

यहाँ यह समझना आवश्यक है कि वज्रयान शब्द का अर्थ क्या है ? वज्र वह दिव्य आयुध है, जिसका सामना सृष्टि का कोई अस्त्र शस्त्र नहीं कर सकता। यान वाहन साधन मार्ग है। सारसंक्षेप में वज्रयान की साधना से अनन्त प्रचण्ड शक्ति प्राप्त करना सम्भव है। सैद्धान्तिक रूप से बौद्धधर्म में पवित्रतम रूप ही वज्रसत्ता है। अतः वज्रसत्ता को मण्डल के केन्द्र में प्रतिष्ठित करते हैं। गोम्पा में जीवनचक्र भीत्ति चित्र में तीन प्राणी – मुर्गा (लालसा वासना का प्रतीक), सर्प (संहार एवं वृत्ति प्रतीक) और वराह (सुअर–अज्ञान और भ्रम का प्रतीक) चित्रित होते हैं। उनके समीप लघु वर्तुल में आधा रंग भरा होता है। जीवन चक्र में नरक, असुर, प्रेत, मनुष्य और ईश्वर देव का चित्रण किया जाता है।

भारतीय आर्ष परम्परा के पदाचिन्हों पर मन्दिरों मठों में लेटकर आगे हाथ जोड़कर 'साष्टांग प्रणाम' का चलन है। बौद्ध इसे अमिताभ बुद्ध, धर्मपाल, मंजूश्री, तारा, अवलोकितेश्वर, बोधिसत्वों आदि के सामने सम्पूर्ण समर्पण कहते हैं। सिद्ध एवं अवतारी लामा को मठ में साक्षात परमशक्ति माना जाता है। मठों में प्रातः उठने और रात्रि को

सोने के समय यिदम की प्रार्थना का विधान है। समूचे दिन यिदम् को अच्छे फल, भोजन, फल, मक्खन अर्पित कर उसे देवप्रसाद की भांति खाते हैं (भारतीय सनातन धर्म में गृहस्थ तक भोजन का ईष्टदेव को भोग लगाकर प्रसाद स्वरूप ग्रहण करते हैं। ईष्टदेव को साक्षात सशरीर सगुण साकार ब्रह्म मानते हैं।)। यिदम–मण्डल भी सगुण साकार ब्रह्म परम्परा का विस्त्ार ही है। मन्दिर मठ के नित्य पूजागृह और देवघर को लामा भारतीय शैली में बहुत ही सजाकार रखते हैं। देवताघर और नित्य अर्चना स्थल पर शंख, घण्टी, घड़ियाल, ढ़ोल, तुरही, चंवर आदि सजाकर रखे जाते हैं। अर्चना पूजा के समय सनातन भागवत मन्दिरों सरीखा मंत्रमुग्ध करनेवाला दृश्य पैदा होता है। लामा आमतौर पर यिदम, यब–युब एवं मण्डल के बारे में जानकारी गोपन ही रखते हैं। आमतौर पर सिद्ध यंत्रों साथ रखने का चलन है। ऊँ

लद्दाख से अरूणाचल तक
मेरु कैलास जाने के नौ महापथ

जम्बूद्वीप में वेदीक महापवित्र मेरु – कैलास जाने के महापथ पामीर पर्वत श्रृंखला लद्दाख से विश्वबाहु परशुरामकी साधनास्थली अरूणाचल तक फैले हैं। समूचे एशिया एवं यूरेशिया–गंधार, पारस, साईबेरिया, मस्कवा (मास्को), मंगोलिया, चीन, जापान, कम्बदेश – चम्पादेश (कम्बोडिया, वियतनाम), मलयदेश (मलेशिया), स्यामदेश–जावा सुमात्रा (इण्डोनेशिया मलेशिया), श्रीदेश (लंका), बर्मा (ब्रह्मदेश म्यांमार) आदि के ''गुप्तसमाज'' एवं तपस्वी चुम्बकीय आकर्षण से खींचे ईसा पूर्व हजारों वर्षों से मेरु की गुफाओं में बैठकर आत्मचिन्तन स्व के भाव में लीन होते रहे।

परमबुद्ध की साधनास्थली गया में दिव्य चेतना का संचार करनेवाले महाबोधिवृक्ष पीपल के दर्शन के बाद साधक सिक्किम की राजधानी गंगटोक लौटते। गंगटोक के आस पास चमत्कारिक बौद्ध

मन्दिर चैत्य का रोमांचक वर्णन आईएफएस एवं पूणे के समीप औंद राजघराने के श्री अप्पा साहेब पंत ने किया है। श्री अप्पा साहेब पंत ने अनडिप्लोमेटिक वेज ऑफ ए डिप्लोमेट में दुष्टात्मा के नेत्रवाले थांके से दुर्घटनाओं की झड़ी का रहस्योद्घाटन किया है। सन 1918 में औंद राजघराने ने वेदीक–पौराणिक–इतिहास (रामायण महाभारत) के संस्कृत ग्रन्थों को हिन्दी व्याख्या के साथ उपलब्ध कराने का महाप्रयास शुरू किया। गंगटोक से पर्वत शिखर पर नाथूला से चीन की सीमा लगी है। साठ वर्ष पूर्व नाथूला सीमा चौकी से बर्फ की चादर में ढ़के पर्वतों की घाटियों दर्रों में मंत्रोच्चारण करते बौद्ध साधुओं के जत्थे तिब्बत की राजधानी का रास्त्ा पकड़ते (वर्तमान में यह मार्ग फिर खुला है।)। इन रास्त्ों में हिमालय की पर्वतश्रृंखला के भयावह दर्रों से गुजरना होता। गंगटोक से ल्हासा की लगभग चार सौ किलोमीटर की यात्रा बहुत ही खतरों से भरी थी।

ल्हासा के समीप श्रीकैलास से आनेवाली ब्रह्मपुत्र के किनारे किनारे लगभग 1200 किमी की दुर्गम यात्रा से तकलाकोट पहुंचते। श्रीकैलास प्रांगण में तकलाकोट बड़ी मंडी है (वर्तमान में चीन ने नाथूला के नजदीक सीमा पर सड़क निर्माण किया है। यह पर्वतीय सड़क सीधे ल्हासा और ल्हासा से श्रीकैलास तक जाती है। भारत चीन समझौते के तहत श्रीकैलास मानसरोवर यात्रा का यह लगभग 1600 किमी का महापथ खोला गया है।)(श्री बिमल दे ने महातीर्थ के अन्तिम यात्री पुस्त्क में गंगटोक से श्रीकैलास यात्रा का बहुत ही चित्रलिखित खाका खींचा है, लगता है कि आंखों के सामने सूक्ष्मतम वर्णन करती फिल्म चल रही हो।)। भारतीय चारधाम यमुनोत्री, गंगोत्री, श्रीकेदारनाथ, श्रीबद्रीनाथ के हिमनदों (ग्लेशियर), वनों को पार करते श्रीकैलास दर्शन के रास्त्े प्राचीन काल से है। यह उल्लेखनीय है कि चारों धामों के बीच मात्र 32 किमी का पर्वतीय गुप्त महापथ है। जिससे "भारतीय गुप्त समाज" के सिद्ध आते जाते रहे। देवनदी गंगा को उत्पत्तिवाली गंगोत्तरी से श्रीकैलास मानस सरोवर का विकट मार्ग 350 किमी का है। तिब्बती गंगोत्री–गंगोत्तरी को मुखुवा कहते है। गगनानी के समीप हेलीकाप्टर के लिए हवाईपट्टी बनी है। मुखुवा में पद्म वृक्ष पाये जाते रहे।

मुखुवा से लामायड. और ऋषिगंगा पारकर भोटियों के गांव पहुंचते हैं। इसके समीप ही जाह्नवी–मुलिड. नदी का प्रयागराज है। मुलिड. के तटों के साथ चलते श्रीबद्रीनाथ पहुंच सकते हैं। बयालीस किमी पर दो नदियों–जाह्नवी एवं जधुड. का मिलन दुसंदु है। इसके करीब जाड़ों की बस्त्ी है। दुसंदु के पार तीन नदियों संगम, पड़ाव की दीवारें (तिड.ता) हैं। इसका नाम तिपानी है। खागे के आगे मंडी एवं घाटे की कठिन चढ़ाई है। भारत तिब्बत सीमा पर जेलूखागा घाटा 17490 फीट ऊँचाई पर है। यह क्षेत्र छड.छोक के नाम से जाना जाता है। ओप नदी की चढ़ाई बहुत ही खड़ी है और उतरना भी इसी प्रकार का है। ओप नदी में पानी का बहाव तेज रहता है। नदी के बाजू में पौन किमी पर पुल है। पुलिड. मंड़ी की ढ़ाई किमी की सीधी कठिन चढ़ाई है। आगे बाबरा डेरे हैं। शरवाराव – शरबरक – शरबक से मार्ग माना घाटा, दूसरा मड.नड. जाता है। शरवाराव में दो फीट गहरी नदी, 8 किमी पर पत्थर के ढ़ेर–लप्चे और रंगबिरंगे झंड़े कांचनथंगा पर है। बरखू में 16 से 25 गुफाओं में तिब्बती साधक कभी कभार निवास करते है। पन्द्रह किमी पर थुलिंग और उसके बाद तरछेन श्री कैलास का सिंहद्वार है।

श्रीबदरीनाथ से माना घाटा होते हुए 342 किमी को विकट रास्त्ा श्रीकैलास निकलता है। समुद्र तल से शीर्ष पर नरनारायण ऋषि की रुद्रोपासना का बदरीकाश्रम है। माना वास्त्व "मणिभद्रपुरी–माणा" का अपभ्रंश है। माना के भोंटिए मार्छे कहलाते हैं। माना से मानसरोवर का पहला पड़ाव हासत्ोली, बुडचोन, खोरजाकोट है। माना के समीप प्राचीन काल की देवनदी सरस्वती का स्थल है। घाटे की सीधी चढ़ाई के बाद रक्ताकोणा, ताराई डेरा और आगे "असुर रक्षताल","अज्ञात देवताल" एवं हिमताल है। देवताल में स्नान पुण्यवर्धक माना जाता है। चिरबिटिया में भारत तिब्बत सीमा और घाटा है। चिरबिटिया घाटे से थुलिड मंदिर के बीच पोती, जोगेराव, रामूराव, शंकरा एवं सत्तूखाना आते हैं। इतिहासकारों के अनुसार मठ के बाजू में सत्लज नदी बहती है। सन 1030 में निर्मित मठ में नालन्दा से आये आचार्य दीपकंर श्रीज्ञान ने 9 महीने रूककर आर्ष ग्रन्थों का अध्ययन किया। थुलिड. मन्दिर में 108 देवघरों में देवी देवताओं की हजारों प्रतिमायें, कंजूर तंजूर हैं। मुख्य वेदी पर 8 फीट की मैत्रय मूर्ति है और दूसरी शाक्य थुम्बा मूरत को "बदरीनारायण" माना

जाता है। मन्दिर से लगा गांव में आश्चर्यजनक रूप से पीपल वृक्ष है। थुलिड. से मंगनड. रास्ते् में मंगनड. छोटी नदी है। मंगनड. से दाबा में नाब्रा मंडी, सिबचिलम मंडी, ज्ञानिमा मंडी है। नाब्रा मंडी से तरछेन का रास्त्ा जाता है।

पामीर से लगे काश्मीर से 871 किमी की कैलास मानस यात्रा में लगातार हिमनदियों, सीधे पहाड़, घाटे और नदियों का जंजाल है। श्रीनगर से गंदरबल, कंगन, गुंड, सोनमर्ग, बालताल, जोजीला पहुंचते हैं। लद्दाख जोजीला से प्रारम्भ होता है। जोजीला से मटयन द्रास, समसा खरगू, कर्गिल–कारगिल, मुलबेक, नाम्भिक घाटा, फोतु ला, नाम्मिक घाटा और लामायुरू है। लामायुरू लद्दाख के प्रसिद्ध मन्दिरों में गिना जाता है। लामायुरू से 390 किमी सिंधु नदी के किनारे यात्रा शुरू होती है। प्राचीन काश्मीर तिब्बत सीमा देमचोक के मार्ग में नुरला, बोजगो गोम्पा, ससपुल, नीमू, लद्दाख की राजधानी लेह, क्षेत्र का सबसे विशाल मन्दिर मठ चूशोट, उगु मरचलड., मिरूगांव, उपशी, शग्रोत, ग्या, टगलड. ला, डेब्रिड़, पोलोगोंका ला, थुपजे गोम्पा, चुंगीधर लड.शम, न्यीमा मोथ गांव, डुड.टी डेरे, निगूचे डेरे, फुग्चे डेरे और लगनखेल टटोर योड.मा डेरे आते हैं। देमचोक में गर्म पानी का सोता है। आगे टाशीगोड. मन्दिर है, यह कभी काश्मीर अधीन था। पश्चिमी तिब्बत के सरकारी प्रतिनिधि का प्राचीन स्थान गरगुनसा है। गरगुनसा से नमरू, गरतोक होते कैलास तरछेन है। लद्दाख की राजधानी से तरछेन लगभग 550 किमी है। लेकिन हिमनदों को पार करना भयावह है। शिमला से गरतोक के रास्ते् श्रीकैलास यात्रा 641 किमी की है। शिवकी घाटा (15400 फीट) भारत तिब्बत सीमा शुरू होती है। अल्मोडा से ऊँटाघुरा घाटा के रास्ते् श्रीकैलास की 302 किमी की यात्रा बहुत ही कठिन है। अतः दरमा घाटा होते 331 किमी की यात्रा करते रहे। ऊँ

कैलास मानसरोवर के चौदह मठों मन्दिरों में अदृश्य आत्माओं का संसार

यह आश्चर्यजनक है कि मेरु कैलास एवं मानसरोवर के चौदह मठ मन्दिरों में अदृश्य आत्माओं के पुनर्जन्म का रहस्यमय विधान है। मेरु के मन्दिरों में जीवन में प्रज्ञा के रहस्य एवं मृत्यु के बाद पुनर्जन्म की "रहस्यविद्या की पोथी–बार दो थोस ग्रोल" के गोपन ज्ञान को समझने की प्रक्रिया चलती रहती है।

कैलास मानसरोवर के मन्दिरों के लामा (सिद्ध सन्यासी) और डाबा (आम साधु) के देहत्यागने पर आमतौर पर उसकी अन्त्येष्टि करने का रीति रिवाज विधान है। रहस्यविद्या की पोथी मूल रूप से भारतीय वेदीक धर्म–सनातन सात्वत धर्म की पुनरावृत्ति मात्र है। इसमें शारदा लिपि काश्मीर–संस्कृत की गंगा जमुना भोंट तिब्बती में ऐतरेय अरण्यक, बृहदारण्यक उपनिषद, शतपथ ब्राह्मण, गरूड़ पुराण के प्रेतकल्प आदि समाहित किया गया है। दूसरे शब्दों में त्रिविष्टप–तिब्बत में ऋग्वेदीक काल की संस्कृति और वेदीक दर्शन गहरा प्रभाव है। यह उल्लेखनीय है कि देववाणी वेद वर्णित मेरु पवित्र कैलास है। संस्कृत विद्वान डॉ. सम्पूर्णानन्द ने सन 1941 में ब्रिटिश शासन के कारावास में "आर्यों का आदिदेश" ग्रन्थ लिखा। डॉ. सम्पूर्णानन्द ने ऋग्वेद की ऋृचाओं मंत्रों सूक्तों के प्रमाणों से सिद्ध किया कि वेद संस्कृति के पहरूए आर्यों का आदिदेश जम्बूद्वीप भरतखण्ड ब्रह्मवर्त है। ऋग्वेद में नैतिकता की संस्थापना करनेवाले "श्रीरुद्रदेव" धर्मपाल के उग्ररूप में श्री कैलास के अधिष्ठातृ देवता हैं। मन्दिरों में यह धारणा है कि बोर दो सुनने से महामुक्ति का महाद्वार खुलता है (जैस भारत में मृत्यु पर गरूड़ पुराण सुनते हैं।)।

वास्त्व में वेद, उपनिषद का गूढ़ ज्ञान, अद्वैत का नवसंदेश श्रीमद् आदिशंकराचार्य (आचार्य शंकर) ने 2500 वर्ष पूर्व कैलास में दिया। यह शोध का विषय है कि ईसा पूर्व पाँचवीं छठी शताब्दी में आचार्य शंकर का सानिध्य किन्हे मिला? तिब्बत के आत्माओं – प्रेत आदि को माननेवाले बोन पाने धर्म पर आचार्य शंकर का क्या प्रभाव रहा? वेदीक काल, पुराण काल से कलियुग तक ऋषियों का बौद्धधर्म के वज्रयान पर क्या प्रभाव पड़ा? तंत्र–यंत्र–मंत्र अनुष्ठान प्रधान वज्रयान को "हीरक पथ" के नाम से सम्बोधित किया जाता है। सनातन धर्म की तरह संचित कर्म, प्रारब्ध और वर्तमान कर्म रहस्यवाद की पोथी का मूलतत्त्व है। बौद्ध महायान में त्रिकाया का सिद्धान्त है। तिब्बती त्रिकाया को धर्मकाया, सम्भोगकाया एवं निर्वाणकाया में विभाजित करते है। धर्मकाया में सर्वोपरि सत्य, सम्भोगकाया में स्वर्गीय आशीर्वाद प्राप्त काया और निर्वाण काया में चेतनावस्था है। तांत्रिक वज्रयान में चतुर्थ काया – महासुखकाया – स्वाभाविककाया का उल्लेख है। बोर–दो–थोस–ग्रोल छेन छो बोरदो के नाद से मुक्ति की जानकारी देती है। भारतीय बौद्ध योग पद्धति में कमल चक्र को अहम् स्वीकारा गया है। नाभि क्षेत्र में 64 पंखुडियोंवाले कमल का उल्लेख है। हृदयचक्र में 8 दल कमल ज्ञान चक्षु खोलने वाला है। कंठ में 16 दल कमल सम्भोगकाया का केन्द्र है। अन्त में शीर्ष पर स्वाभाविककाया चक्र में 32 दल कमल स्वीकारा गया है। साथ ही वज्रयान में शक्तिपात के लिए इसके ऊपर चार पंखुडियों वाला कमल बताया गया है। यहाँ स्मरण रहे कि शिवसंहिता, शिवगीता, पतंजली योगसूत्र, घेरण्ड संहिता, गोरक्षसंहिता, सिद्धसिद्धान्त आदि ही तांत्रिक वज्रयान के त्रिकाया के आधार हैं।

तिब्बत की गोपनपोथी वेद का विस्त्‌ार ब्राह्मण ग्रन्थ, अरण्यक, पुराण और उपनिषद जन्म–मृत्यु–पुर्नजन्म के चक्र के रहस्य को परत दर परत खोलती है। नचिकेता और मृत्यु के देव यम से संवाद इस रहस्य की गुत्थी को खोलने में सहायक हैं। वास्त्‌विक गरूड पुराण में अगस्त्‌य संहिता, बृहस्पति संहिता, धनवन्तरी संहिता और अन्त में प्रेतकल्प है (सन 1908 : पंडित मन्मथनाथ दत्त शास्त्री की गरूड पुराण)। गरूड पुराण के प्रेतकल्प में मृत्यु के बाद मृतक की आत्मा की यात्रा, नरकों का भय संचार करनेवाला वर्णन, नरक की यातनायें, मृत आत्मा के वैतरणी पार

करने के कर्म और पुनर्जन्म का वर्णन है। कैलास मानस सरोवर के मन्दिरों के भीत्ति चित्रों, वस्त्र चित्र फलक, थांके आदि पर नरक का चित्रण, नरक के दानवों के चित्र, दुष्ट आत्माओं के चित्र झंझोड़नेवाले हैं। कैलास मानस के मन्दिर के लामा अकाल मृत्यु, दुष्ट प्रवृत्तिवाले मृत व्यक्ति आदि की आत्माओं की छाया से बचने के लिए हवन, मंत्रपाठ और तांत्रिक अनुष्ठान करते रहते हैं। उनके हाथों में मंत्रपाठ से माला लगातार घूमती है। दुष्टात्माओं – दुष्प्रवृत्तियों – अमंगलसे रक्षाका पाठ चलता है।

इस परिदृश्य में लामा – डाबा – अन्य की मृत्यु होने पर शव को सात्वत धर्म के कर्मकांड की तरह अंत्येष्टि करते हैं। शवदाह के समय मंत्रपाठ करते हुए घंटी, घडियाल, शंख आदि बजाते हुए हवन सामग्री, मक्खन आदि भी चढ़ाने की रिवाज है। भारत की तरह बारह दिन मृतात्मा की शांति के लिए कर्म कांड चलता है। अंत में मठ मन्दिर में देवघर, नित्य पूजाघर में भोग लगाकर महोभोज होता है। शव की भष्मी को एकत्रकर पाँचकोणीय लघुतम पत्थर के चबूतरे के बीच रखकर ऊपर पत्थर चिनते हैं। यही लामा डाबा की समाधि छोरतेन होती है। प्रमुख लामा के छोरतेन पर पिरोजा, प्रवाल, रत्न आदि जड़े जाते हैं। कैलास मानस खण्ड में अंत्येष्टि के समय मृतक के सिर पर मक्खन डाल कर तोड़ा जाता है। यह पवित्र काम सिद्ध लामा करते हैं। जिन्हें भक्तगण भेंट चढ़ाते हैं। लामाओं के अनुसार कपाल क्रिया से मृतक की आत्मा को काया से निकलने का द्वार मिलता है। भारत में शवदाह के समय कुछ समय बाद महापण्डित द्वारा मंत्रोचारण के मध्य अग्निदाता जलते मृतक के सिर को बांस से तोड़कर कपालक्रिया घी द्वारा करते हैं। यानी कैलास मानसरोवर की शवदाह क्रिया भारतीय पद्धति की है।

छोरतेन को लामा, डाबा एवं तीर्थयात्री सभी नमन करते हैं। भारतीय परम्परा की तरह कुछ लामा डाबा मृत्योपरान्त काया द्वारा महाभोज में विश्वास रखते हैं। इन लामाओं आदि के शव पर्वत शिखर पर को वन्य पशुओं पक्षियों के महाभोज के लिए रख दिया जाता है। वन्य जीव – बरफानी चीता (यी), भालू, भेड़िया (चंगू), लोमड़ी (हाजे), श्वान (कुत्ते), चील, गिद्ध, कौआ आदि शव का महाभोज ग्रहण करते हैं। गिद्ध और जंगली कुत्तों के लिए काया कुछ दिन आनन्द उत्सव का

कारण बनती है। ऐसे लामाओं सिद्धों का कोई छोरतेन नहीं होता है। सिद्ध लामाओं के शवों की अस्थियों को पवित्र माना जाता है। चौदह मठ मन्दिरों के पास के पर्वतों की गुफाओं में साधकों की मृत्यु का पता वर्षों वर्षों नहीं चलता है। कब साधक की आत्मा–चेतना–ऊर्जा परमशक्ति में विलीन हुई? मन्दिरों के लामा कैलास मानस सरोवर खण्ड में मृत्यु को पूर्व जन्म जन्मान्तर का पुण्य मानते हैं। उनके अनुसार दिव्यात्मायें उन्हें कंजूर–तंजूर के ज्ञान से साक्षात्कार कराती हैं। दिव्यात्माओं के अदृश्य सहयोग से वे कार्यों में सफल होते हैं। वे कैलास के अधिष्ठातृ देवता धर्मपाल का विपत्ति महासंकट में स्मरण करते हैं। लामा डाबा धर्मपाल रुद्रदेव को सर्वोपरि एवं महाकाल मानते हैं। ऊँ

कैलास हिमनद में "शाम्भाला" का रहस्य

अध्यात्मिक धार्मिक रहस्यविद्या का "शाम्भाला" हिमवत कैलास ऋृंखला के हिमनदों में "अज्ञात" स्थल पर है। शाम्भाला में बर्फीले पर्वतों में दशकों से भावातीत योग साधना करनेवाले सिद्ध सन्यासी साधु 'प्रत्येक सातवें' वर्ष एकत्र होते हैं। सिद्ध हिमनद शाम्भाला में 'सहस्त्रार ब्रह्मरंध्र' में श्वेत कमल की साधना करते हैं।

यह उल्लेखनीय है कि दिव्य अध्यात्मिक अनन्त प्रचण्ड ऊर्जा के केन्द्र को पूर्व में "शाम–चा–ला (उत्तम भूमि)(अध्यात्मिक चेतना प्रज्ञा की दृष्टि से पवित्र भूमि)" कहा जाता था। बौद्ध ग्रन्थों के अनुसार हिमवत पर्वतों के सिद्ध गुरुओं के लिए "चिन–चे यानी प्रज्ञावान/बुद्धिमतापूर्ण व्यक्ति" शब्द का उपयोग किया (इसका बीजारोपण चिन चे खाई ने किया।)। तिब्बती–मंगोलाई–चीन–साईबेरियायी– जापानी – कम्बोडीयायी – वियतनामी – मलेशियायी – थाईलैंड़वासी – सिंहली – पारसी – मिश्री – कांधारी – भारतीय आदि "शाम्भाला" को तिलिस्मी रहस्यमयी भूमि मानते हैं। वास्त्व में शाम्भाला अभी भी एक उलझी पहेली ही बना है। ब्रह्मविद्याविद शाम्भाला को कैलासवाले पश्चिमी त्रिविष्टप

(तिब्बत) में कहते हैं। तिब्बत–मंगोलिया के घुमक्कड़ काफिले हजारों वर्षों से शाम्भाला के लिए हिमनदों (ग्लेशियर) की खाक छान रहे हैं। वैसे गांगधिसरी पर्वत से गोबी रेगिस्तान में कहीं शाम्भाला की कल्पना करते हैं। नामूर नूर और कुवान लुन पर्वतों के बीच शाम्भाला का उल्लेख होता है। दिव्य मेरु पर्वत की भांति शाम्भाला की स्वर्गीय छटा है। शाम्भाला का प्राकृतिक सौन्दर्य सम्मोहक है। आर्ष ग्रन्थों में मेरु–सुमेरु–मदरांचल–कैलास के सौन्दर्य को वर्णनातीत (वर्णन नहीं किया जा सकता) कहा गया है।

हिमवत के इतिहासकार तिब्बत एवं चीन के ग्रन्थों के आधार पर शाम्भाला पश्चिमी तिब्बत (यहीं कैलास मानसरोवर है।) में कहीं लिखते हैं। यह अवश्य है कि सभी पवित्र शाम्भाला को हिमनदियों में स्थित स्वीकारते हैं। हिमवत हिमालयके सिद्ध गुरुओंने प्रज्ञा को मुक्ति और अध्यात्मिक चेतना केन्द्र को कैलास कहाँ कैलास परमेश्वर महादेव की महाचेतना शक्ति है। कैलास में महादेव शिव अव्यक्त शान्ति सत् तत्त्व की आनन्द वर्षा कर रहे हैं। महादेव चिदाकाश हैं। शिव के कारण कैलास–प्रज्ञा, बुद्धि, माया (शक्ति) की दिव्य शक्ति समस्त् सृष्टि को दे रहे हैं। दूसरे शब्दों में कैलास वेदीक काल से परमपवित्र सत्तत्त्व की ऊर्जा चेतना प्रज्ञा का परमशक्ति केन्द्र है। आदिशंकराचार्य ने कर्म के बारे में कहा :

दुर्लभं त्रयमेवैतत् देवानुग्रहेतुकं।
मुमुक्षत्वं मनुष्यत्वं महापुरूषसंश्रयः।।

जीवन में पूर्वजन्म के शुभकर्मों से देवकृपा से जीवनमुक्ति कामना, मानवीयता एवं सिद्ध गुरुओं का संसर्ग मिलता है। कैलास की गुहाओं, गुफाओं, कन्दराओं की पवित्र उत्तम भूमि शाम्भाला में हजारों वर्षों से तपस्या में लीन महापुरूष विराजमान हैं (इसकी पुष्टि श्री पॉल ब्रिण्टन, स्वामी विशुद्धानन्द परमहंस, महामहोपाध्याय पण्डित गोपीनाथ कविराज, श्री गुर्जियेफ, बिशप चार्ल्स डब्लू. लीडबीटर, ब्रह्मविद टी. सुब्बाराव, श्री टालबोट मुण्डी, सुश्री इमा हार्डिंग ब्रिटेन, स्वामी प्रणवानन्द, बिमल दे, नरोपा की तान्त्रिक दृष्टि, तिब्बत की गुप्त पोथी, देत्लेफ इन्गो लाऊफ आदि की पुस्त्कें कर रही हैं।)। सत्रहवीं शताब्दी से यूरोपीय शोधक कैलास एवं तिब्बत के मिथकीय रहस्य की तह में जाने के लिए हिमालय

में आते रहे हैं। सीधी ग्रेनाइट की कठोरतम चट्टानों से बने महादेव शिव निवास कैलास के शिखर पर जाने का पश्चिमी सपना सपना ही रहा। छोटे पर्वतों की सप्त कतार से घिरे कैलास की आन्तरिक परिधि में गहरी बर्फ एवं बर्फ का दलदल है और अचानक ऊपर से भारी बर्फ गिर जाती है। अतः कई फीट गहरी कच्ची बर्फ में प्रदक्षिणा करना लगभग असम्भव है। सूर्य के प्रकाश में कैलास की स्फटिक सरीखी बर्फ की जगमहाट से आंखें चौंधियाने लगती हैं। कैलास के अन्दरूनी घेरे में आक्सीजन की कमी बनी रहती है। इसमें परिक्रमा करवाने को याक–घोड़ा–खच्चरवाले भी मना करते हैं। तिब्बती कैलास प्रदक्षिणा से पहले साष्टांग दण्डवत प्रणाम कर अनुमति लेते हैं।

तिब्बत के एक लामा ने कड.रिंपोछे (कैलास पवित्र) को ही शाम्भाला क्षेत्र बताया। तिब्बती कैलास पुराण–कड.री करछक में लिखा है कि श्रीकैलास भूमण्डल के मध्य भाग में चक्र के धुरी दण्ड की तरह है। कैलास शिखर आकाश का भेदन करते हुए दिव्य शोभावान है। इसका पवित्र शिखर, दिव्य पुष्पों एवं औषधियों का भण्डार है। इसके शिखर के मार्ग में अमरत्व प्रदान करनेवाला, सभी मनोकामना पलभर में पूरा करनेवाला कल्पवृक्ष है। सात्वत धर्म में इसे कामेश्वर–कामेश्वरी और बौद्धधर्म में अमिताभबुद्ध का निवास माना जाता है। प्रजापति ब्रह्मा द्वारा रचित मानस सरोवर में भी अदृश्य कल्पवृक्ष का उल्लेख मिलता है। वेदीक काल में ऋषियों ने कैलास मानसरोवर पवित्र उत्तम भूमि (शाम्भाला) चिन्हित किया। इसी शाम्भाला में प्रथम जैन तीर्थंकर श्रीआदिनाथ का परिनिर्वाण हुआ।

पौराणिक गाथाओं के अनुसार जम्बूद्वीप के मध्य में विविध वर्णों (रंगों) से युक्त पवित्र भूमि दिव्य मेरु–कैलास है। स्वामी दत्तात्रेय को कैलास की गुफा में वर्षों साधना से महादेव शिव–पार्वती के दर्शन हुए। दत्तात्रेय ने भगवान् शिव से पूछाः ''विश्व–सृष्टि में पवित्र स्थान कहाँ है ?'' भगवान् शिव ने कहा : ''पृथ्वी पर सबसे पवित्र स्थान देवभूमि हिमवत हिमालय विराजमान है। हिमाचल का स्मरण मात्र वाराणसी की यात्रा से अधिक पुण्यदायक है। मेरा (शिव) मूलवास कैलास है। कैलास के ध्यान, दर्शन, स्पर्श आदि का अनन्त पुण्य फल है। उसका वर्णन शब्दों में सम्भव नहीं हैं। कैलास चारों पुरूषार्थ–धर्म, अर्थ, काम,

मोक्ष को देनेवाला है।'' यह स्पष्ट है कि महादेव शिव ने भूलोक पृथ्वी पर कैलास को सबसे पवित्र घोषित किया। जहाँ अनन्त सौर मण्डलों ब्रह्माण्डों से आकर देवता – देवियाँ तपस्या करते हैं। आर्ष ग्रन्थों में लिखा है कि कैलास में प्रदोषकाल में महादेव नटराज स्वरूप का दिव्यनर्तन होता है।

स्कन्द पुराण के अनुसार हिमवत कैलास के हिमनदों में ''अज्ञात पवित्र स्थल कलापग्राम है।'' धार्मिक पर्यटक श्री सुदर्शन सिंह चक्र ने हिमालय कैलास के हिमनदों में अनाम चमत्कारी दैविक शक्तिसम्पन्न मठ का ब्यौरा लिखा है। कैलास के पिण्डारी हिमनद, गंगोत्री–केदारनाथ–बदरीनाथ–यमुनोत्री हिमनद, लद्दाख ग्लेशियर, लाहुल स्पिति–कनौर हिमनद आदि का अन्तर्सम्बन्ध है। बर्फ की नदियों और बर्फ से ढ़के हिमवत पर्वतों की घाटियों के बीचों बीच चारों तरफ बर्फीले जल से घिरे क्षेत्रों में ''पवित्र उत्तम भूमि'' है। ऐसे ही एक पवित्र स्थान में दिव्य आश्रम में जाने का धनुषाकार लघु सेतु है। दिव्य आश्रम के प्रमुख 1600 वर्षीय परमहंस हैं। थियोसोफिल सोसायटी कैलास तिब्बत क्षेत्र में 1600 वर्षीय कुथमी बाबा का उल्लेख करती है। थियोसोफिकल सोसायटी ने पश्चिमी तिब्बत (कैलासवाले क्षेत्र) में ''पवित्र उत्तमभूमि (घाटी) में प्रतिवर्ष बुद्ध के अवतरण का रहस्योद्घाटन किया है।'' आर्षग्रन्थों के अनुसार कैलास महापर्वत की परिधि में सिद्ध क्षेत्र अध्यात्मिक शक्तिवान है। कैलास के आभा मण्डल में मंत्रों की तत्काल सिद्धि होती है। कड.रिंपोछे की पवित्र भूमि पर सात्वत धर्म परम्परा में 12 वर्षों में तालो महामेले का आयोजन होता है। हिमालय के सिद्ध गुरु सप्तऋषियों की परम्परा के अनुरूप 7 वर्ष में पवित्र भूमि शाम्भाला में मिलते हैं। कैलास के हिमनदों के मध्य अज्ञात पवित्र भूमि पर सिद्ध गुरु आगमों के प्रायोगिक स्वरूप पर संवाद करते हैं। ऊँ

मेरु की विशाल गुफा में ऋषियों का गुप्तसमाज

वेद वर्णित मेरु अर्थात् कैलास की गुफा में सात महर्षियों की गुप्तसभा में केवल मात्र सिद्ध तपस्वियों को कठिनतम परीक्षाओं के बाद ही प्रवेश मिलता है। इन महातपा महर्षियों का सूक्ष्म शरीर विन्दुमय प्रकाश की तरह चमकता और अभूतपूर्व रूप से सूक्ष्मकण देह का चमत्कारिक रूप से ग्रहण करते हैं। महापुरूष का मिलना दुर्लभ है और उनके क्षणभर संसर्ग आमूल चूल परिवर्तन करता है : ''महात्संगो दुर्लभोऽगभ्यो अमोघश्च।''

इन गुफाओं का मुख्यद्वार सकड़ा और विकट गलियारा नीचे उतरता है। नीचे विशाल गोलाकार रूप में चट्टान काटकर वर्तुलाकार कक्ष है। जिसमें घने स्याह अंधेरे के बीच एकाएक अप्रत्याक्षित रूप से प्रकाश चमकने लगता है। देखते ही देखते प्रकाश से आंखें चौंधियाने लगती हैं। ये धीरे धीरे सात प्रकाशपुंजों का रूप लेने लगते हैं। हवा में अधर मृगछाल और बाघ चर्म बिछते हैं। तेज हवा एवं अंधड़ के बीच रेत रज कण महातपा महर्षियों का रूप लेते हैं। उनकी जटायें सिंह चर्म से नीचे भी लटकती है। महातपा महर्षि नीचे झुके विचार मग्न दिखाई देते हैं। उनकी घनी पलकें सन की तरह सफेद आधे फीट की दिखाई देती हैं। वे बहुत सहजता से लम्बी पलकों को ऊपर करते हैं। उनकी आंखों के गोलकों में नेत्र अग्नि के अंगारे से चमकते हैं। महातपाओं का चेहरा पीछे से प्रकाश किरणों से लगभग दिखाई नहीं देता है। बीचों बीच के महातपा भुजा के नीचे त्रिपाद लगाए हैं। सम्भवतः वे ही इस गुप्त संसद के प्रमुख हैं। एकाएक प्रकाश धीमा पड़ने लगता है। पलक झपकते प्रकाश के धुंधलाने के साथ सभी अंधकार में विलीन होते हैं। यानी व्यक्त अव्यक्त में समा जाता है।

महातपा महासिद्धों की गुप्त संसद वर्णन स्वयं में चकित करनेवाला है। श्रीकैलास के हिमनदों के अज्ञात स्थल पर साधनारत ऋषियों मुनियों का अपना रहस्यलोक है। हिमालय के पश्चिमी तिब्बत (कैलासवाले) में अज्ञात सिद्धों से मिलने का अवसर स्वामी विशुद्धानन्द परमहंस को बाल्यकाल में मिला। स्वामी विशुद्धानन्द परमहंस एवं श्री राम ठाकुर के अनुसार वे सिद्ध शरीर में इतने विशालाकार रहे कि उन्हें फूलों की माला पहनाने के लिए सहारा लिया। उनकी जटाऐं और पलकें

असाधारण लम्बी थी। प्रकारान्तर में हिमनद (ग्लेशियर) के मध्य अदृश्य ज्ञानगंज में स्वामी विशुद्धानन्द परमहंस को "सूर्यविज्ञान" की शिक्षा दी गई। ज्ञानगंज सहित अनेक कैलास क्षेत्र के अदृश्य आश्रमों के अधिष्ठाता महातपा हिमचादर से ढ़के पर्वत की गुफा में निरन्तर साधनारत रहते। गुफा में श्रीविद्या की महादेवी राजराजेश्वरी की लघु प्रतिमा है। वैसे "घोष्ट लैण्ड" पुस्त्क में भी मुम्बई के समीप ऐलिफेन्टा गुफाओं में नीचे दिव्य शक्ति सम्पन्न अनाम ऋषियों के आसन हवा में सजने और गुप्तसभा का ब्यौरा मिलता है। घोष्ट लैण्ड में भी इन ऋषियों का चेहरा दिखाई नहीं देता। यानी देवशक्तिवान ऋषियों की पहचान अज्ञात ही रखने की लम्बी परम्परा है।

श्रीकैलास की गुफाओं और हिमनदों के अदृश्य आश्रमों में प्रवेश के अपने जटिल कठोरतम नियम हैं। साधना में इच्छुक के संचित कर्म, प्रारब्ध और भविष्य (भूत–भविष्य–वर्तमान) को त्रिकालज्ञ जान लेते हैं। आश्रम में प्रमुख साधक को प्रवेश देते समय सभी कुछ प्रत्येक स्थिति में गुप्त रखने की शपथ लेते हैं। सबसे पहले ब्रह्मचर्य की परीक्षा चलती है, इसमें असफल होने पर निष्कासन और कठोरतम दण्ड का विधान है। ब्रह्मविद्या में सिद्ध दोषी की सभी शक्तियाँ छीन लेते हैं। गुफाओं – आश्रमों में तरूण एवं तरूणियों को ब्रह्मविद्या के रहस्य की शिक्षा वर्षों चलती है। इन गुफाओं में आकाशीमार्ग से वस्त्र और सामग्री आने का क्रम चलता है। स्वामी विशुद्धानन्द परमहंस के अनुसार उनकी कक्षा के बाहर तक सिंह आता और पलभर में शिक्षक में बदल जाता। अतः मेरु की परिधि के सिद्ध शरीर को परमाणुओं का ढ़ेर मानकर बहुत ही सहजता से रूप बदलने में सूक्ष्म से स्थूल एवं स्थूल से सूक्ष्म सक्षम हैं। श्रीकैलास के दीक्षितों को स्पष्ट किया जाता है कि वे उन्हे प्रदान की गई ब्रह्मविद्या–सूर्यविज्ञान, शब्दविज्ञान, ध्वनिविज्ञान, नक्षत्रविज्ञान, चन्द्रविज्ञान, वायुविज्ञान, श्रीविद्या आदि किसी को नहीं सीखायेंगे अथवा देंगे (सम्भवतः पात्र का चयन महातपाओं ने अपने पास रखा है।)। दूसरे, ब्रह्मविद्या की दिव्यशक्ति का शक्तिपात सहन करना साधारण जन की शक्ति में नहीं है। इस शक्तिपात का दुरूपयोग भी किया जा सकता है।

नवनाथों में विशिष्ट स्वामी दत्तात्रेय, सातवें मनु, सनत कुमार, सनन्दन, कपिल, कणाद, वशिष्ठ, विश्वमित्र, भरद्वाज, अत्रि, कौशिक,

सत्ताइसवें कृष्णद्वैपासन व्यास, उपमन्यु, गोरक्षनाथ आदि ऋषियों ने महादेव शिव का ध्यान उपासना मेरु कैलास में किया। वेदीक काल से आदिशंकराचार्य आचार्य शंकर के काल 2600 वर्ष पहले तक हजारों–लाखों वर्ष साधना उपासना से कैलास में "दिव्य शक्ति का प्रचण्ड स्पन्दन–कंपन–तरंगें" उपस्थित हैं। परिणामतः दिव्य शक्तिपात करने में समर्थ महातपाओं के संवाद के लिए भाषा की कोई बाधा नहीं है। उनका शक्तिपात सृष्टि के सर्वकल्याण के लिए है। क्योंकि ब्रह्मविद्या के विकृत दुरूपयोग से लंकेश्वर रावण जन्मता है और महाविनाश का विश्व युद्ध होता है। त्रेता और द्वापर में श्रीराम श्रीलंकेश्वर महासंग्राम एवं अट्ठारह दिन के महाभारत ने मेरु के महातपाओं को झकझोर कर रख दिया।

यह उल्लेखनीय है कि 15,500 वर्ष पहले भारतीय जाकर मिश्र का सम्राट फरोह बना और प्राचीन मिश्र में भी ब्रह्मविद्या के मनीषियों ने गुप्तसमाज स्थापित किया (दा हिडन लाईफ ऑफ फ्री मैशनरी:बिशप चार्ल्स डब्लू.लीडबीटर)। यह अवश्य है कि यूरोप, यूरेशिया से एशिया के परमेश्वरीय ब्रह्मविद्या के जिज्ञासुओं को महादेव शिव की शिवपुरी के मेरु की ओर चुम्बकीय आकर्षण से आकर्षित करता रहा। यह सौभाग्य विरले को ही मिला कि उन्हे कैलास गुफाओं – हिमनदों के दैविक अदृश्य आश्रमों में गुरु ने स्वीकारा। महातीर्थ के अंतिम यात्री पुस्त्क के लेखक श्री बिमल दे और श्री साधक सुदर्शन सिंह चक्र ने ऐसे आश्रमों के तिलिस्म का राज खोला है। दार्शनिक तिलोपा, आचार्य निलोपा (दोनों भारतीय) से लेकर गोस्वामी तुलसीदास, आनन्दमयी माता, तेलंग स्वामी आदि का आकर्षण केन्द्र मेरु ही रहा। श्री लीडबीटर ने बुद्ध पूर्णिमा को प्रतिवर्ष कैलास श्रृंखला की घाटी में शक्तिपात की कथा लिखी है। वर्तमान में मेरु के महर्षि, महामुनि, महासिद्ध आदि कैलासी (कैलास यात्रियों) को दर्शन भी देने के लिए सहमत नहीं लगते हैं। महातपा सृष्टि विश्व की वर्तमान स्थिति परिस्थिति से कुपित लगते हैं अथवा असम्बद्ध लगते हैं। ऊँ

मेरु कैलास : दशकन्धर लंकेश्वर का चमत्कारिक दिव्य नवीनतम प्रौद्योगिकी शक्ति केन्द्र सुमेरु

पृथ्वी के केन्द्र कैलास मेरु में महापण्डित लंकेश्वर दशानन रावण द्वारा ओढ़रदानी महायोगेश्वर अविनाशी महादेव शिव की वर्षों वर्षों–घोर तपस्या से चमत्कारिक दिव्य नवीनतम प्रौद्योगिकी और अस्त्र शस्त्र ज्ञान वरदान में मिला। शास्त्र कहते हैं कि दीर्घ साधना फलीभूत होती है : ''दीर्घकाल नैन्तरीय सत्कारा सेवितो दृढ़भूमि :।''

यह उल्लेखनीय है कि अमोघास्त्र सुदर्शन महाचक्र की अनन्त संहारक शक्ति और उसके निर्माण का रहस्य धूर्जटी शिव ही जानते हैं। हिमालय का हिमनदों का पवित्र क्षेत्र धूर्जटी शिव द्वारा दीक्षा का केन्द्र कैलास रहा। महापण्डित लंकेश्वर का त्रेतायुग में देवताओं से बढ़कर आकाश भ्रमण का पुष्पकयान उस युग में आश्चर्य रहा। महर्षि भरद्वाज के वैमानिक शास्त्र, अंशुबोधिनी, यंत्रसर्वस्व गुप्तविद्या में होने से रहस्यों के घेरे में थे। महामुनि अगस्त्य, महर्षि अत्रि, वसिष्ठ महामुनि आदि वेदीक वैज्ञानिक यंत्रों एवं शास्त्रों के ज्ञान के सार्वजनिकीकरण के पक्ष में नहीं थे। वेदीक काल में सविता अथवा सूर्य की शक्ति के महासृजन और महाप्रलय का विवरण मिलता है। वेदीक देव रुद्र को वेदीक काल में ही सूर्य का पर्याय स्वीकारा गया। इसीलिए वेदीक विद्या या ब्रह्मविद्या से भौतिक यंत्रों, शस्त्रों आदि की प्रौद्योगिकी के शास्त्ा कैलासवासी महामहाकाल रुद्र महादेव शिव थे। रुद्र से दीक्षा प्राप्ति बहुत ही बहुत ही कष्ट साध्य उपासना होती। ''रुद्र का तीसरा नेत्र एक नहीं अनेक परमाणु बमों से अधिक महाविनाशक था एवं है। रुद्र का पिनाकी धनुष, पाशुपत अस्त्र, खटवांग, त्रिशूल, पाश आदि प्रलयंकर हैं।'' रुद्र शिव ने

अगस्त्य महामुनि को महाविनाशक शस्त्रों के राम–लंकेश्वर महासंग्राम में प्रयोग के प्रति सावधान किया।

भूलोक पर दिग्विजय अभियान के श्रीगणेश से पहले महापण्डित अभेदज्ञान समदृष्टि ज्ञान के जनक लंकेश्वर के सामने देवताओं और वेदीक ऋषियों की वेदविद्या रहस्य समझने एवं उनसे विकसित् अस्त्र शस्त्रों से भी बढ़कर प्रौद्योगिकी स्थानान्तरण और उसके विकास एवं उत्पादन की समस्या मुँह बाये खड़ी थी। उस समय तीनों लोकों में केवल महादेव ही देव, मानव, असुर (राक्षस) आदि में कोई भेद नहीं करते थे। महादेव अद्वैत के प्रतिपादक रहे : तस्मिंस्त्ज्जने भेदभावात (भक्त भगवान् एक हैं।)। अतः लंकेश्वर अपने भाईयों के साथ हिमनदों को पार करते कैलास पहुंचे। कैलास पर अनन्त ब्रह्माण्डों के ग्रहों से आकर देवताओं के अंतरिक्षयान उतरते (वैमानिक शास्त्र में दूसरे ब्रह्माण्ड में जानेवाले अंतरिक्षयानों की वेदीक प्रौद्योगिकी का वर्णन है।)। ये यान सौर ऊर्जा आदि से चलते थे। प्रकाश किरणों की गति और काले तत्त्व की शक्ति आदि के रूपान्तरण का ब्यौरा अंशुबोधिनी में है। कैलास में दिव्य चमत्कारिक यानों, अस्त्र–शस्त्र, यन्त्र आदि ने महापण्डित रावण को नई दृष्टि दी। प्रकारान्तर में रावण ने तपश्चर्या से ज्ञान प्राप्त कर लघुयानों की संरचना की।

दशानन रावण का दारूपाँचयंत्र, रुद्रकीर्तिमुख, सूर्यहासखडग, यन्त्रमानव, मोक्खशक्ति, भुशुंडी, कीर्तिमुखास्त्र, कांचनमालिनीशक्ति, मकरमुख, आशीविषमुख, वराहमुख, दूरनियंत्रण यन्त्र, त्रिशूलयन्त्र, त्रिकालदृष्टायन्त्र, दर्पणयंत्र, मधुमक्खी, दिव्यछत्र, यांत्रिकसेतु, यांत्रिककपाट, स्वचालितखण्ड, अग्निदीप्तिमुख, जीवनरत्नवलय, अग्निगोले, नागपाश, इन्द्रपाश, ब्रह्मास्त्र, दर्पण यंत्र, प्रक्षेपास्त्र, वर्मयुक्त अजगव, समुद्रीपोत–पनडुब्बी, कपिलवद भाले, सहस्त्राक्ष, अग्निबाण, ब्रह्मपाश, अमोघशक्ति आदि इक्कीसवीं शती के वैज्ञानिकों को भी चकित करनवाले हैं। यह विवरण मिलता है कि दशकन्धर रावण के विमान सौर ऊर्जा एवं पौधों के फूलों के तेल (रतनजोत–जोजाबा–सूरजमुखी) से चलते थे। पौराणिक ग्रन्थों के अनुसार अविनाशी शिव को भूलोक के सभी प्राणियों की हर गतिविधि जानकारी होती है। दशकन्धर का दारूपाँचास्त्र, रुद्रकीर्तिमुख राडार और गुप्तचर उपग्रह का मिला जुला संस्करण थे।

इनमें लंका में प्रवेश करनेवाले का चित्र तक आता था। फलस्वरूप इससे शत्रु सेना पर अग्निगोले बरसाकर ध्वस्त् किया जा सकता था। देवराज इन्द्र के पास भी कीर्तिमुखास्त्र रहा। जिससे उन्हें सुमाली के देवलोक की ओर बढ़ने की जानकारी मिली। रुद्रकीर्तिमुख एवं दारूपाँचास्त्र से सुसज्जित होने से सूक्ष्मतर रूपधारी हनुमान को लंका प्रवेश के समय लंकिनी ने रोका।

रावण देवलोक के "ब्रह्मछत्र" को प्राप्त करने के लिए भी लालयित रहे। शिवपुरी कैलास में दैवलोक से अनन्तगुना शक्तिवाला अदृश्य ब्रह्मछत्र विद्यमान है। इससे कैलास पर कोई भी आक्रमण विफल होता। दशानन ने लंका को सुरक्षित करने के लिए ब्रह्मछत्र बनाया, पर यह केवल उसके ऊपर काला अंधेरा करने में सक्षम था। जिससे आक्रामक को हवाई हमले में लंका दिखाई नहीं देती थी। कैलास में शिवगण अलग अलग पर्वतों – हिमनदों में घूमते हुए एक दूसरे से बात करते। इन्हे त्रिशूल कहते। यानी त्रिशूल वायरलैस उपग्रह फोन का ही संस्करण रहे। इसके अलावा देवता एक दूसरे से सचित्र बात करते। दशानन रावण को दिग्विजय के लिए त्रिशूल और सीधे चित्रमय वार्ता का दूरसंचार नियन्त्रणयन्त्र की आवश्यकता थी। लंका में इसका नामकरण मधुमक्खी रखा गया।

शिवलोक कैलास में शिवगण घोर स्याह अंधेरे में प्रकाश के लिए दर्पणयन्त्र का सहारा लेते। शिवलोक में आराधकों को जानकारी के लिए दूरदर्शन टेलीविजन सरीखा त्रिकालदृष्टा यंत्र रहा। लंका में रावण ने इस प्रौद्योगिकी को मायावी रूप दिया। शिवगणों के पास आवश्यकता पड़ने पर स्वचालिक भुशुंडी रहती। देवसेना भी असुरों को आग उगलती भुशुंडी (स्वचालित राईफल) से राक्षसों से युद्ध करते रहे। सूर्यविद्या में पारंगत लंकेश्वर ने दर्पणयन्त्र विकसित् करवाया। यह सूर्य किरणों के पुंज की शक्ति (लेजरबीम) शत्रुओं पर छोड़ता। परिणामस्वरूप आकाश में लड़ाकू वायुयान और थल सेना दोनों ही नष्ट हो जाती। ब्रह्मविद्याविद रावणपुत्र मेघनाद इन्द्रजीत की प्रयोगशाला में शीशे की भट्टियों से आणुविक अस्त्र निर्मित किए जाते थे। महादेव शिव का पाशुपतास्त्र और ब्रह्माका ब्रह्मास्त्र आधुनिक अणु बम, हाइड्रोजन बम आदि से भी हजारों गुना शक्तिशाली रहा। धूर्जटी शिव ने पाशुपतास्त्र और दूसरे दिव्यास्त्र

देते हुए महामुनि अगस्त्य को चेताया कि इनके विनाशक प्रभाव सहस्त्रों वर्षों रहेंगे। इसके कारण वर्षों वर्षों भूलोक प्राणियों के रहने योग्य नहीं होगा। इसलिए मानव कल्याण के लिए (राम रावण) महासंग्राम टालना चाहिए?

यह भी स्मरण रहे कि राम को भी सभी दिव्यास्त्र कैलासवासी शिव के पार्थिव शिवलिंग की उपासना से मिले। समुद्र देवता वरुण द्वारा राम को मार्ग नहीं देने पर उन्होंने धनुष पर अग्निब्रह्मास्त्र धारण किया। उस समय जलदेव वरुण प्रकट हुए। यह समस्या रही कि अग्निब्रह्मास्त्र धारण करने पर छोड़ना आवश्यक था। राम ने आभीरों से त्रस्त् क्षेत्र पर छोड़ा। वह मरूकान्तर (रेत के समुद्र) में बदल गया (मरूकान्तर राजस्थान के थार के रेगिस्त्तान से सहारा के रेगिस्त्तान तक विशाल है।) (राम को सदाशिव द्वारा दिव्यास्त्र का वर्णन शिवगीता में है।)। रामायण के युद्ध काण्ड में महामुनि अगस्त्य लंकेश्वर दशानन रावण के सामने चिन्ताग्रस्त् राम को युद्धक्षेत्र में सूर्य–सविता–आदित्यहृदय पाठ से सूर्यकिरणें मंथितकर ब्रह्मास्त्र छोड़ने को कहते हैं। यही रावण का महाकाल बनता है। दशकन्धर रावण के अन्त के साथ उन्हे और कुम्भकर्ण आदि को कैलास में मिला दिव्यास्त्र ज्ञान भी कालपात्र में समाधि बना। दशकन्धर कैलास से सौर ऊर्जा के रचनात्मक एवं संहारक, परमाणु विखण्डन की शक्ति, संचार प्रणाली, इलेक्ट्रानिक उपग्रह क्रान्ति और यन्त्र मानव यानी रोबट प्रौद्योगिकी नवविश्व समाज के लिए लाए और उसे प्रयोग में लिया। इन अस्त्र शस्त्रों का ब्योरा चकित करता है। यह रामायण के विश्व महायुद्ध के साथ विलुप्त हुआ। ऊँ

कैलास : अथः
मेरु पुराण कथानाम्

गुह्यकाल्युपनिषद में उल्लेख आता है : ''देवलोको ललाटं च षटत्रिं शल्यक्षयोजनम् मेरुः सीमान्तदण्डोऽस्या ग्रहरत्नसमाकुलः।।''

अथर्ववेद में छह मुख्य शाखायें हैं। ब्रह्मा ने पुराकाल में अपने पुत्र अथर्वण को गुह्योपनिषद गोपनीय उपनिषद का ज्ञान दिया। उन्होंने ब्रह्माण्ड का वर्णन करते हुए कहाः ''(उस विराट का ध्यान करना चाहिए।) छत्तीस लाख योजन का देवलोक उसका ललाट है। रत्नों आदि ग्रहों से भरा 'मेरु' इसके मस्त्क की मांग सीमान्त है।'' ''स्यातां हिमद्रि कैलासो तस्या दव्यास्तु कुण्डले।।(हिमाद्रि और कैलास देवी के दोनों कुण्डल हैं।)।''

भूलोक पृथ्वी के सात द्वीपों में आर्षग्रन्थ जम्बूद्वीप को पवत्रितम एवं प्रमुख मानते हैं। जम्बूद्वीप र्स्वतः लक्ष्योजन विस्तृत और नौ खण्ड हैं। उसके ''मध्यग तमेरु कर्णिकाकृति (कान के कुण्डलाकृति) में संस्थित है। मेरु हेममय है। यह एक सहस्त्र चौरासी योजन उच्छ्राय प्रमाणवाला है। मेरु के श्रृंग सौवर्ण, रजत, रत्नज रूपवान हैं। मेरु के ये श्रृंग (पर्वत) विष्णु की मूर्ति के भेद की तरह शोभायवान हैं। मेरु के सौम्य भाग में रजत, आग्नेयकोण में कांचनमय श्रृंग कह गए हैं (गुह्यकाल्युपनिषत वर्णन अन्त में मूल संस्कृत में देखें।)।''

दिव्य पर्वतराज मेरु (कैलास) की आठ दिशाओं में आठ पुरियाँ स्थित हैं। मेरु की पूर्व दिशा में अमरावती, आग्नेयकोण में तेजोवती, याम्यदिशा में वैवस्वती, निर्ऋतिकोण में रक्षोवती, पश्चिमदिशा में शुद्धवती, वायव्यदिशा में गन्धवती, उत्तरदिशा में महोदया और ईशानकोण में यशस्विनी पुरियाँ स्थित हैं। मेरु की चार दिशाओं के पर्वत, वृक्ष, वन और पवित्र सरोवरों का वर्तुल है। पूर्व दिशामें मन्दर पर्वत, कदम्ब प्रमुख वृक्ष, चैत्रवन एवं अरूणोदय दिव्य सरोवर है। पश्चिम दिशा में विपुल पर्वतराज, अश्वत्थ (पीपल) प्रमुख वृक्ष, वैभ्राज वन एवं सित्ोदक दिव्य सरोवर है। उत्तरदिशा में सुपार्श्व पवित्र गिरि, न्यग्रोध प्रमुख वृक्ष, नन्दनवन एवं मानस पवित्र सरोवर स्थित है। दक्षिणदिशा में गन्धमादन पवित्र गिरि, जम्बू वृक्ष, वैवर्णिनी वन और पुष्कर मुख्य दिव्य सरोवर स्थित है (वर्तमान नाम अलग हो सकते हैं।)।

आर्षग्रन्थों में मेरु की चार दिशाओं में पाँच–पाँच नग पर्वत होने का उल्लेख है। इसमें पूर्वदिशामें सित्ान्त, चक्रभुंज, माल्यवान, कुकुरि और वैकंकतः नग हैं। पश्चिम दिशा में वडूर्य, विकास कपिल, गन्धमादन और मारूधि का उल्लेख मिलता है। उत्तर दिशा में हंस, वृषभशंकु,

कुम्भनाग, अंजन एवं काल नगों का संजाल है। वहीं मेरु के दक्षिण दिशा में शिंशर, पतंग, क्रचक, त्रिकूलवान और निषध नग होने का वर्णन मिलता है। मेरु के उत्तर एवं दक्षिण के केसरांचलों का अपना महत्व है। मेरु की दक्षिण दिशा के केसराचल में निषध, हेमकूट एवं हिमवान हैं। जबकि उसकी उत्तरदिशा में नीलगिरि, श्वेतगिरि एवं श्रृंगवान केसरांचलों का वर्णन मिलता है। मेरु के गिरि की सुन्दरता मन्त्रमुग्ध सम्मोहन करनेवाली है। इसका प्राकृतिक सौन्दर्य भावतीत ध्यान योग में सहायक है। मेरु को ''सिद्धों की स्थली कहा गया है। इसके वशीकरण करते चित्रलिखित करते भुवनों में किन्नरों का ठिकाना है। मेरु में चारों ओर देवलोक के देवता आसन लगाए उपसनारत साधनारत पाये जाते हैं।'' इसप्रकार अनेक दिव्य पर्वतों से घिरे पृथ्वी के पवित्रतम पर्वत मेरु के वर्णनमें जम्बूद्वीप स्थित भद्राश्वादि देश और सुपूजित देवता आदि का उल्लेख मिलता है।

मेरु के ऊर्ध्वभाग से महान्दी और नदियों के उदगम की भी रोचक मीठी कथा मिलती है। ये महान्दी एवं नदियाँ समुद्र (अर्णव) में जाकर मिलती हैं। पूर्वदिशा में सीता, पश्चिमदिशा में चक्षु भद्राश्वान, उत्तरमें भद्राकुरू और दक्षिण में अलकन्दा केतुमाल प्रचण्ड प्रवाह से बहती महासागर अर्णव में जा समाती हैं (आर्षग्रन्थों में महान्दियों नदियों के प्राचीन नाम वर्तमान प्रचलित नामों से अलग हैं। उससे भ्रमित होने की आवश्यकता नहीं है।)। नारदीय संहिता में मेरु पर्वत की कर्णिका की तरह मध्य स्थान में कल्पनाकर एक चतुष्पत्री भुवनपद्म का सुन्दर वर्णन है। इस कमल की चार कर्णिकाओं में चार पर्वत—गन्धामादन, माल्यवान, निषधायाम एवं अनिल और चार कमलपत्रों के देशों में भारत, कुरू, भद्राश्व एवं केतुमाल का वर्णन मिलता है। मेरुके दक्षिण भाग में तीन वर्ष विद्यमान हैं (आर्ष ग्रन्थ एक पर्वत से दूसरे पर्वत तक विद्यमान देश भाग को वर्ष कहते हैं।)। ब्रह्मविद् भारतवर्ष का विस्त्ार हिमालय से समुद्र तक मानते हैं। मेरु के इन तीनों वर्षों में भारतवर्ष, किंपुरूषवर्ष (त्रिविष्टप, हिमालयी तिब्बत) एवं हरिवर्ष हैं। मेरु के उत्तरमें रम्यक वर्ष, कुरूवर्ष और हिरण्मयवर्ष स्थित होना स्वीकारा गया है।

यह अभूतपूर्व है कि पवित्र मेरु के हिमवत पर्वतों की शृंखला में ऊँ लिखे पर्वत का दिव्य दर्शन होता है। शारदातिलक के अनुसार ''नाद

एवं घनीभूतः क्वचिदभ्योति बिन्दुताम्।।(नाद ही घनीभूत होकर बिन्दु रूप लेता है।)। तैत्रिरीयोपनिषद में लिखा हैः ''ओमति ब्रह्म । ओमितीदं सर्वम्।।'' (ओम ही ब्रह्म है। ओम ही सब कुछ है।)। ब्रह्मविद्या ऋृषियों की स्वानुभूति अन्तः चेतना का विवरण है।

अविनाशी रुद्र और प्रलय के सम्बन्ध भी हिमालय (कैलास–मेरु) से गहरे में जुड़े हैं। डॉ. रामविलास शर्मा ने पश्चिम एशिया और ऋृग्वेद के पाँचवें अध्याय में सरस्वती, भरत और जलप्रलय में अथर्ववेद की प्रलयकथा उल्लेख करते हुए लिखा : ''यत्र नाव प्रमंशनं यत्र हिमवतः शिर (जहाँ से नाव नीचे उतरी, वहाँ हिमालय शिखर रहा।)।'' मनुस्मृति में लिखा कि ब्रह्मवर्त–सरस्वती एवं द्वषद्वती देवनदियों के मध्य निर्मित देश रहा। वेदीकजनों का पवित्रतम पर्वत मेरु और ब्रह्मर्षिदेश रहा। (कुरूक्षेत्रं च मत्स्याश्व पाँचालाः शरसेनकाः। एष ब्रह्मर्षि देशों वे ब्रह्मावर्तादननारः।।)। सरस्वती महान्दी का उद्गम कैलास मेरु क्षेत्र माणा के गिरि से माना गया है। आर्षग्रन्थ ऋृग्वेद का भी जलप्रलय से अदृश्य तार सम्बद्ध लिखते हैं। डॉ. रामविलास शर्मा ऋृग्वेद की मूलरचना सरस्वती एवं द्वषद्वती के तटों पर होना प्रमाणिक मानते हैं। यहाँ वेदीक रुद्र गिरि पर रहते हैं। गिरि श्रृंखला में पवित्रतम मेरु है। ''त्वमग्रे रुद्रो असुरो महो दिवाः (हे अग्ने! तुम द्युलोक से प्राणों को देने वाला रुद्र हो।)''। ऋृग्वेद में लिखाः ''सुखकंट परमेश्वर (शिव) द्युलोक से अपने भक्तों की मनोकामना पूरी करते हैं।'' रुद्र के क्रोध से देवगणों तक को भय है, वह (मर्यादा आचरण पालन नैतिक शासन के लिए) वध न कर दें। रुद्र के मानसपुत्र मरुत्गणों के हाथों में स्वर्णरंजित (हिरण्यवाशीभिः) कुल्हाड़ियाँ हैं। मरुत्ों से सभी कांपते हैं।

धूर्जटी रुद्र पवित्र मेरु तीनों लोकों में भ्रमणकरनेवाले महादेव हैं। वे रक्ताभ एवं जटाजूटधारी (अरूषंकपर्दिनं) हैं और अंतरिक्ष में उनकी गर्जना से ब्रह्माण्ड कांपने लगता है। परन्तु मेरु पर रुद्र शान्त रूप में महायोगीश्वर स्वरूप में बैठे हैं। मेरु में रुद्र के आसन से पवित्र सकारात्मक अध्यात्मिक शुभ अनुरणन कंपन स्पंदन तरंगों का महापुंज ऋृग्वेद के रचनाकाल (29 लाख वर्ष पूर्व से) से विद्यमान है। जम्बूद्वीप में मेरु को केन्द्र मानकर पवित्र तरंगोंवाले क्षेत्रों की रचना की गई। वेदीककाल से रुद्र और उनकी अर्धांगिनी रुद्री के निवास मेरु का दिव्य

स्वरूप सुदूर सुमेरी–माया–साईबेरिया संस्कृति तक अपना आभा मण्डल स्थापित करने में सफल रहा। वेद का मेरु तर्क विर्तक की बात नहीं, उस पर अनावश्यक तर्क नहीं करें : ''ये त्वतार्किक भावा न तांस्त्र्केण योजयेत्।।'' तेन शब्दार्थ चिन्तास न साऽवस्था न यः शिवः।। शब्द एवं अर्थ के विचार में कोई अवस्था नहीं जो शिव नहीं है। ऊँ

गोप्यं गोप्यं परं गोप्यं कैलास सिद्धिदं परमः कैलास के पाँच बीजाक्षरों, मानस के चार बीजाक्षरों की दिव्य महाशक्ति

सिद्ध कैलास को गुप्त, गुप्त एवं परम गुप्त रखने के पक्ष में रहे हैं। यामल में लिखा है कि सगुण एवं निर्गुण दोनों महामाया के ही स्वरूप हैं। इसमें साकार मायायुक्त और निराकार मायारहित है : "सगुण निर्गुणा चेति महामाया द्विधा मता। सगुणा मायया युक्ता तथा हीना तु निर्गुणा।।" ऋग्वेद में :

ऋचो अक्षरे परमव्योमन यस्मिन देवा अधिविश्व नीषेदु।
यस्न्न वेंद किमृचार करिष्यति च इत्तद्विदुस्त् इमे समासत्।।

1—164—39

"ऋचाऐं, अक्षर और परम व्योमन है। जिसमें सभी देवता समाहित हैं। जो उसे नहीं जानता, वह ऋक् से क्या करेगा। जो उसे जान लेता है, वह उसके समीप हो जाता है।" आर्ष ग्रन्थों में चेताया है कि मंत्र केवल ऋषियों के लिए ही स्पष्ट प्रत्यक्ष हैं और जो ऋषि नहीं हैं, मंत्र उनके लिए प्रत्यक्ष नहीं हैं : "न प्रत्यक्षमनुषेरस्त्ि मन्त्रम्।।"

इस परिदृश्य पृष्ठभूमि में कैलास के पाँच बीजाक्षरों एवं मानस (सरोवर) के चार बीजाक्षरों का दिव्य शक्तिकेन्द्र तिलिस्मी घेरे में है। कैलास शब्द में क, ऐ, ल, आ और स पाँच बीजाक्षर हैं। ब्रह्मा द्वारा रचित मानस शब्द रचना में म, आ, न, एवं स चार बीजाक्षर हैं। यह अभूतपूर्व संयोग है कि महारुद्र निरंजन अविनाशी शिव का सिद्ध

पाँचाक्षरी मंत्र नमः शिवाय है। सदाशिव द्वारा आदिशंकराचार्य को "शिवरहस्य" का गोपनीय से गोपनीय ज्ञान मिला और आदिशंकराचार्य ने पाँचाक्षरी मंत्र के अक्षरों की दिव्य शक्ति का रहस्योद्घाटन पाँचाक्षरी स्तोत्र में किया। यह ध्यान रहे कि त्रितत्त्वों – सत्, रज एवं तम के त्रियोग के कारण ही नवदुर्गा (नौ शक्तियाँ) की रचना या उत्पन्न हुई।

यह आर्षग्रन्थों में शोध का विषय है कि जम्बूद्वीप के पवित्र ब्रह्मवर्त में दिव्य गिरि मेरु का नामकरण कैलास कब कैसे हुआ? कैलास का भौतिक दैविक अर्थ क्या है? वेदीक काल में पवित्र मेरु पर्वत का उल्लेख है। वेदीक काल से पौराणिक एवं औपनिषदिक काल के ऋषियुग में महारुद्र निवास कैलास नामकरण का गुह्य रहस्य क्या है? भूलोक में एकमात्र ब्रह्मवर्त में ब्रह्मविद्याज्ञाता ऋषियों ने कभी नष्ट नहीं होनेवाले अक्षर (नाद) को ब्रह्म कहाँ नाद और बिन्दु के अन्तर सम्बन्ध एवं अक्षर ब्रह्म की दिव्य शक्ति का घोष किया। दृष्टा ऋषियों ने आकाश में अक्षर के नाद के वर्ण, रूप, देवता, भौतिक एवं अध्यात्मिक शक्ति आदि से साक्षात्कार किया। स्कन्द पुराण के अनुसार : "शब्दब्रह्म परं ब्रह्म नानयोर्भेद इष्यते। लये तु एकमेवेदं सृष्टौ भेदं प्रवर्त्तते।। अन्योन्या पेक्षिणो भूप शब्दार्थो ही परस्परम्। अर्थाभावे न शब्दोऽस्ति् शब्दाभावे न बुध्यते।।" शब्द ब्रह्म और परब्रह्म में कोई भेद नहीं लगता है। शब्द और अर्थ परस्पर आश्रित हैं। इसका अर्थ यह कि अर्थ नहीं रहने पर शब्द नहीं है एवं शब्द नहीं रहने पर कुछ बोध नहीं हो सकता है। तन्त्रलोक में मातृका के मर्म रहस्योद्घाटन करते लिखा : शब्दराशि भैरव – शब्द ब्रह्म के तहत अन्तरी शक्ति माता की तरह होने वाली है। दूसरे शब्दों में यह संसार को उत्पन्न करनेवाली है। अतः इसे मातृका माना गया : "शब्दराशे भैंरवस्य यानुच्छन तयान्तरी। सा मातेव भविष्यत्त्वात् तेनासौ मातृकोदितां।। अनुच्छूनतया भविष्यत्त्वात्।।" पौराणिक एवं वेदीक साहित्य में "वाग्वै परमं ब्रह्म" यानी वाक ही परम ब्रह्म कहा गया।

कैलास एवं मानस शब्दों के गोपन अर्थ समझने के लिए महेश्वर वागीश शिव द्वारा महेश्वरी को मातृका रहस्य तिलिस्मी द्वार खोलता है। वागीश शिव ने शिव को परब्रह्म अक्षर के वर्ण, रूप, देवबीज, सभी प्रकार की शक्तियों आदि को स्पष्ट किया। ब्रह्मविद्याविद मुनि जिनविजय ने देशभर के ऋषियों द्वारा ऋषियुग से कलियुग तक मातृका

रहस्यों की दुर्लभ रचनाओं को संग्रहित करवाया। यह "एकाक्षरनामकोषसंग्रह" एवं काश्मीर तन्त्र श्रृंखला की शिवदृष्टि अक्षर ब्रह्म की अद्वितीय पोथीयाँ हैं। जयपुर के राजगुरु रहे श्रीविद्यानाथ ओझा ब्रह्मविद्या में पारंगत होने के साथ अक्षरब्रह्म के उच्चश्रेणी के साधकों में एक थे। राजगुरु ओझा अक्षर – मंत्र उच्चारण से उत्पन्न नाद स्फोत स्पंदन ध्वनि तरंग आवृति को महाशक्ति का स्रोत मानते और मंत्र से साक्षात स्थिति की रचना करते।

एकाक्षरनामकोषसंग्रह के अट्ठारहवें अध्याय में अविनाशी निरंजन शिव के कैलास शब्द के पाँच बीज अक्षरों से संबंधित विवरण है। कैलास के प्रथम अक्षर "क" के संबंध में वर्णन है :

ककारं ब्रह्मणो बींज पीतं वृष्टिकरं परम्।
संजीवनमशेषाणां लोकानां वृद्धिदायकम्।।

'क' अक्षर का अर्थ लाक्षणिक, प्रतीकात्मक, सांकेतिक, कूट एवं अनुभवगम्य है। यह अक्षर ब्रह्म का बीज है, रौद्र अथवा क्रोध स्वरूप है। इसका पीला रंग है। यह सृष्टिपालक भ्रमणशीलकर्ता है। तीनों लोकों सहित ब्रह्माण्डों को संजीवनी देनेवाला और इच्छित मनोकामना पूर्ण करनेवाला है। यह सभी कामनाओं का पूर्तीकारक और सृष्टि की वृद्धि करता है।

ऐंकारं भारतीविद्यास्फटिकं ज्ञान सिद्धिदम्।
चतुःषष्टिकलासिद्धिदायकं परमं शिवे।।

ऐंकारं वाग्देवी सरस्वती का बीज है। इसका रूप स्फटिक सरीखा अथवा श्वेत है। यह ज्ञान की सिद्धि देने में समर्थ है। ऐंकार से चौसठ कलाओं की प्राप्ति होती है। अन्त में प्रार्थना की गई कि हे अम्बे! आप कल्याणकारी हैं।

लकारं शक्रबीजं स्यात पीतं सर्वफलप्रदम्।
अग्निस्त्म्भं जलस्त्म्भं स्वेच्छास्त्म्भं विशेषतः।।

लकार वेदीक देवता इन्द्र का बीज है। इसकी पीली आभा है। यह सभी शुभफलदायक है। यह अग्नि को स्थिर करनेवाला है। यहाँ अग्नि से चिदाग्नि–चित्ततत्त्व से अर्थ है। यह चलायमान मन अथवा जल और इच्छाओं को स्थिर करके समभाव में ले जाता है। यह पृथिवी तत्त्व भी माना गया है।

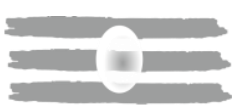
आकारं तु पराशक्तिः श्वेतमाकर्षसिद्धिदम्।
इच्छासिद्धिं स्वात्मसिद्धिं रससिद्धिं वरानने!।।

आकार स्वयं पराशक्ति है। इसकी श्वेत आभा मोहक है। यह सभी सिद्धियों को प्रदान करनेवाला है। आकारं की विशेषता यह है कि यह इच्छा, स्वात्म और रस की सिद्धिदायक है। यहाँ रस को औषधि समझें। यह श्रेष्ठ वरदायक है।

सकारं भारतीबीजं श्वेतं सारस्वतप्रदम्।
प्रतिविद्वज्जनयं वराणां योषितां वशम्।।

श्वेत वर्णमाला (रंग) सकार ज्ञान–वाक की अधिष्ठात्री महासरस्वती का बीज है। सारस्वत–साधना देनेवाला है। इसके उच्चारण मात्र से प्रत्येक विद्वान पर विजय प्राप्त की जा सकती है। यह श्रेष्ठ को वश में करनेवाला है।

सारसंक्षेप में कैलास के पाँच अक्षरों के उच्चारण से उत्पन्न विद्युत चुम्बकीय क्षेत्र, स्फोत, स्पंदन, ध्वनि तरंग से अनन्त ब्रह्माण्डों सभी लोकों को संजीवनी, सभी लोकों की वृद्धि, चौसठ कलाओं में सिद्धि, सभी विद्ववतजन पर विजय, इच्छा–रस–विद्या स्वात्म सिद्धि, कल्याण और चित्त तत्त्व–मन–इच्छा को स्थिर रखने एवं साधना की परमशक्ति प्रदान होती है। यह ब्रह्म, वाग्देवी, वेदीक इन्द्र, पराशक्ति, पृथिवी का बीज है। कैलास समभाव में ले जाने में उत्प्रेरक है। यह सभी सिद्धियों (अध्यात्मिक) को आकर्षित करता है। ऊँ



मानस के चतुर्मुखी शिव समान
मानस के चार बीजाक्षर गोपन भेदन

प्रजापति ब्रह्मा वेदीक युग के सर्वोत्तम ऋषियों द्वारा कैलास में तपश्चर्या से प्रसन्न हुए। ब्रह्माजी दृष्टा ऋषियों को स्नान के लिए बदरिकाश्रम – बदरिवन और मेरु की सुदूर नदियों में जाने के कष्ट से

दुखी हुए। उस समय ब्रह्माजी के मन में कैलास के द्वार पर सरोवर होने का विचार कौंधा। इसप्रकार दृष्टा ऋषियों के स्नान के लिए कैलास के समीप कपालाकार मानस सरोवर अस्तित्त्व में आया।

मानस सरोवर देवलोक के देवों की कैलास में तपश्चर्या में सहायक सिद्ध हुआ। मानस शब्द के चार अक्षर म, आ, न और स हैं। एकाक्षरनामकोषसंग्रह में "म" अक्षर का रहस्योद्घाटन किया :

मकारमीश्वरं विद्याज्ज्योतिरक्तं सुखावहम्।
वश्याऽऽकर्षण सन्तान सिद्धि दानैकतत्परम्।।

मकार ईश्वर का प्रतीक है। इसकी अग्निसमान रक्तिम ज्योति है। यह विद्या एवं सुख देनेवाला है। यह सम्मोहन शक्ति देता है। यह इच्छित संतान देनेवाला और हमेशा दान के लिए तत्पर करता है।

आकारं तु पराशक्तिः श्वेतमाकर्षसिद्धिदम्।
इच्छासिद्धिं स्वात्मसिद्धिं रससिद्धिं वरानने!।।

परब्रह्म की शक्ति आकार है। आ भी ग्यारह प्रकार के होते है। आ पितामह है। इसमें श्वेत आकर्षण है। यह समस्त् प्रकार की भौतिक एवं अध्यात्मिक कामनाओं, आत्म के स्वभाव, विषय–प्रेम–भोजन रस – श्रृंगार–औषधियों की भष्म की सिद्धि देता है।

नकारं निर्विकल्पं स्यादप्रमेयाभमक्षरम्।
वायुवेगं मनोवेगमिच्छारूपं भवेद् ध्रुवम्।।

निर्विकल्प स्वरूप नकार का है। यह प्रज्ञावान है। यह कभी नष्ट नहीं होता है। यह वायु के वेग, मनो इच्छा के वेग आदि को गति देता है। यह ब्रह्म स्वरूप है और अजेय शक्ति बल देता है।

सकारं भारतीबीजं श्वेत सारस्वतप्रदम्।
प्रतिविद्वज्जनजयं वराणां योषितां वशम्।।

यह वेदीक वाक का बीज है और श्वेत रंग है। यह (अध्यात्मिक) साधना की ओर अग्रसित् करनेवाला है। यह प्रकाण्ड विद्वानों में पूज्य बनता है। यह श्रेष्ठ स्त्रियों (मातृ शक्ति) को आकर्षित करता है। अथवा मातृका शक्तियों को आकर्षित करता है। यह शक्ति प्रदान करता है।

एकाक्षरीमातृकाकोषमें कैलास एवं मानस शब्दोंके अक्षर ब्रह्मके वर्णन की छटा अलग है।

क. क्रोधीशो धातृसंज्ञश्च चक्री सृष्टिः करादिगः।

वर्गादिगः पार्दवेषः ककारः कामगः स्मृतः।।

क–अक्षर क्रोधी सभी का पालनकर्ता है। यह सृष्टि चक्र की भांति भ्रमणशील है। यह वर्गादि का अक्षर है। यह कामनाओं–भौतिक–दैविक–अधिभौतिक को पूरा करता है।

ऐ. ज्ञानमृतो भौतिकस्वाधरो दामोदरस्त्था।

वागीशो वर्म भयद ऐकारस्त्रिपुरस्त्था।।

ऐ–अक्षर ज्ञानरूपी अमृत से परिपूर्ण है। भौतिक कामनाओं को पूर्ण करनेवाला है। यह सर्वत्र व्याप्त (विष्णु) (ब्रह्म) का अधर है। यह विद्या–वाक–ज्ञान–बुद्धि का बीज है। यह भय से रक्षा करनेवाला है। यह त्रिपुर में स्थित है। यह शक्ति बीज है।

ल. क्रिया कुकद्रतो मांसं पिनाकी भूर्बलानुजः।

लम्पटः शक्रसंज्ञश्च वाद्यो रान्तो लकारकः।।

र और ल का परस्पर उपयोग होता है। र अग्नि – सूर्य का बीज है। यह क्रिया का द्योतक है। यह मांस के समान रक्तिम वर्णवाला है। यह पिनाकी शिव का वाचक है। यह भूरबल का अनुज एवं लम्पट है। इसकी संज्ञा इन्द्र और वाद्यों की दैविक संगीत ध्वनि के लिए भी दी गई है।

आ. नारायणस्त्थाऽन्तो मुरवृत्तो गुरुस्त्था।

विष्णुशय्या तथा शेषो दीर्घ आकार एव च।।

आ–अक्षर नीर (जल) में रहनेवाला नारायण है। यह अनन्त का वाचक है। वशीकरण करनेवाला मुर संगीत है। यह गुरुवर है। यह त्रिदेवों में एक विष्णु एवं उनकी शैय्या है। इसका आकार शेषनाग की तरह अतिविशाल है।

स. भृगुः श्वेतस्त्था हंसो ह्रदो दक्षिणपादगः।

समयः सामगः शुक्रः संगतिः सार्णकः शशी।।

यह भृगु ऋषिवर है। यह सुन्दर हंस स्वरूप है। दक्षिणपाद का अर्थ यह पांचरात्रागम की वैष्णव मत उपासना है। यह कालरूपी समय और अलौकिक संगीत, इन्द्र और संजीवनी चन्द्र है।

मेदीनाकारकृत एकाक्षरनाममाला में ''क'' के बारे में उल्लेख मिलता है : ''को ब्रह्माणि समीराऽऽत्म यम दक्षेषु भास्करे। कामग्रन्थौ चक्रिणि च पतात्रि पार्थिव तथा।।'' वहीं ''ल'' का उल्लेख हैः ''लः शक्रे ला तु दाने स्याद ग्रहणेऽपि निगद्यते।'' 'स' अक्षर का विवरण हैः ''सा

जीवेच्छे पाँचवक्रे भृगौ भासि निशापतौ।।" क अक्षर ब्रह्म के रूप में है। यह जीवन, प्राण, वायु, यम, दक्ष, आत्मा, कामग्रन्थि, चक्रण, सूर्य एवं राजा है। ल वेदीक इन्द्र, दान देनेवाला एवं ग्रहण लगानेवाला है। स अक्षर साक्षात शिव, भृगु ऋषि, गुरु बृहस्पति और चन्द्रमा है।

नत्वा शब्द से आरम्भ नत्वाऽऽदि एकाक्षरी नाममाला में "को यमाऽग्नि दिवाकरे/लो दीनेन्दु विहंगमे/सोऽस्त्रभुक–सिंह दुर्जने/आ ब्रह्माऽब्ध्यर्क चापेषु" मिलता है। मानस के अक्षरों में "मः शिवाऽऽमाऽम्बु भद्रेषु/ आ ब्रह्माऽब्ध्यर्क चापेषु/ नो रक्षा कवि वारिदे/ सोऽस्त्रभुक सिंह दुर्जने।।" विवरण लिखा है।

नत्वा में क यम की अग्नि और सृष्टिपालक है। यह परस्पर विरोधी लगेगा कि यह एक ओर सृष्टि में प्राण शक्ति सूर्य है और दूसरी ओर महाकाल यमराज की अग्नि है। दूसरे शब्दों में यह लय और प्रलय दोनों का ही वाचक है (सदाशिव सृष्टि के पालक और संहारक दोनों ही हैं।)। ल अर्ध चन्द्र का प्रतीक है। स सभी शस्त्रों के प्रहारों को सहनेवाला अजेय है। यह ब्रह्म, सूर्य, समुद्र एवं (पिनाकी) शिव धनुष का चाप है। मानस में म एवं अ अक्षर शिव का अमृत, ब्रह्म, सूर्य, कल्याण का सागर और अर्णव है। इसी क्रम में न और स का अर्थ रक्षाकर्ता, दृष्टा (कवि–ऋषि), मेघ और सभी प्रकार के अस्त्र शस्त्र को निष्फल करनेवाला है। यह दुर्जनों के लिए महाकाल स्वरूप सिंह है। ऊँ

तन्त्र मन्त्र–जप तन्त्र :
शिव से बड़ा शिव का नाम :
शिव का अजपा जाप

ब्रह्मांड की उत्पत्ति के साथ ही आदिदेव महादेव का प्रकट होना माना गया। भगवान् शिव और भगवती शिवा अर्धनारीश्वर रूप में प्रकट हुए। शिव ओढ़रदानी हैं। वे निराकार और साकार दोनों रूपों में है। पौराणिक आख्यानों के अनुसार अंतरिक्ष में प्रजापति ब्रह्मा प्रकट हुए।

उधर श्रीहरि विष्णु का आगमन हुआ। अहंकारयुक्त ब्रह्मा ने 'कौन आदिदेव' प्रश्न पर श्रीहरि विष्णु से युद्ध का प्रारम्भ किया। इन देवों के मध्य युद्ध और विनाशक अस्त्र शस्त्र प्रयोग से सृष्टि में हाहाकार मच गया। सृष्टि के पालनहार भूतनाथ शिवजी अग्नियुक्त विशाल स्त्म्भ के आकार में प्रकट हुए। इस निराकर स्त्म्भ का आदि और अन्त ब्रह्माजी और विष्णुजी नहीं ढूढ़ पाये। धूर्जटी शिवजी के इस रूप की स्तुति ऋषियों ने इस प्रकार की : कर्पूरगौरं करूणावतारं संसारसारं भुजगेन्द्रहारम्। सदावसन्तं ह्रदयारविन्दे भवंभवानीसहितं नमामि।। यह स्मरण रहे : मन्त्रावर्णात्मका सर्वे, सर्ववर्णा शिवात्मकाः (मन्त्र वर्णात्मक हैं, सभी वर्ण शिवात्मक हैं।)।

ऋषियों ने गायाः "शान्ताकारं शिखरशयनं नीलकंठं सुरेशम्। विश्वाधारं स्फटिक शुभ्रवर्णं शुभांगम।" ऋषियों ने महादेव शिव के तीन अक्षरों को ही ब्रह्माण्ड का नियन्ता माना। 'रुद्राष्टक स्त्रोत्र' में कहा गया कि असीम आकाश में भी अनन्त महारुद्र शिव हैं। जिनकी इच्छा शक्ति देवी आद्या अर्थात् शक्ति स्वरूपा भुवनेश्वरी राजराजेश्वरी हैं। जिनकी इच्छामात्र से निमिष में ब्रह्माण्ड का सृर्जन हुआ। रुद्राष्टक के रचयिता ने बहुत ही सरलता से शिव से निवेदन किया कि वह योग, जप और पूजा नहीं जानता। वह मात्र शिव शंभु का ध्यान करता है। 'न जानामि योगं जपं नैव पूजां, नताहं सदा सर्वदा शंभु तुभ्यम्।' अर्थात् शिव शंभु के जाप से ही आत्मकल्याण और सर्वकल्याण होता है। शिव की आराधना से सभी भौतिक अध्यात्मिक सुख–समृद्धि प्राप्त होती है। दुख भाग जाते है। आदिशंकराचार्य महाराज ने शिव पाँचाक्षर स्त्रोत्र में बताया है कि शिवजी पृथ्वी के सभी घातक तत्वों को धारण किए हैं। अतः शिवजी कष्टों का हरण करनेवाले और कल्याण करनेवाले हैं। ऋषि कहते हैं : सर्वेषामेव सिद्धिनां मूलं तत्चरणार्चनम्।। परब्रह्म की चरण अर्चना से सभी सिद्धियां प्राप्त होती हैं।

विड़म्बना यह है कि आदिदेव महाराज शिव के स्वरूप को ही हम नहीं जानते हैं। अज्ञान के कारण ही अंधेरे में हाथ पैर मारते हैं, छटपटाते हैं। जयपुर के राजगुरु विद्यानाथ ओझा के अनुसार 'ॐ नमः शिवाय' मंत्र का जप उचित नहीं है। इसके जप से प्रतिकूल या विपरीत असर भी हो सकते हैं। संस्कृत विद्वान गणपतलाल शर्मा का मानना है

कि केवल शिवा के उच्चारण के माध्यम से साधक शिव नहीं, देवी शिवा पार्वती की आराधना कर रहे हैं। इस मन्त्र में 'य' विसर्ग है। उधर बारम्बार ऊँ का उच्चारण भी उचित नहीं है। राजगुरु औझाजी कहते थे कि जप के प्रारम्भ में 'ऊँ नमः शिवाय' कहा जाए। कालान्तर में माला फेरते हुए 'नमः शिवाय' बोला जाए। यह बात अलग है कि शिव का भजन 'सम्भाव' की ओर ले जाता है। यह सम्भाव मन में आनन्द का झरना बहाता है।

शिव का रहस्य तीन अक्षरों – श, इ और व में छिपा हुआ है। इसमें इ निकलते ही शिव, शव रह जाता है। आदिशंकराचार्य ने इसी रहस्य को जानकर ही शिव ही शव है, शव ही शिव है, कहाँ उनके इस कथन का सम्बन्ध आनन्दलहरी सौंदर्यलहरी रचना से है। वाराणसी काशी के मर्णिकर्णिका घाट पर आदिशंकराचार्य को गोद में शव लिए रोती हुए तिलोत्तमा सुंदरी मिली। शंकराचार्य ने उससे राह देने को कहाँ रोती हुई स्त्री ने कहा कि आप कहते हैं कि शव ही शिव है, शिव ही शव है। आप शव से कहें कि रास्ता दे। शंकराचार्य के लिए यह कथन विचित्र पहेली था। वे आंख बंद कर विचार करने लगे। तब उन्हें लगा कि जगतजननी शक्तिस्वरूपा माता उनके सामने है। आंखे खोलने पर शव और स्त्री दोनों ही नदारद थे। शंकराचार्य ने जगतजननी माता के रूप सौंदर्य का वर्णन सौन्दर्यलहरी में मातृभाव में नख से शिख तक का किया है। सौंदर्यलहरी के छन्दों में सभी तन्त्र, मन्त्र और यन्त्रों का ज्ञान दिया गया है। बीजाक्षर शिवतत्त्व के रहस्य को अनावृत करते हैं। रहस्य की जानकारी देते हैं। शिव शब्द का पहला अक्षर 'श' है। 'श' का अर्थ विनाशकर्ता है। बीजाक्षर मन्त्र है : शकारं शकड.र विद्यात् तेजः सौभाग्यवर्धनम्। अन्योन्य कलहा (द) देववैरिणां नाशनंभवेत।। 'श' अक्षर कल्याण करनेवाला है। विद्या प्रदान करनेवाला है। तेज और सौभाग्य में अभिवृद्धि करता है। यह शत्रुओं का नाश आपस में लड़ाकर करता है। उसके लिए कोई प्रयास नहीं करना पड़ता है। श की ध्वनि का यह अनूठा चमत्कार है। रघुवंश में 'इ' की 'शशनिं पुनरेति शर्वरी' लिखा है। 'इ' से तात्पर्य या अर्थ करूणा पुकार, कामदेव और क्रोध से है। शरभ तन्त्र में 'इ' का बीजाक्षर मन्त्र है : इकारं विष्णुदैवत्वं शामरक्षाकरं भवेत। रूप कान्तिकरं वरेण्य मोहसिद्धिदम्।। 'इ' विष्णुदेव का रूप है। वह

पालनकर्ता है। वह शांतिदाता है। वह प्राणों का रक्षक है। यह अध्यात्मिक और भौतिकरूप से श्रेष्ठ शोभा और कान्तिदाता है। इसकी उपासना से मोहों के जाल में मुक्ति एवं अध्यात्मिक – लौकिक सफलता मिलती है। शिव का तीसरा अक्ष 'वः' है। 'व' का सामान्य अर्थ वरुण, समुद्र, व्याघ्र, राहु और वायु है। इनमें वरुण ही बीजाक्षर में लिया गया। वकारं वरुण विद्यात् श्वेत स्वेच्छाभिवृद्धिदम्। आकर्षण जलध्वानम् शेषज्वरनाशनम्।।

बीजाक्षर 'वः' अक्षर के स्वर और ध्वनि को जल के देव वरुण ऋृत का रूप मानते हैं। यह विद्या प्रदान करता है। सत् तत्त्व के कारण इसका वर्ण सफेद है। श्वेत शांतिप्रिय है। यह इच्छाओं की स्वकामना से अभिवृद्धि करता है। उन पर नियंत्रण करता है। इसमें चुम्बकीय आकर्षण है। यह जल रूपी मार्ग से गुजरता है। मंत्र में 'ज्वर' शब्द का प्रयोग कष्टों के लिए है। यह हर प्रकार के कष्टों से मुक्ति दिलाता है। तीनों शिव अक्षरों के मंत्रों का सार यह है कि शिव कल्याणकारी, पालनकर्ता, विद्यादाता, अध्यात्मिक–लौकिक शोभा कान्ति प्रदाता, शांतिदाता, रक्षा करनेवाला, तेज सौभाग्य में वृद्धिकर्ता, सम्मोहक, आकर्षक, शत्रुओं को परस्पर कलह से नष्ट करनेवाला, मोहों से छुटकारा दिलानेवाला, जल मार्ग चलनेवाला, सर्जक और विनाशक है। स्पष्ट है कि शिव ही त्रिदेव के महादेव हैं। नाथ सम्प्रदाय के नौ नाथों में से एक भर्तृहरि ने कहा : 'एको देवः केशवो वा शिवोवा।' प्राचीन काल में यात्रा के समय आशीर्वाद के रूप में कहते थे : 'शिवाः ते सन्तु पथाम।'' भगवान् शिव आपकी यात्रा सफल करें। शिवम् को 'तववर्त्मनि वर्तनां शिवम्' अर्थात् समृद्धि कल्याण सूचक कहा गया। शिव का अर्थ शुभ, मांगलिक, सौभाग्यशाली, स्वस्थ, प्रसन्न, समृद्ध भी माना गया। इयं शिवाया नियतेरिवायतिः। शिवानी वस्त्ीर्थजलानि कच्चित्। तीनों प्रधान देवताओं के भी प्रधान देव महादेव शिव के मंत्र में ऊँ लगाने का भी प्रचलन है। ऊँ तीन अक्षरों अ, उ और म से मिलकर बना है। इसका प्रथम अक्षर 'अः' विष्णु का स्वरूप कहा गया। कहीं अः को ब्रह्मा, वायु, वैश्वानर लिखा गया। बीजाक्षर में इसका मंत्र हैः अकारं ब्रह्मदेवत्वं श्वेतं सर्ववशंकड.रम्। सर्वज्ञत्वं मनोज्ञत्वं कामरूपत्वमम्बिके।

अर्थात्–'अः' ब्रह्मदेव है। इसमें सत् गुणों से इसका रंग श्वेत है। यह चराचर जगत में सभी को वशीभूत करता है। यह मन के

आंतरिक भावों और सभी का ज्ञाता है। इसका कमनीय रूप माता अम्बिका जैसा है। दूसरा अक्षर उ शिव का ही स्वरूप है। इसका बीजाक्षर मन्त्र हैः उकारं कालदैवत्व शम लोकें वशंकरम्। मातृकात्थापनं पुण्य क्रूर रोग विनाशनम्।

'उ' साक्षात काल का रूप है। यह शांतिमूलक और लोक को वश में करनेवाला है। यह मातृ शक्ति को उन्नत करनेवाला है। यह पुण्य फल देता है। यह क्रूर रोगों से छूटकारा दिलवाता है। तृतीय अक्षर 'म' का अर्थ काल, विष, ब्रह्मा, विष्णु, शिव, यम और जादू बताया गया है। म के बीजाक्षर का मंत्र "मकारमीश्वरं विद्याज्ज्योतिरक्तं सुखावहम्। वश्याकर्षण संतान सिद्धिदानैकत्परम।।" है। स्पष्ट है कि म अक्षर ईश्वर का बीज और विद्या की ज्योति फैलानेवाला है। इसका लाल रंग है। लाल रंग शुभ है। यह वशीभूतकर्ता और आकर्षक है। यह सिद्धि और संतान देनेवाला है। यह हमेशा दान देने में लगाता है। एकाक्षरनामकोषसंग्रह में यही मन्त्र मिलते है। यह भ्रमपूर्ण है कि शिव मात्र संहारक है। शिव तीनों कार्यों – उत्पत्ति, पालन और संहार के नियन्ता हैं। उसमें महत्वपूर्ण यह है कि सदाशिव को किस उद्‌देश्य से जपा जा रहा है ? शैवमत के नाथ सम्प्रदाय में 'जय शिव गोरख' मन्त्र के अजपे जप का प्रचलन है। भर्तृहरि की समाधि पर यही मन्त्र लिखा है। नाथ सम्प्रदाय में शब्द ब्रह्म की सिद्धि को सर्वोच्च माना गया है। नाथों में दीक्षा के समय कान में कुण्डल पहनते ही ब्रह्मज्ञान आना माना जाता है। कुण्डल के साथ ही एक, सवा महिना एकान्त में साधना करने का विधान है। वेदव्यासजी ने विश्व के सभी प्राणियों के कल्याण के लिए शिवपुराण की रचना की। इसमें सप्तसंहिता हैं। वेदव्यासजी लिखते हैं कि आदिदेव शिव ब्रह्मस्वरूप है। शिव कला फलरहित दोनों ही हैं। वे साकार भी हैं और निराकार भी हैं। शिवलिंग की उत्पत्ति कल्पनातीत काल में हुई। उसमें वर्तमान विश्व ने आकार ग्रहण किया। आदिशंकराचार्य ने शिव उपासना में भाव को प्रधानता दी। वे भावविभोर होकर कहने लगेः हे शिव, हे शंभो, मैं जो कर्म करता हूँ, वह सभी आपकी उपासना है। शिवभक्ति के किसी भी फूल, रोली, मोली, दीपक, धूप, नैवेद्य आदि की भी जरूरत नहीं है। शिवभक्त गंधर्वराज पुष्पदंत का 'शिव महिम्न' स्त्ोत्र इसी का उदाहरण है। महाकला के भी काल, प्रचंड़,

प्रगल्भ, निर्गुण और निराकार शिव मात्र स्तुति से ही प्रसन्न हो जाते है। शिव की तत्पश्चर्या और साधना बहुत ही सरल और सहज है। शिव आनंद और शोक दोनों में ही सम्यक स्थितप्रज्ञ भाव जगाते हैं। इसके ठीक विपरीत महादेव शिव भक्त के लिए घातक तत्त्व और कष्ट को स्वयं नष्टकर मंगल और कल्याण करते हैं। शिव भक्ति, स्तुति का गान अथवा स्मरण प्रारब्ध को बदल देता है। शिवभक्ति के वरदान से मन, हृदय की सभी इच्छायें पूरी होती हैं और मोक्षमार्ग मिलता है। ऊँ

जप तन्त्र : राम से बड़ा राम का नामः शिवस्वरूप हैं राम

प्रागेतिहासिक काल और पूर्व वेदीक काल से 'श्रीराम' मन्त्र का जाप किया जा रहा है। स्वर्णयुग, ऋषियुग, सत्‌युग, त्रेता, द्वापर और कलयुग में भी सभी संतापों, दुखों और कष्टों से त्राण दिलवानेवाले 'राम' हैं। वैसे, एक नहीं, दो नहीं, तीन नहीं, छह मनवन्तर गुजरे लेकिन 'राम' शाश्वत हैं। लेकिन यह जानना और समझना आवश्यक है कि वह 'श्रीराम' कौन हैं ? श्रीराम की अध्यात्मिक रसना है। उस अध्यात्मिक रसना का अपना गूढ़ रहस्य है।

आर्ष ग्रंथ और पौराणिक ग्रन्थ श्रीराम को भगवान् श्रीहरि विष्णु का सातवां अवतार मानते हैं। यह भी उल्लेख हैः ''वितरसि दिक्ष रणे दिक्‌पति कमनीयं दशमुख मौलिबलं रमाणीयं। केशव घृतरघुपति रूप जय जगदीश हरे।'' राम से तात्पर्य यानी अर्थ तीन रामों–परशुराम, बलराम और दशरथि राम से लिया जाता है। महर्षि वाल्मीकि दशरथ राम का एक प्रसंग आश्चर्यलोक में ले जाता है। शक्ति स्वरूपा जगतजननी सीता मैय्या की खोज में वन–वन भटक रहे राम को हनुमत–हनुमानजी मिलते हैं। हनुमान श्रीराम से लाड.गूलोपनिषत् के अन्तर्गत हनुमत उपासना का विधान सुझाते हैं। लाड.गुलोपनिषत् में हनुमद्‌घोरास्त्र है। यह अचरज है कि पवननन्दन हनुमान श्रीराम से हनुमद्‌घोरास्त्र की आराधना के लिए

कह रहे हैं। इसका स्पष्ट संदेश यह है कि आदिहनुमत अलग हैं। वास्त्व में हनुमान आदिदेव महारुद्र महादेव शिव के ग्यारहवें रुद्र हैं। भगवान् भोलेनाथ शिव ने महापंडित रावण द्वारा शीश काटकर दस रुद्रों को प्रसन्न रखने के बाद ग्यारहवें शीश से कटने से पहले प्रकट होकर ग्यारहवें रुद्र अवतार को सुरक्षित रख लिया था। इसलिए रामायण के श्रीराम से लाड.गूलोपनिषत् आराधना का आग्रह अनुचित नहीं है।

ऋषियों–मुनियों–संतों–महात्माओं ने हर युग में दो नहीं, तीन तीन श्रीराम का गुणगान किया है। जैसे देवतुल्य ऋषि कहते हैं कि एक राम दशरथ का पुत्र है। दूसरा राम घट–घट में व्याप्त है और तीसरा राम, तीनों लोकों का पालनहार–भर्तृहरि है। तीन रामों की अवधारणा से मन में भ्रम पैदा होता है। आमजन आदिराम और दशरथि राम के बीच हिचकोले खाता है। इसका निवारण एकाक्षरनामकोषसंग्रह, शिवदृष्टि, आकाशभैरव कल्पोक्तम, शरभ तन्त्रम्, मातृकाओं के देवता, धर्मकोश, धर्मशास्त्र का इतिहास, धर्मसिन्धु और बीजाक्षर मन्त्रसंहिता करती हैं। आर्यावर्त के ऋषियों ने दिव्य अक्षरों का साक्षात आकाश में दर्शन किया, उनका स्वर सुना। उनका वर्ण (रंग), उनके स्वामी दिव्य देवता और अलौकिक एवं भौतिक शक्तियों को देखा। उनको कभी क्षर नहीं होने से ही नाम अक्षर दिया। आदिराम शब्द के तीन अक्षर उसके अजर–अमर होने की दिव्य शक्ति से परिचय करवाते हैं।

बीजाक्षर मन्त्र की दृष्टि से राम का सन्धिविच्छेद रः+अः+म है। तीनों अक्षरों के तीन अलग–अलग मन्त्र मिलते हैं। सबसे पहले रःका मन्त्र लेते हैंः

रेफं कृशानुवीजं स्याद् रक्ताभं सर्वनाशनम्।
जड.गमाकर्षण युद्धे दिष्ट सेनावलं तथा।।

शरभ तन्त्रम् का यह मन्त्र शिव शक्ति संवाद रूप रचना है। इसके अनुसार 'र' अक्षर अग्नि का बीज है। इसका वर्ण लाल है। यह ऊर्जा लाल आभा भगवान् शिव के मुख पर रौद्र ताण्डव से आती है। वह सभी का नाश करनेवाला है। वह समस्त् जग को आकर्षित करनेवाला है। वह मात्र संकेत से वैरियों की सेना को नष्ट करता है। 'र' अक्षर अग्नि, प्रेम और गति का भी परिचायक है। 'र'मंत्र में इसका सृष्टि के संहारकर्ता भगवान् शिव से सम्बन्ध दर्शित किया है। दूसरे अक्षर 'अः' का

अर्थ विष्णु, वायु, वैश्वानर आदि से है। ''अकारो विष्णु रूद्विष्ट उकारस्तु महेश्वरः। मकारस्तु स्मृतों ब्रह्मा प्रणवस्तु त्रयात्मक।'' बीजाक्षर मन्त्रों में 'अ' का मन्त्र नई जानकारी देता हैः

अकारं ब्रह्मदैवत्यं श्वेतं सर्ववशं करम्।
सर्वज्ञत्वं मनोज्ञत्वं कामरूपत्वमम्बिके।।

इसका अर्थ यह है कि 'अ' ब्रह्मदेव का स्वरूप है। उसका वर्ण सत् तत्त्व से श्वेत है। वह सभी को वश में करनेवाला है। वह सभी का ज्ञाता है वह सभी सभी के मनोभावों को जानता है। उसकी कमनीयता माता अम्बिका के कामरूप के समतुल्य है। राम मन्त्र का अंतिम अक्षर 'म' का अर्थ काल, विष, जादू, ब्रह्मा, विष्णु और ब्रह्म बताया गया है। आकाश भैरव कल्पोक्तम् में 'म' का मन्त्र है :

मकारमीश्वरं विद्याज्जयोति रक्तं सुखावहम्।
वश्याऽऽकर्षण संतान सिद्धिदानैकत्परम् ।। वैसे अन्य मंत्र है : ''मकार मीश्वरं वीजं सर्व संहारकारकम्'' है।

'म' अक्षर ईश्वर का बीज है। यह विद्या और ज्ञान की ज्योति से आलोकित करता है। इसका लाल वर्ण सुख प्रदान करनेवाला है। वह मन और चराचर जगत को वशीभूत करनेवाला है। इसमें आकर्षण है। यह संतान और सिद्धि का दाता है। यह अनवरत दान करने को तत्पर रहता है। म अक्षर का अर्थ सर्व संहार भी है। तीनों अक्षरों के बीजाक्षरों के मंत्रों से पता चलता है कि इन तीनों में सदाशिव और त्रिदेव–ब्रह्मा, विष्णु, महेश विद्यमान हैं। राम शब्द की ध्वनि में 'र' पर अधिक जोर है। 'र' के ही कारण यह अग्नितुल्य दग्ध करनेवाला है। राम का बीजाक्षर मंत्रों से अर्थ निकला कि राम विद्या ज्ञान की ज्योति का प्रकाश फलानेवाला, सभी को वशीभूत करनेवाला, सभी का संहारक, प्रलयकर्ता, भर्तृहरि–भरणपोषणकर्ता, संकेत मात्र से शत्रु सेना नष्ट करनेवाला, सुख प्रदानकर्ता, संतान–सिद्धिदाता, सदा दान को तत्पर, अम्बिका के काम रूप की तरह कमनीय और सर्वज्ञाता की शक्ति रखता है। राम के भजन से त्रिदेव एवं सदाशिव की कृपा होती है और इन सभी की प्राप्ति होती है। ऋषियों ने आदिराम के जप के पीछे यह दृष्टान्त छिपाकर रखा था। उन्होंने तीनों लोकों के कल्याण की भावना से अक्षरों के मन्त्रों के विवरण को गूढ़ ही रखा। कालान्तर में इसमें श्री अक्षर जोड़ा गया। श्री को

लक्ष्मीस्वरूप माना गया। श्री अक्षर का अर्थ त्रिवर्ग–धर्म, अर्थ और काम से भी लिया गया है। श्री का अर्थ भौतिक–अध्यात्मिक श्रेय, धन प्राचुर्य, समृद्धि, पुष्कलता, कान्ति, गौरव और लालित्य से भी है। रामचरितमानस में ''अनिर्वेदः श्रियो मूलत्'', मृच्छकटिक में ''साहसे श्रीः प्रतिवसति'' और उत्तररामचरित में ''असीदियं दशरथस्य गृहेयथा श्री'' का विवरण मिलता है। श्री देवों के नामों के आगे सम्मानसूचक है। माध ने शिशुपालवध काव्य के प्रत्येक सर्ग के अन्तिम श्लोक में श्री का प्रयोग किया है। कहीं श्री मंगलाचरण के लिए प्रयुक्त होता है। राम से श्रीराम होने से इसमें धन–समृद्धि की शक्ति भी समा गई।

राम शब्द का उल्लेख वेदों में दूसरे ही अर्थ में आया है। वहीं काम आत्प्त भद्र को भगिनी के पीछे भागनेवाले को राम कहा है।

भद्रो भद्रया सचमान आगात स्वसारं जारों अभ्येति पश्चात्।
सुपतकेताद्युभिरग्निविंतिष्ठन् रूशादभिर्वणेरभि राममस्थात।।

इसलिए ऋग्वेद के राम शब्द के अर्थ को नहीं लिया जा सकता है। सायण ने राम का अर्थ कियाः रामं कृष्णं शार्वरं तमः। अर्थात् राम अन्धकार हैं। कही राम को रमण करनेवाला लिखा गया। इसका मतलब यह है कि वेदीक ग्रन्थों में राम शब्द अन्य अर्थो में भी प्रयुक्त है। उसका पराशक्तिवाले राम से कोई सम्बन्ध नहीं है। महर्षि वाल्मीकि के बारे में जनश्रुति यह भी है कि राम को मरा, मरा, मरा भजते हुए ही आदिराम की साधना हुई। वेदीक ऋचाओं में छह अक्षर का श्रीराम राम राम मन्त्र मिलता है। इसके बाद 13 और 16 अक्षरों के राम मन्त्रों का उल्लेख है। तेरह अक्षर का सिद्ध मन्त्र ''श्रीराम जय राम जय जय राम'' है। छत्रपति शिवाजी के गुरु समर्थगुरु रामदास को इसीकी सिद्धि बतायी जाती है। इन 6 अक्षर और 13 अक्षरों के मन्त्रों को कितना ही भजा जाए, मरा, मरा नहीं निकलेगा। राम के जप से सिद्धियां मिलती हैं।

आदिराम और दशरथि राम के बीच विभाजन रामायण का युद्धकाण्ड करता है। इसमें दशरथ पुत्र रामचन्द आदित्यहृदयम् का पाठ करते हैं। इस आदित्यहृदयम् के प्रस्तोता अगस्त्य मुनि हैं। अगस्त्य मुनि ने पापहर्ता पावन सागर को अपने कमण्डल में समा लिया था। सो अगस्त्य मुनि का आदित्यहृदय स्तोत्र शक्ति लानेवाला सिद्ध हुआ। इसके विपरीत आदिराम का 'र' अक्षर अग्नि का बीज है। उसे सूर्य उपासना की

क्या आवश्यकता है ? ’र’ की ध्वनि के अग्निमूलक होने के प्रभाव मानवीय मन पर स्पष्ट दिखाई देते हैं। रूदी के पाठ करनेवालों ह्रीं का जप करनेवालों को अपेक्षाकृत अधिक क्रोध आना स्वाभाविक है। ह्रीं में ’रा’ पर अधिक जोर देने से अन्तः मन में अग्नि उत्पत्ति ही क्रोध का ज्वालामुखी दहकाती है। सर्वेक्षणों के अनुसार रुद्रीपाठी के स्वभाव में अधिक त्वरा होती है। इसलिए मन्त्र पाठ के समय ’’ह्रीं’’ पर अधिक जोर देना साधक के लिए घातक रहता है। मन्त्रव्याकरण और शारदा तिलक मन्त्रों के साथ क्या प्रयोग हो और क्या नहीं हो, का खुलासा करते हैं। उदाहरण के लिए महादेव शिव के जप का प्रारम्भ ऊँ नमः शिवाय से कर सकते हैं। परन्तु उसके बाद ऊँ का प्रयोग नहीं होगा। केवल नमः शिवाय जपें। आदिराम के मन्त्र में श्रीराम या राम ही समर्थ हैं। भगवान् श्रीराम के मन्त्र को विनियोग से करने में मूल सावधानी यह रहे कि मरा नहीं निकले। यह इसलिए आवश्यक है कि जैसा आप जप रहे हैं, वही सिद्ध होगा। राम जप रहे हैं तो राम सिद्ध होगा। मरा जप रहे हैं तो मरा ही सिद्ध होगा। इसे ही ध्यान में रखकर श्री अक्षर को प्रचलन में लाया गया। श्री के प्रयोग से मरा का जप हो ही नहीं सकता।

वास्त्व में आदिराम एकमात्र ऐसे आराध्य हैं, जिनके जप से त्रिदेव की आराधना, पूजा, अर्चना आदि हो जाती है। आदिराम शिवस्वरूप हैं। इसके जप से त्रिदेवियों–लक्ष्मी, सरस्वती और पार्वती की स्तुति हो जाती है। राम का नाम अध्यात्मिक रूप से सभी आन्तरिक शत्रुओं को समाप्तकर सद्प्रवृत्ति का द्वार खोलता है। उसके भौतिक कष्ट और मानसिक दुःख दूर होते हैं। मन पर नियन्त्रण हो जाता है। राम शब्द की महिमा को जानकर ही त्रेता में भगवान् विष्णु के सातवें अवतार का नाम राम चुना गया। वेदीक काल से कलयुग तक राम आर्यावर्त और दूसरे देशों के कण–कण में बस गए। दीनों, दुखियों के बल भी ’श्रीराम’ बने हैं। निर्बल के बल श्रीराम हैं। श्रीराम शब्द की चमत्कारी शक्ति थी कि नल, नील जैसे ही पत्थर पर राम लिखते, पत्थर रामेश्वरम् श्रीलंका के बीच समुद्र पर तैरने लगता। पत्थर शिलाओं का समुद्र में तैरना अद्भुत था। चराचर जगत के पालक की यह लीला बीजाक्षर मन्त्रों से उद्घाटित होती है। भौतिकता के चरम दौर में आकाश में व्याप्त अक्षरों की शक्ति यथावत है। विज्ञान भी अक्षर की शक्ति की अवधारणा को

सही मानता है। आज भी राम से बड़ा राम का नाम है। इसका आनन्दपूर्वक जप करें (परन्तु आदिराम कैलासी शिव हैं।)। श्रीराम के सिद्ध मंत्रः ऊँ रामाय नमः, ऊँ रां रामाय नमः, ऊँ श्रीं सीताय स्वाहा, ऊँ हं जानकी वल्लभाय स्वाहा, ऊँ रामचन्द्राय नमः, ऊँ रां रामचन्द्राय नमः, ऊँ रामभद्राय नमः, ऊँ नमो रामाय आदि हैं। ऊँ

गिरीश हिमालयवासी
रुद्र सृष्टि का स्वामी

''भुवनस्य पितरं गीर्भिराभी रुद्रं दिवा वर्धया रुद्रभक्तौ।
बृहन्तमृष्वमंजर सुषुम्रमृधग्धुवेम कविनेषितासः।।''

ऋग्वेद के मन्त्र में कहा गया है कि दिन में एवं रात्रि में इन वचनों के साथ समस्त् भुवनो–सम्पूर्ण सृष्टि के पिता महाबलवान् रुद्र देव को बधाई दो, उनके महत्व की प्रशंसा–स्तुति करो। उस महान् श्रेष्ठतम ज्ञानी एवं अजर, अमर, सर्वोत्तम, विचारशील, बुद्धिमानों की उन्नति की इच्छा रखनेवाले रुद्रदेव की हम सभी विशेष प्रकार से प्रार्थना उपासना करेंगे। इस मन्त्र में रुद्र जगत के पिता एवं सृष्टि के स्वामी हैं। यजुर्वेद से अथर्ववेद में रुद्र को काक्षाणां पति, दिशां पति, वनानां पति, अरण्यानां पति, गिरिचरः गिरिशयः, तीर्थ्यः, गह्वरेष्ठः, गिरिशः आदि से सम्बोधित किया गया है।

रुद्र का हिमवत में मेरु में निवास माना गया है। द्वापरयुग में श्रीकृष्ण ने विभूतियोग (अध्यायः10) में इस रहस्य को समझाते हुए कहा :

''रुद्राणां शंकरश्चास्मि वित्तेशो यक्षरक्षसाम्।
वसूनां पावकश्चास्मि मेरुः शिखरिणामहम्।।23।।
यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि स्थावराणां हिमालयः।।25।।''

''मैं रुद्रों में शंकर, यक्ष एवं रक्षों में कुबेर, वसुओं में पावक, गगनचुंबी शिखरवाले पर्वतों में ''मेरु पर्वत हूँ।'' यज्ञों में जपयज्ञ, स्थिर पदार्थों में हिमालय हूँ।'' सृष्टि का स्वामी वेदीक गिरिशरुद्र का अर्थ–''दुःखों को

दूर करने वाला है।'' श्वेताश्वर उपनिषद् में सिंहगर्जना कीः ''एको ह रुद्रो न द्वितीयाय तस्थुर्ष इमांल्लोकानीशत ईशनीभिः।।'' एक ही रुद्र है। वह शत्रुओं को युद्ध में पराजित करता है। वह सभी भुवनों लोकों को उत्पन्न करके, उन सभी विश्वों का संरक्षण करता है। अन्तकाल में सभी की प्रलय करता है। रुद्र ही शाश्वत एवं प्राचीन हैः रुद्रमें कत्वमाहुः शाश्वतं वै पुराणम्।। ऋग्वेद में रुद्र को सर्वशक्तिमान माना गया हैः

अहर्न विभर्षि सायकानि धन्वार्हन्निष्कं यजतं विश्वरूपम्।
अर्हन्निदं दयसे विश्वमभ्वं न वा ओजोयो रुद्रत्वदस्ति्।।

रुद्रं रूद्रेषु रूद्रियं हवामहे (ऋग्वेद)। हम सब अनेक रुद्रों में रहनेवाले प्रशंसा करने योग्य एक रुद्र की पूजा करते हैं। ऋग्वेद रुद्र देव को एक महान् प्रेरक शक्ति अनेक स्थानों में निश्चय से चेतना देती है। जिस शक्ति में विशेषकर ज्ञानी लोक अपना वह मन विशेष प्रकार धारण करते हैंः यदिद्रद्रस्य चेततियह्वं त्नेंषु धामसु मनो यत्रा वि तद्दधुर्विचेतसः।। रुद्र को प्रथम वेद में ''रुद्रस्य कालात्मकस्य परमेश्वरस्य, रुद्र को जनानां राजा रूद्रं, मर्त्यानां पितारुद्रः, रुद्रस्य शिवस्य, रुद्राय शंकराय, रोदयति इतिरुद्रः, रूद् दुःखं द्रावयति विनाशयति इति रुद्रः, रोदयति शत्रु इति रुद्राः महा–वीरः, रूत ज्ञानं तन् ददाति इतिः रुद्रः रुद्राः एकादशप्राणाः आदि कहा गया है। वेद का मेरु एवं हिमालय का ब्रह्म रुद्र ''वागीश'' कहलाये।

रुद्र की पूजा अर्चना का प्रसार हिमालय से लेकर मिश्री (अफ्रीका), सुमेरी, हित्ती, मेसोपोटामिया, बैबिलोनी आदि में रहा। उत्तरी सीरिया के मैदान में रुद्र के प्रसिद्ध मंदिर थे (तेशुब)। 'प्राणवंतों का देश दिलमुन' पोथी में हिमालय का उल्लेख मिलता है। गिल्गमेश कथा में उल्लेख आता है कि गिल्गमेश पूछते हैंः समुद्र पार करके, जिन्हे पार करना कठिन है, तुम मेरे सामने क्यों आए हो ? गिल्गमेश नचिकेता की तरह जीवन मृत्यु के बारे पूछता है। कथा में पर्वतों के द्वार (हिमवत) का प्रसंग आता है। यजुर्वेद की वाजसनेयिसंहिता में ''रुद्र को गिरित्र अर्थात् पर्वतों में गिरीश कहा गया है। रुद्र प्रशस्त् विज्ञान के स्वामी हैं। ऋग्वेद में मरुत्वृद्ध अर्थात् मरुत्ों को बढ़ाने वाला कहा गया है। रुद्र वेगवान वायु समान मरुत्ों के पिता हैं। मरुत् पर्वतों को उखाड़ने में सक्षम हैं। वे पर्वतों को हिलाते हैं। ऋग्वेद के सात मरुत् प्रकारान्तर में उनचास हुए।

वेदों में पूर्व में देवता, दक्षिण में पितर, पश्चिम में मनुष्य एवं ''उत्तर में रुद्र निवास है।'' वेद की भुजाओं के खण्ड ऋृतु एवं मास हैं। ऋग्वेद में एकादश रुद्र, रुद्र की ही संतान रही। रुद्र की माताएँ–आकाश, अन्तरिक्ष एवं पृथिवी हैं। सारसंक्षेप में वेदीक से पौराणिक रुद्र का वास उत्तर में गिरीश हिमालय मेरु रहा। इसलिए पौराणिककाल में हिमवत के मेरुकैलास को रुद्र शिव का पवित्र क्षेत्र स्वीकारा गया। रुद्रअर्चना में कल्याणकारी शिव, शिवतर, शिवतम, शंभु, शंकर, मयोभव, मयस्कर, अघोर सुमंगल, शंगु, मीढुष्टम, त्विषीमत्, विद्युत्य, शिपिविष्ट, सहस्त्राक्ष आदि को नमन करते हैं। रुद्रसूक्त में ईश्वरको विश्वरूप कहा गया है, इसमें विरूप, भव (सब का सृजक पालनहार), शर्व (प्रलयकर्ता), भगवः ईशानः (ईश्वर), भवस्य हेतिः (संसार के दुःखों को दूर करनेवाला) आदि सम्मलित हैं। रुद्र का सूक्षमरूप, गण एवं व्रात हैं।

सृष्टि के स्वामी शिव रुद्र के एक अक्षर से द्विषष्ट अक्षर के चमत्कारी दिव्य मन्त्र हैं। एकाक्षरी मन्त्र–हौं, एकाक्षर चिन्तामणिमन्त्र–क्ष्रौः एकाक्षर तम्बुर–क्ष्म्र् यूँः, द्वय्क्षर दक्षिणामूर्ति मन्त्र–हंस, त्रयक्षर मृत्युंजय मन्त्र–ऊँ जूं सः, त्र्यक्षर नीलकण्ठ मन्त्र–प्रों त्रीं ठः,त्र्यक्षर चण्डेश्वर मन्त्र–ऊर्ध्व फट्, पाँचाक्षर ईशान मन्त्र–नमः शिवाय, षडक्षर मन्त्र–ऊँ नमः शिवाय, षडक्षर दक्षिणामूर्ति मन्त्र–महादेवाय हुं, सप्ताक्षर चण्डोग्र शूलपाणि मन्त्र–ऊँ ह्रीं हूं शिवाय फट्, सप्ताक्षर उमापतिमन्त्र–नमः शिवाय ह्रींय ऊँ ह्रीं हाँ नमः शिवाः, अष्टाक्षर सदाशिव मंत्र ऊँ ग्लौं नमः शिवाय, नवार्णदक्षिणा मूर्ति मन्त्र–ऊँ श्रीं नमः शिवाय ऊँ श्रीं एवं दशाक्षर नीलकण्ठ मन्त्र–ऊँ नमः नीलकण्ठाय स्वाहा हैं।

इसी क्रम में दिव्य शक्तिवान दशाक्षर रुद्र मन्त्र ऊँ नमो भगवते रुद्रायः, द्वादशाक्षर मृत्युंजय मन्त्र–ऊँ जूं सः पालय पालय सः जूं ऊँ, द्वाविंशदक्षर दक्षिणामूर्ति मन्त्र–ऊँ नमो भगवते दक्षिणामूर्तये महयं मेधां प्रयच्छ स्वाहा, चतुर्विशत्यक्षर मन्त्र–ऊँ नमो भगवते दक्षिणामूर्तये महयं मेधां प्रज्ञां प्रयच्छ स्वाहा, ऊन–त्रिंशाक्षर नीलकण्ठ मन्त्र–ऊँ नमो भगवते सर्वज्ञ–कण्ठं निं नील–कण्ठाय अमलाय क्षिप–क्षिप ऊँ स्वाहा, षट्–त्रिंशदक्षर दक्षिणामूर्ति मन्त्र–ऊँ हीं दक्षिणामूर्तये तन्यं वट–मूल–निवासिने, ध्यानैक–निरतांगाय नमो रुद्राय शम्भवे ह्रीं ऊँ, अष्ट–चत्वारिंशदक्षर मन्त्र–ऊँ भूः ऊँ भुवः ऊँ स्वः ऊँ त्र्यम्बकं यजामहे

सुगन्धि पुष्टि–वर्धनं, उर्वारूकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् ऊँ स्वः ऊँ भूः ऊँ, पाँचाशदक्षर मृत्युजय महामन्त्र–ऊँ हौं ऊँ जूं सः भूर्भुवः स्वः त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनं, उर्वारूकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीर मामृतात् भूर्भुवः स्व जूं सः हौं ऊँ, मृतसंजीवनी मन्त्र–ऊँ भूभुर्वः स्वः हौं ऊँ जूं सः त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धि पुष्टि वर्धनं, उर्वारूकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्, ऊँ हौं ऊँ जूं सः ऊँ भुवः ऊँ स्वः ऊँ त्र्यंम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टि–वर्धनं, उर्वारूकमिव बन्धान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् ऊँ स्वः ऊँ सः हौं भूर्भुवः स्वरोम, द्वि–षष्टय्क्षर महा–मृत्युंजय मन्त्र–ऊँ हौं ऊँ जूं सः ऊँ भुवः ऊँ स्वः ऊँ त्र्यंम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टि–वर्धनं, उर्वारूकमिव बन्धान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् ऊँ स्वः ऊँ भुवः ऊँ सः ऊँ जूं ऊँ हौं ऊँ स्वाहा आदि हैं। रुद्र का पाशुपतास्त्र मन्त्र–ऊँ श्लीं पशु हुं फट्य चण्ड भैरव मन्त्र–ऊँ हुं फट्, वीरभद्र मन्त्र–क्लीं ग्रीं वीरभद्र जय जय नमः स्वाहा एवं महा–शास्त्ा मन्त्र–शास्त्ारं मृगया श्रान्तश्वारूढ़ं गणावृत्तं, पानीयार्थं वनादेत्य शास्त्रे ने रैवते नमः है। ऊँ

कैलास के हिमनदों की
चार महान्दियों का जाल सात हजार किमी में

काश्मीर पामीर से भूटान तक कैलास गिरिराज फैला है। कैलास लिंगाकार ल्हा छू एवं झोड छू नदियों के वर्तुल के मध्य है। कैलास के हिमनद पर्यावरण में तापमान वृद्धि से लगातार अपना रूपाकार और केन्द्र बदल रहे हैं (पिण्डारी हिमनद् स्थित गंगोत्री का उद्गम गौमुख 22 किलोमीटर पीछे सरक गया है।)। वैसे हैमवत – हिमाद्रि – हिमगिरि – हेमवतं–हिमाचल–गिरिराज हिमालय (जिसमें पवित्र कैलास स्थित है।) ब्रह्मदेश से गांधार तक बाहें फैलाए है। हिन्दुकुश पर्वतमाला भी हिमालय के अन्तर्गत मानी गई है(ए. विंल्सन रायलः सन् 1875)। गिरिवर हिमालय की लम्बाई 2304 किलोमीटर एवं चौड़ाई 432 किमी है।

कैलास क्षेत्र के गुरला मांधाता पर्वत शिखर 25355 फीट पर एवं कैलास शिखर 22028 फीट पर है। कैलास में सर्दीयों में आमतौर पर 20 फीट से अधिक तक हिमपात होता है। नीले मनोरम आकाश में हिमपात से श्वेत कैलास का सौन्दर्य सम्मोहित करता है। पर्यावरण परिवर्तन से कैलास के हिमनद धीरे–धीरे आगे सरकते गए। कैलास हिमनदों से निकलनेवाली महान्दियाँ सत्लज शतद्रु–लड.चेन खंबब् 1296 किमी लम्बी, सिंधु–सिंगी खंबब्–2448 किमी लम्बी, ब्रह्मपुत्र–तंमचोक खंबब् 1680 किमी लम्बी एवं करनाली–मप्चा खंबब् 864 किमी लम्बी है। इन महान्दियों की सहायक प्रमख 29 नदियाँ–गुरला, यांगसे, ठितीफू, सिब छू, छिनकू, चौकरो, लालड.बा, गुनियाड.ती, दारमयाड.ती, कड.जे, गेजिन, डड.गेचेन, गरू, ज्ञानिमा छू, छूनक, मिस्सर छू, रिंगुंग, बलडक, ट्रोकपोनुप, ट्रोकपोशर, गोयक, मयुम, गरतोड., लड.पोछे, चुकटा, मुनजन, बोखर, छेठी आदि हैं।

प्रजापति ब्रह्मा की पवित्र रचना मानस सरोवर में आकर मिलनेवाली प्रमुख नदियाँ–रिजलुड., समो, पलचेन, टग, नीमापेंडी, नमेरेलडी, रिलजेन, सेलड.हुर्दड., कुगलुड., लुड.नक, ग्युमा आदि हैं। वहीं लंकेश्वर दशकन्ध रावण के रक्षताल की जल राशि नवजीवन देनेवाली सरितायें–कोड.यू छो, टककरपो, गंगा छू आदि हैं। दोनों ही मीठे पानी के सरोवर हैं। शेष लघुसरोवर न्यक छो, शम छो, कुर्क्यल छुंगो, तमलुड. छो, गौरी सरोवर–कुण्ड आदि हैं। इसके ठीक विपरीत खारे पानी की झीलें–अरगू छो, कोड.ग्यू गुनछो, अरकोक छो आदि हैं। मानसखण्ड की विशेषता यह है कि वर्षभर इसकी प्रधान पर्वत श्रृंखलायें–कैलास, सुरडें. कुड.लुड. एवं मांघाता रजत बर्फ से ढ़की रहती हैं। इसके फलस्वरूप कैलास के घेरे की हिमनदियाँ अपने स्वरूप को एक सीमा तक बनाए रखने में सफल रही हैं। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि भारतीय आर्षग्रन्थ पुराण एवं तिब्बती पुराणमें पूरब में महान्द् ब्रह्मपुत्र के उद्गम से आगे ठुकसुम, पश्चित में छिनकु नदी, उत्तर में सिंधु के उद्गम एवं गर्तोक और दक्षिण में भारत की सीमा को मानसखण्ड माना गया है। कलियुग में विश्व में मीठे पानी का प्रधान महास्त्रोत हिमालय और कैलास मानस खण्ड है।

महान्दी ब्रह्मपुत्र–तंमचोक खंबब् तिब्बत से चीन का सीना चीर कर भारत, बांग्लादेश होती 2419 किमी की महायात्रा के बाद समुद्र में समाती है। कैलास के आग्नेय कोण में 90.7 किमी पर चेमायुड.डुड. हिमनद, कुबी कुडन्री हिमनद के स्त्रोत से परब्रह्म स्वरूपा ब्रह्मपुत्र का उद्गम होता है। ब्रह्मपुत्र के किनारे किनारे चलते श्री बिमल दे कैलास पहुंचे। ब्रह्मपुत्र महान्दी के आम नदियों की तुलना में अनेक गुना मायवी विस्त्ारवाली महाविशाल जल प्रवाह लघु सागर का अनुभव कराती है। पवित्र सिंधु महान्दी सिंगी खंबब् तिब्बत भारत होती 2448 किमी मी दूरी तय करती पाकिस्त्ान के बाद अर्णव समुद्र को वरमाला पहनाती है। लद्दाख में सिंधु नदी के प्रवेश पर देवी के रूप में पूजा अर्चना की जाती है। वेदीक एवं पौराणिक देव नदी शतद्रु–सत्लज–जड.चेन खंबब् का पश्चिम में दुलचू गोम्पा के समीप दारमा याड.ती नदी के सिरे के दरमा घाटा हिमनदों से निकास है। शतद्रु तिब्बत भारत एवं पाकिस्त्ान में 1296 किमी का महापथ पार करती है। शतद्रु उत्तरी भारत के प्रदेशों के लिए संजीवनी है।

करनाली महान्दी का उद्गम कैलास मानस से वायव्य कोण में 42 किमी पर मप्च्याुचुंगो स्त्रोतों, लंपिया घाटे हिमनद आदि हैं। यह तिब्बत नेपाल में 864 किमी का रास्त्ा तूफानी वेग से पार करती है। तिब्बत में इसे मप्चाखंबब् के नाम से पुकारते हैं। तिब्बती परम्परा के अनुसार करनाली को छोड़कर शेष तीन महान्दियों की हिमनदियाँ निरन्तर स्थान बदलती रही हैं। अयोध्या की रामायणकालीन सरयू नदी में तिब्बत की लीपूलेख की कालीनदी टनकपुर में संगम करती है। सरयू का उद्गम नंदी नंदा कोट शिखर है। टनकपुर से आगे चलकर संगम की नदी का नाम शारदा हुआ। मप्चू खंबब् करनाली मानस खण्ड से नेपाल के बजरिये आकर घाघरा कहलाई।

पवित्र कैलास के उत्तरी भाग में लघु नदी कड.जम छू, दक्षिणी दिशा में तरछेन छू (छू/छो का अर्थ नदी) का स्त्रोत है। तरछेन छू का संगम झोड.छू में होता है। मानस सरोवर के पश्चिम में 2.16 किमी से 8. 64 किमी पर रक्षताल–रक्कसत्ाल–रावणह्रद–रावण सरोवर राक्षताल में मानस सरोवर वायव्य कोण से 'गंगा छू' पवित्र जल लाती है। तिब्बते इसे पवित्र गंगा कहते हैं। तिब्बत में कैलास पुराण के अनुसार मानस की

पूर्व दिशा से अश्वमुख के समान हिमनद से ब्रह्मपुत्र–तमचोक खंबब् अथवा ''पक्षु'' महान्दी निकलती है। कैलास पुराण में मानस के पश्चिम में हाथीमुख हिमनद से ''गंगा''–शतद्रु सत्लज लड.चेन खंबब्, उत्तर से सिंह मुख हिमनद से ''सित्'' सिंगी खंबब्–सिंधु और दक्षिण से मयूर मुख हिमनद से ''सिंदु'' मप्चा खंबब्–करनाली का उद्गम माना गया है। यह स्पष्ट है कि तिब्बत के पुराणकार शतद्रु को 'गंगा' मानते हैं। पुराकथाओं में पिण्डारी हिमनद् में माणाघाटा ''देवताल'' का उल्लेख है। देवताल की भूमिगत धारा से सरस्वती नदी का उद्गम कहा गया है। यह वर्तमान में अदृश्य है।

इसके ठीक विपरीत पिण्डारी हिमनद् में गंगा के उद्गम गौमुख से कैलास का मानस सरोवर वर्तमान में 205 किमी दूरी पर है। कैलास एवं मानस सरोवर क्षेत्र में दिव्य शान्ति, दिव्य पवित्र तंरगों का शक्तिपुंज, प्राकृतिक वशीकरण करता सौन्दर्य, निर्दोष नीला आकाश, स्फटिक की भांति चमकते कैलास की अलौकिकता एवं अध्यात्मिक भाव उत्पन्न करनेवाला वातावरण है।

कैलास मानसखण्ड में गर्म पानी के स्त्रोतों की शृंखला मिलती है। पुराण के भष्मासुर को उसी के वरदानी कड़े से भष्म करनेवाला पर्वत तीर्थपुरी कैलास से 40.32 किमी दूरी पर है। तीर्थपुरी में भी गर्म पानी के स्त्रोत हैं। वहीं मानस के एक छोर पर गर्म पानी (वह भी उबलता हुआ।) के आंतरिक स्त्रातों से फव्वारे छूटते हैं। मानस के दूसरे छोर के कोने में गर्मपानी नहरों से आता है। तीर्थयात्री इन्हीं गर्म पानी के कोनों में मानस सरोवर का पवित्र स्नान करते रहे। गंगा छू के किनारों पर गर्म पानी के स्त्रोत है। गंगा छू के मध्य चट्टान से गर्म पानी का कुंड सा लगता है। इसके गर्मपानी का तापमान 115 डिग्री से 130 डिग्री से पाया गया, यानी पानी खौलता है। न्योबा टोमोमोपो, छुफुक, अंबूफुक, ख्युड.लुड. आदि कैलास क्षेत्र में साधारण गर्म से उबलते पानी के स्त्रोत हैं। कैलास से नीचे बन्दरपूँछ से नन्दादेवी तक गंगा प्रस्त्रवण क्षेत्र है। बंदरपूछ में गर्म पानी कुण्ड है। ऊँ

गहरे बैंगनी अध्यात्मिक रंग के मेरुप्रासाद का भव्यलोक

विश्व की छत–तिब्बत का पठार मध्य एशिया से चीन तक 25 लाख वर्ग किलोमीटर में पसरा है। यह पठार पूर्व से पश्चिम 2500 किलोमीटर एवं उत्तर से दक्षिण में 1000 किलोमीटर लम्बा चौड़ा है। इसके प्रमुख चौदह महापर्वतों के शिखर औसत्न 14800 फीट से 26000 फीट ऊँचे हैं। इन्हीं महापर्वतों में दिव्य सुमेरु–मेरु–कैलास–प्रमुख है।

मेरु कैलास की चट्टानों और समवर्ती पर्वतों के पत्थरों चट्टानों का गहरा बैंगनी रंग है। आर्ष ग्रन्थों में बैंगनी रंग को गहन अध्यात्मिकता का प्रतीक माना है (अग्निमय रक्तिम् वर्ण को सभी भौतिक कामनाओं को दग्धकर भष्मीभूत करने और नीली आभा को संकल्प एवं आत्मविश्वासवाला माना गया है। मानवीय आभा मण्डल में बैंगनी आभा अध्यात्मिक रूझान को प्रदर्शित करती है। सौरमंड़ल से भी पराबैंगनी किरणें आती हैं।)। इस परिदृश्य में गहरे बैंगनी वर्ण के मेरु का स्थान स्वतः ही सर्वोच्च है।

गहरे बैंगनी मेरु एवं सम्बद्ध पर्वतों के शिखरों पर रजत हिम आवरण (बर्फ की मोटी चादर) सूर्योदय में उषाकाल से लगातार इन्द्रधनुषी छटा बिखेरती हैं। कभी मेरु के स्वर्णमय होने का अनुभव होता है और कभी सूर्य की भांति सिन्दूरी या रक्तिम रूप लेकर चुम्बकीय आकर्षण से अपनी ओर खींचकर आमन्त्रित करता है। उषाकाल से सूर्य किरणों के रंगों के रसरंजन की अपनी स्वर्गीय अनुभूति है। मेरु सूर्य की किरणों के वर्णों पर नटराज की तरह नर्तन करने लगता है। उस समय मन और हृदय मेरु के दिव्य रूप में खो जाता है।

यह भी अभूतपूर्व है कि मेरु कैलास के लघु एवं विशाल पर्वतों की मेखला की चट्टानें भी गहरी से गहरी बैंगनी हैं। कैलास आगे, पीछे, दायें, बायें पर्वतों की करधनी गहरी खाई हिम–बर्फ से लबालब है। सन 1904 में लंदन से प्रकाशित श्री ग्राह्म सण्डबर्ग की एक्सप्लोरेशन ऑफ

टिबेतःइटस हिस्ट्री एण्ड पर्टीकुलर्स फोर्म : सन 1623 टू 1904 में कैलास का रंग गहरा बैंगनी होने की पुष्टि की गई है। श्री सण्डबर्ग ने कैलास के आसपास के पर्वतों में भी बैंगनी पत्थर चट्टानों का भी विवरण दिया है। यमद्वार से मानस सरोवर कैलास में प्रवेश भी तिलिस्म जैसा है (अधिकांशः तीर्थयात्री करधनी के एक ही पर्वत से घुसकर आन्तरिक प्रदक्षिणा में जुटते हैं और अन्त में पता चलता है कि पवित्र कैलास के स्थान पर करधनी के एक ही पर्वत की परिक्रमा कर वापस लौट आये।)। श्री ग्राह्म सण्डबर्ग ने स्वीकारा कि कैलास परिक्रमा प्रवेश पर श्रृंखला (करधनी–वरुणपाश) में पीछे कहीं अधिक पर्वत हैं। कैलास के पश्चिम में घाटी (घाटा) दो से तीन मील (3.2 किमी से 4.9 किमी) गहरी है। कैलास की ओर पूरब से प्रवेश में 150 फीट चौड़ी और 3 फीट गहरी लाव छू जलधारा से सामना करना पड़ता है। परिक्रमा में महागणपति की सूंडाकृति का पर्वत भावविभोर करता है। साथ ही आगे श्रीआदिहनुमत की मुखाकृति प्रकृति के चितेरे विश्वकर्माओं ने प्राकृतिक रूप से करधनी के एक पर्वत पर उकेरी लगती है। वरुणपाश के एक ओर छह पर्वत शिखर देव सेनानी श्रीषणमुख कार्तिकेय मुरगन की कृपा वर्षा करती प्रतीत होती है (भगवान् कार्तिक एवं गजानन सदाशिव के सुपुत्र हैं।)।

यह उल्लेखनीय है कि समुद्र मंथन में महापर्वत मेरु मथनी और परब्रह्म शिव का वासुकी महासर्प रस्सी बने थे। महासर्प वासुकी नाग के आशीर्वाद देते फन की हिमाकृति शिखर का हिम पर्वत भी पौराणिक काल में ले जाता है (परब्रह्म शिव के कण्ठ में महाविषधारी वासुकी महासर्प और शरीर नाग कुण्डल, नाग यज्ञोपवित आदि कुल 8 प्रकार के विषधर महासर्प कालातीत होने का द्योतक है। इसलिए परब्रह्म शिव को काल का भी महाकाल स्वीकारा गया।)। यह इन्द्रजाल है कि पर्वत का हिम शिखर महासर्प वासुकी नाग आकार का कैसे हुआ?

कैलास – मानस सरोवर क्षेत्र में दिव्य पुष्प – ब्रह्मकमल, पद्मकमल, नीलकमल आदि मन्त्रमुग्ध करते हैं। कैलास के दिव्य ब्रह्मकमल का हल्का बैंगनी रंग मोहक है। विचित्र ब्रह्मकमल अनेक खण्डोंवाला होता है। उधर पद्मकमल पीले रंग का होता है। सर्पाकृति का पुष्प सम्मोहक है। विशेषज्ञों के अनुसार बर्फीली चट्टानों के बीच ब्रह्मकमल, पद्मकमल आदि पाये जाते हैं। लेकिन ये सदाशिव कृपा से ही

मिलते हैं। पर्वत वरुणपाश का प्रमुख दिव्य सरोवर गौरीकुण्ड है। यह गहरी घाटियों के नीचे और आद्यशक्ति जगतजननी गौरीशिवा पार्वती के दिव्य स्नान के कारण इसका जल अनन्त शक्ति सम्पन्न है। हाल ही इन्द्रप्रस्थ के एक सन्यासी (नाम गोपन के वचन पर) ने बताया कि उन्होंने भगवती गौरी को साष्टांग प्रणामकर स्नान की अनुमति मांगी (गौरीकुण्ड में लगभग वर्ष भर बर्फ जमीं रहती है। अतः तीर्थ यात्रियों को बर्फ तोड़कर मुख एवं कान पर लगाकर प्रतीक रूप में स्नान करना होता है।)। सन्यासी ने गौरीकुण्ड की हिम परत तोड़कर हिमवत जल में प्रवेश किया। यह चमत्कार रहा कि स्नान के बाद अप्रत्याशित रूप से सन्यासी में अनन्त ऊर्जा का संचार हुआ। वे दौड़कर कैलास परिक्रमा के पर्वतों पर चढ़ने लगे (विज्ञान भले ही गौरीकुण्ड के दैविक शक्तिवाले जल को कल्पना कहकर खारिज करें। विज्ञान भगवती गौरी स्नान जल से शक्तिपात को कैसे स्वीकारेगा? वास्त्व में भारतीय आस्था, विश्वास, संकल्प विज्ञान की समझ से कोसों दूर है।)।

वैज्ञानिक कैलास "सैक्रेड लैंडस्केप (केएसएल)" में हिमनदों के अध्ययन में लगे हैं। केएसएल का क्षेत्र 31 हजार वर्ग किलोमीटर में पैर पसारे है। हिन्दुकुश से हिमालय की बाहों में हिमनदों में 20000 से अधिक हिमजल की झीलें हैं (ऐसी ही एक पिण्डारी हिमनद की झील टूटने की भविष्यवाणी है।)। कैलास के हिमनद और बर्फ से ढ़के पर्वतों का अपना वैभव है। शिवोपनिषत् में (अप्रकाशित उपनिषद् : सम्पादन डॉ. कुंनन राज, सन् 1933, अडयार पुस्त्कालय, अडयार, मद्रास) मेरुप्रासाद वैभव का चकाचौंध करनेवाला वर्णन है।

मेरुप्रासाद वैभव के भी दो प्रकार हैंः अध्यात्मिक एवं भौतिक। शिवोपनिषत् मेरुप्रासाद वैभव में गोपनीय अध्यात्मिक साधना पक्ष को सांकेतिक प्रतीकात्मक कूटात्मक रूप में प्रस्तुत करती है। मेरु में शिवायतन पूजा, शरीर में यन्त्र रूप मेरु स्थापना, सर्वज्ञ होकर आत्मा में निवास आदि का विवरण मिलता है। इसके ठीक विपरीत साकार सकाम सगुण परब्रह्म शिव के निवास और पूजा पद्धति भूलभुलैय्या लगती है। यह विरोधाभास नहीं है। वास्त्व में सकाम साकार सगुण परब्रह्म उपासना से निष्काम निराकार निर्गुण परब्रह्म साधना का तिलिस्म भेदन होता है। यानी परब्रह्म शिव और उनकी दिव्य शिवपुरी के मेरु कैलास प्रासाद के

दोनों ही रूप हैं। यह साधक और उसके अध्यात्मिक ज्ञान – प्रज्ञा पर निर्भर है कि वह मेरु अर्थात् कैलास को कहाँ स्थापित करता है? कैलास शैव मत में सर्वोच्च साधना तपश्चर्या महाशक्ति केन्द्र है। कैलास पर्वत शिखरों की करधनी का भव्य महान्‌ायक है। ऊँ

कैलास तन्त्रः
कैलास तत्त्व का ब्रह्मात्मा में निवास

अन्ततः महारुद्र महादेव के पृथिवी पर निवास हिमालय के कैलास तन्त्र का रहस्योद्‌घाटन होता है। कैलास यानी शिवपुरी की महागोपनीय अध्यात्मिक उपासना साधना ध्यान योग तन्त्र (पद्धति) का मूलतत्त्व अनन्त अदृश्य आवरणों के मध्य है। ये रहस्यमय आवरण पारदर्शी हैं।

यह स्पष्ट है कि कैलास तन्त्र सहज पारदर्शी और अनगिनत आवरणों का केन्द्र बिन्दु है। यह शिवायतन में साधना के प्रकार पर निर्भर है कि साधक तत्त्व ज्ञान प्राप्ति मानकर कहाँ साधना रोक देता है। आर्ष ग्रन्थों में मेरु कैलास की भव्यता के शब्दों के इन्द्रजाल के मध्य तत्त्व ज्ञान दिया गया है। यह गोपन तत्त्व ज्ञान केवल साधक ही समझ सकते हैं। ऋषि लिखते हैं कि पृथिवी के जम्बूद्वीप में आठ पर्वतों, आठ अर्णवों–समुद्रों के मध्य में महादेव शिवपुरी का दिव्य कैलास मेरु प्रासाद स्थित है (प्रासाद का अर्थ देवालय एवं देवताओं के आराध्य स्थल से है। कैलास में अनेक ब्रह्माण्डों के सौरमण्डलों से देवी देवता आकर उपासना, साधना, भक्ति करते हैं। कैलास क्षेत्र में वेदीक ऋषियों के साधना आश्रम हैं। सभी पवित्र कैलास को देवालय या प्रासाद मानते हैं।)।

इसके वर्णन का सारसंक्षेप इस प्रकार है : अष्ट पर्वतों, अष्ट (आठ) अर्णवों से घिरे मेरु के अनेक शिखर झिलमिलाते चमकते रत्न जड़ित है। जहाँ देवीय वाहन खड़े हैं। इस मेरु के चार महाद्वार और चार महावन हैं। इसके दिव्य महाद्वार चार बाणों से युक्त है। यहाँ

ऋषिवरों ने सांकेतिक प्रतीकात्मक भाषा का प्रयोग किया है। "चार बाणों का अपना तांत्रिक प्रयोजन" है। इसमें चार पुर बनाए गए हैं और उनके चार प्रकार हैं। इस प्रकार देव विश्वकर्मा ने शिवपुरी को बहुमूल्य रत्नों से आभूषित कर मेरु कैलास की संरचना की (ये चार पुर एवं चार प्रकार भी रहस्यमय हैं।)। यह कैलास रजत हिम का अंगवस्त्र–दुशाला धारण किए है। जो इसे वनों से युक्त बनाता है, उसे अनन्त शुभ फल प्राप्त होते हैं। उसे भूमि पर जितने अनन्त परमाणु हैं, उतना ही पुण्य मिलता है।

आर्ष ग्रन्थों के अनुसार शिवायतन पुण्यकारी है। शिव का प्रासाद पुण्यों का शक्ति पुंज है। इसमें सेवक, स्त्रीगण और अनन्त कुल हैं। मूलतः महादेव के दिव्य स्वरूप की तरह ही उनका शिवायतन है। इसमें आश्रय और शिव की पूजा से सभी लोकों में पूजित होता है। दूसरे शब्दों में सभी सौरमण्डल में एकमात्र महारुद्र ही पूजित हैं। शिवायतन पूजा से साधक बारम्बार जन्म मरण के चक्र से मुक्त हो जाता है। शिवाराधना शिवसाधना से उपासक सर्वज्ञ हो जाता है और आत्मा में निवास करता है (शिवायतन शिव पूजा, शिव साधना का प्रकार है।)। आर्ष ग्रन्थ कैलास की भव्यता के बीच कैलास तन्त्र का वर्णन करते हैं। मेरु कैलास यन्त्र जाग्रत कर शरीर में स्थापित किया जाए (यहाँ यन्त्र गुप्त है।)। सदाशिव के लिए इसे बनवाकर हाथ पर धारण करने से आनन्द स्वरूप हो जाता है। जैसे जल में पैदा हो। यन्त्र में वह (परब्रह्म) दण्ड से परिपूर्ण हो। ईश्वरीय प्रतिमा सौम्य हो, सभी दैवीय लक्षणोंवाली हो। वहाँ चन्द्रमा की शोभा हो। भूतनाथ की शोभा हो। इसे हाथ में भी स्थापित करें।

शत (सौ) कुम्भ (कलश) के समान ऊँची वेदी को निर्मित करें। सभी दैविक लक्षणोंवाली पुरूष के समान उन्नत प्रतिमा स्थापना करें। इस भव्य प्रतिमा के बायें हाथ में त्रिशूल हो और दूसरा वरद हस्त् हो। ईश्वर जटाजूटधारी हों। उन्हे पद्म सिंहासन पर स्थापित करें। वृषभ समान ऊँची वेदी पर प्रभावान मुखमण्डल हो। साथ ही दिव्य महाभैरव स्वरूपणी अत्यन्त सुन्दर सौम्य योगमुद्रा में है। इसका निर्माण विशुद्ध स्वर्ण करें। आरकूटमयी मिट्टी ताम्बे पत्थर से भी प्रतिमा निर्माण कर सकते हैं। आर्ष ग्रन्थ अप्रत्याशित रूप से विषयान्तर कर लिखते हैं कि समस्त् रूप वाले अक्षरों से पट लिखना चाहिए। फिर एकाएक लिखते हैं कि फलक की

रचना सम्पूर्ण भक्तिभाव से हो। महादेव शिव की पार्वती और गणयुक्त संरचना की जाए। ताम्र, पीपल आदि के चतुर्मुखों में एक मुख स्वर्ण निर्मित हो। इनमें अलग अलग सौम्य एवं भैरव रूप हों। इसे सभी आभूषणों से सजाया जाए। यह महादेव शिव की भव्य रथयात्रा को साकार करें। इसकी फलश्रुति का वर्णन आवश्यक नहीं है। कैलास तन्त्र में शिवपुरी मेरु का ब्रह्मात्मा में निवास है और बाह्याचार की पृष्ठभूमि में बहुत ही कूट संकेत में निराकार परब्रह्म सदाशिव की उपासना का "मूल तत्त्व ज्ञान" है। कैलास निराकार ब्रह्म साधना शिवमय होकर करने का तन्त्र है। इसका वर्णन इस प्रकार मिलता है :

कैलास मेरु प्रासाद वैभव

भूमिभागे सविस्त्तीर्णे जम्बूद्वीपं प्रकल्पयेत्।
अष्टावरणसंयुक्तं नगेन्द्राष्टकभूषितम्।।
तन्मध्ये कारयेद्दिव्यं मेरुप्रासादमुत्तमम्।
अनेकशिखराकीर्णमशेषामरसंयुतम्।।
बहिः सुवर्णनिचितं सर्वरत्नोपशोभितम्।
चतुःप्रग्रीवकोपेतं चक्षुर्लिंगसमायुतम्।।
चतुर्दिक्षु वनोपेतं चतुर्भिः संयुतैः शरैः।
चतुर्णो पुरयुक्तेन प्राकारेण च संयुतम्।।
मेरुप्रासादमित्येवं हेमरत्नविभूषितम्।
यः कारयेद्वनोपेतं सोऽनन्तफलमाप्नुयात्।।
भूम्यम्भःपरमाणूनां यथा सङ.ख्या न विद्यते।
शिवायतनपुण्यस्य यथा सङ.ख्या न विद्यते।।
कुलत्रिंशकसंयुक्तः सर्वभृत्यसमन्वितः।
कलत्रपुत्रमित्रैश्रच सर्वस्वजनसंयुतः।।
आश्रितोपाश्रितैः सर्वैशेषगणसंयुतः।
यथा शिवस्त्थैवायं शर्वलोके स पूज्यते।।
न च मानुष्यकं लोकमागच्छेत् कृपणं पुनः।
सर्वज्ञः परिपूर्णश्च मुक्तः स्वात्मनि तिष्ठति।।
यः शिवाय वनं कृत्वा मुदाब्दसलिलोत्थितम्।

तद्दण्डकोपशोभं च हस्ते् कुर्वीत सर्वदा।।
शोभयेद्भूतनाथं वा चन्द्रशालां क्वचित् क्वचित्।
वेदीं वाथाभ्यपद्यन्त प्रोन्नताः स्त्म्भपङ्.क्तयः।।
शातकुम्भमयीं वापि सर्वलक्षणसंयुताम्।
ईश्वरप्रतिमां सौम्यां कारयेत् पुरुषोच्छ्रिताम्।।
त्रिशूलसव्यहस्त्ां च वरदाभयदायिकाम्।
सव्यहस्त्ाक्षमालां च जटाकुसुमभूषिताम्।।
पद्मसिंहासनासीनां वृषस्थां वा समुच्छ्रिताम्।
विमानस्थां रथस्थां वा वेदीस्थां वा प्रभान्विताम्।।
सौम्यवक्त्रां करालां वा महाभैरवरूपिणीम्।
अत्युच्छ्रितां सुविस्त्ीर्णो नृत्यस्थां योगसंस्थिताम्।।
कुर्यादसंभवे हेन्मस्त्ारेण विमलेन च।
आरकूटमयीं वापि ताम्रमृच्छैलदारुजाम्।।
अशेषकैः सरुपैश्च वर्णकैर्वा पटे लिखेत्।
कुड्ये वा फलके वापि भक्त्या वित्तानुसारतः।।
एकां सपरिवारां वा पार्वतीं गणसंयुताम्।
प्रतीहारसमोपेतां कुर्यादेवाविकल्पतः।।
पीठं वा कारयेद्रौप्यं ताम्रं पित्तलसंभवम्।
चतुर्मुखैकवक्त्रं वा बहिः काञ्चनसंस्कृतम्।।
पृथक्पृथगनेकानि कारयित्वा मुखानि तु।
सौम्यभैरवरूपाणि शिवस्य बहुरूपिणः।।
नानाभरणयुक्तानि हेमरौप्यकृतानि च।
शिवस्य रथयात्रायां तानि लोकस्य दर्शयेत्।।
उक्तानि यानि पुण्यानि सङ्.क्षेपेण पृथक् पृथक्।
कृत्वैकेन ममैतेषामक्षयं फलमाप्नुयात्।।
मातुः पितुः सहोपायैर्दशभिर्दशभिः कुलैः।
कलत्रपुत्रमित्राद्यैर्भृत्यैर्युक्तः स बान्धवैः।।
अयुतेन विमानानां सर्वकामयुतेन च।
भुङ्.क्ते स्वयं महाभोगानन्ते मुक्तिमवाप्नुयात्।।
(अप्रकाशित उपनिषद् : शिवोपनिषत् सन 1933) ऊँ

मेरु : नटराज शिव के चौदह बार डमरू बजाने से "मातृका" उत्पत्ति

नृत्तावसाने नटराजराजो–नाद ढक्कां नवपाँचवारम्।
उद्धत्तुर्कामः सनकादिसिद्धान् एतद्विमर्शे शिवसूत्रजालम्।।

शिवपुरी कैलास से महामुनीश्वर नन्दिकेश्वर से सनक आदि मुनियों ने भगवान् शिव के ढक्कानाद के व्याज से तत्त्व उपदेश का तत्त्वार्थ पूछा। उनके उत्तर में महामुनीश्वर ने निम्नविवृत 27 कारिकाओं में तत्त्वोपदेश के बारे में उपरोक्त श्लोक कहाँ नटराज सदाशिव ने अपने आत्मतत्त्व को प्रकाशित करने के लिए नृत्त के अन्त में चौदह बार ढक्का डमरू बजाया। उससे जो वर्ण निकले, वह मातृका हैं। शिवसूत्रजालम् का अर्थ शिव द्वारा बताये अति रहस्य–रूप सूत्रजाल है। शिव अर्थात् कल्याण के कारण ये सभी वेद मन्त्रों के उपादान होने से कल्याण रूप सूत्र समूह हैं और इन्हे विचारकर प्रकाशित किया है। इन्हीं अन्त्यवाले चौदह वर्णों का उपदेश भगवान् महादेव ने पाणिनी आदि ऋषियों की इष्टसिद्धि के लिए दिया।

इससे यह सूचना मिलती है कि सुमेरु–मेरु–कैलासवासी शिव आदि अन्तरहित एवं वेद के भी मूल हैं। अद्वैतवाद की सिंहगर्जना करते हुए श्री शंकर आचार्य (आदिशंकराचार्य) ने सौन्दर्यलहरी में कहा :

शिवः शक्त्यां युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुं।
ने चेदेवं देवो न खलु कुशलः स्पन्दितुमपि।।

श्री शंकर आचार्य ने आद्यशक्ति के मातृभाव से नख से शिख वर्णन में यह स्पष्ट किया कि सदाशिव जब शक्ति रहित होते हैं, तब वे शव हो जाते हैं। वहीं शैवागम तन्त्रों में घोषणा की गई कि एक शिवतत्त्व में (इच्छाशक्ति से पराशक्ति कुण्डलिनी) संगत एवं नित्य है। यही विश्व के एवं शब्दमय सृष्टि का जनक है। शिवात्मक बिन्दु है और उसका बीज शक्त्यात्मक है। बिन्दु एवं बीज के योग से नाद उत्पन्न हुआ। तीनों से

क्रमशः रौद्री, ज्येष्ठा एवं वाम शक्ति उत्पन्न हुई। शैव मत के अनुसार शिवपुरी मेरु का संबंध "नाद ब्रह्म" से है।

श्रीकृष्ण को अध्यात्मिक जन सूर्य कहते हैं। साथ ही गोपियाँ सूर्य की किरणे हैं। वैसे पृथिवी भी कृष्ण कहलाती है। श्रीकृष्णयामलमहातन्त्रम् कृष्ण और सूर्य के अद्वैत की व्याख्या करता है। सनत्कुमारसंहिता राधाकृष्ण तत्त्व के गूढ़ रहस्य को परत दर परत खोलती है। वेदीक वांगमय में कृष्ण को सूर्यमण्डल, निरूक्त में कृष्ण को सूर्य–चन्द्र–पृथ्वी, शतपथ ब्राह्मण में कृष्ण को यज्ञ और भगवद्गीता में कृष्ण को आदित्यानामहं विष्णुः कहा गया है। सूर्य रूपी कृष्ण ही गोविन्द और गौ उनकी किरणें हैं। शैव मत में भक्ति मार्ग में – दासमार्ग, सहमार्ग आदि मार्ग चतुष्टय हैं। इस प्रकार अद्वैतवादी शैवों में ज्ञान मार्ग के साथ ही पूर्ण भक्ति की गंगोत्री बह रही है।

कैलास में शिव उपासना में भाव से महाभाव में प्रवेश के दो मार्ग आवर्तन क्रम एवं सरल मार्ग हैं। मूलतः भक्ति हला्दिनी शक्ति है। शास्त्रों में भाव की आगामी सीढ़ि प्रेम एवं शुद्ध भक्ति महाभाव है। परन्तु भाव संचारी एवं अन्य दो माने गए हैं। साधना द्वारा भाव को महाभाव में परिणित करना ही भाव साधना का चरम है। महादेव शिव ने "वासुदेव रहस्य" में वासुदेव को त्रिपुरसुन्दरी की उपासना का निर्देश दिया। दसमहाविद्याओं में सर्वोपरि त्रिपुरसुन्दरी सदाशिव के हृदय में विराजमान है। शिव भक्ति मार्ग में यक्षराज पुष्पदंत का शिवमहिम्न स्त्ोत्रम्, दशकंधर दशानन लंकेश्वर रावणकृत शिव ताण्डव स्त्ोत्रम्, रुद्राष्टक, रुद्रपाठ, पाँचाक्षरी स्त्ोत्र आदि मील के पत्थर बने हैं। श्रीकृष्णयामलमहातन्त्रम् में भगवान् शंकर की शिवपुरी कैलासलोक के मेरु का विशेष उल्लेख मिलता है।

मेरीरीशानभागे तु हरिवर्ष सुशोभनम्।
यत्र वै नृहरिं देवं प्रह्लादोऽर्चति नित्यदा।।33:2।।
ततो मेरोर्वायुकोणे रम्यके वर्षसत्र(त्त) मे।
भगवन्तं मत्स्यरूपमर्चन्ति तत्र पुरुषाः ।।39:2।।
सुमेरोरग्निकोणे च भारते वर्षसप्त(त्त) मे।
नरनारायणं देवं नारदः समुपास्ति् च ।।54:2।।
सुमेरोरूतरे भागे मध्ये तु लवणाम्बुधेः।

विष्णुलोको महान् प्रोक्तः सलिलान्तरसंस्थितः।।57:2।।
समुद्रमथनार्थं तु मन्दाराद्रिधरोऽप्ययम्।
मेरोस्तु नैर्ऋत भागे कुरूवर्षे वसुन्धरा।।48:2।।
सुमेरोर्दक्षिणे भागे वर्ष किम्पुरूषे कपिः।
हनुमान् वायुपुत्रोऽमंजनाकुल रंजनः।।51:2।।
मेरोर्दक्षिणदिग्भागे जम्बूवृक्षोऽतिशोभनः।
अनेकयोजनोच्छ्रायो जम्बूद्वीपस्त्दाख्यया।।59:2।।

शास्त्र में आठ को यानी आदिब्रह्म–विष्णु–रुद्र–गणेश–वाराही आदि को यामल कहा गया है। जैसे आर्ष ग्रन्थों में 8 प्रमुख यामल तन्त्र और कुल 70 यामलों का उल्लेख मिलता है। कृष्ण यामल में कैलास मेरुवर्णन रहस्यमय अध्यात्मिक आवरण में लगता है। इसके अनुसार दिव्य मेरु के उत्तरपूर्व ईशान भाग में हरा भरा प्रदेश सुशोभित है। जहाँ प्रह्लाद द्वारा नरहरि देव की हमेशा अर्चना की जाती है या हो रही है। मेरु के वायुकोण में मंत्रमुग्ध करनेवाला क्षेत्र है। इसमें ब्रह्म के मत्स्य स्वरूप की आराधना की जा रही है। सुमेरु के अग्निकोण में भारतवर्ष स्थित है। इस पवित्र भूमि पर देवर्षि नर नारायण की उपासना में लगे हैं (नर नारायण ऋषि ने पिण्डारी हिमनदवाले बदरिकाश्रम वन में पार्थिव–मिट्टी का शिवलिंग बनाकर महादेव की तपश्चर्या की।)। सुमेरु के उत्तर भाग में दुग्ध अथवा नमक का अर्णव है। स्मरण रहे कि महाविष्णुलोक क्षीर सागर नीर में स्थित है। देवताओं दानवों को 'श्री' की पुनः प्राप्ति के लिए समुद्र मंथन चला। इसमें सुमेरु मंदराचल को मथनी का निमित्त बनाया गया। सुमेरु के दक्षिण पश्चिम नैऋृत कोण में कुरू देश है। सुमेरु के दक्षिण में किंपुरूष देश अर्थात् तिब्बत त्रिविष्टप है। किंपुरूष के देव कपि हैं। अर्थात् वायुदेव और माता अंजनी के सुपुत्र कुल को सुशोभित करते हुए विराजमान हैं। मेरु के दक्षिण में बहुत सुन्दर जम्बू वृक्ष की अद्भुत शोभा है (मानस सरोवर में कल्पवृक्ष के फल गिरने से जम्ब की ध्वनि होती है। यहीं से जम्बू नामकरण हुआ।)। जम्बूद्वीप अनेक योजन में फैला है और उसमें भव्य जम्बू वृक्ष हैं। किंपुरूषवर्ष त्रिविष्टप तिब्बत के कैलास महापर्वत से निकलनेवाली सत्लज वितस्त्ा आदि महान्दियों के वैभव की गाथा का भी उल्लेख है।

चर्मण्वती यौन्व (रोध)वती वितस्त्ा सरयूस्त्था।

वेदस्मृतिः शतद्रुश्च विश्चा (श्वा)सिक्री तथैव च।।

श्री कृष्णयामलमहातन्त्रम् में सुमेरु को पृथ्वी के मध्य स्वर्ण का कहा गया है (सुमेरु पृथ्वी की नाभि है।)।

पृथ्वीनाभिगतं वर्षं तन्मध्ये स्वर्णपर्वतः।
सुमेरुः पर्वतस्त्स्य पर्वताः सुमनोहराः।।
नीलः श्वेतः श्रृंगवांश्च रम्यकोऽथ हिरण्यमयः।
हिमवान्निषदो (धो) विन्ध्यो माल्यवान गन्धमादनः।।
सुपार्श्वः कुमुदश्चैव मन्दरो मेरुमन्दरः।
अन्ये च गिरयो साध्वि रत्नधातुविचित्रिताः।।

सारसंक्षेप में इसका अर्थ है कि पृथ्वी की नाभि में स्वर्ण पर्वत मेरु का पवित्र स्थान है। सभी पर्वतों में सुमेरु प्रधान पर्वत है और मन को मोहनेवाला है। इसके नीले श्वेत स्वर्ण सरीखे शिखर रमणीय हैं। हिमालय, विन्ध्याचल, माल्यवान एवं गन्धमादन इसकी मेखला हैं। इसके सुपार्श्व में कुमदनियाँ–कमल की दिव्यछटा है। मंदरांचल मेरु पर्वत दूसरे पर्वतों के मध्य रत्न जड़ित होकर शोभामान है। सारांश में मेरु की सभी दिशाओं के देश और पर्वतों का विवरण वर्तमान से भी मेल खाता है। ऊँ

देव चिकित्सक अश्विनौ देवता ने दधीची ऋषि के घोड़े का सिर लगाया

देव लोक के दिव्य चिकित्सक अश्विनौ देवता ने महर्षि दधीची के घोड़े का सिर लगाकर शरीर अवयवों को जोड़ने के चमत्कार का प्रदर्शन किया। महर्षि दधीची अथर्वकुल में जन्में मधु विद्या के प्रकाण्ड ज्ञाता हैं। वेदीक ऋचा में इसका उल्लेख है :

आथर्वणायाश्विना दधीचे ऽश्व्यं शिरः प्रतयैरयतम्।
स वां मधु प्र वोचदृ–तायन हवाष्ट्रं यद दस्त्रावपिकक्ष्ये वाम।।

शतपथ ब्राह्मण में उल्लेख मिलता है कि देवराज इन्द्र ने चमत्कारिक चिकित्सा की मधु विद्या महर्षि दधीची को प्रदान दी। साथ ही इन्द्र ने कहा कि यह गोपनीय दिव्य चिकित्सा मधु विद्या को किसी को सिखाया तो तुम्हारा सिर काट लूंगा। अश्विनी देवों ने महर्षि दधीची से मधु विद्या सीखाने की प्रार्थना की। दधीची ने इन्द्र की शपथ का बयान किया। तब अश्विनी कुमारों ने घोड़े का सिर काटकर दधीची को लगाया और उनका सिर छिपा दिया। दधीची ने घोड़े के सिर से अश्विनी देवों को आयुर्विज्ञान के रहस्य मधु विद्या की दीक्षा दी। क्रोधित इन्द्र ने दधीची के घोड़े के सिर को काट दिया। अश्विनी कुमारों ने पुनः दधीची का सिर लगाकर मानवीय रूप दिया। दधीची के शिक्षण ने अश्विनी देवों को टूटे अवयवों को जोड़ने की विद्या प्रदान की। यानी ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद के काल में ऋषियों ने श्रवण और दर्शन से ब्रह्मपरमेश्वर से आयुर्विज्ञान चिकित्सा का ज्ञान लिया।

वेदीक अश्विनौ देव कायाकल्प में भी पारंगत थे। च्यवन ऋषि वृद्ध थे और पत्नी की इच्छा करने लगे। उस समय अश्विनी कुमारों से कायाकल्प की प्रार्थना की। अश्विनी देवों ने वृद्ध च्यवन ऋषि की चमड़ी शरीर से कवच की तरह उतार दी और युवॉ बना दिया। अतः अश्विनी देवों ने औषधि योजना से वृद्ध ऋषि के शरीर से पुरानी त्वचा को उतारकर तरूण बनाया।

प्र च्यवानात जुजुरूष, वव्रिम अत्कम न मुंचय।
युवा यदि कृथः पुनः आ कामम् ऋण्वे वध्वः।।

इतनी ही नहीं असुरों द्वारा दैविक साधनारत अत्रि ऋषि को कारावास में आग से जलाया गया। अत्रि ऋषि ने अग्नि से जलने पर अश्विनौ देवों की आराधना की। अश्विनी देवों ने अग्नि में झुलसे ऋषि का कायाकल्प किया। याभिः शुचन्ति धनसां सुषंसदं तप्त धर्म मोम्यावन्तमत्रये, याभिः पृश्निगुं पुरूकुत्समावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम्। वेद में कहा है कि सोम, सूर्य और अग्नि मनुष्यों की सहायता के लिए सिद्ध हैं। अश्विनी देवों ने द्युलोक की दिव्य औषधियों–प्राणरक्षक दिव्य रसायन जल को पृथ्वी पर भेजा। अश्विन देवों को पर्वतीय खनिजों, वनस्पति, भूमि और जल से चिकित्सा का महारथी माना गया है। महर्षि गौतम, पुरूमीलह आदि ने भी रक्षा के लिए अश्विनी कुमारों का आह्वान

किया। अश्विनी देवों से प्रार्थना की गई है कि वे आराध्यक के शरीर को निरोग, निर्दोष रखें। ऋषि तुग्र के पुत्र तपस्वी भुज्यु अश्विनी देवों की कृपा से वृद्धावस्था रूपी कष्ट से छुटकारा पा गया। अर्थात् दीर्घायु बना।

अमरत्व देनेवाले सोमरस का पान करनेवाले दोनों अश्विनी देव अंतरिक्ष में प्रत्यक्ष रुद्र देव सूर्य के आने से पहले ही आते हैं। सूर्य की सुपुत्री उषा अश्विनी देवों की सहायता करती है। ऋग्वेदीक कथा है कि उच्चथ्य ऋषि एवं ममता के पुत्र दीर्घतमा ऋषि दशम युग में (अर्थात् 111वें वर्ष में) वृद्ध होने लगे। दीर्घतमा ब्रह्मज्ञानी बने और 120 वर्ष तक जीवित रहे। उन्होंने संयमपूर्वक शुभ कार्य किए। इसके पीछे दीर्घतमा को विरोधियों द्वारा अग्नि में जलाने, पानी में बांधकर डुबाने और कंधों को काटने के प्रयास की कथा है। वृद्ध और अंधे दीर्घतमा के तारणहार अश्विनी कुमार रहे। उनका अहित करनेवाले असुर अश्विनी देवों का चमत्कार देखते रह गए। ऋचाओं में अश्विनी देवों को महिलाओं और पशुधन में गर्भ पालन पोषण का उत्तरदायी माना गया है। यह भी उद्घोषणा की गई है कि दोनों अश्विनी देव औषधियाँ साथ रखने के कारण चमत्कारिक वैद्य हैं। वे रोगियों की उत्तम औषधियों से चिकित्सा करते हैं। अश्विनौ देवों का मानना है कि मनुष्य का विनाश आलस्य से होता है, अतः वे उद्यमी बने। धन का उपयोग गरीबों की सहायता नहीं करनेवाले नष्ट हो जाते हैं।

अश्विनी देवों ने नेत्र चिकित्सा में अंधों को दृष्टि देने की विधि शरू की। ऋज्राश्व ने वृकी को सौ भेड़ें दान दी। इसलिए क्रुद्ध होकर पिता ने उसको अंधा बना दिया। अश्विनी देवों ने उसकी दोनों आंखे ठीक कर दृष्टि लौटा दी। भेड़िये के मुँह में फसी वर्तिका ने देव चिकित्सकों से पुकार की। अश्विनौ देवता ने वर्तिका को छुड़ाया और घायल अवस्था का उपचार किया। रानी विश्पला के युद्ध में टांग नहीं रही। अश्विन देवों ने विश्पला के लोहे की लचीली टांग लगा कर चलने लायक बनाया। देव वैद्यों ने इतनी उन्नती की कि वन्ध्या स्त्री को गर्भ धारण करने में समर्थ, नपुंशक को वाजकिरण द्वारा पुरूषत्व शक्ति, घायल होने पर क्षतिग्रस्त् अंगों को ठीक करने अथवा बदलने में सफलता प्राप्त की। अश्विनी कुमार विकलांगों को ठीक करने और सभी तरह के ज्वरों (बुखार आदि) का उपचार करने में सिद्धहस्त् थे।

कण्व ऋषि के लिए अंधा होना अभिशाप बना। वहीं नृषद पुत्र बधिर था। दोनों के लिए देव चिकित्सक देवदूत बने। उन्होंने कण्व को दृष्टि और नृषदपुत्र को श्रवण शक्ति दी। अश्विनी कुमार कुए में कराहते वन्दन को बाहर लाए और निरोग किया। असुरों ने बांधकर रेभ ऋषि को प्रचण्ड जलप्रवाह में फैंक दिया। अश्विनी देवों ने औषधियों से रेभ का उपचार कर स्वस्थ बनाया। भगवान् सूर्य की पुत्र उषा और अश्विनी देवों के मिलन का रोचक विवरण मिलता है। सभी देवों से सूर्य ने कहा कि घुड़दौड में प्रथम आनेवाले के साथ उषा का विवाह करेंगे। अश्विनी देव सबसे प्रथम आये और उन्हे उषा का साथ मिला। सूर्यदेव की पुत्री से अश्विनौ देव बहुत शोभायमान हुए।

समुद्र को चुल्लु में पीनेवाले अगस्त्य ऋषि और लोपामुद्रा ने अश्विनी देवों को अपने घर में आमन्त्रित किया। गृत्समद ऋषि परिवार ने अश्विनी कुमारों की स्तुति में स्तो्त्रों की रचना की। वेदों में पिता के घर रोग से वृद्धा हुई घोषा की औषधियों के अमृत से तरूण युवति बनाया। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद में बार बार अश्विनी देवों द्वारा वृद्धों का कायाकल्प कर यौवन लौटाने के चौकानेवाले प्रसंग मिलते हैं। अश्विनी देवों को प्लास्टिक सर्जरी, अंग प्रत्यारोपण, कृत्रिम अंग लगाने, नेत्रकर्ण चिकित्सा आदि का दिव्य ज्ञान था। उस समय अश्विनी देवों को प्रसन्न करने के लिए सोमरस अर्पण करने और यज्ञ में हवि देने की लम्बी परम्परा थी। श्याव ऋषि को देव चिकित्सकों ने सुन्दर पत्नी दी। अंगिरस गोत्र में उत्पन्न पज्र के कक्षिवान ऋषि को मधु के 100 विशाल घड़े जनकल्याण के लिए दिए। वेदों के अनुसार अश्विनौ कुमार अपने छोटेयान से कहीं भी पहुंचने में समर्थ हैं। अधिकांश ऋषियों ने अश्विनी देवों की आराधना की है। वे अपनी मधुर एवं सत्‌यमय वाणी से यज्ञ को रसमय करनेवाले माने गए हैं। ऊँ

वेदीक युग में दूसरे सौर मण्डल जाने के अंतरिक्षयान से विमाननशास्त्र के गोपनीय सूत्रों का रहस्य

ऋग्वेद में देवों की स्तुति के 120 श्लोकों में अंतरिक्ष में उड़नेवाले–यानों का विवरण है। देवों के चिकित्सक दोनों अश्विनी कुमार विमानों से विभिन्न लोकों–भूलोक, भुवर्लोक, स्वलोक, महालोक, जनोलोक, तपोलोक और सत्यलोक की पलक झपकते यात्रा करते थे। उनके विमान को कोनाकार, तीन चक्रों, तीन मंजिला और तीन को ले जानेवाला बताया गया है।

प्राचीन आर्षग्रन्य अमरंगसूत्रधारा के अनुसार सबसे पहले पाँच देवों इन्द्र, यम (दोनों वेदीक देव), ब्रह्मा, विष्णु एवं कुबेर के लिए दिव्ययान निर्मित किए गए। उस समय विमानों को रूकमा, सुन्दरा, त्रिपुरा, सुकमा में वर्गीकृत किया गया। रूकमा को त्रिकोणाकार सोने की आभावाला, सुन्दरा को बेलनाकार नुकीले अग्रभाग वाला रजत आभावान और सुकमा को पक्षीआकार के पंखोवाला बताया गया है। महर्षि भारद्वाज के वैमानिक शास्त्र के अनुसार ये विमान सूर्य की ऊर्जा से संचालित होते थे। इन दिव्ययानों से वेदीक और पौराणिक देवता अंतरिक्ष में विभिन्न ग्रहों में कुछ समय में पहुंचने में समर्थ थे। इन दिव्ययानों पर गुरुत्वाकर्षण का कोई प्रभाव नहीं था। आर्षग्रन्थ मानते हैं कि इनकी गति सूर्य किरण, मन अथवा विचार के समान थी।

यह अवश्य है कि वेदीक दिव्ययानों के अतिगोपनीय रहस्यमय तिलिस्म की कुंजी कूट (गुप्त), संकेतात्मक और प्रतीकात्मक भाषा में छिपी है। वेदीक काल, ब्राह्मणग्रन्थकाल, अरण्यक रचनायुग, मन्त्र तन्त्र विकास क्रम, पौराणिक युग, उपनिषद काल आदि में अधिकांश ऋषि एक ही दिव्य नाम से हजारों वर्ष तक आर्ष ग्रन्थों की रचना करते रहे। वेद में वसिष्ठ ऋषि, भरद्वाज ऋषि, अंगिरा ऋषि, अथर्वा ऋषि आदि के दर्शन महत्वपूर्ण हैं। स्मरण रहे कि महाभारत के रचयिता सत्ताइसवें महर्षि व्यास हैं और आदिव्यास वेदीक युग के हैं। इसलिए ही विभिन्न ऋषियों की

संहितायें जैसे भारद्वाज संहिता आदि मिलती है। जिसका सीधा सरल अर्थ यह है कि भरद्वाज नामधारक ऋषियों की रचनाओं का संग्रह है। पश्चिमी जगत और वर्तमान वैज्ञानिक इसी तिलिस्म के भ्रम में भारद्वाज ऋषि के वैमानिक शास्त्र के काल और प्रमाणिकता पर प्रश्न उठाते हैं।

ऋग्वेद के प्रथम मण्डल से दसवें मण्डल में यजुर्वेद में और अरण्यकों में दिव्ययानों का नाम रथ मिलता है। ये रथ तीन प्रकार के थे। पहला, एक ग्रह से सभी ग्रहों की यात्रा करनेवाला रथ। दूसरा, एक देश से दूसरे देश ले जाने वाला वायुरथ। तीसरा, एक शहर से दूसरे शहर ले जानेवाला वायुयान रथ। दिव्ययान किसी भी आक्रमण से नहीं टूटनेवाले, किसी भी वज्रपात (बिजली गिरने) अथवा अंतरिक्षीय आपदा से सुरक्षित और अभेद्य थे। ये वायु रथ चाहे तो आकाश में दिखाई देते और चाहे लुप्त हो जाते। मद्रास विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग के डॉ. वी. राघवन ने संस्कृत ग्रन्थों के अध्ययन के बाद निष्कर्ष निकाला कि 6000 वर्ष पहले तक दूसरे ग्रहों से पृथिवी पर प्राणी आते थे (कुछ वैज्ञानिकों ने स्वीकारा कि अन्तरिक्षवासी और पृथिवीवासी के मिथुन के कारण साईबेरिया एवं तिब्बतवासी कम से कम आक्सीजनवाले वातावरण में रहने में सक्षम हैं।)।

लगभग बाईस सौ वर्ष पहले सम्राट अशोक ने नौ दिव्यरत्नविदों महासिद्धों की गुप्तसभा गठित की। ये दिव्यरत्नविद् प्राचीन आर्ष ग्रन्थों के गुप्त रहस्यों को उद्घाटित कर प्रायोगिक रूपाकार देने में सफल भी हुए। किन्तु अशोक महान् ने आर्ष ग्रन्थों के दुरूपयोग की आशंकाओं को भांपते हुए इसे गुप्त ही रखा। द्वितीय विश्व युद्ध से पहले जर्मनी के नाजी शासक एडोल्फ हिटलर ने अपने गुप्त विशेषज्ञों को भारत और तिब्बत में संस्कृत एवं तिब्बती भौंटिया के विमानन एवं मारक अस्त्रों के रहस्यलोक की जानकारी लेने भेजा। पूर्व सोवियत संघ (वर्तमान रूस आदि) को गोबी मरूस्थल और पामीर पर्वत के पास गुफाओं में विचित्र देव यान मिले। इनकी जानकारी गोपनीय रखी गई। प्राचीन आर्ष ग्रन्थों के अनुसार भगवान् श्रीहरि विष्णु के अवतार श्री परशुराम ने विश्व की छत कहलानेवाले पामीर पर्वत पर ही देवराज इन्द्र से दिव्यास्त्र प्राप्त किए। पिछले वर्षों चीन को तिब्बत के ल्हासा में संस्कृत के दुर्लभ पत्राकार ग्रन्थ मिले। इन ग्रन्थों को चण्डीगढ़ विश्वविद्यालय में अध्ययन

के लिए भेजा गया। विश्वविद्यालय के डॉ. रूत रेयना के अनुसार तिब्बत से मिले संस्कृत दस्त्ावेजों में अन्तरिक्ष में विचरण करनेवाले यानों का विवरण है। ये अन्तरिक्ष यान गुरुत्वाकर्षण विरोधी और लघिमा के सिद्धान्त पर कार्य करते थे। शिवसंहिता सहित दूसरे योग ग्रन्थों के अनुसार लघिमा के सामने गुरुत्वाकर्षण की शक्ति बेअसर होती है। योगी सशरीर अथवा लघुतम बिन्दु शरीर से अन्तर्राष्ट्रीय अथवा अंतरिक्ष में यात्रा करता हैं। योगीराज विशुद्धानन्द परमहंस ने हिमालय में अदृश्यगुप्त ज्ञानगंज में वायुविद्या, सूर्यविज्ञान, शब्दविज्ञान, स्वर विज्ञान आदि की दिव्य विद्या की दीक्षा का विवरण बताया। विशुद्धानन्द परमहंस ने सूर्य की किरणों रश्मियों को अलग अलग कर मृत चिड़िया को जीवित करने और बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय की लकड़ी की मेज को कठोर ग्रेनाइट में बदलने का चमत्कार दिखाया। हिमालय में गोपनीय कलाप क्षेत्र, कौशिकी आश्रम, वसिष्ठ आश्रम, परमेश्वर क्षेत्र आदि होने के विवरण मिले हैं।

इन गोपनीय आश्रमों में वेदीक दिव्य विद्या की दीक्षा दी जाती है। यह अभी रहस्य है कि सम्राट अशोक के नौ दिव्यरत्नों महासिद्धों द्वारा रचित नौ पुस्त्कें किस तिलिस्म में हैं ? नौ पुस्त्कों में से एक गुरुत्वाकर्षण के रहस्य को उजागर करती है। विशेषज्ञ मानते हैं कि ये नौ दुलर्भ दिव्य पुस्त्कें प्राचीन जम्बूद्वीप के किसी मायावी गुप्तगृह (पारस से तिब्बत, गोबी रेगिस्त्ान, पामीर, साईबेरिया आदि) में सुरक्षित हैं। थियोसोफिक सोसायटी गुप्त दैविक विद्या के अदृश्य गुप्तसमाज को स्वीकारता है। बिशप सी.डब्लू. लीड़बीटर ने इस गुप्त दिव्य समाज की वार्षिक सभा और उसमें परमेश्वर अथवा परमबुद्ध के द्वारा दिव्यशक्तिपात का रोमांचक विवरण लिखा है।

समरसूत्रधार ग्रन्थ में वायु विमान निर्माण के 230 छन्द मिलते हैं। नाजी एडोल्फ हिटलर के गुप्त प्रतिनिधियों ने वेदीक अस्त्र और दूसरे मायावी अस्त्रों के संस्कृत ग्रन्थ भारत और तिब्बत से इक्कट्ठे किए। उधर तत्कालीन सोवियत साम्यवादी संघ ने तुर्कीस्त्ान एवं गोबी रेगिस्त्ान की गुहा मे ब्रह्माण्ड में दिशादर्शक यन्त्र खोज निकाले। ये प्राचीनकाल के यन्त्र शीशा अथवा पारदर्शी चीनी मिट्टी के कोणाकार थे और उनमें पारा था। वेदीक साहित्य में अहनीहोत्र विमान, हाथीविमान, बेलनाकार विमान,

गोलतस्त्रीनुमा विमान आदि का रोचक ब्योरा है। यह आठवां आश्चर्य है कि बेलनाकार विमान अंतरिक्ष, जमीन और जल तीनों ही में चलता था। बीस हजार वर्ष पहले वैलिक्षी ने लगभग 80000 हॉर्सपावर की गुरुत्वाकर्षण विरोधी क्षमता का विमान विकसित् किया। यह यान गोल तस्त्री आकार का था। विश्व में अन्तरिक्ष के दूसरे ग्रहों से आनेवाली उड़न तस्त्रियाँ (यूएफओ) इसी का रूप है।

तिब्बत में मिले भौंटिया लिपि के संस्कृत ग्रन्थों की गुप्त कूट एवं प्रतीक भाषा के अर्थ अभी भी रहस्य बने हैं। कर्नाटक के संस्कृत विद्वान श्री सुब्रह्मण्यम अय्यर ने एक गांव में भोजपत्र पर लिखे मन्त्रों, सूत्रों के रहस्य का खोजने में वर्षों लगाए। अन्त में श्री अय्यर ने इसका नाम अंशुबोधिनी पाया और इसमें अनेक ग्रहों के अलावा विभिन्न प्रकाश, रंगों और विद्युत चुम्बकीय क्षेत्र की जानकारी का खजाना था। अंशु बोधिनी में सूर्य की किरणों को विभाजितकर उसकी ऊर्जा का पता चलता था। विमान विज्ञान के अन्तरिक्ष के 5 क्षेत्र हैं। धुंधीनाथ एवं वाल्मीकि गणित के अनुसार रेखा में 7,03,00,800 वायु मार्ग हैं। वायु मार्गों में मण्डल में 20,08,00,200, कदय में 2,09,00,300, शक्ति में 10,01,300 और केन्द्र में 30,08,200 हैं। ये ही भूलोक से तपोलोक ले जाते हैं। ऊँ

शिवस्वरूप रुद्राक्ष के
दिव्य चमत्कारी रहस्यों की गोपनीय गाथा

भारतीय अध्यात्मिक परम्परा में शिवस्वरूप रुद्राक्ष की अद्‌भुत चमत्कारिक स्वरूप शक्ति को पश्चिमी वैज्ञानिकों ने भी स्वीकारा है। पश्चिमी वैज्ञानिक शोध के अनुसार रुद्राक्ष से 13 मेगाहॉज तक विद्युत चुम्बकीय आवृति की तीव्र तरंगे निकलती हैं। इससे निकलनेवाला तीव्र कंपन दिव्य शक्ति से असम्भव को सम्भव करने में सक्षम है। पश्चिमी

शोध के अनुसार प्रत्येक मुखवाले रुद्राक्ष का कंपन, चुम्बकीय क्षेत्र, विद्युत आवेश और उनका विशिष्ट घनत्व भी अलग–अलग होता है। यही विद्युत चुम्बकीय क्षेत्र, विशिष्ट घनत्व, जन्म नक्षत्र, स्वामी ग्रह, जन्म लग्न और दशा के अनुरूप अपना प्रभाव दिखाता है।

आर्ष ग्रन्थों–रुद्राक्ष जबालोपनिषद, श्रीमद्देवीभागवत, पद्मपुराण, शिवपुराण, लिंगपुराण, महाकाल संहिता, मंत्र महार्णव, निर्णय सिंधु, शिवरहस्य, कालिकापुराण, धर्मशास्त्र का इतिहास, शिवगीता आदि में रुद्राक्ष की महिमा का वर्णन मिलता है। शिवपुराण में नीलकंठ महादेव ने रुद्राक्ष की महिमा और रहस्य महादेवी पार्वती को सुनायी। नीलकंठ महादेव के अनुसार सबसे छोटा रुद्राक्ष ही सर्वाधिक प्रभावशाली होता है। रुद्राक्ष श्वेत, रक्त (लाल), पीत (पील) और कृष्ण (कालिमा लिए) रंग के होते हैं। शिवपुराण में स्पष्ट किया हैः ''सर्वाश्रमाणां वर्णानां स्त्रीशूद्राणां शिवाज्ञया। धार्याः सदैव रुद्राक्षा।'' अर्थात् सभी आश्रमों सभी वर्णों (सभी जातियों), स्त्रियों को शिव की आज्ञा से रुद्राक्ष धारण करना चाहिए। शिवगीता के अनुसार 108 मणकों की माला सर्वश्रेष्ठ मानी गई है। शिवपुराण में महादेव शिव ने स्पष्ट किया कि रुद्राक्ष सभी मनोरथ सिद्ध करनेवाला, सभी अशुभ अनिष्ट निवारणकर्ता और सभी रोगों को दूर करनेवाला है। परंतु शिव पुराण में यह भी सावधान किया कि रुद्राक्ष को पूर्ण मंत्रोचार के बाद ही धारण करना चाहिए। शिवसंहिता भी अध्यात्मिक उपासना में रुद्राक्ष को आवश्यक मानती है।

परम गुणकारी रुद्राक्ष में कोबाल्ट, जस्ता, निकल, लोहा, मैग्नीज, एल्युमिनियम, फास्फोरस, कैलशियम, पोटेशियम, सोडियम, गंधक, सिलिका आदि खनिज तत्त्व होते हैं। इन खनिज धातुओं के ही कारण काष्ठ (लकडी) मूलक रुद्राक्ष का आपेक्षिक घनत्व अधिक होता है। फलतः रुद्राक्ष लकड़ी की तरह पानी में तैरने के स्थान पर अधिक आपेक्षिक घनत्व से डूब जाता है। वैज्ञानिक शोध से रहस्योद्घाटन हुआ कि लोहे, कोबाल्ट, निकल के मिलन से रुद्राक्ष में लौह विद्युत चुम्बकीयता प्राप्त हुई। कोबाल्ट परमाणुधर्मी है। क्रोमियम और मेग्नीज के सम्मिश्रण ने चुम्बकीयता गुण में

जन्म नक्षत्रःरुद्राक्ष					
नक्षत्र	स्वामी ग्रह	मुखी रुद्राक्ष	नक्षत्र	स्वामी ग्रह	मुखी रुद्राक्ष
अश्विनी	केतु	नौमुखी	चित्रा	मंगल	तीनमुखी
भरणी	शुक्र	छहमुखी	विशाखा	गुरु	पाँचमुखी
कृतिका	सूर्य	एक/बारह/ग्यारह	अनुराधा	शनि	सप्तमुखी
रोहिणी	चन्द्र	दो मुखी	स्वाती	राहु	आठमुखी
मृगशिरा	मंगल	तीनमुखी	ज्येष्ठा	बुध	चारमुखी
आद्रा	राहु	आठमुखी	मूल	केतु	नौमुखी
पुनर्वसु	गुरु	पाँचमुखी	पूर्वाषाढ़ा	बुध	छहमुखी
पुष्य	शनि	सप्तमुखी	उत्तराषाढ़ा	सूर्य	एक/ग्यारह/बारहमुखी
अश्लेषा	बुध	चारमुखी	श्रवण	चन्द्रमा	दोमुखी
मधा	केतु	नौमुखी	धनिष्ठा	मंगल	तीनमुखी
पूर्वाफाल्गुनी	शुक्र	छहमुखी	शतभिषा	राहु	आठमुखी
उत्ताराफाल्गुनी	सूर्य	एक/ग्यारह/बारहमुखी	पूर्वाभाद्रपद	शनि	सप्तमुखी
हस्त्	चन्द्रमा	दोमुखी	रेवती	बुध	चारमुखी

जन्म लग्न, जन्म राशि एवं रुद्राक्ष			धन नियंत्रणग्रह/राशि एवं रुद्राक्ष		
जन्मराशि लग्न	स्वामी ग्रह	वांछित रुद्राक्ष	लग्न/राशि	धनलाभ शुभग्रह	शुभरुद्राक्ष
मेष	बुध	तीन मुखी	मेष	मंगल, गुरु	तीन,पाँच मुखी
वृष	शुक्र	छह मुखी	वृष	मंगल, शनि	चार,सप्त मुखी
मिथुन	बुध	चार मुखी	मिथुन	बुध, शुक्र	तीन,पाँच मुखी
कर्क	चन्द्र	दो मुखी	कर्क	चन्द्र, मंगल	तीन,दो मुखी
सिंह	सूर्य	एक/बारह मुखी	सिंह	सूर्य, मंगल	तेरह/बारह मुखी
कन्या	बुध	चार मुखी	कन्या	शुक्र, बुध	चार, छह मुखी
तुला	शुक्र	छह मुखी	तुला	शुक्र, शनि	छह/सप्त मुखी
वृश्चिक	मंगल	तीन मुखी	वृश्चिक	गुरु, चन्द्र	पाँच/दो मुखी
धनु	गुरु	पाँच मुखी	धनु	गुरु, शनि	पाँच,बारह मुखी
मकर	शनि	सप्त मुखी	मकर	शनि, शुक्र	छह,बारह मुखी
कुम्भ	शनि	सप्त मुखी	कुम्भ	शनि, शुक्र	छह,सात मुखी
मीन	गुरु	पाँच मुखी	मीन	गुरु, मंगल	तीन,पाँच मुखी

वृद्धि की। रुद्राक्ष में विद्युतकीय गुण का अध्ययन भी चौंकाता है। शोधक मानते हैं कि रुद्राक्ष विद्युत संग्राहक कैपेसीटर की तरह काम करता है। रुद्राक्ष में मुखों की संख्या के अनुरूप विद्युत आवेश, चुम्बकीय आवृति भी अलग–अलग होती है। यह स्मरण रहे कि तुलसी में भी विद्युतकीय शक्ति है। शोध से पता चलता है कि एक मुखी रुद्राक्ष में कम से कम 2 मेगाहॉज (एमएचजेड) और अधिकतम 13 मेगाहाज कंपन उत्पन्न होता है। इसके विपरीत दो मुखी गौरीशंकर रुद्राक्ष में 2 मेगाहाज से 12 मेगाहॉज कंपन पैदा होता है। ''उल्लेखनीय यह है कि रुद्राक्ष 350 मेगाहाज तक प्रतिध्वनि–गूंज को आत्मसात करने में महाशक्तिवान है।'' यानी रुद्राक्ष धारण करनेवाले पर कोई तंत्र मंत्र यंत्र एवं महाबम का धमाका काम नहीं कर सकते। रुद्राक्ष उन्हें निष्फल करने का अमोघ कवच है। उलटे रुद्राक्ष ऊर्जा का महान् स्रोत है। वैज्ञानिक शोधक मानते हैं कि रुद्राक्ष स्नायु तंत्र में विधायकी शक्ति प्रदान करता है। शोध में पाया कि अंगूठे और मध्यमा (बीच की उंगुली) के मध्य रुद्राक्ष फेरने से विद्युत चुम्बकीय आवेश चरम पर होता है। स्वाभाविक रूप से वेदीक काल में ऋषियों ने शिव के अश्रु से उत्पन्न महाशक्तिवान रुद्राक्ष की माला को जपने के लिए अंगूठे और माध्यमा को चुना ताकि रुद्राक्ष से अति दिव्य चमत्कारी विद्युत चुम्बकीय आवेश और कंपन पैदा हो। योगशास्त्र में लिखा है कि अंगूठा–उंगुलियां पाँच तत्त्वों–अग्नि, वायु, आकाश, पृथ्वी, जल का प्रतिनिधित्व करती हैं।

वैज्ञानिक शोध में यह भी पता चला कि रुद्राक्ष माला फेरते समय उनसे निकलनेवाली तरंगे आवेश कंपन उनके मुख की शक्ति पर निर्भर हैं। रुद्राक्ष की माला ''सूत के धागे में होने से प्रत्येक मुखी अपना अपना प्रभाव छोड़ता है।'' रुद्राक्ष माला धातु में होने पर सभी मुखी रुद्राक्षों का विद्युत प्रभाव शृंखलागत हो जाता है। धातु तार में अलग–अलग मुखी रुद्राक्ष होने पर ''असंतुलन से विपरीत प्रभाव होना पाया गया है।'' रुद्राक्ष सभी रोगों का उपचार केवल धारण मात्र से करता है।

पद्मपुराण में महादेव शिव ने प्रत्येक मुख की दिव्य शक्ति का रहस्य श्रीकार्तिकेय को दिया। शिवपुराण में महादेव ने महादेवी शिव को रुद्राक्ष को धारण करने और मंत्रोचार का गूढ़ रहस्य बताया। यहाँ रुद्राक्ष

के मंत्रोचार का अर्थ उसे आवेशित करने–ऊर्जा शक्ति संचारण से है। रुद्राक्ष को धारण करने से शुभ दिवस–अमृत सिद्धियोग, सर्वार्थसिद्धियोग, गुरु पुष्ययोग, रवियोग, नवरात्रि, शरद पूर्णिमा, दीपावली, दशहरा, होलिकादहन, महाशिवरात्रि आदि सर्वोत्तम है। रुद्राक्ष को धारण करने से पहले उसे पानी में डूबाकर देखना चाहिए। उसके बाद रुद्राक्ष माला को एक माह सरसों के तेल, खोपरे–नारियल के तेल, देसी घी में डूबाकर रखा जाता है। शुभ दिन रुद्राक्ष माला को गंगाजल, दूध से स्नान करना चाहिए। माला को अगरबत्ती से धूम्र स्नान करवाकर इत्र अथवा चंदन का तेल लगाना चाहिए। साधक को रुद्राक्ष को ''ऊँ ह्रीं नमः'' अथवा ''नमः शिवाय'' मंत्र का पाठ 108 बार करना चाहिए। यह ध्यान रहे कि माला अंगूठे और मध्यमा के बीच ही घुमायें। यद्यपि शिवपुराण में प्रत्येक मुख के लिए पृथक पृथक मंत्र का विधान है। परंतु मूल मंत्र 'नमः शिवाय'' और ऊँ ह्रीं नमः सम्पूर्ण माने गए हैं। रुद्राक्ष माला को अभिमंत्रित कर शिवालय में पवित्र लिंग को स्पर्श करवाकर गले में धारण करने का विधान है। यह भी ध्यान रहे कि शिवालय में चैतन्य शिवलिंग हो। लिंग स्पर्श से रुद्राक्ष का शक्ति कमल दल खुलता है। शास्त्रों में जातक के जन्म नक्षत्र और लग्न के अनुसार शुभ मुख रुद्राक्षों का वर्णन मिलता है। पुराणों के अनुसार दो जुड़े रुद्राक्ष, तीन जुड़े रुद्राक्ष बहुत ही दुलर्भ हैं। मान्यताओं के अनुसार दो जुड़े रुद्राक्ष युवा कन्याओं के शीघ्र विवाह और सफल विवाहित जीवन प्रदान करनेवाला होता है (नक्षत्र, राशि तालिका देखें)।

रुद्राक्षों में विभिन्न कार्यो–अध्यात्मिक, बौद्धिक और भौतिक उपलब्धियों के लिए श्वेत (सफेद), लाल, पीला और कालिका रंग के मणके पहनने का विधान है। श्वेत सरीखे रंग का रुद्राक्ष अध्यात्मिक, धार्मिक कार्य करनेवाले व्यक्ति को पहनना चाहिए। साधक के–बौद्धिक कार्य के लिए रक्तिमा लिए एवं पीत रंग के रुद्राक्ष को उत्तम माना गया है। कालिमावान रुद्राक्ष भौतिक उपलब्धियों के लिए उचित माना गया है। कालाग्नि रुद्र ने भुसण्ड को हर रुद्राक्ष की विशेषताओं का गोपनीय ज्ञान दिया। कालाग्नि रुद्र के अनुसार दिव्य शक्ति सम्पन्न रुद्राक्ष के स्पर्श एवं धारण करने से हजार गायों के दान का पुण्य प्राप्त होता है और नीलकंठ महादेव की कृपा प्राप्त होती है। रुद्राक्ष से आयुर्वेद में अनेक

औषधियां भी तैयार की जाती हैं। ताम्र पात्र से भरे जल पात्र में रुद्राक्ष को रखे पानी पीने से अनेक पेट आदि के रोग दूर होते हैं। रुद्राक्ष माला हृदय रोग, उच्च–निम्न रक्त चाप, मधुमेह, गर्दन में दर्द को भी हरता है। धारक को रुद्राक्ष माला रात्रि को उतार सिराहने रखनी चाहिए और ब्रह्म मूहर्त में पुनः पहनकर स्नान करना चाहिए। रुद्राक्ष मूलतः काष्ठ होने से उसकी माला को तड़कने से बचाने के लिए महिने में एक बार दो–चार बूंद तेल लगाना हितकारी है। सारसंक्षेप में रुद्राक्ष भुक्ति–मुक्ति प्रदाता है। ऊँ

शिव के दिव्य स्वरूप
का भौतिक रहस्य

उनतालीस लाख वर्ष प्राचीन (पश्चिमी वेदीक विद्वानों के अनुसार 15000 वर्ष) ऋग्वेदीक देवों में रुद्र अर्थात् शिव वर्तमान तक महादेव के रूप में पूजित हैं। मय (माया) संस्कृति, सुमेरु संस्कृति से यूरेशिया और आर्यावर्त (जम्बूद्वीप भरतखण्ड भरतवर्ष) में रुद्र की आराधना की जाती है। चीन से ऐंकरकोट और भारत में सदाशिव पाद मिले हैं। श्रीशिव पाद की साक्षात रुद्र के रूप में आराधना की परम्परा है।

महादेव शिव के कल्याणकारी भद्रेश्वर रूप के मन्दिर गुजरात की राजधानी से तीन किलोमीटर से कम्ब देश (कम्बोडिया), चम्पा देश (वियतनाम), मलय–श्याम देश (मलेशिया, इण्डोनेशिया, थाईलैण्ड) तक शोधकों ढूंढ़ निकाले हैं। देवों के देव महादेव शिव परिवार में कूट प्रतीकात्मक रूप में जीवन में समन्वय और सहअस्तित्त्व का दर्शन है। साम्ब (अम्बा सहित शिव) सदाशिव का वाहन वृषभ (सांड़) है, वे गले में वासुकी नाग धारण किए हैं। सदाशिव के हाथों डमरू युक्त त्रिशुल, पिनाकी धनुष,मृग आदि हैं। मस्त्क पर त्रिनेत्र होने से विरूपाक्ष (विरूप वाले) हैं। अम्बा पार्वती

का वाहन सिंह,पुत्र देवताओं के सेनापति का वाहन मयूर और पुत्र गणाधिपति गणेश का मूषक (चूहा) है। वृषभ, सर्प, मयूर, चूहा और सिंह परस्पर विरोधी हैं। परन्तु सृष्टि के सृजनकर्ता,पालक एवं संहारक साम्ब सदाशिव के शास्त्ा होने से उनके अनुशासन में सभी साथ रह रहे हैं। यही सह अस्ति्त्व का सर्वोत्तम उदाहरण है।

स्वच्छन्द भैरव मूरत में सदाशिव को दस बाहुवाला चित्रित किया गया है। स्कन्द पुराण के विष्णु खण्ड के अनुसार शिव का गोलाकार सिर मूलतः आकाश का प्रतीक है। इनके केश आकाश के अनन्त नील विस्त्ार हैं। इसी दृष्टि से शिव को व्योमकेश कहा गया। इस व्योम में चन्द्रमा शिव के मस्त्क एवं सिर पर विराजमान हैं। शिव के तीनों नेत्र तीनों वेदों, ज्ञान–इच्छा–क्रियाशक्ति, सूर्य–चन्द्र–अग्नि के सूचक हैं। शिव पाँचाक्षर स्तोत्र में इसीलिए वर्णन है: भचन्द्रार्क वैश्वानर लोचनाय नमः शिवाय। शिव के कण्ठ में उपस्थित सर्प और हाथ पैरों में आभूषण तरह लिपटे सर्प काल के प्रतीक हैं। काल आदि,मध्य और अनन्त अवस्था में सृष्टि का प्रवर्तन और समावर्तन वान शक्ति सदाशिव की कृपा पर निर्भर है। सदाशिव की कृपा मात्र से सृष्टि का सृजन एवं संहार (प्रलय) होती है। अतः शिव कालातीत हैं।

वेदीक दृष्टि सृष्टि की स्थिरता की शक्ति दिक् स्वीकारी गई है। यहीं दिक् बहुत लघु अर्थात् छोटे रूप में शिव ने कटि में पहनी है। व्याख्याकारों ने दिक् के धारणकर्ता के रूप में शिव को दिक् अम्बर–दिगम्बर नाम से प्रार्थना की। सदाशिव का अम्बर ही वस्त्र होना भी दिगम्बर कहलाया। स्वच्छन्द भैरव में शिव की दस भुजाओं दस दिशाओं और असंख्य दिशाओं से साक्षात्कार करवाती हैं। दिग्दोषो यस्य विदिशश्च कर्णौ द्यौरास वक्त्रमुदंक मभश्च। (परमात्मेकोपनिषत)। शिवस्त्त्वराज में काल को जानने वाले, सृष्टि के आदिकारण, वर्तमान, आत्मा, अनन्त मस्त्क–नेत्र–उदर–बाहु–चरण वाले यानी सर्वव्याप्त चन्द्रशेखर को भजने का निर्देश है। सदाशिव का त्रिशूल त्रिशक्ति ज्ञान–इच्छा–क्रिया (शून्यस्थ–भग–गुप्तमण्डल) का प्रतिनिधि है। इन तीनों के कारण योगी विशुद्ध तत्त्व ज्ञानी–निरंजन बनता है। श्रीतन्त्रलोक के अनुसार त्रिशुल त्रिगुणत्व

त्रिकोणे देवताः सर्वा ब्रह्म विष्णु महेश्वराः है (यह सत्,रज,तम तीनों के रूप में स्वीकारा गया है।)। शिव का डमरू दिव्य नाद शब्द ब्रह्म की उपस्थिति है। नाद से ही सविता से सृष्टि का प्रारम्भ हुआ। सूर्य में नाद के कारण प्रसव से पृथिवी की रचना हुई (वैज्ञानिक भी नाद बिग बैंग को मानते हैं। नासा ने सविता देव सूर्य द्वारा प्रणव ओम पाठ की दिव्य ध्वनि जारी की है।)।

शिव की भुजाओं में मृग है। इसे हिरण नहीं समझें। वास्त्व में वेदीक कूट प्रतीकात्मक भाषा में मृग वेद है। मन्त्र शास्त्र में भी वेद का पर्याय मृग ही है। पौराणिक आख्यानों के अध्ययन से पता चलता है कि सदाशिव ने तामसी शक्तियों से रक्षार्थ वेद को धारण किया। ऋग्वेद के सायण भाष्य में वेद को उनकी सांस कहा गया। महेश्वर को विद्यातीर्थ एवं वागीश कह कर वन्दना की गई। पाँचमुखी शिव के सद्योजात,नामदेव,अघोर,तत्पुरूष और ईशान नाम हैं। सदाशिव के स्वच्छन्द भैरव रूप में मुण्डमाला, कभी रूण्डमाला और रुद्राक्ष सृष्टि को ही दर्शित करते हैं। उनकी जटा से निकलती देवी गंगा धर्मद्रवी (धर्म का तरल दिव्य जल रूप) है।

नन्दी वृषभ शिव का वाहन है और उनके ध्वज पर अंकित है। यह वृषभ परम ब्रह्म यश पुरूष शक्ति धर्म का दूसरा नाम है। वृषभ धर्म कृतयुग में मनुष्यों के साथ चार पैरों वाला था। ये चार विद्या,दान,तप और सत्य रहे। सृष्टि में अधर्म के अनन्त विस्त्ार से वृषभ तीन चरण (पाद) खो चुका समझा जाता है। यही वृषभरूप लिंग रूप में आया शिव सहस्त्रनाम,श्रीनटराज सहस्त्रनाम में सिंहवाहन,गरूडवाहन शिव के बताये गए हैं,। वेद से लेकर उपनिषद (पुराण भी) प्राणियों को पशु नाम से कहा गया। इसीकारण द्विपाद, चतुष्पाद (दो पैरवाले, चार पैरवाले) पशुओं के ईश पशुपतिनाथ शिव हैं। वास्त्व में तम तत्त्व के अधिक प्रभाव वाले, अज्ञानी आदि पशुवत हैं।

सदाशिव का नीलकण्ठ भक्त वत्सल एवं कल्याण रूप का परिचय देता है। समुद्र मंथन की कथा के प्रतीकों को समझना आवश्यक है। समुद्र जीवन और जीवन यज्ञ है। उसमें मंथन से मोह और घोर कष्ट पैदा होना स्वाभाविक है। शिव ने मंथन में सृष्टि को

बचाने के लिए कालकूट विष का पान किया। शिव ने अविद्या रूपी असुरों के द्यौ,आकाश,पृथ्वी के त्रिपुरों को नष्टकर त्रिपुरारी उपाधि ग्रहण की। इसी पृष्ठभूमि में अन्धकासुर वध मीठी कथा है। अन्धकासुर ज्ञान, विचार शक्ति को अन्धा करनेवाले मोह का दूसरा नाम है। अविद्या ही अन्धक असुर है। अविद्या–तम, मोह, महामोह, तामिस्त्र है। अविद्या के नष्ट होने पर सत् तत्त्व का उदय होता है। अविद्या मूलतः भौतकवाद के चरम से जुड़ी है। तत्त्वज्ञान यानी शिवमय होने के लिए विद्याज्ञान आवश्यक है। विद्या चेतना को जागृत करती है। विवेकमय बनाकर तत्त्व ज्ञान की ओर ले जाती है। इसकी प्रथम सीढ़ि सत्संग, संत्संग से ही निसंगत्व, निश्चल तत्त्व और विमोहन होता है। श्रीलंकेश्वर ने शिव ताण्डव स्त्ोत्र के अन्त में देह से विमोहन की कामना की है, ताकि सुशंकर का सुन्दर चिन्तन कर सकें। ऊँ

हिरण्यमय कैलास के सुमेरु मठ के आचार्य स्वयं ईश्वर की माया

सुमेरु हेमाद्रिमलयद्याः पर्वता तत्स्थानं सेवमाना
भवन्ति। सखी रूपेणा त्यन्तमणिज्योत्स्नाभिर्यत्र
तत्र दीपयन्तो भवन्ति।। (साम रहस्योपनिषत्)

ओढ़रदानी अविनाशी शूलपाणि सदाशिव की श्री कैलासपुरी के साथ हिरण्यमय आदर्श सुमेरु मठ का मायालोक सम्बद्ध है। वेदीक काल से पौराणिक काल, पौराणिक काल से उपनिषद काल, उपनिषद काल से प्राचीन इतिहासकाल–रामायण एवं महाभारत और दिव्य सुमेरु महापर्वत मिथकीय रहस्य बना है। वेदीक मन्त्रों और पौराणिक आख्यानों में सुमेरु तन्त्र की अपनी पहेली है।

सुमेरु में मेरु अथवा सुमेरु मठ की जानकारी ब्रह्मविद्या समाज – द थियोसोफिकल सोसायटी, अडयार, मद्रास की दुर्लभ पाण्डुलिपियों के संग्रह में मिलती है। दुर्लभ पाण्डुलिपियों में अति महत्वपूर्ण संक्षिप्त उपनिषदों के सूचीपत्र में 356 संख्या की 144 रचनाओं का विवरण मिलता है। इसके अलावा राजकीय प्राच्य पाण्डुलिपि पुस्त्कालय (गोमिल) मद्रास के भण्डार में 607 दुर्लभ पाण्डुलिपियों में 183 रत्न रचनाऐं मिलती हैं। ब्रह्मविद्या समाज, अडयार के पाण्डुलिपि सूचीपत्र में 46 वें क्रम पर "मठमान्योपनिषद्" का उल्लेख है। मठमान्योपनिषद् की रचना 2517 वर्ष पहले श्री आदिशंकराचार्य ने की। अडयार के अध्येता श्री ओटो श्रोडर ने लिखा कि श्री आदिशंकराचार्य ने भारत के चार कोनों में चार मठों की स्थापना की और अपने चार सुयोग्य परमशिष्यों को इनका उत्तरदायित्व सौंपा। प्रत्येक मठ को चतुर्वेद में से एक वेद, एक महाकाव्य, एक सम्प्रदाय आदि के संरक्षण, संवर्द्धन, देश काल परिस्थिति के अनुसार प्रसार, प्रचार, प्रयोग आदि का कार्य दिया। श्री श्रोडर लिखते हैं कि इसके दूसरे भाग उत्तराम्नाय उर्ध्वाम्नाय में सांकेतिक प्रतीकात्मक रूप से तीन अध्यात्मिक दार्शनिक वैचारिक आदर्श भाव अध्यात्मिक मठों की व्यवस्था की। ये दार्शनिक अध्यात्मिक आदर्श मठ – सुमेरु, परमात्मन् (आत्माम्नाय) एवं शास्त्रार्थज्ञान (निष्कल) हैं। मठाम्नायोपनिषद् के अन्त में लिखा है : विमलतार्थ आत्मलिंग शान्त्यर्थे नित्यानित्य विवेकेन।। ...ओं नमों।। इति श्रीमत्परमहंस परिव्राजकार्य श्रीमच्छंकराचार्य विरचितं मठाम्नायोपनिषत्समाप्तम्।।

यह स्मरण कराना आवश्यक है कि श्री आदिशंकराचार्य बदरिकाश्रम (श्रीकेदारनाथ, श्रीबदरीविशाल) की स्वामी दत्तात्रेय की तिलिस्मी गुफा से श्री कैलासपुरी गए। सुमेरु में श्री आदिशंकराचार्य को तपश्चर्या से वागीश सदाशिव महादेव के दिव्य दर्शन हुए। वागीश सदाशिव महादेव ने उन्हे गुप्त से गुप्त और गोपनीय "शिव रहस्य" का ज्ञान दिया। यह "शिव रहस्य" ढ़ाई हजार वर्षों से अबूझ पहेली बना है। श्री आदिशंकराचार्य 32 वर्ष की उम्र के अंत में एकबार फिर स्वामी दत्तात्रेय गुफा से सुमेरु गए और विलुप्त हुए। इस पृष्ठभूमि में आदर्श दार्शनिक सुमेरु मठ प्रतीकात्मक से साकार होने की अवधारणा पर विचार, शोध, शास्त्रार्थ आदि समय की आवश्यकता है। सुमेरु के

हिरण्यमय होने की अवधारणा की पुष्टि या गवाही कैलास–मानसरोवर क्षेत्र की भूमि के नीचे प्रचुर मात्रा में "सोना" उपलब्ध होना दे रहा है। इसलिए सुमेरु को स्वर्णमय कहना अतिश्योक्ति नहीं है। फलस्वरूप सुमेरु मठ को स्वर्णिम आभावान स्वीकारा जा सकता है। अध्यात्मिक दार्शनिक रूप से हिरण्यमय–स्वर्णिम आभा का अपना अर्थ हैं।

दार्शनिक अध्यात्मिक सुमेरु मठ अथवा सुमेरु को ह्रदय में स्थित करने की आवश्यकता है। परन्तु मूलभूत रूप से सुमेरु के दार्शनिक प्रतीकात्मक सांकेतिक अध्यात्मिक अर्थ की जानकारी और ज्ञान समझ आवश्यक है। वास्त्व में श्रीआदिशंकराचार्य का आदर्श सुमेरु मठ नामकरण के पीछे अध्यात्मिक–दार्शनिक कथन क्या है? श्री आदिशंकराचार्य तीन आदर्श मठों–सुमेरु, परमात्मन् एवं शास्त्रार्थज्ञान की स्थापना कर आर्यों के वेदीक–सृष्टि विज्ञान–मानवधर्म को देश–काल–परिस्थिति अनुसार रूपान्तरित कर कालजयी स्वरूप देने के पक्षधर लगते रहे।

अथोर्ध्वं शेषआम्नायास्ते् विज्ञानैकविग्रहाः।
पाँचमस्तूर्ध्व आम्नायः सुमेरुमठ उच्यते।।

इनके अन्तर गत शेष आम्नायों का विज्ञान है। ये संख्या में तीन हैं और उनका स्वरूप अथवा शरीर विज्ञान है। यह विषय दार्शनिक अध्यात्मिक विवेचना का है। पाँचवी आम्नाय ऊर्ध्वाम्नाय मठ हैं। उनमें सुमेरु मठ है। इसके दो पाद सत्य एवं ज्ञान हैं। इसका क्षेत्र कैलास है और प्रधान देव निरंजन हैं। इसकी देवी माया और आचार्य स्वयं ईश्वर हैं। इसका मानस तीर्थ है। यह ब्रह्मत्व को अवगहन करनेवाला है। इसके संसर्ग से ही पुरूष–मनुष्य सन्यास प्राप्त करता है (सम्वत 1948 में निर्णय सागर प्रेसः महामठाम्नाय)।

कैलासो क्षेत्र मित्युक्तं देवताऽस्य निरंजनः।
देवी माया तथाचार्यं ईश्वरोऽस्य प्रकीर्तितः।।
तीर्थं तु मानसं प्रोक्तं ब्रह्मतत्त्वावगाहि तम्।
तत्र संयोगमार्गेण संन्यासं समुपाश्रयेत्।।
सूक्ष्मवेदस्य वक्ता च तत्र धर्मं समाचरेत्।
षष्ठः स्वात्माख्य आम्नायः परमात्मा मठो महान्।।
सत्त्वकोषः सम्प्रदायः पदं योगमनुस्मरेत्।

नभः सरोवरं क्षेत्रं परमहंसोऽस्य देवता।।
देवी स्यान्मानसी माया आचार्यश्चेतनाह्वयः।
त्रिकुटी तीर्थमुत्कृष्टं सर्वपुण्यप्रदायकम्।।
भवपाशविनाशाय संन्यासं तत्र चाश्रयेत्।
वेदान्त वाक्यवक्त च तत्र धर्मं समाचरेत्।।
सप्तमो निष्कलाम्नायः सहस्त्रार्कद्युतिर्मठः।
सम्प्रदायोऽस्य सच्छिष्यः श्रीगुरोः पादुके पदे।।
तत्रानुभूतिः क्षेत्रं स्याद् विश्वरूपोऽस्य देवता।
देवी च्चिछक्तिनाम्नी हि आचार्यः सदगुरुः स्मृतः।।

छठा परमात्मन् आत्म आम्नाय मठ है। वे सूक्ष्म वेद उद्घोषक हैं। यहाँ धर्माचरण करना आवश्यक है। इस सम्प्रदाय का नामकरण सत्त्वघोष और पद का योग है। इसके देव परमहंस एवं स्थान नभः सरोवर है। परमात्मन् आत्माम्नाय मठ के आचार्य चेतना अथवा चेतन एवं अधिष्ठात्रि देवी मानसी माया है। इस तीर्थ को ग्रहण करने से संसार के बंधनों पाशों से मुक्ति प्राप्त होती है। अतः इस परमात्मन् तीर्थ में सन्यास ग्रहण करना चाहिए। सातवां–शास्त्रार्थज्ञान अथवा निष्कल आम्नाय या सहस्त्रार्कद्युति मठ है। इसके अधिष्ठातृ देवता विश्वरूप और देवी चिच्छक्ति है। इसके स्वयं सद्गुरु आचार्य और अनुभूति क्षेत्र है। परमात्मन् अथवा आत्म आम्नाय मठ में सभी पुण्यों का लाभ देनेवाला त्रिपुटीतीर्थ और वेदान्तानुसार धर्म आचरण करना चाहिए। निष्कल–शास्त्रार्थज्ञान आम्नाय मठ का सत्शिष्य सम्प्रदाय है और सदगुरु की चरण पादुकाएं ही पद है।

सरसंक्षेप में सुमेरु दार्शनिक भावमय अध्यात्मिक आदर्श मठ शिवपुरी कैलास में है। सुमेरु मठ का आधार सत्य एवं ज्ञान है। सुमेरु मठ के परमाचार्य स्वयं वागीश यानी ईशान हैं। और देव अविनाशी निरंजन शिव हैं। स्वयं देवी महामाया हैं। मठाम्नाय में पर्वत पर निवास करनेवाला एवं जगत के तत्वज्ञानवाले को पर्वत और आध्यात्म शास्त्र उपदेश ग्रहण करनेवाले, आश्रम मर्यादा का हमेशा पालन करनेवाले, समुद्र की तरह शान्त रहनेवाले को सागर कहा गया है।

"वसेत्पर्वतमूलेषु प्रौढ़ोयो ध्यानतत्परः।

सारासारं विजानाति पर्वतः परिकीर्तितः।।
वसेत्सागरगम्भीरे धनरत्नपरिग्रहः।
मर्यादाश्चानलंघेन सागरः परिकीर्तितः।।"

सुमेरु मठ का आत्मस्वरूप और विज्ञान रूपी शरीर का कूट संकेत प्रतीक रूपी भावमय दार्शनिक प्रतीकात्मक सांकेतिक अध्यात्मिक अर्थ है। सुमेरु मठ के ईश्वर आचार्य रूप में और देवता परब्रह्म निरंजन होना रहस्यमय गहराता है। ऊँ

मेरु दिव्यपर्वत में आचार्यशंकर की ढ़ाई हजार वर्ष पहले गुप्त साधना : कैलास में शंकर का मेरुमठ

दो हजार पाँच सौ सत्ताइस वर्ष पहले अद्वैत की अलख जगानेवाले आचार्य शंकर (आदिशंकराचार्य) बदरिकाश्रम के दिव्य हिमवत पर्वतों में त्रिदेवों के अवतार स्वामी दत्तात्रेय महाराज से मिले। स्वामी चिदविलासयति की शंकरविजय विलास के तीसवें अध्याय में लिखा : दत्तात्रेय गुहा से आचार्य शंकर पवित्र कैलास पर्वत चले गए और ब्रह्मलीन हुए। वहीं आचार्य शंकर ने मेरुमठ–सुमेरु मठ स्थापित किया।

वाणी विलास प्रेस, श्रीरंगम द्वारा प्रकाशित गुरुवंश काव्य में रहस्योद्घाटन किया कि ढ़ाई हजार वर्ष पहले आचार्य शंकर हिमालय में कैलास के समीप दत्तात्रेयाश्रम गए और कैलास में विलुप्त हुए। इससे पूर्व आचार्य शंकर तरूणाई में हिमवत में जगदगुरु बादरायणव्यासजी महाराजसे मिले। प्रकारान्तर में वे जम्बूद्वीप के पवित्रतम दिव्य पर्वत कैलास गए। बौद्ध धर्म अनुयायी परमबुद्ध – अभिताभ बुद्ध के निवास स्थल को "शाम्बाला–साम्भाला–शाम्भाला अर्थात् पवित्र भूमि" के नाम से सम्बोधित करते हैं। वेदकालीन मेरु अथवा सुमेरु या मदरांचल महापर्वत कैलास ही स्वीकारा गया। वेदीक काल के ऋषियों–वसिष्ठ, भरद्वाज,

अत्रि, गौतम, अगस्त्य, कौशिक और श्रुति स्मृतिकाल के सनत, सनंदन, सनत कुमार, सनत्सुजात, विश्वमित्र, कणाद, कपिल, उपमन्यु, दत्तात्रेय, मुचकुन्द, परशुराम आदि की गोपनीय तपोस्थली कैलास ही रहा। वेदीककाल में पौराणिक काल, पौराणिक काल से द्वापर एवं कलिकाल के ऋषियों की तपोभूमि कैलास का चुम्बकीय आकर्षण आचार्य शंकर को महादेव शिवलोक ले गया।

कैलास और प्रजापति ब्रह्मा द्वारा रचित मानस सरोवर एवं परम शिवभक्त दशानन रावण के सरोवर की प्राकृतिक छटा आचार्य शंकर को मंत्रमुग्ध करनेवाली रही। कैलास एवं मानसरोवर के चारों तरफ अनगिनत सिद्ध गुहा हैं। इन्ही में से किसी एक बृहदगुफा में आचार्य शंकर ने लम्बे समय उपासना की। स्वामी सदाशिवबोध द्वारा रचित पुण्य श्लोक मंजरी, सदाशिव ब्रह्मेन्द्र की कृति गुरु रत्नमाला, स्वामी आत्मबोध कृति परिशिष्ट एवं सुषमा स्वम में उल्लेख मिलता है कि देवाधिदेव महादेव ने आचार्य शंकर को "स्फटिक के दिव्य पाँच शिवलिंग" दिए। आचार्य शंकर के जीवनवृत पर दूसरी प्रमाणिक रचनाओं में आचार्य शंकर को "कैलासमें पाँच चमत्कारिक स्फटिक आत्मलिंग" मिलने का वर्णन है। स्वामी विशुद्धानन्द परमहंस की मानें तो कैलास के समीप बर्फीली हिमनदियों – हिमपर्वतों की घाटियों में हजारों वर्ष से दिव्यशक्ति दिव्यतेजवान ऋषि दिव्यशक्ति की शिक्षा देते हैं। ऐसे ही ज्ञानगंज आश्रम में सूर्यविज्ञान में दीक्षित प्रकाश की सप्त किरणों के तत्त्वों से 'स्फटिक शिवलिंग रचना' करते रहे। कैलास में स्वामी दत्तात्रेय को "महादेव–महादेवी" ने दर्शन दिए। लंकाधीश दशानन रावण भी महादेव के आत्मलिंग को सिंहल ले जाना चाहता था। आचार्य शंकर को स्फटिक के पाँच शिवलिंग मिलना वागीश (विद्यावाणी के ईश्वर) महादेव का वरदहस्त् मिलना और सोलह की आयु सीमा के विस्त्ार का संकेत रहा। आचार्य शंकर को प्राप्त शिवरहस्य का प्रकाशन शेष है। यह अवश्य है कि बारह महिने हिम बर्फ की चादर में लिपटे रहनेवाले कैलास के क्षेत्र में बिल्लौर – स्फटिक से शिवलिंग तक्षण असम्भव है। नीलकण्ठ देश (नेपाल) और शाम्भाला क्षेत्र से स्फटिक शिव लिंग आने के भी कोई प्रमाण नहीं हैं।

शिवरहस्य में आचार्य शंकर द्वारा कांची में स्फटिक दिव्य "योग आत्मलिंग" का वर्णन लिखा है। एक संहिता में लिखा है कि आचार्य शंकर ने कामकोटि में स्फटिक योगात्मलिंग की स्थापना की। नैषेध में भी कामकोटि में योगात्मलिंग स्थापना की पुष्टि की। "कांचया श्रीकाम कोटौ तु योगलिंगमनुत्तमम्। प्रतिष्ठाप्य सुरेशार्यं पूजार्थं युयुजे गुरु।" शिवरहस्य में लिखा है कि आचार्य शंकर ने पाँच स्फटिक आत्मलिंगों में से चार की स्थापना – श्रृंगेरी, नेपाल, बदरीनारायण एवं चिदम्बरम में की और सर्वश्रेष्ठ योग आत्मलिंग स्वयं अपने पास रखा। आचार्य शंकर स्फटिक योग आत्मलिंग की पूजा आराधना स्वयं करते रहे। क्या यह आत्मशिवलिंग चार पीठों में से किसी एक को मिला होगा? आचार्य शंकर किन्नरभूमि तिब्बत त्रिविष्टप में अद्वैत की धर्मध्वजा फहराने गए। वेदीक मेरु दिव्य पर्वत के नाम पर आचार्य शंकर ने कैलास में मेरु–सुमेरु मठ की स्थापना की। कैलास में मेरु मठ विस्मृति के गर्भ में है। शैवमत के आचार्य गण पिछले पच्चीस सौ वर्षों से महारुद्र शिव की आराधना के लिए कैलास जाते रहे। यही मूलभूत कारण है कि आर्ष परम्परा के अनुरूप बौद्ध कैलास में 'अर्हत' और 'कैलास पुराण' परिकल्पना कर सके। आचार्य शंकर के पदचिन्हों पर चलते हुए इक्कीसवीं शताब्दी तक में भारतीय आध्यात्म प्रेमी कैलास महातीर्थ की यात्रा करते हैं।

यह भी उल्लेख मिलता है कि आचार्य शंकर बदरिकाश्रम स्थित श्रीकेदारनाथ अथवा श्रीबदरीविशाल के हिमनदों से उतरकर बत्तीसवें वर्ष में कैलास मानसरोवर गए और वेदीक ऋषियों की साधनास्थलीवाली गुफा में तपस्या में लीन हो गए (अथवा कैलास में समा गए।)। स्वामी चिद्विलासयति की रचना शंकर विजयविलास के अनुसार आचार्य शंकर ज्योतिर्पीठ से आगे स्वामी दत्तात्रेय के आश्रम की गुप्त गुफा से कैलास गए। आचार्य शंकर का स्थूल शरीर सूक्ष्म शरीर में रूपान्तरित अथवा व्यक्त से अव्यक्त हुआ। कैलास मेरु में स्फटिक के चमत्कारिक शिवलिंगों के रहस्य को बीसवीं शताब्दी में स्वामी विशुद्धानन्द सरस्वती, जगद्गुरु शंकराचार्य ब्रह्मानन्द सरस्वती, जयपुर के राजगुरु पण्डित विद्यानाथ ओझा आदि ने विस्त्ार दिया। कैलास क्षेत्र के दिव्य ज्ञानगंज आश्रम में स्वामी विशुद्धानन्द परमहंस के सिर में दाहिनी ओर

स्फटिक शिवलिंग आरोपित किया गया। कैलास का यह स्फटिक शिवलिंग बण्डूल (बंगाल) में स्थापित है। बण्डूल के स्फटिक शिवलिंग की गणना चमत्कारिक शिवलिंगों में की जाती है।

कैलास क्षेत्र में पवित्र महापर्वत के नाम का अर्थ ही स्फटिक है। कैलास की गुफाओं–आश्रमों के लिए पिछले पैंसठ वर्ष से कठिन दौर चला है। गुफाओं में जप तप में लीन अधिकांश साधक दिनभर में मात्र एक पाव दूध निर्भर रहते थे। गुफाओं में सिंहचर्म अथवा मृगछाल पर साधक वर्षों तपस्या करते रहे। वर्तमान में वेदीक ऋषियों की गुफाओं की शोध समय की मांग है। कैलास में साधना से देवत्व प्राप्त कर महादेव अर्चन होता है : ''देवा भूत्वा देवं यजेत्।।'' ऊँ

कैलास में आकाश भैरव
शरभमूर्ति का महाअट्टाहास

देवताओं ऋषियों मुनियों सिद्ध एवं अरिहन्त की साधना स्थली कैलास में अप्रत्याशित रूप से सभी देवता, ऋृषि, मुनि, गन्धर्व, यक्ष, मानव आदि सृष्टि विनाश के भय से अविनाशी महामहाकाल शिव की शरण में आये। सभी देक्ता, ऋृषि, मुनि, गन्धर्व, यक्ष, मानव आदि त्राहिमाम् त्राहिमाम् मुद्रा में थे। महायोगीश्वर समाधि से चैतन्य हुए।

यह भी उल्लेखनीय है कि प्रजापति ब्रह्मा, सृष्टि पालक विष्णु, देवराज इन्द्र भी उपस्थित रहे। महायोगीश्वर के लिए श्रीहरि विष्णु के अवतार रौद्ररूप नृसिंह द्वारा दानवराज हिरण्यकश्यप के संहार के बाद वापस नहीं लौटना दुखद समाचार रहा। आकाश भैरव कल्पोक्तम्, शरभतन्त्रम्, पक्षिराज तन्त्रम्, कालिका पुराण, कामिकागम, श्रीतत्त्वनिधि, लिंगपुराण, श्रीशिवपुराण, स्कन्दपुराण, शैवमत, भारतीय प्रतीक विद्या, वामन पुराण, शरभोनिषद, शिव सहस्त्रनाम, बौद्ध जातककथा, तिब्बत के धर्मग्रन्थ आदि शरभ के बार में अन्तर दृष्टि प्रदान करते हैं। शैव उपनिषद में विश्वेश्वर शिव–रुद्र के दिव्य तेज का रौद्रतम एवं घोरतम

स्वरूप शरभ को कहा गया है। नृसिंह अवतार का संहार इसका निमित्त या प्रथम एवं अंतिम कार्य रहा। दक्षिणी भारत में शरभमूर्ति को ''कारब'' के नाम से भी सम्बोधित करते हैं। श्रीलंका के मुन्नेश्वरम मन्दिर में शरभ द्वारा नृसिंह संहार का रौद्र फलक है। शिवपुराण के अनुसार पशु पक्षी के सम्मिलित रौद्र स्वरूप शरभ के सहस्त्र हाथ (पंखों के रूप में) और आठ पैर हैं। शरभमूर्ति के महाट्टाहास से वनराज सिंह, बाघ भी भयभीत हो जाते हैं। शरभ के रक्तिम नेत्रों से महाविद्युत निकल रही थी और जिह्वा अग्निरूपा रही। इसके अलावा मुँह पर वज्र को भी भेदनेवाली चोंच रही।

आर्षग्रन्थों में मृत्युंजय शिव के शरभ रौद्रतम रूपाकार को सिंहाग्नामूर्ति का नामकरण दिया गया है। सालुवेश्वर शरभ की शक्ति प्रत्यंगिरा एवं शूलनी (काली एवं दुर्गा) हैं। शरभतन्त्र में ही महायोगीश्वर शिव ने महादेवी पार्वती को ''मातृकाओं के देवताओं'' को गोपनीय से गोपनीय रहस्य दिया। कैलास में शरभेश्वर के प्रकट होते ही उसे नृसिंह को येन केण प्रकरेण समझाकर विष्णु में समाहित होने अथवा संहार करने का कार्य सौंपा गया। जिससे भूलोक को नृसिंह के आवेश से बचाया जा सके। शरभ अवतार नृसिंह संहार के निमित्त ही उत्पन्न हुए। आकाश भैरव कल्पः में शरभेश्वरार्चना में लिखाः

भगवन देव देवेश सर्व शास्त्रार्थ वादक।
ब्रूहि में सर्व पापघ्नं किं मन्त्रं चेष्टादायकम्।।
तेन पुण्य प्रभावेन शत्रूणां नाशनम्।
सर्व पापप्रशमनं धन्यमायुष्य वर्द्धनम्।।
ब्रूहि में कृपया शम्भो त्वत्पादकमले नमः।
श्रृणु वदयामि देवोशि सर्व पाप हरं परम्।
सर्व शत्रुहरं दिव्यं हृदयं शरभस्य च।
शालुवं सर्वरोगध्नं हृदयं परमाद्भुतम्।।
गुह्याद्गुह्यतमं गुह्यं गोपनीयं स्वयानिवत्।

श्रीलिंगपुराणोंक्त श्रीनृसिंहकृत शरभस्त्ोत्रम् में महादेव त्र्यम्बक द्वारा श्रीहरिविष्णु रूप को पराजित करने का उल्लेख है : ''नन्वशक्तो भवान्विष्णों! जीवितान्तं पराजितः।'' शरभोपनिद् में स्पष्ट लिखा हैः ''भगवान्विष्णुं विद्दार नखैःखरैः। चर्माम्बरो महावीरो वीरभद्रो वभू ह।। 6।।'' इससे पूर्व उपनिषद रचयिता ने स्पष्ट कियाः ''स एकः श्रेष्ठश्च

सर्वशान्तः स एवं वरिष्ठश्च। यो घोरं वेषमास्याय शरभारण्यं महेश्वरः। नृसिंह लोकहन्तारं संजधान महाबलः।'' वहीं उल्लेख मिलता हैः

ब्रह्मार्पणं ब्रह्महविर्ब्रह्मग्नौ ब्रह्मणा हुतम्।।
ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्म समाधिना।।
शरा जीवास्त्दंगेषु भांति नित्यं हरिः स्वयम्।
ब्रहैव शरभः साक्षान्मोक्षदीऽमं महामुने।।''

ऋषियुग से ही श्रीराजराजेश्वरी महादेवी की शक्ति शरभ को स्वीकारा गया। शरभ तन्त्रम् में मातृकाओं के देवता खण्ड शरभेश्वर के त्रि अक्षरों की दिव्यशक्ति का रहस्योद्घाटन करता है। इसके तीन अक्षर श–र–भ के तीन गोपनीय मन्त्र हैं।

शंकारं शांकरं विद्यात तेजः सौभाग्य वर्द्धनम्।।
अन्योन्य कलहादेव वैरिणां नाशनं भवेत्।
शमनं सर्व रोगाणा मायुर्विद्याभिवर्द्धनम्।

''शकार सत् तत्त्व'' को प्रदर्शित करता है। आर्ष ग्रन्थों में इसका श्वेत अथवा स्फटिक वर्ण है। सत्ोगुण युक्त श अर्थात् शंकार को शान्त माना गया है। यह ज्ञान विद्या एवं सौभाग्यदायक है। विद्या का अर्थ आध्यात्म से है। अविद्या भौतकतावादी है। यह परस्पर कलह से वैरी का निवाश करता है। यह सभी रोगों को शमन करता है। साथ ही आयु एवं विद्या में वृद्धि करता है। 'श' सत्ोगुणी होने से मूलरूप से कल्याणकारी है। आर्ष ग्रन्थों के भाष्यकारों ने प्रतीकात्मक रहस्यविद्या में ''शव को शिव एवं शिव को शव'' कहा है। प्रज्ञावान ''इ'' को चेतना शक्ति, ब्रह्म ऊर्जा मानते हैं। शरभ का प्रथम अक्षर शत्रुओं के लिए महाकाल है। इसका ध्यान बहुत ही सोच विचार के बाद करना जरूरी है।

रेफः कृष्णाग्नि बींज स्यात् रक्ताभं सर्वनाशनम्।
जंगमाकर्षणं युद्धे द्विषां सेनाबले तथा।।

आर्षग्रन्थ 'र' को अग्नि एवं कृष्ण यानी सूर्य का बीज कहते हैं। आदि देव सविता ही कृष्ण हैं। सविता सूर्य ब्रह्म का प्राण है। इसकी आभा रक्त के समान सुर्ख लाल है। यह सभी का संहारक नाश करनेवाला है। यह प्रकृति को भी आकृष्ट करने में समर्थ है। यह युद्ध में शत्रु की सेना का बल बिना लड़े हरनेवाला है। शरभ के दूसरे अक्षर की

संहारक शक्ति अद्वितीय है। यही कारण है कि शक्ति के मन्त्रों में इसका प्रयोग होता है। इसकी अग्नि अनन्त शक्तिवान है।

सर्वोच्चाटकरं क्रूरं संग्रामे विजयप्रदम्।।
भकारं भार्गवं बीज लोकरक्षण कारणम्।

शरभ का तीसरा अक्षर 'भ' अग्नि–लक्ष्मी–भृगु–भार्गव बीज है। यह उच्चाटन करने वाला एवं क्रूर है। यह संग्राम में विजय देता है। एवं लोकरक्षण लोकसंग्रह के लिए समर्पित है। अतः ''भ'' उच्चारण उच्चाटन, लोकरक्षण, विजय एवं क्रूर है।

कैलास क्षेत्र में नीलकण्ठ देश (नेपाल) में शरभ के आकाशभैरव स्वरूप का देवालय है। आकाश भैरव के प्रतीक रूप में दो अतिविशालाकार नेत्रों की भव्य शोभायात्रा प्रति वर्ष निकालने की परम्परा शताब्दियों से चली आ रही है। नीलकण्ठ देश की लोकथाओं में श्रीवीरशरभ पक्षीराज आकाशभैरव के दिव्यदर्शन होने का विवरण मिलता है। शरभ के महाअट्टाहास से सिंह कैलास, नीलकण्ठ और हिमालय के ऊपरी क्षेत्र को भय से छोड़ गए। क्योंकि सिंह के लिए शरभ महामहाकाल है। कैलास के गुप्त दिव्य आश्रमों में राजराजेश्वरी के आराधक शरभमूर्ति की भी पूजा अर्चना करते हैं।

आकाशभैरव के उच्चारण मात्र से अग्नि, वैरी संहार, शत्रु शमन, लोकरक्षण, संग्राम में विजयश्री, आवश्यकता पड़ने पर क्रूरता, ज्ञान विद्या, शत्रु सेना का बल हरने, स्थावरजंगं–प्रकृति को वशीकरण करने, सौभाग्य, आयुवर्धन आदि प्राप्त होते हैं। आकाश भैरव शरभ भगवान् शिव की तरह समभाव से न्याय करते हैं। सहस्त्रों वर्षों से साधक अपने आन्तरिक शत्रुओं को नष्ट करने के लिए शरभाराधना करते हैं। शरभ के साधकों के शत्रु स्वयं नष्ट या समाप्त हो जाते हैं। शरभ का घोष तीनों लोकों को कंपायमान करता है। ऊँ

श्रीसदाशिव के उग्रतम स्वरूप
श्रीवीरशरभसालुव के अचूक मंत्र

भगवान् सदाशिव के उग्रतम घोरतम विकरालम स्वरूप श्रीवीर शरभसालुव की साधना 'गुप्त से गुप्त' कही गई है। श्रीवीरशरभेश्वर की उत्पत्ति महादेव शिव ने श्रीहरि विष्णु के रौद्ररूप श्रीनृसिंह के कोप से मुक्ति के लिए की।

श्रीवीरशरभसालुव और श्रीनृसिंह के बीच भीषण संग्राम चला। श्रीशरभोपनिषत के अनुसार श्रीशरभेश्वर ने श्रीनृसिंहका न केवल दर्प एवं अंहकार नष्ट किया बल्कि 'संहार' भी किया। श्रीशरभोपनिषद में वर्णन है: ''कृपया भगवान्विष्णु विददार नखैः खरेः। चर्माम्बरो महावीरो वीरभद्रो वभूव है।।'' लिंगपुराण के श्रीनृसिंह कृत शरभस्त्[ो]त्रम् के अनुसारः 'नन्वशक्तो भवान्विष्णो! जीवितान्त पराजितः।' स्पष्ट है कि श्रीनृसिंह ने निमित्त (हिरण्यकश्यम संहार) के बाद 'जनसंहार' का अधार्मिक रास्ता अपनाया, तब सृष्टि की रक्षा के लिए अर्धपशु, अर्धपक्षी और सर्प पूंछ की त्रिमूर्ति के रूप में भगवान् शिव के श्रीवीरशरभसालुव पक्षीराज आकाशभैरव अवतार की उत्पत्ति हुई। श्रीलिंग पुराण के अनुशीलन से रहस्योद्घाटन होता है कि श्रीशरभ और श्रीनृसिंह के मध्य विन्ध्याचल के उस पार रामेश्वरम के समीप तमिलनाडु में यह महासंग्राम हुआ।

इसीलिए भगवान् शिव सिंह का चर्म (बाघाम्बर–श्रीनृसिंह संहार से प्राप्त) धारण किए हैं। श्रीआकाश भैरव कल्प में श्रीशरभेश्वर के ध्यान का मन्त्र 'चंद्रार्को वह्नि दृष्टिः कुलिशवर नखश्चंचंलोत्युग्र जिह्वः। काली दुर्गा च पक्षौ हृदय जठरगौ भरवो वाडवाग्निः। उरूस्थो व्याथि मृत्यु शरभवर खगचण्ड वातातिवेगः संहर्त्ता सर्वशत्रुन् स जयति शरभः सालुवः पक्षिराजः।' दतिया की पीताम्बरापीठ के स्वामीजी द्वारा संकलित शरभतन्त्रम–पक्षिराज तन्त्रम (आकाशभैरव कल्पोक्तम्) में श्रीरुद्रशिव के रौद्र एवं घोरतर स्वरूप मे ध्यानस्वरूप लिखा : ''अष्टाङ्वि. घ्रश्च सहस्त्र

बाहुरनिलच्छाया शिरोयुग्मभृत्, द्वित्र्यक्षोतिजवो द्विपुच्छ उदितः साक्षान्नृसिंहापहा। अर्द्धेनापि भगाकृपिः पुनरथोप्यद्धेन पक्ष्याकृतिः, श्री वीरः शरभः स पॉतु रूचिरंनीत्वा सदा नो हृदि।। ॐ नमों अष्टपादाय सहस्त्रबाहवे द्विशिरसे त्रिनेत्राय द्विपक्षाय अग्निवर्णाय मृगविंहगम रूपाय वीर शरभेश्वराय हुँ फट्।।''

श्रीशरभसालुवकी शक्ति देवी प्रत्यंगिरा, शूलनी और वडवानल भैरव के कारण त्रिदेवों में सर्वोच्च स्वीकारी गई है। आचार्यों के अनुसार तन्त्रशास्त्र में श्रीशरभ की सर्वोच्च उपासना आन्तरिक शत्रुओं के दमन करने के लिए सम्पन्न करने का विधान है। तन्त्र शास्त्र अध्येताओं का मानना है कि हर व्यक्ति को श्रीशरभ साधना नहीं करनी चाहिए। क्योंकि श्रीवीरशरभसालुव 'उग्रतम रौद्रतम घोरतम' एवं तत्क्षण सिद्ध होनेवाले देव हैं। उनके आवेश को सामान्य साधक सहन नहीं कर सकता है। अतः श्रीवीरशरभेश्वर साधना सावधानीपूर्वक कर्मठ गुरु के सानिध्य में करनी चाहिए अन्यथा अनर्थ भी हो सकता है।

श्रीआकाशभैरव कल्प के विधान में सर्वप्रथम श्रीशरभ चित्र के सामने पुष्प, दीपक, चन्दन, धूप आदि के बाद 'ध्यान' एवं श्रीशरभ गायत्री का तीन बार पाठ करना चाहिए। यह आवश्यक है कि रक्तचन्दन (लालचन्दन) या अष्टगंध चन्दन, रक्तवर्ण के पुष्प या कमल का उपयोग करें (किसी भी स्थिति में केवड़े की अगरबत्ती काम में नहीं लें।) एवं पूजाघर में श्रीविष्णु का चित्र नहीं हो। श्रीशरभ श्रीविष्णु अवतार श्रीनृसिंह का संहार करने वाले हैं। श्रीशरभयन्त्र की विधिवत पूजा करनी चाहिए। श्रीशरभतन्त्र में श्रीशिवने महादेवी को मातृकाओं के देवताओं के रहस्यसे अवगत कराया। इन मातृकाओं का आह्वान किया जाए। श्रीशरभ जप विधि प्रारम्भ होती है। यहॉ से शरभयन्त्र अर्चना की प्रकिया शुरू की जा सकती है। कल्पोक्त शरभ पूजा के प्रारम्भ में श्रीशरभ दिगबंधन, शरभ कवच करना अत्यन्त आवश्यक है। भारतीय साधना पद्धति के अनुसार आकाश में सूक्ष्म आत्मायें विचरण करती रहती हैं। उनसे और दुष्टशक्तियों से रक्षार्थ कवच, दिग्बंधन करना अनिवार्य शर्त है।

इस अर्चना में श्री वीरशरभसालुव पक्षिराज हृदय, शरभदारूण सप्तक, निग्रह दारूण सप्तक, शरभ भुजंग प्रयात स्त्ोत्रम, शरभ देसिका स्त्ोत्र, शरभ अष्टोत्तरशतनाम स्त्ोत्र, शरम अष्टोत्तरशत नामावली, शरभ

सहस्त्रनाम स्त्ोत्र, शरभ सहस्त्रनामावली, शरभमन्त्र प्रयोग, शरभ मन्त्रमाला एवं शरभ मन्त्रराज आदि का पाठ करने का विधान है (भूलकर भी इनका गायन नहीं करें।)। अर्चनामें श्रीलिंग पुराण में नृसिंह द्वारा रचित श्रीशरभस्त्ोत्र का विशिष्ट महत्व है। यह शरभाष्टक प्रभावी है। श्रीशरभ पूजा में शरभशान्ति स्त्ोत्रम का पाठ भी करना जरूरी है। शरभ शान्ति स्त्ोत्र में लिखा हैः 'मयि रुद्रे महादेवे भजध्वं भक्ति पूरिताः। ममांशोय नृसिंहोऽपि मयि भक्तमों स्त्वि।। इमं स्त्वं पठेद्यस्तु शरभेशाष्टकं नरः। नश्यंति सर्वरोगाणि क्षय रोगादिका निच। अशेष ग्रह भूतानि कृत्रिमाणि ज्वराणि च।।7।। अन्त में कहा गयाः 'इत्युक्त्वांत दधे देवि देवान शरभ सालुवः। त्तस्त्े स्व स्वधामानिगताश्चाहलाद पूर्वकम्।।' शरभोनिषद पाठ भी करना होता है।

यज्ञों में श्रीशरभ यज्ञ का विशेष महत्व है। इस दिव्य चमत्कारी शरभयज्ञ का प्रचलन विन्ध्याचल के उसपार अधिक है। यज्ञ में शरभ सहस्त्रनाम स्त्ोत्र अथवा सहस्त्रनाममाला (नामावली) से आहुति देनी चाहिए। यह यज्ञ 'अपूजित शिवमन्दिर में करने से तत्काल फलदायक होता है। अच्छा हो कि शिवमन्दिर के गर्भ गृह में केवल शिवलिंग हो (शिव परिवार एवं नन्दी भी नहीं हों।)। श्रीशरभ का सिद्धमन्त्र 'ऊँ खें खां खं फट् प्राण ग्रहासि प्राण ग्रहासि हुं फट् सर्व शत्रु संहारणाय शरभ सालुवाय पक्षिराजाय हुं फट् स्वाहा' है। शरभ अर्चना में प्रत्यंगिरा अष्टोत्तर शतनामावली, श्रीप्रत्यंगिरा गायत्री, श्रीप्रत्यंगिरा कवच, श्रीप्रत्यंगिरा स्त्ोत्र, श्रीप्रत्यंगिरा सहस्त्रनाम स्त्ोत्र, श्रीप्रत्यंगिरा सहस्त्र नामावली, श्रीप्रत्यंगिरा कवच, श्रीशूलनीदुर्गाध्यान, श्रीशूलनीकवचम, श्रीशूलनी विश्वरूप स्तुति, श्रीशूलनी कर्णा स्त्ोत्र, श्रीशूलनी अष्टोत्तरशतनाम स्त्ोत्र, श्रीशूलनी अष्टोत्तर शतनामावाली आदि का पाठ करना होता है। श्रीप्रत्यंगिरा एवं श्रीशूलनी सभी अभिचारों (शत्रुओं द्वारा मारण, मोहन, उच्चाटन आदि दुष्प्रयोग) एवं शत्रुओं का संहार करनेवाली उग्र देवी हैं। ये देवियां श्रीनृसिंह के रक्तबीज से उपजी कृति को ही पेट में निगल गई थी। अन्त में देवी लक्ष्मीको श्रीविष्णु प्राप्ति के लिए इनकी अर्चना करनी पड़ी। श्रीशरभ साधना में समय का अपना महत्व है। जयपुर के पूर्व राजागुरु पंडित विद्यानाथ ओझा, कविराज नानकचन्द्र शर्मा

वैद्य, श्रीपीताम्बरापीठ स्वामी महाराज आदि उत्तरभारत में श्रीशरभ साधना के विशेषज्ञ थे। ऊँ

पन्द्रह शैव उपनिषदों में शरभोपनिषत् पाशुपतास्त्र सरीखी

शैव उपनिषदों में ब्रह्मविद्या और सर्वोच्च तांत्रिकता का सुनहला रोमांचक रहस्यमय चमत्कारिक संसार है। शैव उपनिषदों में गोपन से गोपन महादेव शिव के श्रीहरिविष्णु अवतार श्रीनृसिंह का संहार करनेवाले तेजोग्र रूप श्रीवीर शरभसालुव की ''शरभोपनिषत'' है।

तांत्रिक साहित्य में आकाशभैरव कल्पोक्तम् के अन्तर्गत श्रीवीर शरभ का गोपनीय वर्णन मिलता है। शैव उपनिषदों में शेष चौदह उपनिषद– अक्षमालिकोपनिषत्, अथर्वशिखोपनिषत्, अथर्वशिर उपनिषत्, कालाग्नि रुद्र उपनिषद्, कैवल्योपनिषत्, गणपत्युपनिषत्, जाबाल्युपनिषत, दक्षिणामूर्त्युपनिषत्, पाँचब्रह्मपनिषत्, बृहज्जाबालोपनिषत्, भष्मजाबालोपनिषत्, रुद्रहृदयोपनिषत्, रुद्राक्षजाबालोपनिषत् एवं श्वेताश्वतरोपनिषत् है।

इन उपनिषदों में कैवल्योपनिषत्, दक्षिणामूर्त्यु उपनिषद, बृहज्जाबालोपनिषत्, पाँचब्रह्मोपनिषत्, रुद्रहृदयोपनिषत्, श्वेताश्वतरोपनिषत्, अथर्वशिर उपनिषद, जाबाल्युपनिषत्, अथर्वशिखोपनिषत् एवं अक्षमालिकोपनिषत् ब्रह्मविद्या को समर्पित हैं। इनके अलावा कालाग्निरुद्रोपनिषत, गणपत्युपनिषत्, भष्मजाबालोपनिषत्, रुद्राक्षजाबालोपनिषत् और शरभोपनिषत् के विषय इतर हैं। रुद्राक्षाजाबालोपनिषत् एवं बृहज्जाबालोपनिषत् में रुद्राक्षजन्म, रुद्राक्षधारण जिज्ञासा, रुद्राक्षधारण की महिमा, भुसुण्ड के रुद्राक्ष विषय में प्रश्न, रुद्राक्षोत्पत्ति, रुद्राक्ष जप फल, रुद्राक्षों में उत्तम का भेद, नहीं धारण करनेवाले रुद्राक्ष (वर्जित रुद्राक्ष), रुद्राक्ष विद्या, रुद्राक्ष के भेद, रुद्राक्षधारण के मन्त्र, विभिन्न कार्य वरण करनेवालों के लिए रुद्राक्ष आदि की बारीकियों

को विस्त्[ार से समझाया गया है। यह भी स्पष्ट बताया गया है कि शरीर के किस भाग पर, किस प्रकार का रुद्राक्ष पहना जाए ? साथ ही एक मुखी रुद्राक्ष (एकवक्त्र) से चतुर्दश मुख (चौदह मुखी) रुद्राक्षों की दिव्य शक्ति से साक्षात्कार कराया गया है। रुद्राक्षधारण महिमा में लिखा है :

रुद्राक्ष मूलं तद् ब्रह्मा तन्नालं विष्णुरवेच ।
तन्मुखं रुद्र इत्याहुस्त्द्विन्दुः सर्व देवताः।।

महादेव शिव की भष्म एवं त्रिपुण्ड का रहस्य भष्मजाबालोपनिषत् में उद्घाटित किया गया है। इसमें सबसे पहले मस्त्क ललाट पर त्रिपुण्ड लगाने की परम्परा के बारे में जिज्ञासा की गई है। मन एवं शरीर को निरंजन (मलरहित करने) के लिए त्रिपुण्ड का महत्व समझाया गया है। साम्ब सदाशिव त्रियम्बक (त्र्यम्बक), त्रिनेत्र, त्रिशूल, त्रिपुण्ड, त्रिपुरारी, सृष्टिरचना–पालन–संहार, सत्य–रज–तम आदि त्रिशक्तियों के अधीश्वर हैं। इस त्रिगुणात्मक सृष्टि के रचयिता महारुद्र शिव की सभी पवित्र प्रतीक विद्या रहस्यों से भरी है। ऋग्वेद में रुद्र को सभी देवों शक्तियों को मर्यादाओं में रखने वाला नियामक स्वीकारा गया है। दिवोवाराह के रूप में रुद्र जल मग्न पृथिवी को पुनः उबारते हैं। वैज्ञानिक रूप से पृथिवी के जलमग्न होने पर सूर्य के ताप–गर्मी से जल भाप बन कर उड़ा और जमीन भूमि ऊपर आई। शिव के डमरू से निकला नाद भी तीन अक्षरों से मिलकर ओम के रूप में सृष्टि की रचनाकर्ता बना।

भष्मजाबालोपनिषत् में भष्म धारण करने की विधि में तर्जनी, मध्यमा, अनामिका से त्र्यम्बक के लिए ललाट पर, कण्ठ पर और शरीर के स्थानों पर त्रिपुण्ड बनाने का उल्लेख है। इस उपनिषद में भष्मधारण के आवश्यक कर्तव्य, अकरणे प्रायश्चित, भष्म लगाने के शुभ फल, नित्य कर्तव्य, शिव पूजा विधि, शिवषडाक्षर जप, ब्रह्म स्वरूप, ब्रह्म ज्ञान मुक्ति साधन, शिवस्य पशुपाशमोचन, शिवतत्त्व में लीन होकर काशीवास, ज्योतिर्लिंग अर्चन के तत्काल फल, शिव अभिप्रेचन, सर्वपातकपावन शिव अभ्यर्चन आदि का विवरण है। भष्मजाबालोपनिषत् कर्मकाण्ड से निवृत्ति की ओर ले जाती है। यह जीवन मरण के चक्र से मुक्ति का रास्त्ा दिखाती है। वैसे बृहज्जाबाल उपनिषद में स्पष्ट लिखा है कि विभूति (भष्म) धारण करने भवसागर से मुक्ति मिलना निश्चित है।

ऊँ लं नमस्ते् गणतत्ये महामन्त्र से गणपत्युपनिषत् आरम्भ होती है। इसमें गणपति को ''त्वमेव सर्वं खल्विदं ब्रह्मासि (यह सभी विश्व के ब्रह्म स्वरूप गणपति हैं।)'' कहा गया है। प्रकारान्तर में गणपति प्रार्थना, गणपति सर्वात्मतया स्तुति, गणपति गायत्री, गणपतिध्यान, गणपतिमाला मन्त्र, गणपति विद्या पाठ के फल, काम्य प्रयोग, विद्यावेदनफल के रहस्य को समझाया गया हैं। ब्रह्म विद्या के अनुसार प्रातः ब्रह्म मूहर्त में गणपति विद्या से सिद्धी मिलती हैं : ''स सर्वविघ्नवति स सर्वविघ्नवति य एवं वेदेत्युपनिषत्।।''

आगम में गोपनीयतम शरभतंत्र में शरभोपनिषत का विशेष स्थान है। श्रीबदरीनाथ धाम स्थित श्रीज्योतिष्पीठ–ज्योतिर्पीठ के जगदगुरुशंकराचार्य स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वती, जयपुर के राजगुरु पण्डित श्रीविद्यानाथ ओझा, श्रीपीताम्बरा (बगलामुखी) पीठ दतिया के श्रीअनन्त स्वामी, डॉ. सम्पूर्णानन्द, डॉ. जनार्दन मिश्र, श्री के. कुंनन राज आदि ने महादेव शिव के महामहाकाल, महामहाविध्वंसक, महातेजोग्र, महाविकराल, महाभयावह रूप श्रीवीर शरभ को सभी से प्रभावी स्वीकारा है।

शरभोपनिषत में रुद्र की श्रेष्टता, 'रुद्र द्वारा शरभ रूप में नृसिंह वध' देवताओं द्वारा रचित शरभ स्तुति, रुद्रानुग्रह, रुद्र महिमा, विष्णुशिवयोरभेद, शिवध्यान, एतच्छास्त्रसंप्रदाननियम आदि भी वर्णित हैं। पैप्पलाद ऋषि को समझाया गया है कि यह पाशुपत अस्त्र के समान तत्काल प्रभावी शरभ का गोपनीयतम ज्ञान शिव भक्त के अलावा किसी को भी नहीं दिया जाना चाहिए। इसके दुष्ट अथवा गलत हाथों में पड़ने से विनाशक परिणाम हो सकते हैं। यही कारण है कि श्रीवीर शरभ सालुव के चित्र बहुत ही दुर्लभ हैं। शरभ की देवियां प्रत्यंगिरा और शूलनी हैं। प्रत्यंगिरा और शूलनी सभी अभिचारों को नष्ट करनेवाली हैं। शरभ एवं प्रत्यंगिरा की प्रतिमाओं के मन्दिर पुदुच्चेरी और तमिलनाडु में हैं। श्रीवीरशरभ सालुव का महायज्ञ जयपुर के राजगुरु रहे पण्डित विद्यानाथ ओझा ने सम्पन्न किया। श्रीनीलकण्ठ महादेव, राजोरगढ़ में भी श्रीशरभयज्ञ होने का उल्लेख है। ऊँ

श्रीवीरशरभेश्वर ने नृसिंह का पुदुच्चेरी में 'संहार' किया

भगवान् शिव के उग्रतम अवतार श्रीवीर शरभेश्वर ने दक्खन में पुदुच्चेरी में श्रीविष्णु के भयावहावतार नृसिंह का संहार किया। पुदुच्चेरी में इससे पहले सहस्त्रों हाथवाले श्रीवीर शरभेश्वर और नृसिंह के बीच वर्षों भीषण महासंग्राम से तीनों लोक कांप उठे थे।

पौराणिक आख्यानों के अनुसार असुरराज हिरण्यकश्यप का स्त्म्भ से निकलकर श्रृंगेरी (नाम से नहीं चौंके), पुदुच्चेरी में श्रीनृसिंह ने अन्त किया। श्रीनृसिंह ने हिरण्यकश्यपु के शरीर के तीन टुकड़े किए। इसीलिए नृसिंह के तीन स्थल परिक्कल, पूवारासानकुप्पम एवं श्रृगेरी मंन्दिर एक रेखा में हैं। नृसिंह के तमिलनाडु एवं पुदुच्चेरी में पवित्र स्थल–शोलिंगुर, नामाक्कल, चिन्तालावाडी, सिंगावेरूमल कोली, अंथीली, परिक्कल, श्रृंगेरीकोयल (पुदुच्चेरी) से है। आख्यानों में लिखा है कि श्रीशरभेश्वर की लाल आंखों से बिजली निकल रही थी और जिह्वा से अग्नि। श्रीशरभ सालुव के पंखों पर देवी प्रत्यंगिरा और देवी शूलनी विराजमान थी। ये महाकाली के उग्र रूपों की देवी हैं।

श्री शरभेश्वर ने महासंग्राम के आखरी चरण में अपनी सर्प सरीखी दो पूछों में नृसिंह को जकड़ कर हाथों में पकड़ा। श्रीहरि के नृसिंह अवतार की दीन हीन स्थिति थी। देवी प्रत्यंगिरा की 'एशिया में सबसे बड़ी भव्य प्रतिमा पुदुच्चेरी के मोराताण्डी गांव में है।' इसकी प्रत्येक रविवार को विशेष पूजा का विधान सदीयों से चल रहा हे। देवी प्रत्यंगिरा की पूर्णिमा और अमावस के बाद प्रथमा को भद्रकाली के रूप में पूजा की जाती है।'

दक्खन में तमिलनाडु, कर्नाटक एवं पुदुच्चेरी में श्रीशरभेश्वर के पृथक मन्दिर हैं। शैव अनुयायियों का विश्वास है कि वर्ष में एक बार भगवान् वीर शरभेश्वर स्वयं प्रकट होते हैं। श्रीवीर शरभेश्वर के नामों में पक्षिराज, आकाश भैरव, शरभसालुव भी हैं। भगवान् पशुपतिनाथवाले

नेपाल में श्रीशरभेश्वर का ''आकाश भैरव'' मन्दिर है। हिमालय में तिब्बत में बौद्ध धर्म अनुयायी भी शरभ की पूजा करते हैं। मत्स्य क्षेत्र के श्री नीलकण्ठेश्वर महादेव मन्दिर में शरभ की चित्ताकर्षक प्रतिमायें हैं। श्रीशरभेश्वर के कारण ही श्रीनीलकण्ठेश्वर देवालय में शिव परिवार, नन्दी की प्रतिमायें नहीं हैं। तिब्बत में श्रीशरभेश्वर को शक्ति, गति और दृढ़ निश्चय का प्रतिरूप माना जाता है। जातक कथाओं में शरभ के बोधिसत्त्व से सम्बन्धों को उजागर किया गया है।

ऋग्वेद के सुपर्णा (सोने के पंख वाला पक्षी) का सम्बन्ध श्रीवीर शरभेश्वर के स्वर्णमयी आभा से लिया गया है। आदिशंकर ने भी दीप्तमान चमकते हिरण्यगर्भ शरीरवान ईश्वर को शरभ कहाँ दक्खन में कर्नाटक प्रदेश के प्रतीक चिन्ह पर और मैसूर विश्वविद्यालय के प्रतीक में ''श्रीशरभेश्वर का चित्र'' है। शिवपुराण, लिंगपुराण, कालिकापुराण, कामिकागम, श्रीतत्त्वनिधि, स्कन्दपुराण, स्थापत्यवेद, कांचीपुराण, देव तिरूमेनिकल, ब्रह्माण्ड पुराण, तैत्रीयकम, नृसिम्होद्रापुराण, आकाश भैरवकल्प, पक्षिराज तन्त्रम, शरभतन्त्रम आदि श्रीशरभेश्वर की गाथा परत दर परत रहस्योद्घाटन करते हैं। श्रीशरम के उग्रतम रूप के कारण आमतौर पर साधकों को इसे गोपनीय मानकर नहीं करने की सलाह दी जाती है। साधकों का कहना है कि श्रीशरभ के उग्र तेज को सहना हर व्यक्ति के लिए सम्भव नहीं है।

कर्नाटक, तमिलनाडु के श्रीशरभ मन्दिर अनूठे हैं। दक्खन के साधकों का मानना है कि श्रीशरभेश्वर का निवास गन्धमादन पर्वत एवं क्रोंच पर्वत है। श्रीशरभ के महा अट्टाहास से सिंह भी भयभीत होकर भागने लगते हैं। श्रीशरभ सिंह को ही निवाला बनाता है। श्रीशरभेश्वरके प्रसिद्ध मन्दिर–त्रिभुवनम का कम्पहरेश्वर मन्दिर, दारासुरम का ऐयरावतेश्वर मन्दिर, कुम्बकोनम का आपत सहायेश्वर मन्दिर, तिरूवरूर का त्यागेश्वर मन्दिर, मदुरई के वैथीवरन कोयली–श्रीमीनाक्षी अम्माकोयली, तिरिशूलम चेन्नई का तिरिशूलान्तर मन्दिर, चेन्नई का करूणकालीश्वर मन्दिर, तंजोर का त्रिभुवन देवालय, धेनुपुरेश्वर मन्दिर, त्रिशूलम मन्दिर, गंगाई कोण्डा चोलापुरम देवालय, धारापुरम देवालय, काराइकुडी देवालय, त्रिरूवन्नमलाई देवालय, चिदम्बरम देवालय, मीनाबक्कम के समीप त्रिशूलम देवालय आदि है। श्री शरभ कम्पहरेश्वर मन्दिर प्रभु सभी कम्पन, सभी

प्रकार के भय को हरनेवाले हैं। तंजोर शरभ मन्दिर में उत्सव मूर्ति है। जिसका सिंह और गरूड़ का मिलाजुला मुख, चोंच, आठ पाद, चार हाथ और हाथों में नृसिंह को पकड़े हैं। शरभ के हाथों में अग्नि, पाश, फरसा एवं मृग हैं। स्थापत्यवेद के मापदण्ड़ों में श्रीशरभ प्रतिमा का सुनहरी आभा का गरूड़ शरीर, दो पंख, दो रक्त नेत्र, सिंह के चार पैर, पूंछ लम्बी, ऊपर चार हाथ, मानव एवं सिंह का संयुक्त चेहरा, किरीट मुकुट, मुँह से अग्नि निकलती, दो पैरों में नृसिंह को दबोचे और निरीह मानव रूप में नृसिंह होने चाहिए।

त्रिभुवन मन्दिर में श्रीशरभेश्वर, त्रिपाद, सिंह मुख, चार मानव हाथ एवं पूंछवाली है। यहाँ शरभ अष्टभुजा है। दारासूरम में शरभ की काली प्रतिमा है। यह स्वरूप कालिका पुराण से मिलता है। इतिहासकारों के अनुसार दक्खन में चोल साम्राज्य के विक्रम चौल ने सन 1118 से 1155 के बीच कुम्बकोनम मन्दिर में श्रीशरभेश्वर को स्थापित करवाया। दारासुरम में चौल राजा कुलोतुंगा चौल तृतीय ने अलग से शरभ मन्दिर की रचना की। तंजावूर का यह मन्दिर दर्शनीय है। त्रिभुवनम में पाण्डीयवश के राजा वरगुन, पाण्डीयन ने ब्रह्महत्या से मुक्ति के लिए मन्दिर निर्माण करवाया। यह देवालय चेन्नई से 10 किमी दूर है। यहॉ शरभ मन्दिर में चारों वेद भी पूजित हैं। साधक इसे अविलम्ब परिचय दायक मानते हैं। शैवमत के अनुसार शरभेश्वर तत्क्षण प्रसन्न होनेवाले देव हैं। श्रीनीलकण्ठेश्वर महादेव में शिव लिंग श्रीशरभ रक्षित होने से उग्र है। पाण्डीचेरी का प्रत्यंगिरा मंदिर सभी अनिष्टों का और अभिचारों का नाशक है। श्रीशरभेश्वर की पूजा रविवार को दोपहर 4.30 बजे से सांझ 6 बजे राहुकाल में करना सर्वोत्तम माना गया है। ऊँ

देवलोक सुमेरु के स्फटिक शिवलिंगों का रहस्य

महादेव की देवलोक शिवपुरी पर्वतराज हिमालय के पवित्रतम सुमेरु पर्वत स्थित मानी गई है। तिब्बत में दिव्य कैलास पर्वत को सुमेरु

के रूप में स्वीकारा गया है। भूगोलविद शिवनिवास सुमेरु अर्थात् कैलास को सबसे ऊँचा पठार कहते है। सुमेरु पर्वत पर परमशिव की साधना तत्काल फलदायक स्वीकारी गई है।

सुमेरु में स्फटिक शिवलिंग की उपलब्धि स्वयं में आश्चर्यचकित करती है। हिमालय के हिमनदोंवाले इस इलाके में मीलों मीलों स्फटिक खान नहीं है। दूसरे, बारह माह हिम बर्फ की मोटी चादर ओढ़े कैलास में खनन स्वयं में लगभग असम्भव है। उस पर भी स्फटिक खण्ड को संगतराशी तक्षण से लिंगाकार देना भी बहुत असम्भव कार्य है।

इन परिस्थितियों में लगभग 2600 वर्ष पहले आचार्य शंकर यानि आदिशंकराचार्य द्वारा सुमेरु से 5 दिव्य स्फटिक शिवलिंग लाना चकित करता है। आचार्य शंकर को सुमेरु पर्वत में शिवलिंग कहाँ मिले, किसने दिए ? आचार्य शंकर की सुमेरु में साधना का विवरण नहीं के बराबर मिलता है। यह भी रहस्य है कि आचार्य शंकर ने सुमेरु कैलास के सम्बन्ध में पट्टशिष्यों तक को कोई सूत्र नहीं दिया। आदिशंकर की तिब्बत धर्मयात्रा की गवाही तिब्बत में शंकरकटाह (कडाह) नामक क्षेत्र दे रहा है। आदिशंकर चीनाचार (मांस, मदिरा, मैथुन, मुद्रा, मत्स्य–अध्यात्मिक अर्थ अलग है।) वाले तिब्बत में अद्वैत के प्रकाश के लिए शंकरकटाह तक गए। आर्षग्रन्थों में स्कन्द पुराण में हिमालय में ''दिव्य कलापक्षेत्र'' (यहाँ अध्यात्मिक अर्थ लें) का उल्लेख मिलता है। कलापक्षेत्र में वैवस्वत्त (वैवस्वत का अर्थ सूर्य पुत्र है।) कलिकाल के अन्त तक प्रवास कर रहे हैं।

सूर्यविज्ञान प्रणेता स्वामी विशुद्धानन्द परमहंस ने हिमालय में यमुनोत्री–गंगोत्री–श्रीकेदारनाथ–श्रीबदरीनाथ से आगे हिमनदों (बर्फ के पर्वतों–ग्लेशियर्स) के बीच (तिब्बत में सुमेरु के समीप) में अदृश्य रहस्यमय ''ज्ञानगंज'' में सूर्यविद्या की शिक्षा ली। ज्ञानगंज में स्वामी विशुद्धानन्द परमहंस के सिर के दाहिने भाग में ''स्फटिक का शिवलिंग'' आरोपित किया। ज्ञानगंज में आमतौर पर दिव्य स्फटिक शिवलिंग दीक्षान्त के बाद वापस ले लिया जाता है। यह बात अलग है कि भारत में सूर्यविज्ञान के प्रचार प्रसार के लिए ज्ञानगंज प्रभारी ने स्वामी विशुद्धानन्द परमहंस को स्फटिक शिवलिंग ले जाने की अनुमति दी। यह रहस्य का रहस्य ही रहा कि ज्ञानगंज में स्फटिक शिवलिंग, स्फटिक

आतशी शीशा आदि कहाँ से आते थे? ब्रह्मज्ञान समाज के श्री सी. डब्लू. लीड़बीटर ने तिब्बत के हिमनदों की घाटी में 1600 वर्ष के चमत्कारिक कुथमीबाबा की कथा लिखी है। श्री लीडबीटर के अनुसार हर साल तिब्बत के दिव्य क्षेत्र (सुमेरु) में परमेश्वर आते हैं। चार धामों से सुमेरु और हिमनदों में दिव्य कौशकी आश्रम, वसिष्ठ आश्रम, भरद्वाज आश्रम, अगस्त्य आश्रम आदि के होने के विवरण मिलते हैं। अध्यात्मिक यात्री श्री सुदर्शन सिंह चक्र ने भी इनका रोचक खाका खींचा है। सन 1956 में कैलास मानस सरोवर महातीर्थ के यात्री श्री बिमल दे ने सुमेरु में मठों में दिव्यशक्ति सम्पन्न साधुओं से साक्षात्कार का ब्योरा दिया है। इन मठों में साधु मात्र लंगोटी में नंगे बदन साधना में लीन मिले।

आर्षग्रन्थों में जम्बूद्वीप की मीठी कथा है। जम्बूद्वीप में देवलोक शिवपुरी कैलास मानस सरोवर में दिव्य जम्बू वृक्ष है। इस वृक्ष का फल पवित्र मानस सरोवर झील में गिरते ही "जम्ब" की आवाज करता है और पवित्र जल में सोने में बदलकर अनन्त गहराई के तल में चला जाता है (ऋषियों का मानना रहा कि स्वर्ण के सम्पर्क से मानस सरोवर के पवित्र जल में कभी नहीं सड़ने की चमत्कारिक शक्ति आती है। श्री टालबोट मुण्डी द्वारा सन 1924 में प्रकाशित नाईन अननोन में वाराणसी में भूमि के हजारों फीट नीचे स्वर्ण भण्डार एवं तरल स्वर्ण से गंगाजल को संजीवनी रूप देने की प्रयोगशाला का रोचक विवरण दिया है।)। यह जम्बूवृक्ष रहस्य बना है।

दिव्य शिवलिंगाकार सुमेरु कैलास के रंग सूर्योदय के समय इन्द्रधनुष की भांति बदलते रहते हैं। महाकवि वाल्मीकि की रामायण के लंकेश्वर दशानन रावण के स्नान करनेवाली राक्षस ताल में बर्फ की परत तोड़कर सिद्ध स्नान करते हैं। श्री बिमल दे सिद्ध के आग्राह पर शून्य से नीचे तापमान में राक्षस ताल में कूदें। उन्हे अचरज हुआ कि सरोवर का पानी गर्म था। सुमेरु पर्वत के बर्फ से ढ़के शिखरों के बीच शून्य से नीचे तापमान में ताल का पानी गर्म कैसे था? उन्हे सुमेरु महातीर्थ की उलटबांसी ने चौंकाया। श्री सुदर्शन सिंह चक्र ने भी बर्फ पर्वतों में रास्ता भटकनेवाले तीर्थयात्रियों को बचानेवाले लगभग 1500 वर्ष के साधु की कथा लिखी है।

इस परिदृश्य में शिवपुरी सुमेरु कैलास में लगभग छब्बीस सौ वर्ष पहले आदिशंकराचार्य को दिव्य स्फटिक भोगलिंग, मुक्तिलिंग, वीरलिंग, मोक्षलिंग एवं योगलिंग प्राप्ति चमत्कारिक ही है। आदिशंकराचार्य का नवनाथों में प्रमुख भगवान् दत्तात्रेय, बादरायण व्यास आदि दिव्य शक्तियों से मिलना भी इसी कड़ी का विस्त्ार ही रहा। आदिशंकराचार्य स्वयं योगलिंग की पूजा अर्चना करते थे। परमशैव रहे आदिशंकराचार्य ने नीलकण्ठ (वर्तमान नाम नेपाल) में श्रीपशुपतिनाथ की पूजा में व्यवधान को दूर किया। पशुपतिनाथ का अन्तमूर्ति शंकर में प्रमुख स्थान है। उस समय नेपाल में शिवदेव राजा थे और शैवमत का बौद्ध प्रभाव में लोप हो रहा था। आचार्य शंकर ने शास्त्रार्थ में बौद्धों को हराकर वेदीक सात्वत धर्म को पुनर्जीवित किया। वेदीक देवों के शास्त्ा रुद्र को समर्पित पशुपतिनाथ में पुनः पूजा अर्चना प्रारम्भ की हैं। नेपाल की राजधानी में भयानकतम भूचाल में भी श्रीपशुपतिनाथ मन्दिर को कोई नुकसान नहीं हुआ।

सुमेरु का चमत्कार रहा कि श्रीकेदारनाथ में जलप्रलय के दौरान नरनारायण की पूजास्थली–तप साधनास्थली केदारनाथ मन्दिर सुरक्षित रहा। आदिशंकराचार्य अपनी माताश्री के देहत्याग के बाद श्रीकेदारनाथ गए और अंत में दिव्य सुमेरु पर्वत गए। सुमेरु के स्फटिक शिवलिंगों का रहस्य बीसवीं शती में स्वामी विशुद्धानन्द परमहंस के साथ चर्चाओं में आया। जयपुर के राजगुरु रहे पण्डित श्रीविद्यानाथ ओझा का स्फटिक शिवलिंग सर्पयुक्त था। उन्हे साफ करते ही दोनों के बीच बिजली निकालने लगती थी। राजगुरु श्रीविद्यानाथ ओझा भी युवावस्था में हिमालय गए। जहाँ रहस्यमय कपालधारी साधु से भेट हुई।

राजगुरु श्रीविद्यानाथ ओझा ने जयपुर के चन्द्रमहल (सिटी पैलेस) के श्रीराजराजेश्वर शिव मन्दिर में भगवान् शिव के नृसिंह अवतार का संहार करनेवाले श्रीवीर शरभसालुव की तांत्रिक साधना यज्ञ किया। फलस्वरूप जयपुर राजघराने का सरकार द्वारा मोती डूंगरी महल से लिया कथित 800 मन स्वर्ण वापस मिला। ऊँ

वेद के अग्निदेव ज्ञान
और चित्त तत्त्व के स्वामी

मन्त्र दृष्टा ऋषियों को सीधे परमेश्वर से मिले ज्ञान वेद के अग्निदेव भौतिक अग्नि नहीं हैं। वेदीक वांगमय के अग्नि देव, गौ, अश्व, दिव्य नदी सरस्वती, गंगा, सूर्य, सर्वम, इन्द्र, वरुण, रुद्र, वायु, अश्विनौ कुमार आदि देवताओं के रहस्यमय गोपनीय अर्थ को परतदर परत जानना आवश्यक है। यूनान, मिश्र, फारस सहित दूसरे देशों में प्राचीनकाल में सूर्य (अपोलो, रॉ) और अग्नि की पूजा–अर्चना की जाती रही। वेदीक युग के ऋषियों ने एक बड़े काल खण्ड में कूट भाषा संस्कृत में दैविक ऋचाओं की देववाणी को श्रुति से ग्रहण किया।

सबसे महत्वपूर्ण यह है कि देववाणी वेद विशेषकर ऋग्वेद की प्राचीन भाषा के कितने शब्दों के अर्थ अभी भी रहस्यों के घेरे में हैं अथवा उनका अर्थ अभी जाना नहीं जा सका। वेद के भाष्यकार यास्क ने स्वीकारा कि उन्हें लगभग 400 शब्दों का अर्थ नहीं मालूम। वेद् के रहस्यमय गोपनीय चिन्हों में से अनेक अभी भी जाने नहीं जा सके हैं। निरूक्त और वेदांग भी इन शब्दों के गूढ़ अर्थों के रहस्य को खोलने में असमर्थ रहे हैं। ऋत का अर्थ सत्य, सूर्य का पर्याय सत्य और प्रकाश को ज्ञान माना गया। वेदीक गौ–गाय को प्रकाश ज्ञान और अश्व (घोड़े) को शक्ति के प्रतीक के रूप में लिया गया है। इसीलिए वेदीक ऋषि अग्नि देव से उपहार में गौ और अश्व मागते हैं। अग्नि से ही वेद में सम्पूर्ण कल्याण चाहा है।

वेदीक अग्नि के बारे में ऋग्वेद की देवभाषा में गायत्री छन्द पहली ऋचा हैः आग्निमीळ पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम होतारं रत्नधातमः।। अग्नि सृष्टि के कर्ता यज्ञ के सामने उपस्थित है। अग्नि सृष्टि को चैतन्य मेधा है। यहाँ अग्नि और यज्ञ, सत्, चित्त और आनन्द

हैं, अग्निदेव सबसे मेधावान, बुद्धिमान, चेतन मन के स्वामी हैं। ब्राह्मण ग्रन्थों की कथाओं के अनुसार प्रजापति ने ब्रह्मचारी को प्रिय मानकर मृत्यु का भाग नहीं दिया। साथ ही एक शर्त भी लगा दी। जिस दिन ब्रह्मचारी अहोरात्र में समिधाधान से अग्निहोत्र नहीं करेगा, उस दिन या रात्रि को उसके जीवन को मृत्यु दबोच लेगी। सो ब्रह्मचारी अग्निहोत्र से अमृत अग्नि की परिचिर्या करता है। यहाँ ब्रह्म का गूढ़ अर्थ बृहणत्व या बढ़ना विस्त्‌ार है। प्राणापान का रूपान्तरण सोम एवं अग्नि है। जिनको अद्दिष्ट करके अग्निहोत्र की आहुतियां दी जाती हैं। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार सूर्य अपनी गति से एक अग्निहोत्र रच रहा है : ''सूर्यो ह वाऽ अग्निहोत्रम।'' अग्निहोत्र को शतपथ ''ब्राह्मण जरामय सत्र'' कहता है। जरामय सत्र का अर्थ मृत्यु तक चलनेवाला यज्ञ है। अग्नि मूलतः प्राण से अपान की ओर निरन्तर दौड़ती है। उस अंगिरा (अग्नि) के समाप्त होते ही शरीर मृत हो जाता है। यजुर्वेद में लिखा है : ''अन्तश्चरति रोचनास्य प्राणदपानती। व्यख्यन्महिषो दिवम।'' जिस अन्तर्यामी की दीप्ति के रूप प्राणापन हैं, उसने अपने परम जन्म को जान लिया है। अन्तश्चारी प्राणापान के द्वारा अंगिरा अतिथि को समृद्ध और प्रबुद्ध करना ही दिव्य अग्निहोत्र है। दरअसल प्राणाग्नि की उपासना के लिए ही दैनिक अग्निहोत्र की विधि है। निष्काम या निष्कल निराकार निर्गुण ब्रह्म से सकाम ब्रह्म की यात्रा का भौतिक माध्यम भौतिक अग्नि बनी।

वाम मार्ग में परम विन्दु से निकली रौद्री अर्थात् रुद्र और उनकी शक्ति है। इनका रूप अग्नि है और इसे ज्ञान बताया गया है। अद्वैत को सर्वोच्च मानते हुए कहा गया : ''यथादृष्टिः तथा सृष्टि :।'' यानी हमारी दृष्टि के अनुसार ही विश्व का स्वरूप दिखाई देता है। ऋग्वेद के 10589 अथवा 10551 दिव्य मंत्रों के 10 मण्डलों में अग्नि देव की स्तुतियां मिलती हैं। इन 10 मण्डलों के सूक्तों में मंत्रदृष्टा ऋषियों ने गूढ़ कूट देवभाषा में अग्नि का वर्णन किया है। मंत्रदृष्टा ऋषि दिव्य दृष्टि से सूक्ष्म से सूक्ष्म अर्थात् अणु परमाणु की रचना को देखने में सक्षम थे। उनकी दृष्टि में अग्नि देवता प्रकाश का अधिष्ठाता, सृष्टि की लीला और यज्ञ महेश्वर है। साधक चिदाग्नि से पवित्र होता है। यहाँ अविद्या और विद्या को जानना आवश्यक है। अग्नि शब्द का शाब्दिक अर्थ इस पर प्रकाश डालता है। अग्नि शब्द अंग और नि की सन्धि है। अगं का अर्थ जड़ से

है। इसमें अ अक्षर होने और ग शक्ति का प्रतीक है। सो अग्नि का अर्थ परम, महाशक्तिवान चकाचौंध करनेवाली शक्ति, भव्य हुआ। अग्नि स्वयं अग्निमय सूर्य की आपूर्ति करता है। अग्नि तेजस उत्पन्न करता है। अग्नि रश्मियों का जनक है। नकारात्मक रूप से अग्नि से ही छाया जन्म लेती है।

वेदों की ऋचाओं से स्पष्ट होता है कि अग्नि के जन्म के साथ ही ज्ञान का उदय हुआ। इसीलिए अग्नि को जातवेदा कहा गया। वेद के गोपनीय ज्ञान में अग्नि दृष्टा मनीषी है। वेद के गुह्यज्ञान में विभिन्न शब्दों के सैंकड़ों अर्थों को जानना मूलभूत शर्त है। वेद में निरन्तर उपयोग किए जानेवाले शब्द श्रवस का अर्थ प्रसिद्धि है। कहीं पर ऋषियों ने इसे खाद्य के पर्याय के रूप में उपयोग किया है। सायण मानते हैं कि श्रु का अर्थ कानों द्वारा सुने गए दिव्य मंत्र है। वेदीक ऋषि स्वयं को दिव्य मंत्रों का और सत्य का दृष्टा कहते हैं। वेद की त्रिगुणात्मक सत्, रज और तम सत्ता के कारण अग्नि के मंत्रों के भी विविध अर्थ हैं। यास्क ने वेदीक दिव्य मंत्रों के तीन अर्थ होने की पुष्टि की है। अग्नि अध्यात्मिक त्रिज्ञान की प्रदाता है। ऋग्वेद के मण्डल के 103 वें सूक्त में अग्नि का आह्वान रुद्र के साथ किया गया है। शरभ तन्त्र के शरभ स्त्ोत्र में महादेव साम्ब सदाशिव के विष्णु अवतार नृसिंह के हन्ता वीरशरभ शालुव को वह्निरूपिणे (अग्निस्वरूप) कहा गया है।ऋग्वेद के दसवें मण्डल के 6वें सूक्त में अग्नि को ज्ञान का प्रकाश कहकर स्तुति हैं। दसवें मण्डल के 20 वें सूक्त में लिखा हैः ''भद्रं नो अपि वातय मनः'' (हमें प्रसन्न मन मस्ति्ष्क प्रदान करें।)। संध्या उपासना के मार्जनम में प्रार्थना है : ''अग्नि च विश्व शम्भुवमाश्च विश्व भेषजी।''

ऋग्वेद के दसवें मण्डल के 45 वें सूक्त में लिखाः ''दिवस्परि प्रथमं जज्ञे अग्निरस्मद द्वितीयं परि जातवेदा। तृतीयमप्सु नृमणा अजस्त्रमिन्धान एनं जरते स्वाधी। ज्ञान के देव अग्नि का सर्वप्रथम जन्म स्वर्ग में हुआ। दूसरी बार भूलोक पर ज्ञान का प्रकाश फैलाने अग्नि देव आये और जातवेदा कहलाए। उनका तीसरा जन्म जल में और प्रबुद्ध मस्ति्ष्क में हुआ।'' ऋग्वेद के इस मंत्र का अर्थ अनेक रहस्यों को समेटे है। ऋग्वेद के इसी मण्डल का अग्नि का रहस्यमय 191 वें सूक्त का मंत्र है : ''समानी व आकूतिः समाना हृदयाग्नि वः। समानमस्तु वो मनो

यथा वः सुसहासति।।" यज्ञ का ऋत्वज भावविभोर सत्य तत्त्व से परिपूर्ण ऋषि और अध्यात्मिक ज्ञान का जन्मदाता है। वैसे वेदीक अर्थों में होता का अर्थ बलिदान करानेवाला पुरोहित और हवि का अर्थ बलि नहीं है। वेदीक अग्नि देवता ज्ञान और प्रसन्नता को देनेवाला और तप के द्वारा सभी प्रकार की आसुरी बुराइयों को ज्वाला में भष्म करनेवाला है। अग्नि के चित्त तत्त्व और ज्ञान समझने की कठिनाई को ध्यान में रखकर भौतिक अग्नि (प्रत्यक्ष देव) से जोड़ा गया। क्योंकि निष्काम ब्रह्म अग्नि की साधना केवल उच्च साधकों के ही बूंते की बात है। आदिशंकराचार्य ने ऋग्वेद के अध्ययन और अनुसंधान के लिए ओडीशा के पुरी में गोवर्धन मठ स्थापित किया। ऊँ

अरूणामय सविता सूर्य की आधे घण्टे ऊर्जा से भोजन की आवश्यकता नहीं

प्रातःकाल अरूणामय सिन्दूरी रंग के आदिदेव सविता या सूर्य की अनन्त, दिव्य शक्तियाँ और चमत्कार कल्पना से परे हैं। इस अरूण रूपी सविता को मात्र चौथाई घण्टे देखने मात्र से शरीर की सभी ऊर्जा आवश्यकताओं की पूर्ति होती है। दूसरे शब्दों में शरीर को भोजन आदि करने की कोई जरूरत नहीं होती है। हिमालय के अदृश्य ज्ञानगंज, कौशीकीकाश्रम, वसिष्ठाश्रम, कलाप क्षेत्र आदि के साधक शताब्दियों से रहस्मय सूर्य विज्ञान की साधना कर रहे हैं।

सूर्यविज्ञान के दीक्षितों को प्रारम्भ में 10 से 15 सैकिण्ड अरूणरूप सविता को एकाग्रता से निहारना होता है। इस अवधि को प्रतिदिन बढ़ाकर छह से नौ महिनों में आधे से पौने घण्टे तक पहुंचा जाता है। एकबार अरूण आभा को आधे घण्टे से अधिक देखने से शरीर पूरी तरह सूर्यऊर्जा से भर जाता है। इसमें मार्गदर्शक गुरु शिष्य को नंगी जमीन मिट्टी पर ही खड़ा करता है। जिससे आवश्यकता से अधिक सूर्य ऊर्जा माता पृथिवी में समाती रहती है। दीक्षित आधे घण्टे अरूण आभा

ग्रहण करते ही पेट की भूख से मुक्त हो जाता है। कुछ वर्षों तक लगातार अरूण आभा ऊर्जा नियमित आधे घण्टे लेने के बाद दीक्षित चाहे तो महिनों बिना सविता की ऊर्जा काम चलाने में समर्थ हो जाता है। उसे जब ऊर्जा की कमी लगे तो फिर अरूण आभा ऊर्जा ग्रहण करता है।

ऋग्वेद के मात्र 14 सविता अथवा 16 सूक्तों में आदिदेव सूर्य की अलौकिक दिव्य चमत्कारी शक्तियों की स्तुति की गई है। ऋग्वेदीक काल से ही सूर्योदय के समय अरूणमय सूर्य को जल चढ़ाने और सीधे निहारते हुए पूजा अर्चना की परम्परा रही। वेदीक काल में मिट्टी पर नंगे बदन खड़े होकर अर्चना की जाती थी। सूर्य से सभी रोग विनाशक अल्ट्रावायलेट पराबैंगनी किरणवाली विटामिन डी वाली ऊर्जा लेने के लिए सूर्य के उत्तरायण होने (मकर संक्रान्ति) के समय से दोपहर में नंगे बदन स्तुति का विधान रहा। वर्तमान में समूचा शरीर या बदन वस्त्रों से ढ़का रहने के कारण आमतौर पर हमे सूर्य ऊर्जा नहीं मिल रही है। सूर्य ऊर्जा लेने के लिए मिट्टीवाली जमीन पर केवल अधोवस्त्र (पाजामा, निकर, पेन्ट या धोती) पहनकर सूर्य की दिव्य किरणों से शरीर को सविता दिव्य शक्ति से ऊर्जाकृत किया जा सकता है। नारियाँ ऊपरी शरीर पर वस्त्र पहन सकती हैं। ऊँ

आकाश के वराह काल रुद्र
सूर्य प्रलय और सृष्टि के कारक

पूर्व वेदीक काल से पौराणिक युग तक महारुद्र शिव के लिंग स्वरूप की पूजा मसोपोटेमिया, बेबीलोन, असीरिया, यूनान, माया संस्कृति, आहड़ संस्कृति, हड़प्पा मोहनजोदड़ो सभ्यता, साइबेरिया, भारतवर्ष, नेपाल, तिब्बत, बांग्लादेश, म्यांमार, वियतनाम, कम्बोडिया, मलेशिया, श्रीलंका आदि में परम्परागत रूप से विभिन्न नामों से होती रही है।

प्रथम वेद ऋग्वेद के सूक्त रुद्र को समर्पित हैं। रुद्र के छह अलौकिक मन्त्र मिलते हैं। ऋग्वेद में रुद्र यानी रूदन रोने को प्रसन्नता में बदलनेवाले को केशी के नाम से सम्बोधित किया गया है। केशी का अर्थ है– किरणें अथवा सूर्य। ऋग्वेद में रुद्र की उपाधि ''दिवो वराह और वृषभ'' भी है। उल्लेखनीय है कि ब्रह्माण्ड अंतरिक्ष या आकाश के वराह से यहाँ अर्थ आदि सूर्य है (कहीं विद्युत भी लेते हैं।) (सविता सूर्य का एक नाम वराह है।)। दूसरे वृषभ को सांड अथवा नन्दी भी माना जा सकता । वृष नन्दी वर्षा करनेवाला होता है। इसीलिए ऋग्वेद में रुद्र का नामकरण कल्पकीलत सदा दहकनेवाला अग्निमय किया गया है। पूषन रुद्र सूर्य का आभामण्डल है। यहाॅ यह समझना आवश्यक हे कि वेदीक ऋषियों – भार्गव, शौनक, अंगिरस, वसिष्ठ, गृत्समद, भरद्वाज, वामदेव, गौतम, मैत्र, कण्ठ आदि ने महारुद्र शिव की उपासना के दार्शनिक पक्ष और लौकिक पक्ष की सूत्रात्मक, गूढ़ प्रतिकात्मक, कूट भाषा में व्याख्या की है। कालरुद्र त्रिगुणमयी परब्रह्म हैं। रुद्र ही भव अर्थात् समस्त् सृष्टि के उत्पन्नकर्ता, पालनकरनेवाले और सर्व सृष्टि के प्रलयकर्ता हैं। यानी परब्रह्म से सृष्टि का सृजन और विलय दोनों ही होता है। वेदीक काल में रुद्र कर्मकाण्ड के देव नहीं हैं (ऋग्वेद)। वे ऋत के मूर्तवान स्वरूप हैं।

यजुर्वेद स्वरूप में शतरूद्रिय स्त्ोत्र के 66 मन्त्र स्तुति के लिए उपयोगित हैं। रुद्र के लिए प्रयुक्त त्र्यम्बक शब्द को लेकर त्रिनेत्रवाले होने की भ्रान्ति है। त्र्यम्बक का अर्थ तीन अम्बकवाले है। अम्बक का सीधा अर्थ पिता है। रुद्र के तीन पिता पृथ्वी, आकाश, द्यौ (स्वर्गलोक) हैं। यह व्याख्या नये रहस्यों की जननी है। यजुर्वेद में रुद्र को नीलग्रीव कहा गया। इसी को आगे बढाते हुए पुराण में शिव के कालकूट विषपान और नीलकण्ठ की मीठी तथा मिलती है। यजुर्वेद में यज्ञ का उद्देश्य स्वस्ति् – प्रेम एवं वैभव प्राप्ति था। रुद्र स्त्वन से सर्वकल्याण, समभाव, अध्यात्मिक–भौतिक समृद्धि की कामना की गई। अथर्ववेद में रुद्र को नील शिखण्डित नीलवर्ण, गहरे रंग के केशवान कहा गया और महादेव की उपाधि दी गई। गायत्री मन्त्र में रुद्र को भग के नाम से सम्बोधित किया गया। वैसे वेदीक गायत्री मन्त्र आदिसूर्य सविता का मन्त्र है। रुद्र के नामों के पीछे ही परब्रह्म का रहस्य छिपा है।

रुद्र के अनन्त नामों के अर्थो में शतधन्वा एक साथ सौ धनुष चलानेवाला, हिरण्यबाहु स्वर्णबाहु या हाथमें सोना पहननेवाला, हिरण्यगर्भ – स्वर्णमय, शिवतर शिवतम–कल्याणदाता,शम्भु–शांतिदाता, मयस्कर–सुख देनेवाला, मीढुष्तम–सुख ऐश्वर्यदाता, सहस्त्राक्ष–अनन्त नेत्रवाला सहस्त्रों किरणवाला, स्थपति–स्थानों के चालक,ईशान–ईश्वर, गृत्स–कवि ऋषि, भवस्यहोति–संसार के दुखों की दूर करनेका साधन, अघोर – शांत, शंगु–सुखकारक, कपर्दी–जटाजूट, हरिकेश–हरे रंग के पते रूपी केशवान, विश्वकृष्टि – मानवमात्र, पशुपति – जीवमात्र के स्वामी, रुद्र–ज्ञानी, उदगुरमाण–उत्तम ज्ञानका उपदेश देनेवाला, देवानां हृदय–देवताओं के हृदय देनेवाला भक्तों की सेवा करनेवाला, प्रतिश्रव – गुरु, पथीनांपति – मार्ग रक्षक, भिषज–महावैद्य, अन्नानां पति– अन्न का पालनकर्ता, कक्षाणां पति– दिशां पति, भूतानां अधिपति–प्राणियों के रक्षक (भूतनाथ) आदि प्रमुख हैं। कालरुद्र की सर्वव्यापकता को सहस्त्राक्ष, सहस्त्रवाद, सहस्त्रग्रीवा आदि द्वारा दर्शित किया है। महादेव सभी के होने के कारण ही उनके नामों में क्षत्ता (बढई), तक्षा, कुलाल (कुम्हार), सूत (सारथी), कर्मार (लुहार), निषाद, उत्तरण (नदी पार करवानेवाला), गिरिचर (पहाड़ी जन), सुष्णतां पत्ति (लुटेरों में श्रेष्ठ), स्त्ेनानां पति (चोरों का मुखिया), छलयतां द्यूतं (कपटियों का द्यूत), स्त्ायूनां पति (ठगों का प्रमुख), तस्कराणां पति (तस्करो का प्रधान) आदि सम्मिलित हैं। विभूति योग (श्रीमद्भगवदगीता) में कहा गया कि मैं रुद्रों में शंकर, यक्ष और राक्षसों में कुबेर, वसुओं में पावक, पवर्तों में मेरु पर्वत हूँ। यज्ञों में जपयज्ञ, स्थिर में हिमालय, मृगों में सिंह, पक्षियों में गरूड़, विद्याओं में आत्मविद्या और वक्ताओं का भाषण (वागीश) हूँ।

सदाशिव का विरूपाक्ष नाम मस्त्क पर त्रिनेत्र के कारण पड़ा। रुद्र की दो तेनुएं घोरा, शिवा हैं। रुद्र के त्रिनेत्र के सूर्य, चन्द्र, अग्नि कहे गए हैं। ऐतरेय ब्राह्मण में रुद्र को धर्म, नैतिकता के आचरण करनेवालों देवता, राक्षस, मानुस, ऋषि आदि को निर्ममता के साथ दण्ड देने का रूपाकार मिला। देवताओं ने प्रजापति की सरस्वती के प्रति अक्षम्य अपराध को दण्डित करने की प्रार्थना रुद्र से की। इस प्रकार ऐतरेय ब्राह्मण में रुद्र को प्राणीमात्र के कर्मों का अवलोकन करनेवाला और अधार्मिक आचरण को दण्डित करने वाला स्थापित किया गया। शतपथ ब्राह्मण का

कहना है कि संवत्सर और ऊषा के मिलन से रुद्र उत्पन्न हुए। जैमिनीय ब्राह्मण के अनुसार यज्ञ में जाने से पहले सभी देवों ने अपना क्रूर, घोर,विकराल, रौद्र रूप त्यागा और रुद्र प्रकट हुए। कौशीतकी ब्राह्मण की मान्यता है कि रुद्र का जन्म अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा, वायु से हुआ। तैतिरीय संहिता में धनुष, तरकस को शिव के नाम से पुकारा गया है। कौशीतकी ब्राह्मण में रुद्र का नाम अशनि, शतपथ ब्राह्मण में त्र्यम्बक मिलता है। ब्राह्मण ग्रन्थों में त्र्यम्बक होम और उत्तर पूर्व दिशा में रुद्र के आवास का वर्णन मिलता है। परब्रह्म ईशान को त्रिवर्णी–रक्त वर्ण, श्वेत वर्ण, कृष्ण मय मानते हुए उनकी रौद्रसी रुद्राणी को प्रकृति माया कहा गया है।

परब्रह्म रुद्र की दार्शनिक उपासना के पक्ष ने भक्ति की ओर श्वेताश्वर उपनिषद से करवट ली। रुद्र लोक में भक्ति के प्रमुख देव बने। केन उपनिषद से रुद्र रूप ने करवट ली। केन उपनिषद में देवताओं को रुद्र द्वारा ब्रह्म ज्ञान की कथा है। वहाँ उमा हेमवती (रुद्र पत्नी) का दार्शनिक दृष्टिकोण मिलता है। मैत्रायणी उपनिषद में रुद्र और आत्मा को एक स्वीकारा गया है। वेद से उपनिषद में रुद्र का तमोगुणी स्वरूप सामने आया। शांखायन श्रौतसूत्र में रुद्र की सहचरी रुद्राणी है। श्रौतसूत्र में ब्राह्मण कर्मकाण्ड और अम्बक (सृष्टि के पिता रुद्र) को हवि का विवरण मिलता है। बौधायन धर्म सूत्र में वक्रतुण्ड महागणेश रुद्र हैं। पुराण एवं उपनिषद तक रुद्र का कल्याणकारी रूपाकार शिव महायोगी के रूप में स्थापित हुआ। सौर पुराण, वायु पुराण, मार्कण्डेय पुराण, गणेश पुराण, ब्रह्म पुराण, वराह पुराण आदि कालरुद्र शिव महिमा का बखान करते हैं। सभी आगमों (तन्त्र – मन्त्र शास्त्र) में महेश्वर शिव ने भवानी शिवा को तन्त्र ज्ञान देने का ब्योरा है। दूसरे शब्दों में सभी तन्त्र, मन्त्र, यन्त्र, स्तोत्रों आदि के जनक रुद्र हैं। सभी दैविक अस्त्र शस्त्रों के नियामक हैं। रुद्र के निरपेक्षता के कारण उनकी उपासना देवता, राक्षस और मनुष्य तीनों समान रूप से करते हैं। दक्ष यज्ञ कथा में रुद्र शिव द्वारा नियम पालन के लिए श्वसुर प्रजापति सहित भगवान् विष्णु, देवताओं से युद्ध एवं दण्डित करने का प्रसंग है। प्रकारान्तर में नृसिंह का अन्त वीरशरभ सालुव पक्षिराज आकाश भैरव ने किया।

साम्ब सदाशिव के दो उग्रतम रूप वीरभद्र एवं वीरशरभ सालुव हैं। रामायण में रुद्र के दो नये नाम हर एवं वृषध्वज आये हैं। रामायण

के रुद्रशिव अचिन्तय, विश्वस्त्रष्टा, असीम, नित्य, अव्यक्त हैं। रुद्र के लिंग स्वरूप की पूजा अग्नि पुराण से होना माना जाता है। महाभारत में रुद्रोपासना शिखर पर होने कारण श्रीकृष्ण, अर्जुन ने उनकी अराधना की और शिवसहस्त्रनाम प्रचलन में आया। ऊँ

सविता सूर्य से ओउम् का धीमा पाठ हो रहा है

आखिरकार अमेरिकी वैज्ञानिकों ने आदिदेव सविता सूर्य से निकलनेवाले बहुत ही धीमे स्वर नादको अंकित किया। सूर्य से बहुत ही कम स्पंदन, कंपन, आवृतिका प्रणव पाठ चौंकानेवाला है। यह अनुरणन सामान्य श्रवण शक्ति से सुना जाना बेहद असम्भव नहीं तो कठिन है।

दिवो वराह–आकाश के वराह कालरुद्र सूर्य से होनेवाला स्वर ओउम् का मन्द्र स्वर में लम्बे अनुरणन का होना पश्चिमी वैज्ञानिकों को चकित करनेवाला है। पश्चिमी अंतरिक्ष वैज्ञानिकों के लिए यह अबूझ पहेली है कि सूर्य से निरन्तर ब्रह्माण्ड़ में ओउम का पाठ क्यों हो रहा है? इसके ठीक विपरीत आर्ष ग्रन्थों में भारतवर्ष, जम्बू द्वीप के दृष्टा ऋषियों ने 29 लाख वर्ष से भी अधिक पहले अनेक सौर मण्डलों की सृष्टि की रचना परमाणु के सूक्ष्मतम भाग इलक्ट्रोन, न्यूट्रोन, कल्पट्रोन के भी सूक्ष्म से सूक्ष्म विन्दु से होने का उल्लेख किया। यही विन्दु परमब्रह्म है। इस विन्दु में नाद ब्रह्म से अनेक सूर्य और उनके सौरमण्डलों की रचना हुई। दृष्टा महर्षि अगस्त्य ने अयोध्या के राजा दशरथ के सुपुत्र राम को लंकेश्वर दशानन रावण से युद्ध के समय श्रीआदित्यहृदय स्त्रोत्रके माध्यम से सूर्य की शक्तियों और दिव्यता से साक्षात्कार कराया। महर्षि अगस्त्य ब्रह्माण्ड में 12 सूर्यों आदित्यों की दिव्य जानकारी रखते थे। सदीयों से पश्चिम ने भारतीय दृष्टा ऋषियों के कथानकों का उपहास उड़ाया। लेकिन वर्षों के अनुसंधान के बाद

पश्चिमी वैज्ञानिकों को स्वीकारना पड़ा कि आकाश में अनेक सूर्य और अनेक सौर मण्डल हैं।

पश्चिमी वैज्ञानिक हजारों वर्ष पहले सीधे ईश्वर से दृष्टा ऋषियों को श्रुति के रूप में प्रदान वेदों के दिव्य स्वर को पुनः सुनने एवं संग्रह करने के भागीरथी जतन में लगे हैं। भारतीय आध्यात्म में कभी नष्ट नहीं होने (क्षर नहीं होने) के कारण ही अक्षर को ब्रह्म स्वीकारा गया। साथ में नाद को ब्रह्म की संज्ञा दी गई। सविता देवता के सूक्तों में ऋग्वेद का मन्त्र है:

उदुष्य देवः सविता दमूना हिरण्यपाणिः प्रति दोषमस्थात्।

अयोहनुर्यजतो मन्द्रजिव्ह आदाशुषे सुवित भूरिवामम् (61 71 14)। अर्थात् सबका प्रेरक सविता देव मन का दमन करनेवाला हितकारी और रमणीय हाथोंवाला (स्वर्ण हाथोंवाला) रात्रि समाप्ति पर प्रभात में उठ खड़ा होता है। सविता लोहे समान ठोड़ीवाला (अयोहनु) यजनीय और मन्द मधुर जिव्हावाला आत्मदानी को वांछित ऐश्वर्य प्रचुर मात्रा में देता है। स्पष्ट है कि सूर्य रूप सविता की लोहे की ठोड़ी कम हिलती है। वह कम बोलता है और मन्द (धीमा) मधुर बोलता है। ऋग्वेद के दृष्टा ऋषियों ने हजारों वर्ष पहले सविता में दिव्य कर्णों (कानों) से मधुर मन्द नाद ब्रह्म के अनुरणन को न केवल सुना, वरन उसका उल्लेख ऋचाओं में लिपिबद्ध किया। यह पुष्टि करता है कि वेदीक काल के ऋषियों को श्रुति वेद का दिव्य ज्ञान ब्रह्म ने स्वयं दिया। ऋग्वेद की ऋचा 3/54/11 में हिरण्यमय (सोने के) हाथोंवाले सविता को सुजिव्ह सर्व प्रेरक द्युलोक से नीचे सौरयज्ञ में तीन बार प्राप्त होता हुआ, पहुंचता हुआ या स्वामित्व करता हुआ विद्यमान वर्णित किया है। ऋग्वेद की ऋचा में सविता द्वारा अन्तरिक्ष को कंपानेवाला उल्लेखित है (10/149/1)। ऋग्वेद की ऋचा है: आ विश्वदेवं सत्पतिं सूक्तैरद्या वृणीमहे। सत्य एवं सवितारम् 115/82/71। समग्र विश्व के देव सज्जनों के पालक सत्य के प्रेरक सविता देव को अज श्रेष्ठ वचनों, उत्तम श्रुतियों द्वारा वरण करते हैं।

छान्दोग्योपनिषद में लिखा है: गायत्री वा इदं सर्व भूतं यदिदं किं वाग्वै गायत्री वाग्वा इदं भूतं गायति च त्रायते य।। अर्थात् इस ब्रह्माण्ड में जो कुछ भी भूत जात है, वह सब गायत्री है। गायत्री वाणी

रूप है। अतः यह भूत वाणी ही है। इसका तात्पर्य यह है कि जब परमव्योम में गायत्री का गान प्रारम्भ होता है। तब सब स्थावर जंगम प्राणियों की उत्पत्ति होती है। भगवान् जब सृष्टि की रचना करता है तो वह पहले तपता है–सत्पोऽतप्यत। तप अग्नि है। अग्नि के सम्पर्क होते ही प्रकृति में क्षोभ उत्पन्न होता है त्रिगुण गतिमय होते हैं। इस गति से एक ''स्वर लहरी'' (नाद) गूंज उठती हैं, यही सविता की आराधनावाली गायत्री है। वेदीक वांगमय में सभी मन्त्रों में सविता की आराधनावाले गायत्री की सबसे अधिक महिमा बताई गई है। सविता अणु के सूक्ष्मतम भाग रेणु से लेकर स्थूल की प्रेरणा शक्ति है। गोपथ ब्राह्मण में कान्तदर्शी कवि ऋषि मैत्रेय ने ऋषि मोद्गल्य से पूछाः भोः सविनुर्वरेण्यमं भर्गो देवस्य कवयः किस्विदाहुः। मोद्गल्य ने उत्तर दिया कि सविता का तेज ऋषियों का अन्न है। इस तेज रूप का भक्षण करना आसान नहीं है। इस तेज को अन्दर धारण करना और पचाना कठिन, तप साध्य है। सविता देह हमारे भीतर तेज रूप में प्रविष्ट हो कर प्रत्येक क्रिया द्वारा प्रकट होते हैं।

सूर्य देव के गायत्री छन्द के मन्त्र में जप करनेवाले की दृष्टि गाधि यानी मन को अगाध में, गहराई में नहीं ले जाकर ऊपर ले जाने की होना आवश्यक है। गायत्री मन्त्र तीन, चार पाद और छह पाद होता है। सविता सूर्य के रहस्य को प्रदर्शित करते हुए ऋग्वेद (1/115/1) में कहाः सूर्य आत्मा जगतस्त्स्थुषश्य। अर्थात् सृष्टि की आत्मा सूर्य में स्थित है। सूर्योपनिषद के अनुसारः सूर्यो वे सर्वेषां देवानामात्मा और सूर्याद भवन्ति भूतानि सर्येण पालितानि तु। सूर्ये लयं प्राऽवन्ति यः सूर्य सोऽहमेव च।। सूर्य से ही सभी भूत उत्पन्न होते हैं, सूर्य सबका पालन करता है। सूर्य में ही सबका विलय होता है। इसे इस प्रकार समझे की सूर्य से उत्पत्ति, पालन और संहार तीनों होते हैं। यही अर्थ महादेव शिव एवं लिंग का है। महर्षि याज्ञवल्क्य द्वारा रचित सूर्य स्त्ोत्र में नमः सवित्ते से लेकर तं नमाम्यहम् का उल्लेख है। वेदीक काल से दिव्य दृष्टि वाले ऋषियों ने अन्तरिक्ष में ब्रह्म नाद का मधुर वर्णन किया है। ऋषियों के अनुसार अनगिनत आकाश गंगाओं में अत्यन्त धीमें मधुर कंठ से ओंकार का गायन दिन रात चल रहा है। यह मधुर गान ही आध्यात्म अर्थात् तत्त्व ज्ञान का मूल है। दृष्टा ऋषियों ने हृदयकाश में ओंकार के जप से

ब्रह्म की उपासना की। वे हृदयाकाश में सविता में होनेवाले दिव्य मधुर ओंकार की ध्वनि के आनन्द में लीन रहे। ऋषियों ने अन्तर्मुखी होकर सूक्ष्म रूप से समूचे ब्रह्माण्ड का अवलोकन किया। क्रान्तिदृष्टा कवि ऋषि देवयान से सविता सूर्य की असम्भव यात्रा करने में सफल रहे। उन्होने देखा कि अनन्त ऊर्जावान सविता अग्निमय है। सामान्य शरीर और अंतरिक्ष यान सविता के नजदीक पहुंचते ही जलकर भष्म में बदल जाता है। किन्तु इसमें आत्मा सफल रही। सविता सूर्य के निकट जाने पर ही ऋषियों ने उसके द्वारा मधुर ब्रह्म नाद ओंकार सुना। सूर्य के व्यक्तिकरण करते उसका लौह जबड़ा और धीमे से धीमे स्वर में गान का वर्णन किया।

आकाश में द्वादश सूर्यों में आदित्य, दिवाकर, भास्कर, प्रभाकर, सहस्त्रांशु, त्रैलोक्यलोचन, हरिदश्व, विभावसु, दिनकर, द्वादशात्मक,त्रयोमूर्ति एवं सूर्य का स्मरण भक्त जन करते हैं। सूर्य का ऋग्वेद मन्त्र 1/35/2 है:

आकृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मृत्यं च।
हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन।। ऊँ

निगम–आगम में
महारुद्र सूर्य स्तुति से भयावह रोगों का संहार

पूर्ववेदीक, वेदीक और वेदोत्तर काल में प्रत्यक्ष देव महारुद्र सूर्य की स्तुति से असाध्य भयावह रोगों से मुक्ति एवं कायाकल्प का विवरण मिलता है। प्राचीन मिश्र एवं यूनानी संस्कृति में सूर्य को मृत संजीवनी माना गया है। प्राचीन मिश्र के रॉ अर्थात् सूर्य प्रमुख देवता रहे।

ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के 50वें सूक्त, मंत्र 11–13 में प्रार्थना की गई : "सूर्य उदित होकर और उन्नत आकाश में चढ़कर हमारे मानस रोग (हृदयस्थ), पीत वर्ण रोग और शरीर रोग को नष्ट करो। आदित्य मेरे अनिष्टकारी रोग विनाश के लिए समस्त् तेज के साथ उदित हुए हैं।

मैं अपने हरिमाण तथा शरीर रोग को शुक एवं सारिका पक्षियों पर न्यस्त् करता हूँ।'' अथर्ववेद में आदित्य को रुद्र रूप से लिखा है : प्राची दिगग्निरधिपतिसित्ो रक्षितादिव्या इषवः। वहीं अथर्ववेद में आदित्य यानी रुद्र का उल्लेख मिलता हैः ये नः सपत्ना अप ले भवन्तिन्द्राग्निभ्यामव बाधामह एनान। आदित्य रुद्रा उपरिस्पृशो न उग्रं चेत्तारमधिराजमत्रृत।। स्मरण रहे कि ऋग्वेद में भुवनस्य पिता रुद्रः आदि लिखा है। महारुद्र के तीन नेत्रों में सूर्य, चन्द्र और अग्नि बताये गए हैं। रुद्र को अनन्त ब्रह्माण्ड स्वामी (जगतपति) माना गया है। रुद्र की उपमा सूर्य से दी गई है। वेदीक रुद्र भव (सबका उत्पादक), शर्व (सबका संहारक), मयस्कर (सुख प्रदाय) है। भुवनस्य पितरं रुद्रं सभी सूर्यों के प्रसवकर्ता सविता की ओर संकेत किया गया है।

कलाप क्षेत्र स्थित ज्ञानगंज में हजारों वर्षों से सूर्यविज्ञान के वेदीक रहस्य की गोपनीय दीक्षा दी जा रही है। ऋग्वेदीक सविता बारह आदित्यों में प्रमुख माने गया हैं। अथर्ववेद की संहिता में रोग निवारण के अनेक मंत्र हैं। अथर्ववेद का मंत्र हैः अनु सूर्यमुदयतां हृदद्योतोहरिमा च ते। गो रोहितस्य वर्णेन तेन त्वा परिध्मसि। सूर्य हृदय में जलन उत्पन्न करनेवाले हृदयरोग और शरीर में पीलापन लानेवाले हरिमा रोग को दूर करते हैं। ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद् और तंत्रशास्त्र में सूर्य देवता की अर्चना से सभी कामनाओं और रोगों के शमन प्राप्ति की विधि मिलती है। छान्दोग्योपनिषद् में कौषीतकि ऋषि ने सूर्य आराधना से पुत्र प्राप्ति की। अक्ष्युपनिषद्, सूर्यो उपनिषद्, मंत्रायण्युपनिषद्, गायत्रीरहस्योपनिषद्, चाक्षुषोपनिषद्, मैत्रायण्युपनिषद्, श्वेताश्वतरोपनिषद् आदि में सूर्य के चमत्कारिक मंत्रों से स्तुति की गई है। जैसे : ऊँ चक्षुः चक्षुः चक्षुः तेजः स्थिरो भव। मां पाहि पाहि। त्वरितं चक्षु रोगान शमय शमय। मम जातरूपं तेजो दर्शय दर्शय।..

ऋग्वेद से उपनिषद् निगमों में महारुद्र सूर्य की स्तुति अक्षर की असाधारण शक्ति से साक्षात्कार करवाती है। प्रकारान्तर में एकाक्षरनामकोषसंग्रह में उमा महेश्वर संवाद में सूर्य और अग्नि का बीजाक्षर ''र'' है (मिश्र में सूर्य को रॉ कहा गया)। अतः सूर्य देवा का बीजाक्षर मंत्र रं हुआ। पौराणिक काल की रचनाओं में ब्रह्म पुराण, पद्म पुराण, मार्कण्डेयपुराण, भविष्य पुराण, ब्रह्मवैवर्तपुराण, वराह पुराण,

स्कन्दपुराण, वृहदधर्मपुराण, विष्णु धर्मोत्तर पुराण, सौरपुराण, साम्ब पुराण, भविष्योत्तर पुराण, विष्णु पुराण, सौर संहिता, सूर्यगीता आदि और रामायण, महाभारत में सूर्य की चमत्कारिक आराधना और अभीष्ट सिद्धि, कायाकल्प की कथायें मिलती हैं। उत्तर सौरपुराण, भास्कराह्म उपपुराण, मत्स्यपुराण, मार्तण्ड पुराण आदि भी केवल मात्र सूर्य आराधना से सर्व रोगों और कष्टों से छुटकारे के दृष्टान्त मिलते हैं। भविष्य पुराण के सूर्यनाम स्त्ोत्र में स्त्ोता ब्रह्मा ने स्तुति में अन्य के अलावा रोगमुक्ति चाही है। इसी पुराण में साम्ब ऋषि ने कुष्ठ से मुक्ति के लिए सूर्य आराधना की। देवराज इन्द्र ने ब्रह्मवैवर्तपुराण में व्याधिनाश के लिए सूर्यकवच साधना की। स्कन्द पुराण में मुनि नारद ने वृद्धावस्था से छुटकारे के उद्देश्य से सूर्य को प्रसन्न किया। महामुनि व्यास ने सभी तरह के रोगों–व्याधियों, सभी प्रकार के ज्वरों (बुखार, कैंसर, एड्स) आदि से मुक्ति के उद्देश्य से सूर्यअष्टोत्तरशतनाम स्त्ोत्र का पाठ किया। साम्ब पुराण के अनुसार ब्रह्म ऋषि ने 100 वर्ष की आयु के लिए भगवान् सूर्य की अर्चना की। भविष्योत्तर पुराण में योगीराज श्रीकृष्ण ने अर्जुन को और रामायण में अगस्त्य मुनि ने राम को जय विजय के लिए श्रीआदित्यहृदय स्त्ोत्र का गुप्त ज्ञान दिया। याज्ञवल्क्य मुनि ने रोगमुक्ति के लिए सूर्य कवच स्त्ोत्र का आह्वान किया।

आगम ग्रन्थों में सूर्यदेव को नवग्रह, बारह राशियों और सत्ताइस नक्षत्रों में सबसे उत्तम, शक्तिवान और सबका प्रमुख बताया गया है। सूर्य रक्षात्मक स्त्ोत्र में सूर्य से सिर, ललाट, नेत्र, श्रवण, नासिका, मुख, जिह्वा, कण्ठ, स्कन्ध आदि सभी अंगों की रक्षा की प्रार्थना की गई है : 'शिरो में भास्करः पातु ललाटंमेमितद्युतिः।' सूर्य की चर्मरोग, विशेषकर कुष्ठरोग को दूर करने के लिए आराधना की परंपरा है। 'नमो भगवते सूर्य कुष्ठरोगान विखंडम (आदित्यहृदयम)।' योगीराज श्रीकृष्ण ने ब्रह्म ऋषि विश्वामित्र भृगुवंशी द्वारा हाटकेश्वर में स्थापित मार्तण्ड सूर्य को सर्वकुष्ठ विनाशक कहाँ चन्द्रभागा नदी के तट पर साम्ब ने चर्म रोग से मुक्ति के लिए सूर्य मंदिर की प्राण प्रतिष्ठा की। शकद्वीप से मग ब्राह्मणों को साम्ब ने पौरोहित्व के लिए बुलाया। असुरराज माली–सुमाली ने भी स्वस्थ होने के लिए भुवन भास्कर की शरण ली। राजा नन्द, राजा भद्रेश्वर ने भयानक चर्म रोग से परेशान होकर सविता सूर्य की

आराधनाकर नवजीवन पाया। मार्कण्डेय पुराण में सूर्य को आरोग्य का देव माना गया है। शापजनित ब्रह्मापुत्र ब्रह्म ऋषि नारद को कुमारावस्था की पुनः प्राप्ति के लिए दिवाकर को प्रसन्न करना पडा। शत आयु भी सूर्य ही देता है। 'जपामानस्य नश्यन्ति जीवच्च शरदां शतम्।' स्कन्द पुराण में स्पष्ट लिखा हैः ''अरोग्य प्रदाता च नान्यो देवो दिवाकराता'' भविष्य पुराण के अनुसार सूर्य उपासना से ''नाधीन्प्राप्नोति न व्याधीन्न विषग्रह बन्धनम्। कृत्यास्पर्शभयं वापितोषिते तिमिरापहे।'' सर्वदेवात्मक सूर्य को आगमों में सर्वरोग निवारक की संज्ञा दी है। ऊँ

कैलास में कामदेवदहन अनंग त्रियोदशीः
कैलास के कामारि द्वारा मदन भष्मसात्

शिवभक्त मयदानव अथवा बाणासुर दानवराज अजेय होकर अभिमानी उदण्ड उपद्रवी बन बैठा। परब्रह्म शिव ने दानवराज बाणासुर की भक्ति परीक्षा लेने देवर्षि नारद को भेजा। दानवराज बाणासुर देवर्षि नारद की लीला परीक्षा से उलटे कुमार्ग पर चलने लगा। इस विकट परिस्थिति में बाणासुर को ''दण्ड'' देने स्वयं महादेव शिव निकले। उन्होंने बाणासुर पर चढ़ाई की।

महादेव शिव के कोप से बचने के लिए दानवराज बाणासुर शिवलिंग को मस्त्क पर रखकर साम्बसदाशिव महिमा का गुणगान करता अपने पुर से निकला। इस मध्य कुपित शिव ने दानवराज के दो पुरों को विध्वंस कर डाला था। साम्बसदाशिव ने दोनों पुरों को भूलोक पृथ्वी की ओर भेज दिया यानी ढ़केला। इनमें से एक पुर अमरकण्टक में और दूसरा पुर हिमालय में ''मेरु कैलास महापर्वत के समीप गिरा।'' ओढ़रदानी भक्तवत्सल क्षणभर में प्रसन्न होनेवाले परब्रह्मशिव ने दानवराज बाणासुर के तीसरे पुर को भक्ति के कारण विध्वंस नहीं किया, बल्कि प्रसन्न होकर वरदान दिए। इस प्रकार मयदानव की मायापुरियों में

से एक पुरी कैलास क्षेत्र में समा गई। इसका कहीं कोई अवशेष नहीं मिलता है।

कैलास में कामदेव के मदनदाह का अपना कथालोक है। महायोगीश्वर शिव द्वारा मदनदाह का चित्रलिखित वर्णन लिंग पुराण के एक सौ एक वें अध्याय में मिलता है। देवता असुरराज तारकासुर से भयभीत हैं: देवताश्च सहेन्द्रेण तारकाद भयपीडिताः। न शान्तिं लेभिरे शूराः शरणं वा भयार्दिताः। देवताओं को तारकासुर वध के लिए महादिव्य सेनानी की आवश्यकता है। महायोगीश्वर शिव कैलास में अर्धनील नेत्रों से योग में लीन हैं। देवताओं ने महायोगीराज की समाधि भंग करने कामदेव मन्मथ एवं कामदेवी रति को भेजा। कामदेव ने कैलास के प्रांगण में काममोहिनी नृत्य शुरू किया और काम का पुष्पबाण–कामास्त्र महादेव शिव पर छोड़ा। अन्त में महायोगीश्वर का ध्यान भंग हुआ। धूर्जटी की त्वरा (गुस्से, कोप) से उनका अग्निमय तृतीय नेत्र खुला और महाज्वाला से मदनदहन हुआ।

ततः संप्रेक्ष्य मदनं हसन् त्रदेविस्त्रियम्बकः।
नयनेन तृतीयेन सावज्ञं तमवैक्षत।।
ततोऽस्य नेत्रजो वह्निर्मदनं पार्श्वतः स्थितम्।
अदहत् तत्क्षणादेव ललाप करूणं रतिः।।
रत्याः प्रलापमाकर्ण्य देवदेवो वृषध्वजः।
कृपया परया प्राह कामपत्नीं निरीक्ष्य च।।

निर्णयसागर प्रेस की महर्षि वाल्मीकि रामायण में कैलास में मदनदहन का वर्णन बालकाण्ड के 23वें सर्ग में बहुत मार्मिक किया है।

कृतोद्वाहं तु देवेशं गच्छन्तं समरुत्गणम्।
धर्षयामास दुर्मेधा हुंकृतश्च महात्मना।।
अवध्याश्च रुद्रेण चक्षुषाः रघुनन्दन।
व्यशीर्यन्त शरीरात्स्वात् सर्वगात्राणि दुर्मतेः।।
तत्र गात्रं हतं तस्य निर्दग्धस्य महात्मनः।
अशरीरः कृतः काम क्रोधोद्देवेश्वरेण ह।।
अनंग इतिविख्यातस्त्दा – प्रभृति राघव।

देवताओं द्वारा कामेश्वर शिव को ध्यानच्युत करने और कामेश्वरी शिवा पार्वती के प्रति अनुराग उत्पन्न करने के स्थान पर कामदेव को

शिव नेत्र की प्रचण्ड अग्नि ने भष्मीभूत किया। इससे शिव को कामारि की नई उपाधि प्राप्त हुई, कामारि यानी काम के हन्ता या शत्रु। कामदेव की कामपत्नी रति ने कैलास में विलाप शुरू किया। करूणा एवं दया की महासागर राजराजेश्वरी पार्वती ने रति पर कृपा की। प्रकारान्तर में कामदेव "अनंग" बने। कैलास में मदनदहन "त्रियोदशी" को हुआ। शैव मत में हर महिने त्रियोदशी को महादेव शिव की विशेष पूजा की जाती है। इसका "अनंगत्रियोदशी उपासना" नामकरण हुआ। अनंगत्रियोदशी में कामेश्वर राजराजेश्वर शिव की प्रार्थना भक्ति की जाती है। इस उपासना पूजा में धूप, दीपक, फूल, फल, विल्वपत्र, रक्त अथवा अष्टगंध चंदन के अलावा नैवेद्य निराकार शिवलिंग को चढ़ाये जाते हैं। हिमालय कैलासवासी शिव अनंगत्रियोदशी पूजा से प्रसन्न होते हैं। कैलास में मदनदहन स्थल श्वेत पत्थर चूर्ण ही शेष बताया जाता है।

द्रव्य धन के स्वामी कुबेर देव ने कैलास में ही निवास कर शिवार्चना शुरू की। श्री कुबेर ने कैलास में अलकापुरी के रचना की।

अहं तु हिमवत्पृष्ठं गतो धर्ममुपासितुम्।
रौद्रं व्रतं समास्थाय नियतो नियतेन्द्रियः।।
तत्र देवो मया दृष्ट उमया सहितः प्रभुः।
सव्यं चक्षुर्मया दैवात्तत्र देव्या निपातितम्।।

कुबेर ने कपालिक शिव के सखा होने का भी उल्लेख किया है : "एकाक्षि पिंगलीत्येव नाम स्थास्यति शाश्वतम्। एवं तेन सखित्वं च प्राप्यानुज्ञा च शंकरात्।। (वाल्मीकि रामायणः उत्तरकाण्ड)।" भष्मांग कैलासी शिवभक्तों का स्वरूप भी निश्चित है। शिवभक्त मनसा वाचा कर्मणा पवित्र हो।

कर्मणा मनसा वाचा विशुद्धेनान्तरात्मना।
अनन्यमनसो भूत्वा प्रपन्न ये महेश्वरम्।।

मेरु निवास करनेवाले शिव योग, यम, नियम, आसन, प्राणायाम के नियामक हैं। योग दो प्रकार – कर्म योग एवं ज्ञानयोग का है। कर्मयोग कर्तव्य सम्पाहत में चित्तबन्ध और ज्ञानयोग सतत चित्र श्रेयस निबन्ध है। इसके द्वारा मन का भगवान् में निरन्तर नियोजन कर मुक्ति प्राप्त होती है। योग के दो अंग यम एवं नियम हैं। यम दस और नियम भी दस हैं।

आनृशंस्यं क्षमा सत्यमहिंसा दम आर्जवम्।
दानं प्रसादो माधुर्यं मार्दवं यमा दश।।
शौचमिज्या तपः सत्यं स्वाध्यायोपस्थनिग्रहौ।
व्रतोपवासौ मौनं च ध्यानं च नियमा दश।।

दस यम – आनृशंस्य, क्षमा, सत्य, अहिंसा, दम, आर्जव, दान, प्रसाद, माधुर्य एवं मार्दव हैं। नारदीय संहिता में दस यमों में ब्रह्मचार्य, दया, सत्य, अहिंसा, आर्जव, क्षमा, मिताहार, धृति, शौच और अक्रोध हैं। दस नियमों में –शौच (आन्तरिक बाहरी शुद्धि), इज्या, तप, सत्य, स्वाध्याय, उपस्थनिग्रह, व्रत, उपवास, मौन और ध्यान हैं। दूसरी संहिताओं के नियम में आन्तरिक आराधना का अन्तर्भाव, शिवार्चन, सहिष्णुता, जप, तप, सिद्धान्त श्रवण मनन, तुष्टि, आस्तिक्य, दान आदि को भी सम्मिलित किया है। छह योगांग–आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि हैं। अतः कुल मिलाकर महायोगीश्वर के योग के आठ अंग हैं। प्राणायाम में यदि देह ऊपर की तरफ उठे तो सर्वोच्च स्थिति का सूचक है। शिव संहिता में योग की बारीकियों की व्याख्या है।

महायोगीश्वर शिव की समाधि का अर्थ जीवात्मा का परमात्मा परब्रह्म में मिलन ऐक्य है। ध्यान में केवल ध्येय की स्थिति एवं चित्तवृत्ति स्वरूप शून्यता समाधि है। सौरपुराण में कलियुग में सच्चे शिवभक्तों की संख्या कम होने से सावधान किया है।

घोरे कलियुगे प्राप्ते श्रीशंकरपराङ्.मुखाः।
भविष्यन्ति नरास्त्थ्यमिति द्वैपायनोऽब्रबीत्।।

सागर मन्थन के समय कैलास मेरु ही महामथनी बना (मेरु के आसपास अनन्त अर्णव महासमुद्र रहे। प्रलय के समय भी जहां मनु की महान्नौका रही, वह हिमालय ही था।)। समुद्र मन्थन में कैलासवासी शिव ने कालकूट विषपान किया। उसका उल्लेख निम्न है :

नमः कपालहस्त्ाय दिग्वासाय शिखण्डिने।
भवानग्रयस्य भोक्ता वै भवांश्चैव वरः प्रभुः।।
त्वामृतेऽन्यो महादेव विषं सोढुं न शक्यते।
कण्ठः समभवत् तूर्णं कृष्णो मे वरवर्णिनि।।

अग्निपुराण में सागर मन्थन एवं कालकूट विषपान का वर्णन निराला हैः "विषं कालानलप्रख्यं कालकूटमिति स्मृतम्। येन प्रोद्भूतमात्रेण

न व्यराजन्त देवताः।" शिवलोक कैलास को मृत्यु रोग मुक्त घोषित करते हुए कहा गया : "लोकं त्रिलोकाच्च विलक्षणं परं, भी मृत्युरोगार्तिजराहरं वरम्।।" कैलासवासी शिव का आत्मतीर्थ भुक्ति मुक्ति दाता है।

आत्मतीर्थमिति ख्यातं भुक्ति मुक्तिप्रदं नृणाम्।
तस्य प्रभावं वक्ष्यामि यत्र ज्ञानेश्वरः शिवः।। ऊँ

पृथ्वी की नाभि पर राजराजेश्वरी कामाक्षी की तपस्या

मार्कण्डेय पुराण के कामाक्षीविलास और कामाक्षीपुराण के अनुसार कांची पृथ्वी की करधनी पर स्थित है। मंत्र तंत्र में उल्लेख मिलता है कि महादेवी कामाक्षी ने पृथ्वी की नाभि को अपना पवित्र स्थान चुना। आर्ष ग्रंथों में काशी और कांची को महादेव शिव के दो नेत्रों की नगरी माना है। ब्रह्माण्ड पुराण में कांची कामाक्षीकामकोटि को देवादिदेव शिव की नगरी कहा है। भारत की सप्त मोक्ष नगरियों में कांची, आयोध्या, मथुरा, माया–हरिद्वार, अवन्तिका–उज्जैन, द्वारका और काशी हैं।

वामन पुराण में कांची की अध्यात्मिक धारा का विस्तृत विवरण मिलता है। महाकवि कालीदास ने संस्कृत महाकाव्य उमासंहिता में महाभारत के रचयिता वेदव्यास द्वारा कांची तीर्थ में प्रवास का रोचक वर्णन किया है। वेदव्यास के पिता और महान् शिवभक्त महर्षि पराशर ने महाभारत से पहले ''शक्तिस्वरूपा माता पार्वती द्वारा रेत से निर्मित एकाम्बरनाथ शिवलिंग का कांची में दर्शन किया''। पराशर ने ईसा पूर्व वर्ष से भी पहले पवित्र कांची आये। भगवत पुराण के तीर्थयात्रा प्रकरण में दक्षिण में कावेरी नदी के समीप जगतजननी आद्यशक्ति पार्वती और महादेव शिवक्षेत्र का ब्योरा दिया है। देश की सात पवित्र नदियों में से एक कावेरी के मुहाने पर श्रीरंगम में विष्णु क्षेत्र है। दक्षिण भारत की धार्मिक परम्परा के इतिहास में पाँच महाभूत क्षेत्रों में पृथ्वी क्षेत्र कांची,

तेजस अग्नि क्षेत्र त्रिरूवन्नमलाई (उत्तरी अरकोट), आकाश ईथर क्षेत्र त्रिचुनापल्ली और वायु क्षेत्र कालहस्त्ी को बताया गया है। कांची के साथ काम कोटी सम्बोधन शक्ति पीठ होने से जुड़ा। ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी के पतंजलि के महाभाष्य, पाँचवी शती की मुख ''पाँचशती'' के 500 श्लोकों और श्रीहर्ष की प्रसिद्ध रचना ''निषाद चरित्रम्'' में स्फटिक के दिव्य शिव लिंग की आराधना का चित्रलिखित वर्णन मिलता है। कांची में महादेव शिव के एकाम्बर शिवलिंग, श्रीकामाक्षी देवी और श्रीहरि विष्णु वरदराज के एक साथ निवास के पौराणिक आख्यानों की मीठी कथा है।

आद्यशक्ति हिमालय पुत्री पार्वती के कांची आने का सम्बंध परमेश्वर शिव द्वारा तीसरे नेत्र से कामदेव को वध—दहन करने से है। देवताओं के आग्रह से कामदेव और देवी रति ने कैलास में नीललोहित नेत्रोंवाले शिव पर ''कामास्त्र फेंकने का दुस्साहस किया।'' वास्त्व में महादेवी रति के विलाप से द्रवित हो गई। उन्होंने द्वापर में श्रीकृष्ण के पुत्र के रूप में कामदेव के जन्म तक उसे स्नेहवश शरण देने की भिक्षा दी। वे रूष्ट होकर पृथ्वी की करधनीवाले कांची में आ गई। प्रकारान्तर में देश के सभी शक्तिपीठों की शक्ति सिमटती गई। इस असंतुलन ने प्रजापति ब्रह्मा ने भगवती पार्वती से प्रार्थना की कि शक्तिपीठों और शिव क्षेत्रों पर कृपाकर दैविक शक्ति प्रदान करें। महादेवी ने प्रसन्न होकर कांची सहित सभी में पुनः पूर्ववत शक्तिपात किया। तभी से कांची को ''शिवजीत क्षेत्र'' का नाम मिला। यहॉ शिव की अनन्त कृपा की दिन रात अमृत वर्षा होती है।

कांची में महादेवी के आने का दूसरा कारण ''प्रेमवश महादेव के आंखों पर हाथ रखना था।'' महादेव शिव की आंखें बंद होते ही तीनों लोकों में अंधकार से हाहाकार मच गया। देवताओं, गंधर्वों, शिवगणों और ऋषियों ने महादेव से तत्काल नेत्र खोलने और ब्रह्माण्ड—तीनों लोकों को बचाने की प्रार्थना की। शिव महादेवी के कार्य से क्रोधित हुए। पार्वती को अपनी भयानक भूल पर बहुत पछतावा हुआ। वे कैलास से नीचे दक्षिण में कांची आ गई और तपस्या में लीन हो गई। उन्होने कांची पृथ्वी की करधनी को चुना। पार्वती ने ''आम के वृक्ष'' के नीचे आसन लगाया। वहाँ उपलब्ध 'रेत मिट्टी से शिव लिंग बनाया।' वर्षों तक उनकी तपस्या

चली। भगवान् शिव ने पार्वती की परीक्षा लेने का विचार बनाया। वे कांची पहुंचे और वहाँ प्रलयंकर पानी आया। चारों तरफ पानी की लहरों को बढ़ते देखकर महादेवी पार्वती के सामने रेत के शिवलिंग को बचाने की समस्या थी। उन्हें अपनी देह से अधिक आराध्य का खुले आकाश के नीचे का लिंग प्रिय था। उन्होंने दोनों हाथों से शिवलिंग को पकड़ लिया और तेजी से आदिदेव का मंत्रपाठ करने लगी। इससे प्रसन्न होकर तत्क्षण महादेव प्रकट हुए। कामाक्षी विलास में इस कथा का सविस्त्ार वर्णन है। महादेव शिव और महादेवी पार्वती के इस मिलन से कांची नगरी धन्य हो गई। इसके उपलक्ष में वार्षिक ब्रह्मोत्सव में रेत के शिव लिंगवाले एकाम्बरनाथ मंदिर और श्रीकामाक्षी मंदिर से प्रतिमायें ''पवित्र आम्रवृक्ष'' के नीचे ले जायी जाती हैं। जहां पार्वती ने तपस्या की और शिव प्रकट हुए। इसी स्थल पर देवी का शिव विवाह कल्याणोत्सव भी मनाया जाता है।

श्रीएकाम्बरनाथ शिव मंदिर के विशालतम शैव मंदिरों में से एक है। एकाम्बरनाथ के लिंग को बहुमूल्य धातुओं के खोल से ढ़का हुआ है। मंदिर प्रागण में सुब्रह्मण्यम (कार्तिकेय) और गणेशजी की विशाल प्रतिमायें हैं। इसका शिखर, गोपुर, गर्भगृह और कक्षों का स्थापत्य मोहक है। विशाल परिसर में 108 और 1008 शिवलिंगों की प्राण प्रतिष्ठा की गई है। मंदिर में मूर्तिकारों ने कामदेव को शिव द्वारा तीसरे नेत्र से भस्म करने का दृश्य साकार किया है। मंदिर परिसर में शिवगंगा के दो पवित्र सरोवर हैं। चौल साम्राज्य के दौरान मंदिर का जीर्णोद्धार हुआ। पल्लव, चैर और चौल साम्राज्यों ने कांची के वैभव को पुनर्स्थापित करने के लिए राजसी खजाना खोला। प्राचीन भारत के मौर्य वर्मन साम्राज्य ने भी शिव–शक्ति नगरी कांची पर ध्यान दिया। शिव कांची के मध्य में महादेवी कामाक्षी का मंदिर है। महादेवी कामाक्षी को ''कामकोटि अम्बिका'' भी कहा जाता है। मंदिर का स्वर्ण मेरु ओर स्वर्ण विमान अदभुत हैं। मुख्य मंदिर में आकाश को दर्शाती ''गुहा'' है। कांची पुराण के अनुसार मंदिर की अधिष्ठात्री महादेवी ''राजराजेश्वरी'' स्वरूप में है। चतुर्भुजा की काली प्रतिमा आभावान है। पार्वती राजराजेश्वरी के रूप में सभी मनोरथ पूरे करनेवाली, अध्यात्मिक–दैविक–भौतिक ऐश्वर्य, धन सम्पदा देनेवाली है। मंदिर में तापस कामाक्षी की प्रतिमा भी है। तापस कामाक्षी अध्यात्मिक

शक्ति देनेवाली है। आदिशंकराचार्य द्वारा शिला पर बनाया श्रीचक्र भी रखा है। गर्भगृह के समीप ही आदिवराह, अरूपालक्ष्मी आदि की दर्शनीय प्रतिमायें स्थापित है। देवी अन्नपूर्णा, बंगारू कामाक्षी, उत्सव कामाक्षी और सरस्वती के मंदिर अलग से हैं।

श्रीकामाक्षी देवी की नगरी में श्रीरंगम और तिरूपति के समान जाग्रत ''श्रीवरदाज विष्णु'' का मंदिर है। दक्षिण में वरदराज को देवराजा और हस्त्गिरिनाथ भी कहा जाता है। हाथी के समान विशालकार होने से वरदराज मंदिर की चट्टान को हाथी चट्टान के नाम से पुकारा जाता है। मंदिर का पुण्यकोटि विमान बहुत सुन्दर है। श्रीकामाक्षी क्षेत्र में ओम आकारवाला जवाहरेश्वर महादेव, काशी विश्वनाथ, गरीगधेश्वर महादेव, अपूनारभैवेश्वर, इरावत्तनेश्वर, रूदकोटेश्वर, ओनाकनटन ताली महादेव और अनकपाँचूरा महादेव भी सिद्ध पीठ है। कांची में महादेव के पुत्र कार्तिकेय कुमार सुब्रह्मण्यम का भी भव्य मंदिर है। तमिल साहित्य के अनुसार कांची क्षेत्र में 108 सिद्ध शिव पीठ, 24 विष्णु मंदिर और अनेक श्रीगणेश मंदिर हैं। लेकिन देवी पार्वती की समर्पित एक मात्र श्रीकामाक्षी मंदिर है। ईसा से 500 वर्ष पहले (2500 वर्ष पूर्व) आदिशंकराचार्य शंकर भगवत्पद ने श्रीकामाक्षी कामकोटि में आराधना की। तंत्र शास्त्र में महालक्ष्मी के तीन अतिजाग्रत सिद्ध शक्ति पीठों में कामरूप कामाख्या, जलंधर और श्रीकामाक्षी है। तांत्रिक रचना ''सौभाग्य चिन्तामणी'' में कांची को ''आकाशपीठ'' का दर्जा दिया है। इतिहासकार प्रोफेसर रपसन और ई. मार्ससन के अनुसार सम्राट अशोक से भी पहले कांची चोल साम्राज्य की राजधानी थी। विजयनगरम के संस्थापक विद्यारण्य ने कांची में अध्यात्मिक शिक्षा ली। राजराजेश्वरी कामाक्षी मुक्ति भुक्ति देनेवाली है। ऊँ

एक अक्षर मन्त्र का देवीय चमत्कार

प्राचीनकाल से वर्तमान तक ब्रह्मनाद या नादब्रह्म के बीजाक्षर या एक अक्षर मन्त्रों की दिव्य चमत्कारिक शक्तियों का विवरण मिलता है।

एकाक्षरनामकोषसंग्रह, आकाशभैरवकल्प, शरभतन्त्रम्, शिवदृष्टि, मातृकाओं के देवता, स्फोट आदि में वर्णमाला के प्रत्येक अक्षर के देवता और उनकी अध्यात्मिक भौतिक शक्तियों के रहस्य को उजागर किया है।

वेदीक काल से यह मान्यता है कि ब्रह्माण्ड में प्रणब ऊँ का नाद गूज रहा है। वर्षों तक पश्चिम ने इसे कपोल कल्पना माना परन्तु अन्ततः सूर्य से निरन्तर बहुत ही मन्द धीरे स्वर में ऊँ के पाठ को नासा ने स्वीकारा। आकाशभैरवकल्प में महेश्वर शिव ने देवी भगवती उमा पार्वती को अक्षरों की दैविक शक्ति का मातृका का गोपनीय रहस्य दिया। इसके अनुसार पाँच महाभूतों पृथिवी, अग्नि, जल, वायु और आकाश के बीजाक्षर लं (पृथिवी), खं (अंतरिक्ष), यं (वायु), वं (जल), हं (आकाश), रं (अग्नि) हैं। इस प्रकार प्रत्येक देवता का बीज अक्षर है।

तान्त्रिक दृष्टि से क्रीं काली, ह्रीं भुवनेश्वरी, माया श्रीं लक्ष्मी, ऐं वाग्देवी सरस्वती, गं विध्नहर्ता गणेश, हूँ भैरव, दुं विश्वरक्षक माता दुर्गा, हौं शिव, क्लीं महेश्वरी, खं अंतरिक्ष आकाश का परिचायक है। तन्त्र शास्त्रों के अनुसार प्रत्येक बीज अक्षर का अपना अर्थ होता है। यह अर्थ देवता, उसके वर्ण, स्वरूप, शक्ति (अध्यात्मिक, भौतिक), प्रभाव की अभिव्यक्ति करता है। र अक्षर बीज के बारे में लिखा है : ''रेफः कृष्णाग्नि बींज स्यात रक्ताभं सर्वनाशनम्। जगंमाकर्षणं युद्धे द्विषां सेनाबलं तथा।।'' जयपुरके राजगुरु श्रीविद्यानाथ ओझा के अनुसार रं अग्नि बीज है, उसका रक्त आभावाला लाल रंग है, सभी का नाश करनेवाला है, जग को आकर्षित करनेवाला है और युद्ध में बिना लड़े शत्रु सेना का बल हरनेवाला है। बीज र ही सविता सूर्यदेव का प्रतिनिधित्व करता है। इससे बीज की साधना में विशेष सावधानी अपनानी आवश्यक है। अर्थात् र ही अग्नि सूर्य है।

आचार्य एवं गुरु के लिए निर्देश है कि वह बीज मन्त्र की दीक्षा देने से पूर्व दीक्षित होनेवाले की प्रवृत्ति, विचार, रूझान आदि को ध्यान में रखकर ही बीज मन्त्र दें। अन्यथा साधक का हित की जगह अहित होना टाला नहीं जा सकता है। मन्त्रशास्त्र में ह्रीं, रं, गं, श्रीं आदि को एकाक्षर बीज में ही सम्मिलित किया गया है। भगवान् अभिष्ट वरसिद्धि गजानन का एकाक्षर मन्त्र ग,गः,गं,गँ,गौ हैं। बीज को अधिक शक्तिमान बनाने के लिए अनेक बार ऊँ प्रणब लगाने का विधान है। वैसे दक्षिणाम्नाय में गं

के ध्यान का उल्लेख है। देवादिदेव महोदव का एकाक्षर मन्त्र क्ष्रौं, हौं और मजुघोष का ह्रीं है। शक्ति स्वरूपा जगतजननी दुर्गा का एकाक्षर मन्त्र दुँ है। भगवती महादेवी एवं श्यामा काली का बीज मन्त्र क्रीं, उग्र तारा का स्त्री, पाँच लक्ष्मी का श्रीं, भुवनेश्वरी का ह्रीं, भगवती छिन्नमस्ता का हूं, शत्रुनाशकर्त्री वगला (पीताम्बरा, ब्रह्मास्त्रविद्या, बगुला) का ह्लीं, भगवती कमला का श्रीं, देवी महासरस्वती का ऐं, मातृका देव शक्ति ब्राह्मी का ब्रां आदि है।

भगवान् विष्णु विभिन्न अवतारों के एकाक्षर बीज मन्त्र श्री प्रणब लगाकर जप किये जाते हैं। भगवान् विष्णु के अवतारों के बीज मन्त्रों में वराह अवतार का इं, नृसिंह अवतार का क्ष्रौं, रामावतार का रां, कृष्णावतार का क्लीं, ह्यग्रीव का हसूं, कामदेव का क्लीं है। आमतौर पर बीज मन्त्र के एक लाख जप और उसका दशांश हवन अर्थात् 10000 आहुतियों के बाद ही बीज मन्त्र कारगर जाग्रत होता है।

ऋग्वेद के प्रमुख देवताओं में सविता सूर्य, रुद्र, इन्द्र, मित्र, वरुण, दोनों अश्विनी कुमार आदि प्रमुख हैं। ऋग्वेद के 14 या 16 सूक्तों में सूर्य सविता की स्तुति मिलती है। देवी अदिति के बारह पुत्र–मित्र, रुद्र, वरुण, सूर्य, भग, विवस्वान, पूषा, त्वष्टा, विष्णु, धाता एवं सविता, आदित्य कहलाये। सूर्य सविता को ब्रह्माण्ड का संरक्षक कहा गया। ऋग्वेद में गायत्री छन्द में सविता की प्रसिद्ध स्तुति गायत्री मन्त्र कहलायी। ऋग्वेद में सूर्य को सभी जगत की आत्मा और ब्रह्म कहा गया। रुद्र (भगवान् शिव) को दिवो वराह अर्थात् के आकाश के सूर्य वराह की संज्ञा दी गई। स्मरण रहे कि सूर्य का एक नाम वराह है। सूर्य उपासना को लेकर ही सौर सम्प्रदाय की स्थापना हुई। एक मात्र प्रत्यक्ष देव सूर्य की उपासना सभी महाद्वीपों में होने के प्रमाण मिलत हैं। मिश्र के प्राचीन (5500 वर्ष पुरानी) फरोह साम्राज्य में निर्मित पिरामिडों के अधिष्ठाता देवता सूर्य रॉ के नाम से पुकारे गए (बीज मन्त्र में अग्नि एवं सूर्य का बीजाक्षर मन्त्र रं, ह्रीं है।)। बीजाक्षर में ग्रहों के एकाक्षर मन्त्रों में सूर्य का रं, ह्रीं, सोम चन्द्रमा का सौं मिलता है। सोम के एकाक्षर के छह लाख जप और 6000 घी से होम का वर्णन मिलता है। शास्त्रों के अनुसार ग्रहों की माताओं में सूर्यजननी पिंगला, चन्द्रजननी मंगला, मंगलजननी भ्रामरी, बुधमाता भद्रिका, गुरुमाता धान्या, शुक्रजननी सिद्धा,

शनिमहाराजजननी उल्का, राहुजननी संकटा और केतुजननी विकटा का उल्लेख है। भगवान् सूर्य की पत्नियों–संज्ञा, छाया, राज्ञी और प्रभा का विवरण है। सभी पत्नियों के अलग अलग मन्त्र हैं। मार्कण्डेय पुराण के अनुसार सूर्य की पत्नि देवी संज्ञा की छाया से शनिदेव का जन्म हुआ। सूर्य उपासकों के सौर सम्प्रदायों में औदिच्य और दक्षिणात्य हैं। सूर्य की रथ पर सवार एवं कमल पर नग्न पैर खड़े स्वरूप की पूजा की जाती है। सूर्य भगवान् को ही वेद का स्वरूप स्वीकारा गया।

श्रीविद्या में एकाक्षर मन्त्र श्रीं है। इन एकाक्षर मन्त्रों के विवरण से स्पष्ट है कि सभी बीजाक्षर दिव्य शक्ति का रूपाकार है। बीजाक्षर मन्त्र का विधान, एकाग्रता से जप करने से साधक में सम्बन्धित देवता का अभिर्भाव होना आवश्यक हैं। मन्त्र जप में परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी चार प्रकार है। इसे इसत्रह समझे कि जिह्वा से सुने जानेवाले स्वर में किया जाने वाला वैखरी मन्त्र पाठ सबसे नीचले पायदान का है। नाथ सम्प्रदाय में मानसिक जप से समय होठ बंदकर जीभ को तालू से लगाकर और सांस रोक कर मन्त्र पाठ का कठोर विधान है। यह सबसे चमत्कारिक किन्तु बहुत ही कठिन हठयोग की प्रक्रिया है। अधिकांशतः बीज मन्त्र के साथ ब्रह्मस्वरूप प्रणब ऊँ लगाया जाता है। वह बीज मन्त्र के सगुण देवात्मक स्वरूप से साक्षात्कार कराने में प्रभावकारी सिद्ध होता है।

वास्त्व में बीजमन्त्र की साधना से जपकर्ता का देवस्वरूप होना आवश्यक है। बीज मन्त्र से जपकर्ता में सम्बन्धित देवता की शक्तियां आती हैं। मन्त्र में मानसिक पाठ से शुभ स्पन्दन कम्पन की शक्तिवान महापुंज तरंगे उत्पन्न होती हैं। इसके लिए विश्वास प्राथमिक शर्त है। महायोगियों के अनुसार व्यक्ति के संचित कर्मों की साधनाओं की निधि से बीजाक्षर सिद्ध करने का समय जुड़ा है। अक्सर एक साधक बहुत कम समय में मन्त्र सिद्ध करता और दूसरे के वर्षों गुजर जाते हैं। दोनों के संचित कर्म निश्चित रूप से अलग अलग हैं। बीज मन्त्र के चयन से पहले जपकर्ता अपने बारे में विश्लेषण अवश्य करे और उसके बाद ही निर्णय ले। हर व्यक्ति के स्वभाव, रूचि, प्रवृत्ति, रूझान आदि के अनुसार आराध्य देवता अलग अलग होता है। सो, तनिक सावधानी से बीजाक्षर

जप करें और अपना नवभाग्य लिखें। जप में हमेशा बीजाक्षर मन्त्र के अर्थ को ध्यान रखें। ऊँ

वेदीक युग से कलियुग तक
त्रिशक्ति त्रि अक्षर मन्त्रों का चमत्कारिक रहस्य

वेदीक वांगमय से तन्त्रशास्त्र में त्रिशक्ति का चमत्कारिक मिथकीय रहस्य है। आर्ष ग्रन्थों के अनुसार विश्व सत्, रज और तम तीन तत्त्वों पर आधारित है। सृष्टि और ब्रह्माण्ड में निष्कल निष्काम निराकार निर्गुण ब्रह्म ही अस्ति्त्व में था। जब निष्कल ब्रह्म में प्रकृति का समावेश हुआ तब उसमें शक्ति का प्रादुर्भाव हुआ। इसी शक्ति से नाद और विन्दु की रचना हुई। सकल ब्रह्म त्रिगुणात्मक हुआ। इसी विन्दु में साधक शिव शक्ति का ध्यान करता है। तन्त्र शास्त्र के अनुसार विन्दु से रौद्री (रुद्र और उनकी शक्ति), ज्येष्ठा (विष्णु एवं उनकी शक्ति) और वामा (ब्रह्मा और उनकी शक्ति) उत्पन्न हुई। प्रकृति के रूप में शक्ति (देवी) ही त्रिशक्ति ब्रह्मा, विष्णु, महेश का कारण है।

त्रिमहादेवी के रूप में महाकाली, महालक्ष्मी और महासरस्वती हैं। इन सत्,रज,तम के तीन तीन योगों से नौ दुर्गा अस्ति्त्व में आई। इस महादेवी के त्रि स्वभाव अथवा भाव–पशु, वीर और दिव्य बताये गए हैं। तन्त्र में विन्दु को शिव शक्ति का रूप स्वीकारा गया है। शब्द ब्रह्म सत्, रज, तम गुणों से ज्ञान, इच्छा और क्रिया की शक्तियों को अपने आप में प्रकट करता है। त्रिशक्ति के उपासकों ने अपौरूषेय ब्रह्म की साधना के लिए शैवमत, वैष्णव मत एवं शाक्त मत की रचना की। आगम में महादेवी पार्वती को महादेव शिव ने कहा कि सबसे श्रेष्ठ वेदाचार है, वेदाचार से वैष्णव आचार उत्तम है, वैष्णव आचार से शैव आचार श्रेष्ठ है और

शैवाचार से दक्षिणाचार श्रेष्ठ है। वर्तमान कलियुग के महाभैरव के तीन रूप–चण्डेश्वर, शूलपाणि एवं वटुक माने गए हैं।

जम्बूद्वीप के भरतखण्ड को प्राचीन काल में विष्णुकांत, रथक्रान्त और अश्वक्रान्त में तान्त्रिक रूप से विभाजित माना गया था। तीनों का कार्यक्षेत्र कम्ब देश (कम्बोडिया, इण्डोनेशिया, थाईलैण्ड, मलेशिया) से लेकर चीन, रूस, ईरान, यूनान, अरब देश भारत तक फैला था। यानी अफ्रीका मध्य एशिया से पूर्वी एशिया तक तान्त्रिक प्रचार था। वेदीक युग में भी त्रिवेद ऋग्वेद, सामवेद और यजुर्वेद ही स्वीकारे गए। तीन अंकों में अकार, उकार और मकार ही दर्शित हैं। योग वासिष्ठ में तीन आकाश–भूताकाश, चिताकाश और चिदाकाश वर्णित हैं। जनसामान्य में पृथ्वीलोक, स्वर्गलोक और पाताललोक प्रचलित हैं। वेदीक काल में तीन ही देवताओं को प्रमुख माना जाता था। उनमें पृथ्वी का देवता अग्नि, अंतरिक्ष का देव इन्द्र या वायु या वरुण और द्युस्थान का देवता सूर्य रहा। इनके कर्म भेद के अनुसार तीन नाम रुद्र, वसु और आदित्य (ब्रह्मा, विष्णु, महेश) हुए। ह्रीं, श्रीं एवं कीर्ति प्रमुख त्रिदेवी रही। धर्मत्रयी में वेदोक्त, शास्त्रोक्त और शिष्टाचार–लोकाचार कहा गया है। अधिकांश वेदीक विद्वानों का मत है कि लोकाचार संस्कारित होकर शास्त्र बना ?

यहाँ धर्म के लिए श्रद्धा, भक्ति और प्रवृत्ति (आस्था, विश्वास और भावना) को आवश्यक बताया गया है। महर्षि पतंजलि के योग में चित्त के निरोध, समाधि और एकाग्रता परिणिति माना है। शैवमत में शिव, जीवात्मा और मल प्रमुख हैं। साम्बसदाशिव के तीन नेत्र अग्नि, चन्द्र और सूर्य हैं। महादेव शिव को त्रियम्बक कहा गया है। इसका एक अर्थ यह है कि जिसके तीन लोक पिता हैं। दूसरा अर्थ यह है कि शिव तीनों लोकों के पिता हैं। विरूपाक्ष अर्थात् चेहरे को तीसरे नेत्र से विरूपित करनेवाले शिव हैं। आदिशंकराचार्य शिव को ही शव और शव को ही शिव कहते हैं। शिव में ही सृष्टि की उत्पादिका (महासरस्वती), पालिका (महालक्ष्मी) और संहारिका (महाकाली) तीन महाशक्तियाँ हैं। महादेव नीलकण्ठ के शस्त्र में तीन शूल यानी त्रिशूल है। शिव कर्म, उपासना और ज्ञान तीनों मार्गों के रचयिता हैं। प्राचीन मिथक के अनुसार शिव के डमरू के नाद से ही सृष्टि और स्वर की रचना हुई। आगम के अधिकांश ग्रन्थों में विश्वेश्वर शिव ने महादेवी पार्वती को तन्त्र का ज्ञान दिया।

भक्ति और मंत्र सिद्धी में मानस, उपांशु और वाचिक का उल्लेख मिलता है। इसी प्रकार शारीरिक, वाचिक और मानसिक तीन तप हैं। इनमें मानस जप और मानसिक तप को ही सबसे अच्छा माना गया है। मानस जप में प्रत्येक श्वांस के साथ इन्द्रियों एवं मन पर निग्रह के साथ जप का विधान है। शास्त्रों के अनुसार मंत्र जप हृदय, आज्ञाचक्र और सहस्त्रार में करने की विधि मिलती है। उच्चतम साधक ब्रह्मरंध्र में जप करते हैं। काश्मीर शैव दर्शन में शिवदृष्टि (अगस्त्य ऋषि के वंशज स्वामी सोमानन्द की रचना) अक्षर अथवा नाद की शक्ति पर विस्त्ार से जानकारी देती है। अक्षर के मंत्रों की भक्ति मानसी, वाचिकी और कायिक में विभाजित की गई है। पुराणों में भक्ति का वर्गीकरण लौकिक, वेदीकी और अध्यात्मिक किया गया है। सभी गीताओं में कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग तीन योगों पर प्रकाश डाला गया है। योगवासिष्ठ में महर्षि वसिष्ठ अयोध्यापति दशरथ के राजकुमार राम को संचित कर्म, प्रारब्ध और वर्तमान कर्म तीनों से मुक्ति के लिए शुभ कर्मयोग का महापथ बताते हैं। कर्मयोग में अपने शुभ कर्मों से अपना नया भाग्य लिखा जा सकता है। इसी कर्मयोग पर, बीसवींशती के महासंत स्वामी विवेकानन्द ने अमेरिका में सम्मोहन करनेवाले अध्यात्मिक प्रवचन दिए। भागवत में सात्विकी, राजसी और तामसी भक्तियों में सात्विकों को सर्वश्रेष्ठ बताया है। इसीलिए मन के तीन शुद्ध (सत्), राजस (रज) और तामस (तीन) प्रकार माने गए हैं। साथ ही त्रिगुणात्मक माया के परमार्थ, ज्ञान और स्वार्थ तीन प्रपाँच हैं। मंत्रों के तीन रूपों में सत्कारार्थक, ज्ञानार्थक एवं विचारार्थक हैं। त्रिविध मंत्रों या मंत्रों के छन्द पुलिंग, स्त्री और क्वीव हैं। बहुप्रसिद्ध सूर्यदेव के सविता रूप की आराधना का गायत्री मंत्र नपुंशक लिंग में हैं। गायत्री का पूरा मंत्रपाठ ज्ञानी करते हैं।

महर्षि यास्क के वेदों के कठिन शब्दों के व्याख्या ग्रन्थ निरूक्त के अनुसार वेदीक मंत्रों के परोक्षकृत, प्रत्यक्षकृत और अध्यात्मिक तीन भेद हैं। वहीं वेदीक मंत्र गद्य और पद्य दोनों ही में है। इसमें गद्य को यजु, पद्य को ऋचा और पद्य ज्ञान को साम कहते हैं। त्रिशक्तियों में परा, अपरा और परापरा (चित्त, इच्छा और ज्ञान रूपी देवी शक्तियाँ) हैं।

तान्त्रिक काली, तारा और त्रिपुरा को त्रिशक्ति देवी कहते हैं। इसीक्रम में तीन कष्टों में दैहिक, भौतिक और दैविक आते हैं।

संध्योपासना में तीन सन्धिकाल मानकर तीन समय संध्या उपासना करने की व्यवस्था है। महर्षि याज्ञवल्क्य ने इनको क्रम में गायत्री, सावित्री और सरस्वती का नाम दिया है। शास्त्रों में वैराग्य के तीन रूप बताये गए हैं। पुराणों में ब्रह्म भावना, कर्म भावना और उभयात्मिका तीन भावों को मुख्य माना गया है। रुद्रयामल तन्त्र में पशु भाव, वीर भाव और दिव्यभाव में साधना का निर्देश हैं। शास्त्रों में धर्म, अर्थ और काम को पुरूषार्थ त्रय कहा गया है। अन्त में मानस में तीन ज्योतियों का वर्णन हैं : अपत्यं कर्म विद्या च त्रीणि ज्योतींषि भारत।। ऊँ

ऋग्वेद के गुप्तकूट प्रतीकात्मक मंत्रों का रहस्यलोक

उनतालीस लाख वर्ष और उससे प्राचीन वेदीक ऋक् मंत्रों का रहस्यमय तिलिस्मी लोक प्रतीक, कूट संकेत और गोपनीयता से दिव्य महाशक्ति सम्पन्न है। यह रहस्य ऋग्वेद के सूची शब्द सूचक निघण्टु और चयनित कठिन शब्दों की अक्षर सरंचना के आधार पर यास्क के निरूक्त की सहायता से उद्‌घाटित करने की प्रक्रिया शुरू की जा सकती है।

आचार्य सायण माधवाचार्य ने वेद के भाष्य में उसके गुह्यज्ञान को बहुत ही सहज तरीके से प्रस्तुत किया। ऋग्वेद के सैंकडों, गुप्त शब्दों का अर्थ हजारों वर्ष से जाना नहीं जा सका है। आचार्य टी.वी. कपाली शास्त्री के अनुसार आचार्य सायण से सैंकड़ों वर्ष पहले आचार्य आनन्दतीर्थ ने ऋग्वेद के प्रथम 40 सूक्तों की व्याख्या की। आचार्य आनन्दतीर्थ के अनुसार वेद का उद्देश्य सर्वव्याप्त (संस्कृत में विष्णु) परमेश्वर परब्रह्म तक पहुंचना है। राघवेन्द्र स्वामी ने मंत्रार्थ मंजरी में वेदीक मंत्रों के ज्ञान को परत दर परत खोला है। ऋग्वेद के देवता

आन्तरिक और बाहरी जगत के संचालक हैं। वेदीक ऋषियों ने वर्षों की अन्तर मुखी तपस्या, साधना, जप और भौतिकता को त्यागकर स्वयं ईश्वर से साक्षात्कार कर श्रुति से मंत्र ग्रहण किए। ईश्वर द्वारा दिए मंत्रों में अक्षरों की शक्ति और अनन्त सामर्थ्य को प्रतीक और कूट घेरे में सीमित घेरे में रखा गया। वेदीक दिव्यशक्ति सम्पन्न ऋषियों, तपस्वियों की भावना असीमित विध्वंसक और विधायकी सकारात्मक शक्तिवाले मंत्रों, स्त्ोत्रों, स्तुतियों को दुष्ट प्रवृत्तिवालों के दुरूपयोग की सम्भावनाओं को समाप्त करना रही लगती है।

इसीलिए पश्चिमी विद्वानों ने अज्ञानता से ऋग्वेद को बालकों का प्रलाप और पाषाणकालीन ऋषियों का ज्ञान कहाँ पश्चिमी विद्वान यह भूल जाते हैं कि ऋग्वेदीक कालीन मिथक और उनके तिलिस्म में छिपे ज्ञान को समझने के लिये योग, तप, जप, साधना, विपश्यना और अन्तर्चेतना मूलभूत शर्त है। ऋग्वेद एक सर्वोच्च परमशक्ति, एक ही स्त्रोत, एक आत्मा को मानता है। वृहद देवता भी यास्क की तरह वेद के रहस्य को पाँच जन से जोड़कर देखता है। यहाँ जप का अर्थ मुँह बंद कर, जिह्वा को तालू से लगाकर, बिना आवाज किए, बिना श्वांस लिए अन्तर मुखी होकर एकाग्रता से मंत्र पाठ से है। जप आन्तरिक सुप्त शक्ति को जाग्रत करता है।

वेद के ऋषि मधुच्छन्द अग्नि के मंत्र से ऋग्वेद के गोपनीय दरवाजे खुलते हैं। सबसे महत्वपूर्ण यह है कि ऋग्वेद में अग्नि शब्द का उपयोग सैंकड़ों–सैकड़ों अर्थो में किया गया है। पश्चिमी विद्वान और वेद के आलोचक ऋग्वेद के अग्निदेव वरुणदेव के अनन्त रूपों को एक मानकर अर्थ का अनर्थ करते हैं। ऋग्वेद को अष्टक, अध्याय, वर्ग, ऋक्, मण्डल, अनुवाक, सूत्रों, सूक्त आदि में विभाजित किया गया है। सूत्रकारों ने मंत्र और सूक्तों के लिए विनयोग निर्धारित किए। आम्नाओं की अर्थात् पद्धति की रचना की गई। आचार्य टी.वी. कपाली शास्त्री वेद को ब्रह्मयज्ञ या ब्रह्मकी आराधना मानते हैं। यह स्वर्ग और पृथ्वी का दिव्य मिलन करवाता है। ऋषि को सर्वोच्च उपाधि कवि की दी गई। कवि अन्तर्चेतना से दिव्यवाणी को उद्‌घाटित करता है। मंत्रदृष्टा कवि ऋषि को समयोग, विप्रयोग, सहचर्या, विरोधिता, अर्थ, प्रकरण, लिंग, सन्निधि, समार्थयम, अचुति, देश काल व्यक्ति और स्वर का ज्ञान था। यास्क ने भी प्राचीन

काल का उल्लेख करते हुए छह–जायते, अस्ति्, वर्धते, विपरीनमते, अपकष्यिते, विनाशयते (सद्भावाविकारा) चरणों का उल्लेख किया है। वेदीक काल में मंत्र आन्तरिक और भौतिक अनुष्ठान का अंग बने। अध्यात्मिक जगत में शरीर के अन्दर यज्ञ–हवन को सबसे अधिक महत्व दिया गया है। वेदीक भाष्यकारों के अनुसार मंत्र पाठ, स्त्ोत्रवाचन और यज्ञ में आहुतियों के समय करनेवाले को उसका अर्थ और व्याख्या की जानकारी होनी अनिवार्य शर्त है। वर्तमान में अनुष्ठानों में रूढ़ीगत पाठ किया जाता है। इसका कोई लाभ नहीं मिलता है। बल्कि उसका दोष पुरोहित और यजमान दोनों को लगता है।

ऋग्वेद के मंत्रदृष्टा ऋषि आदिसूर्य यानी सविता में नाद के स्फोट से हजारों सृष्टि के सूर्य की उत्पत्ति मानते हैं। सूर्य में नाद से पृथ्वी आदि का सृजन हुई। वेद की भाषा में ब्रह्म के सूक्ष्म से सूक्ष्म रूप से स्फोट या नाद से अनन्त ब्रह्माण्ड सौर मण्डलों की रचना हुई। नाद से पहले से कुछ भी नहीं था। ऐसे में शब्द शरीर और चैतन्य शक्ति से स्वर नाद हुआ। ऋग्वेद के प्रारम्भ में परमात्मा को नमस्कार किया गया है। वेदीक ऋषियों को संस्कृत के व्याकरण और कभी नष्ट नहीं होनेवाले अक्षर की दिव्य शक्ति की गहन जानकारी थी। स्फोटवाद के गुप्त रहस्य के ज्ञान के कारण ही पृथ्वी, आकाश, वायु, तेज, जल के लिए अक्षरों की जानकारी सीधे देवताओं से ग्रहण की। ऋषियों ने दिव्यनेत्रों से अक्षरों को आकाश में देखा। ऋषियों ने अनन्त फैले हुए सनातन अस्ति्त्त्वान, शुभवरदायक को शेषनाग पर दूध के समुद्र में विष्णु को प्रतीकात्मक पेश किया। इसी कड़ी में शक्तिवान वायु देव के रथ के नौ घोड़े हैं। वास्त्त्व में ये मानव में षटचक्र, प्राण–अपान और आत्मा हैं। पश्चिमी विद्वानों की समस्या यह है कि वे ऋग्वेद के देवताओं के मंत्रों में छिपे रहस्यों को जानने में बुरीतरह नाकाम रहे। ऋषि घृत (घी) शब्द का उपयोग ज्ञान के सार के लिए करते हैं। स्मरण रहे कि दूध और दही मंथन से मक्खन निकलता है और मक्खन से घी बनता है। घृत ज्ञान की अग्नि को गति देता है। अतः ऋग्वेद में उपयुक्त शहद (मधु), गौ, जल, ह्रदय, आन्तरिक समुद्र, घृत, अग्नि, सरस्वती, रथ, कुमारी आदि शब्दों के भौतिक अर्थ वेद के रहस्य को और अधिक गहरा करते हैं। वेद का शाश्वत सनातन कुमार विशुद्ध चेतना और अमर है।

ऋषि विश्वमित्र आदि सप्त नदियों के प्रतीक को सप्त दिव्य सत्यधाराओं के गूढ़ अर्थ में लेते हैं। सप्त धेनुओं का अर्थ भी सात गाय नहीं है। ऋषि सत्य को उद्घाटित करते हुए सीधे–सीधे सिंह गर्जना करते हैं कि अजर अमर अग्नि हमारे शरीर में है। यह हृदय की गुफा में है। पराशर, विश्वमित्र, वामदेव ऋषि गणों के अनुसार अग्नि ने चोर की तरह स्वयं को छिपाया हुआ है। वह समूचि शक्ति के साथ गुफा में बैठा है। अग्नि को हमेशा अस्ति्त्व के सात सिद्धान्तों के साथ जोड़ा गया है। तूफान के देवता मरुत् की सूर्य के समान चमकती त्वचा भी नये रहस्यों का बखान करती है। वाल्खिल्य ऋषि कहते हैं कि एक ही (परमात्मा) सभी में हैं। वेदव्यास के अनुसार देवराज इन्द्र ने धर्म का रहस्य ऋषियों को दिया। इन्द्र ने चिकित्सा का रहस्य महर्षि दधीचि को इस शर्त से दिया कि वे इसे किसी को नहीं बतायेंगे अन्यथा उनका सिर काटा जायेगा। दधीचि ने यह ज्ञान दोनों अश्विनी कुमारों को घोड़े के सिर से दिया। यह प्रतीक कथा वेदीक काल में अंग प्रत्यारोपण की जानकारी देती है।

वेद में ॠतम् शब्द का लगातार उपयोग किया गया है। ऋत का रहस्यवादी अध्यात्मिक अर्थ सत्य है। इसीतरह वेद में घी शब्द विचार के लिए काम में आता है। जातवेदा अर्थात् अग्नि समस्त् ज्ञान के जन्मदाता हैं। अश्व शब्द के भी साठ अर्थ हैं। वृत्र और इन्द्र की प्रतीकात्मक कथा अंधकार–अज्ञान पर ज्ञान की विजय की है। वेद में कहीं मित्र और वरुण को दिन और रात्रि माना है। यज्ञ में यूथ बलिवेदी पर यजमान को आन्तरिक और आन्तरिक शत्रुओं की बलि देनी चाहिए, पर प्रतीकात्मक भौतिक बलि दी जा रही है। ऊँ

ऋग्वेदीक काल से
श्रीसूक्त में श्री देवी की पूजा

वेद और वेदोत्तर काल में सप्त द्वीपों के विभाजन के समय आर्यों के आदिदेश में धन धान्य और भौतिक समृद्धि के लिए श्रीसूक्त से महादेवी महालक्ष्मी को प्रसन्न करने का रोचक विवरण मिलता है। यही कारण है कि अफ्रीका, मितन्नी, सुमेरिया, असीरिया, हित्ति, पर्थिया मिस्र, इराक, ईरान, यूनान, लैतिन अमेरिका–गवल द्वीप से लेकर मलेशिया, थाईलैण्ड, इण्डोनेशिया, कम्बोडिया आदि में धन की देवी श्री महालक्ष्मी की पूजा के विवरण मिलते हैं। बौद्ध धर्म और जैन धर्म में भी भगवती तारा और देवी पद्मावती की पूजा का विधि विधान है। श्री महालक्ष्मी अर्थात् धन की देवी की प्रतिमायें 7500 वर्ष प्राचीन माया संस्कृति तक में भी मिलने का उल्लेख मिलता है। आर्यायण के आर्यवर्त में ऋग्वेद में श्रीसूक्त में धन ऐश्वर्य की भगवती महालक्ष्मी की अर्चना बहुत मधुर एवं भावपूर्ण छन्दों में की गई है।

ऋग्वेद में ''श्री और महालक्ष्मी'' का उल्लेख मिलता है। ऋग्वेद में श्री शब्द तेज, शोभा, कान्ति, विभूति, कीर्ति, तृप्तिकारक, सौन्दर्य के अर्थो में प्रयुक्त है। धीरा भरुद्रेषां लक्ष्मीर्निहिताधि वाचि मंत्र में महालक्ष्मी का वाणी में निहित होना वर्णित है। यानी महालक्ष्मी शब्द ऐश्वर्य का द्योतक रहा। ऋग्वेद में धन के लिए ऊषा, अश्विनी कुमारों, इन्द्र, अग्नि वरुण आदि देवताओं से श्री, धन, ऐश्वर्य आदि की प्रार्थना की गई। ऋग्वेद में अग्नि वैश्वानर को धन का स्वामी बताया गया है। ऋग्वेद के खिल भाग श्रीसूक्त की स्तुति ''हिरण्यवर्णां हरिणीं सुवर्ण रजतस्त्रजम। चन्द्रां हिरण्यमयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आवह।।'' मिलती है। यजुर्वेद में महालक्ष्मी परमपुरुष की पत्नी के रूप में है। श्री से मस्त्क में आर्विभूत होने की प्रार्थना की गई। ''शिरो में श्रीर्यशो मुखं त्विषः केशाश्च श्मश्रुणि। राजा में प्राणो अमृतं सम्राट चक्षुर्विराट् श्रोतम।'' इससे स्पष्ट है कि श्री का अर्थ ब्रह्मश्री–ज्ञान का तेज स्वीकारा गया। तैत्तिरीय संहिता की वैखानस शाखा के स्मृति सूत्र में धन प्राप्ति के लिए चैत्र की पूर्णिमा को अग्नि के पश्चिम की ओर धान, घृत की आहुति का आदेश है। सामवेद में भी ऋग्वेद के मंत्रो की तरह श्री का शब्द मिलता है। अथर्ववेद में श्री शब्द भूति, सम्पति, वृद्धि, ऐश्वर्य के अर्थ में लिया गया है।

देवताओं के गुरु बृहस्पति जब देवताओं को विजय के लिए यंत्र बाँधते हैं तब मंत्र में कहते हैं कि देवताओं को ''श्री'' प्राप्त हो। अथर्ववेद में महाविष्णु पत्नी श्री का विवरण मिलता है। अथर्ववेद के मंत्रों में दो प्रकार की महालक्ष्मी—एक पापी और एक अच्छी की जानकारी मिलती है।

श्रीसूक्त (ऋग्वेद का खिल सूक्त) में श्री और महालक्ष्मी के स्वरूप की चमत्कृत स्तुति है। यह देवी सुवर्ण के रंगवाली (हिरण्यवर्णाम) (सोने के रंगवाली) (हितकारी) और सुवर्ण, चांदी का स्त्रज (सुवर्ण रजतस्त्रजम) (चन्द्र एवं सूर्य की माला) धारण किये है। गले में पद्म की माला है। इनका मुख चन्द्रमा की गोल है। आंखें हिरनी के समान है। देवी सुवर्ण आभूषणों से सुसज्जित है। सद्यः स्नाता होने से शरीर से जल टपक रहा है। मुख पर तृप्ताम—संतोष के भाव है। उनका प्रभा मण्डल चन्द्रमा की तरह वर्तुल का है। उसमें से किरणें निकल रही हैं। देवी पद्म (कमल) पर स्थित हैं। उनके एक हाथ में पद्म, दूसरे हाथ में ''विल्वपत्र'' हैं। वे सुवर्ण के रथ पर आरूढ हैं। जिसके आगे घोड़े जुते हैं। दोनो तरफ हाथी चिंघाड रहे हैं (हस्त्िनादप्रमोदिनीम्)। श्रीसूक्त के अनुसार इसके ऋषि कर्दम, चिक्लीत, श्रीत एवं आनन्द रहे।

ऋग्वेद के विपरीत अथर्ववेद में महालक्ष्मी पूजन ''अमावस्या'' की तिथि को करने का विधान दिया गया। यह स्मरण रहे कि मूलभूत रूप से वेद तीन ही माने गये हैं। अथर्ववेद त्रयी वेद से बाहर है। अथर्ववेद के अनुसार कार्तिक की अमावस्या को इन्द्र सहित अनेक देवता एक स्थान पर एकत्र होते हैं। अतः यह तिथि धनदायक है। शतपथ ब्राह्मण ग्रन्थ के अनुसार जिन देवताआओं में श्री है, वे अमर और ज्योतिर्मय हैं। शतपथ ब्राह्मण में लक्ष्म, महालक्ष्म और महालक्ष्मी शब्दों की व्याख्या की गई है। जैमिनी और ऐतरेय ब्राह्मण में भी श्री की धारणा है। कौशीतकी उपनिषद के अनुसार प्रजापति ब्रह्मा के आसन को श्री कहा गया है। ऐतरेय ब्राह्मण में श्री की इच्छा रखनेवाले को विल्व वृक्ष का शाखा सहित यूप बनाने की व्यवस्था है। ऋग्वेद में ''विल्वफल को श्रीफल'' कहा गया है। महान्नारायण उपनिषद, बृहदारण्यक उपनिषद, तैत्तिरीय उपनिषद में

महालक्ष्मी का श्री सम्बन्ध मिलता है। सीता उपनिषद में सीता को महालक्ष्मी कहा है। ''श्री देवी त्रिविधं रूपं कृत्वा भगवत्संकल्पानुसारेण लोकरक्षणार्थ रूपम् धारयति'' महालक्ष्मी ने तीन रूप धारण किये हैं। महालक्ष्मी भगवान् के संकल्प के अनुसार संसार रक्षा के लिए विविध रूप धारण करती हैं। श्रीसूक्त में महालक्ष्मी आह्वान का निर्देश है। सूक्त में देवी पद्म की नाभि पर बैठी हुई, पद्म पत्र के समान आंखवाली, पद्म हाथ में लिये, शुभ वस्त्र पहने है। इनकी स्तुति में ''श्री महालक्ष्मी वरदा विष्णु पत्नी वसुप्रदा हिरण्यरूपा स्वर्ण मालिनी रजत स्त्रजा'' गान किया गया है। सूक्त में देवी को भुक्ति, मुक्ति, विभूति, ऋद्धि, समृद्धि, पुष्टि, सिद्धि, धन, सर्वभोगों को देनेवाली सावित्री, धात्री, विधात्री कहा गया है।

आगम–पुराण : महालक्ष्मी

नारद पुराण, ब्रह्म पुराण में महालक्ष्मी तीर्थ प्रसंग आता है। पद्मपुराण में श्रीहरी महाविष्णु के वक्षः स्थल पर श्रीवत्स का चिन्ह होना बताया गया है। विष्णु पुराण में भी वक्षःस्थल पर श्रीवत्स का चिन्ह होना बताया गया है। उधर विष्णु पुराण में दक्ष की कन्याओं में महालक्ष्मी नाम मिलता है। इसकी व्याख्या में महाविष्णु जगत पिता परम पुरुष और महालक्ष्मी नित्य जगन्माता है। यदि महालक्ष्मी स्वाहा है तो महाविष्णु हुताशन हैं। यदि लक्ष्मी ऋद्धि हैं तो महाविष्णु स्वयं वैश्रवण–कुबेर हैं। देवताओं के राजा इन्द्र ने समुद्र मंथन से उत्पन्न देवी महालक्ष्मी की स्तुति में कहाः नमस्ये सर्वलोकानां जनलीमब्जसम्भवाम। श्रियमुन्निपद्माक्षी विष्णु वक्षः स्थस्थिताम्। तुलसी को महालक्ष्मी का अवतार मना गया है। श्रीमद भागवत पुराण में ''श्री'' को महालक्ष्मी की प्रतिमा बनाने की मान्यता मिलती है। ब्रह्मवैवर्त पुराण के अनुसार दुर्वासा के शॉप से श्री नष्ट हो गई और महालक्ष्मी रूष्ट होकर स्वर्ग छोडकर चली गई। प्रकारान्तर में श्री महालक्ष्मी की उत्पत्ति पुनः समुद्र मंथन से हुई। ब्रह्मवैवर्त्त पुराण में श्री महालक्ष्मी की पूजा विधि मिलती है। ''ध्यानं च सामवेदोक्त यदुक्तं ब्रह्मणं पुरा। ध्यानन हरिणा तेन तान्निबोध वदामि ते। सहस्त्रदलपद्मस्य कर्णिकावासिनी परमः।'' लिंग पुराण में महालक्ष्मी की मूर्ति बनाकर दान देने का प्रकरण है। मार्कण्डेय पुराण में (देवी

महामात्य) ''देवी के तीन अवतार महालक्ष्मी, महाकाली, सरस्वती हैं। ये तीन तत्त्वों राजस (महालक्ष्मी), तामस (महाकाली), सात्त्विक (सरस्वती) का प्रतिनिधित्व करती हैं।'' देवी महामात्य में महालक्ष्मी को धन देनेवाली देवी के रूप में लिखा है। मार्कण्डेय पुंराण में पद्मिनी विद्या की देवी महालक्ष्मी है। ''इसकी निधियाँ पद्म, महापदम्, मकर, कच्छप, मुकुन्द, नन्द, नील और शंख हैं।'' स्कन्द पुराण में गन्धमादन पर्वत पर लक्ष्मी तीर्थ का वर्णन है। महालक्ष्मी तीर्थ में स्नान में पाण्डव युधिष्ठिर को प्रभूत धन मिला। इस तीर्थ में स्नान से कुबेर महापद्म स्वामी हुए। वामन पुराण में महालक्ष्मी की उत्पत्ति स्वायम्भुव मन्वतर में भृगु की दुहिता, स्वारोचिष मन्वन्तर में अग्नि, औत्तमस्य मन्वन्तर में जल, तामस मन्वन्तर में पृथ्वी, रैवत मन्वन्तर में विल्व, चाक्षुस मन्वन्तर में उत्फुल्ल कमल, वैवस्वत मन्वन्तर में समुद्र मंथन से हुई। इसी पुराण में महालक्ष्मी की प्रतिमा चतुर्भुजा बनाने को कहा है। वेद में सूर्य, पृथिवी आदि को चतुर्भुजा कहा गया है।

काश्मीर के नीलमत पुराण में ''आराध्य केशवं चापि तथा महालक्ष्मी चोदयात'' महालक्ष्मी केशव के साथ पूजित हैं। महालक्ष्मी कीर्ति, धृति, मेधा इत्यादि के साथ मिलती है: ''महालक्ष्मी कीर्ति धृतिर्मेधा तुष्टि श्रद्धा क्रियामति।'' काश्मीर में चैत्र शुक्ल पाँचमी को पूजा विधान है। नीलमत पुराण में कार्तिक अमावस्या के दिन दीपमाला का (दीपावली त्योहार) वर्णन मिलता है। पुराणों में श्री और महालक्ष्मी में कोई भेद नहीं दिखाया गया है। महाकवि कालिदास ने रघुवंश में श्री को धन समृद्धि का प्रतीक माना हैं। आचार्य विष्णु गुप्त कौटल्य चाणक्य के ''कौटल्य के अर्थशास्त्र'' में महालक्ष्मी पूजन में धान के लावे का अक्षत बनाकर, देवी पर मन्त्रों सहित चढ़ाने का विधान है। देवी को पानी, दूध, दही, घृत, शहद, चीनी मिश्रित पाँचामृत से स्नान करवाने और लाल वस्त्र पहनाने का विधान है। बाद में चंदन लगाते हैं और फूलों की माला, कमल का फूल चढ़ाते हैं। देवी समक्ष धूप, चंदन, मिष्ठान उपस्थित करते हैं और सोने चांदी के सिक्के रखते हैं। पूजन के समय घृत का अखण्ड दीपक जलाते हैं। अंत में महालक्ष्मी से प्रार्थना करते हैं। श्री सूक्त पाठ एवं हवन किया जाता है और श्री यंत्र की पूजा भी की जाती है। दिवाली से

पहले आर्यवर्त में महालक्ष्मी मेले और महालक्ष्मी व्रत का भी प्रचलन रहा। भाद्रपद शुक्ल अष्टमी से आश्विन कृष्ण अष्टमी महालक्ष्मी व्रत किया जाता है। मैक्सिको की प्राचीनतम माया संस्कृति में स्वस्ति्क बना पूर्ण घट रखने का चलन था। सूडान में प्रतिवर्ष स्वर्ग से आनेवाली देवी श्री है। जावा में महालक्ष्मी एवं श्री पूजन का प्रचलन रहा।।ऊँ।।

श्रीसूक्त–श्रीयन्त्र
महालक्ष्मी की अर्चना रहस्य
शरद पूर्णिमा को श्री साधना सर्वोत्तम

ऐश्वर्य, श्रेय, कल्याण, सुख समृद्धि, भौतिक धन धान्य का प्रतीक श्रीसूक्त एवं श्रीविद्या का श्रीयन्त्र चक्र है। इसीतरह भौतिक ऐश्वर्य की अधिष्ठात्री महादेवी भगवती महालक्ष्मी हैं। आर्ष ग्रन्थों, तन्त्र साहित्य के अनुसार श्रीसूक्त–श्रीयन्त्र चक्र की अधिष्ठात्री महालक्ष्मी महामाया महादेवी ललिता राजराजेश्वरी त्रिपुर सुन्दरी है। तन्त्र साहित्य में ''श्रीसूक्त–श्रीचक्रयन्त्र साधना और महालक्ष्मी की पूजा अर्चना शरद पूर्णिमा को करने का विधान है''। यह बात अलग हैं कि इसके विपरीत दीपावली को आमतौर पर अमावस्या को श्रीलक्ष्मी का पूजन प्रचलन में है।

''शरद पूर्णिमा वर्ष में एकबार ही आती है और इसी दिन चन्द्रमा सम्पूर्ण कला युक्त होता है। इसीलिए चन्द्रमा की सम्पूर्ण कलाओं में त्रिपुरसुन्दरी ललिता राजेश्वरी और उसी का रूप महालक्ष्मी पृथिवी लोक पर आती है।'' इसीलिये शरद पूर्णिमा को श्रीसूक्त पाठ एवं हवन किया जाता रहा। आदिशंकर की कालजयी रचना सौन्दर्य लहरी में श्रीविद्या की उपासना, विधि, मंत्र, श्रीचक्र एवं षटचक्रों से सम्बन्ध, षटचक्रों के वेधन रूपी ज्ञान का वर्णन है। शाक्तमत में समयी और काल आचार अन्तर मुखी,बहिर्पूजा में विभाजित हैं। श्रीषोडशी कला है। श्रीविद्या के प्रवर्तक बारह शिष्यों में महर्षि दुर्वासा प्रमुख हैं। उनके अलावा लोपामुद्रा (अगस्त्य

मुनि की पत्नी), मन्मथ कामदेव, अग्नि, इन्द्र, अगस्त्य, सूर्य, स्कन्द, कुबेर नन्दी आदि हैं।

श्रीचक्र रुद्र–शिव के चार त्रिकोण और शक्ति के पाँच त्रिकोण के मिलने पर नव प्रकृतिभूत इन त्रिकोणों से तैतालिस कोणोंवाला, अष्ट दल, वृतत्रय एवं भूपुर युक्त होता हैं। आदिशंकर की सौंदर्यलहरी के 41 श्लोक आनन्द लहरी और 59 श्लोको में महादेवी का नखशिख वर्णन है। सौंदर्यलहरी के प्रत्येक श्लोक के बीजाक्षर के अनुसार अद्भुत शक्ति सम्पन्न 100 तांत्रिक यंत्रों की रचना की जाती है। इन बीजाक्षर यंत्रों में सर्वार्थसिद्धि यंत्र, कालभय निवारण, दारिद्र निवारण, संकट निवारण, सम्मोहन, सन्तानप्राप्ति, शत्रु विजय, बन्दी विमोक्षण, पाँचमहाभूत जय, शरीर शुद्धिकरण, बन्ध्यात्व निवृत्यर्थ, कवित्व शक्ति प्राप्ति, सर्वजन वशीकरण, सकल राजराक्षसमृगस्त्रीवश्यता, विष ज्वर हरण, सकल जनविरोध नाशक, अभीष्ट सिद्धि, ऋण मोचन, भूतप्रेत निवारण, उच्चपद प्राप्ति, शत्रुजय, आत्मज्ञान, अपमृत्यु निवारक, सर्ववश्यकर, अष्टसिद्धिदायक, राज्यप्राप्ति, रसायन सिद्धि, भूरिधनद, विद्याबुद्धिप्रद, क्षय रोग निवारण, भीति निवारण, ब्रह्मराक्षसबाधाहरण, बलारिष्ट निवारक, बाधा निवारक, अभीष्ट महालक्ष्मी प्राप्ति, उदयपीडा शान्ति, महोदर व्याधिहरण, सर्वजनवशीकरण, कल्याणप्रद, वाकसिद्धि, गर्भधारण, सकल फलप्रद, नवग्रहशांति, निधिदर्शक, साध्य विद्वेषणकर, इष्टसिद्धिप्रद, कर्ण नेत्र विकार शांति, ज्ञान प्राप्ति, अधहर, अण्डरोगहर, वृष्टिप्रद, सकल सौभाग्य, साध्याकर्षण, सकलजन वशीकरण, विद्याप्राप्ति, ऐश्वर्य प्राप्ति, गम्भीर निन्द्रा पद,सम्मोहन, वाक सिद्धि,संगीत सिद्धि, स्त्रीवशीकरण, महालक्ष्मीप्रद, अपराध शांति, याक्षिणी वशीकरण, रात्रिभय निवारण, तुष्टिप्रद, कीर्ति दायक, वैराग्यकर, राजावश्यकर, सर्वसम्मोहन, स्त्म्भन, अग्नि स्त्म्भन, जल गमन सामर्थ्य, सिद्धिकर, सैन्य स्त्म्भन, परकाया प्रवेश, सौभाग्य प्राप्ति, सर्व मृग वशीकरण, सर्व रोग हर, क्षुद्रबाधाहरण, धन भूमि लाभकर, राज्यलाभकर, सकलाभीष्टासिद्धिकर, इष्टसाधक, सद्योव्रणविरोपण, दृढ़कायकर, गर्भधारण, शौर्यवर्द्धक, सकल कार्य सिद्धि आदि प्रमुख हैं। इनमें ''श्रीयंत्र'' सभी अभीष्ट वर देनेवाला है।

''श्रीसूक्त पाठ–हवन एवं श्रीयंत्र की पूजा शरद पूर्णमा को करना शुभकर है।'' वैसे लोक में दीपावली की महाश्यामा रात्रि को श्रीयंत्र की

पूजाकर उसकी शक्तियों को जाग्रत करने का प्रचलन है। श्रीसूक्तम् सबसे पहले गाया गया : ''ऊँ हिरण्यवर्णा हरिणीं सुवर्णरजतस्त्रजाम। चन्द्रां हिरण्यमयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आवह।'' हे अग्निदेव! आप सुवर्ण सदृश दीप्तिमती, हरिद वर्ण की स्वरूपा, हितकारी, कनक (सोने), रजत (चांदी) पुष्पों (अर्थात् सूर्य एवं चन्द्र की माला) (महाप्रकृतिरूपा) की माला को पहननेवाली चन्द्रमा के समान देदीप्यमान सुवर्णमयी महालक्ष्मी को मेरे लिए अभीष्ट सिद्धि के लिए आवाहित करें। छठे श्लोक में ''ऊँ आदित्य वर्णे तपसोऽधिजातो वनस्पतिस्त्व वृक्षोवथ विल्वः। तस्य फलानि तपसा पुदन्तु या अन्तराः याश्च ब्राह्य अलक्ष्मीः।। हे सूर्य के समान कान्तिवाली देवि! आपके नियमादि तपस्या से वनस्पति और हाथ से विल्व वृक्ष उत्पन्न हुआ। उस विल्व वृक्ष के फल और आपके अनुग्रह से मेरे बाहर और भीतर की ''अलक्ष्मीदूर'' हो। यहाँ स्मरण रहे कि वेद में शास्त्ा रुद्र वृक्ष–वन–वनस्पति के अधिपति हैं। अर्थात् रुद्र श्री प्रदाता हैं। श्रीसूक्त में महालक्ष्मी से दसवें श्लोक में प्रार्थना की गई कि आपके आशीर्वाद अशेष मनोरथ पूरे हों। मुझे वाणी की सत्यता और संतोष प्राप्त हो। पशुओं के रूप में दूध दही आदि अन्नों के रूप सभी भोज्य प्रद पदार्थ मिले। मैं महालक्ष्मी–कीर्तिवान यशस्वी बनूं।

श्रीयन्त्र और श्रीसूक्त के जप, अनुष्ठान और हवन आध्यामिक और सांसारिक ऐश्वर्य को देनेवाले हैं। श्रीयन्त्र और श्रीसूक्त को सिद्ध करने के लिए संस्कृत मंत्र और स्त्ोत्रों का सही पाठ विधिविधान से करना आवश्यक है। श्रीसूक्त के हवन और मंत्र भी विशेष महत्व रखते हैं। श्रीसूक्त के अंत कहा गया हैः ''जो मनुष्य श्री महालक्ष्मी की कामना करता है, वह पवित्र और सावधान चित्त होकर श्रीसूक्त के 29 मंत्रों का प्रतिदिन गायन करे। साथ ही 29 मंत्रवाले श्रीसूक्त का नित्य पाठ करे।''

''विद्वानों के अनुसार श्रीयन्त्र और श्रीसूक्त को शरद पूर्णिमा की रात को अभीष्ट वर सिद्धिदायक रूप देना सरल होता है।'' इस समय सौन्दर्य लहरी के 100 श्लाकों का पाठ सभी अभिलाषाओं और कामनाओं को फलीभूत कराता है। देवीसप्तशती में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि जैसे जैसे कामनायें करेंगे, वैसे वैसे पूरी होंगी। जयपुर के राजगुरु पण्डित श्रीविद्यानाथ ओझा के अनुसार महालक्ष्मी की कृपा प्राप्त करने का माध्यम श्रीविद्या है। श्रीविद्या का रहस्य सौन्दर्य लहरी के श्लोकों में रहस्यमय

तरीके से छिपा है। राजगुरु श्रीविद्यानाथ ओझा महादेवी राजराजेश्वरी त्रिपुर सुन्दरी ललिता को ही श्रीविद्या की देवी त्रिपुरसुन्दरी महालक्ष्मी बताते हैं। महादेवी ललिता सहत्रनाम का पाठ मंगलवार और शुक्रवार को महाशक्ति भवानी–दुर्गा एवं महालक्ष्मी के लिए किया जाता है। मूलतः मन्त्र और स्त्ोत्र पाठ से छिपी हुई दैविक शक्ति जाग्रत होती है। मन्त्र स्त्ोत्र पाठ में सबसे महत्पूर्ण यह है कि अन्तर–मुखी पाठ हो। ''नाथ सम्प्रदाय के अनुसार मन्त्र स्त्ोत्र पाठ के समय जिव्हा नहीं हिलनी चाहिए, होठ बंद रहें, कोई भी स्वर नहीं निकले और बिना श्वास चले जप हो। श्रीशिव संहिता में मन्त्र स्त्ोत्र के समय होठ बंद, दाँत भींचे हुए, जिव्हा तालू से लगी हो।'' इस विधि का सीधा सम्बन्ध मन्त्र–स्त्ोत्र पाठ के समय एकाग्रता से है।

विदुषी राजकन्या राजकन्या लोपामुद्रा ने अपने पति ऋषि अगस्त्य को श्रीविद्या की दीक्षा दी। इसकी उपासना में मन्त्र देवता की आत्मा एवं मन्त्र को देवता का शरीर माना जाता है। श्रीचक्र लिखने की भी निश्चित विधि है। कौल मत में प्रतिदिन एक ही नित्या की पूजा की जाती है। समयी मत में सभी का पूजन नित्य प्रतिदिन किया जाता है। सनत्कुमार संहिता में श्रीचक्र साधन–विधि का स्वरूप दिया गया है। त्रिपुर सुन्दरी की पाँचदशाक्षरी विद्या का उद्धार आदिशंकर ने सौन्दर्यलहरी के बत्तीसवें श्लोक में किया है। यह श्रीविद्या बहुत ही रहस्यमय है। सोम, सूर्य एवं अनलात्मक त्रिखण्ड मातृका मन्त्र हैं।

देवी को सर्वस्व माननेवाले शाक्त तंत्रों में श्रीसूक्त, श्रीविद्या, सौन्दर्यलहरी, श्रीयन्त्र, ललितासहत्रनाम, शारदा तिलकम, देवीसप्तशती, देवी रहस्य, देवी महामात्य, ईनाक्षीस्त्ोत्रम, महासरस्वती स्त्ोत्र, छिन्नामस्त्ा स्त्ोत्र, ललिता त्रिशती, आर्या द्विशती, त्रिपुरा रहस्य (चर्या खण्ड) आदि का सबसे अधिक महत्व है। महिषासुरमर्दनी स्त्ोत्र भी प्रचलन में है। आदिशंकर ने सौन्दर्यलहरी के पहले श्लोक में ''शिवः शक्तया युक्तो यदि भवति शक्त प्रभवितुं न चेदेवं देवो न खलु कुशल स्पन्दितुमपि'' अर्थात् हे प्रभु! हे विश्व नायक आप सदा शक्तिमय ही हैं। यदि आप शक्तिरहित होते तो इकार रहित शिव शववत होता और विश्व क्रिया का स्पन्दन कहाँ और किस प्रकार होता लिखा। आदिशंकर ने शिव में शक्ति को समन्वित माना। आदिशंकर ने शव को शिव, शिव को शव कहाँ बनारस में

मणिकर्णिका घाट पर आदिशंकर को महादेव साम्ब सदाशिव और त्रिपुर सुन्दरी महादेवी पार्वती के साक्षात दर्शन हुआ। उन्होंने मणिकर्णिका घाट पर महादेवी पार्वती के दर्शन के बाद सौन्दर्य लहरी की रचना की। इसके विनियोग में ललिता महात्रिपुर सुन्दरी का उल्लेख है। इसके ध्यान में त्रिपुरा को नमस्कार किया गया है। सौन्दर्यलहरी पाठ में पृथिवी, आकाश, वायु, जल, अग्नि के पाँच बीजाक्षरों को गन्ध, पुष्प, धूप, दीपक, नैवेद्य अर्पित कर पूजा की गई है। ये बीजाक्षर ल, ह, य, र, व हैं। ''सारसंक्षेप में शरद पूर्णिमा को श्री को प्रसन्न करने–सिद्धि का सुअवसर है।'' ।।ऊँ।।

ऐश्वर्यदायिनी ''श्रीविद्या'' की सहज प्राप्ति का मूलमंत्र

नौ त्रिकोणों के मध्य शक्ति बीज ''बिन्दु'' अथवा विन्दु में समस्त् ऐश्वर्यप्रदायिनी 'श्रीविद्या' की सहज साधना का विधान है। श्रीविद्या भौतिक, अध्यात्मिक, दैविक तीनों प्रकार के ऐश्वर्य को देनेवाली श्रीत्रिपुरामहासुन्दरी राजराजेश्वरी है।

श्रीत्रिपुरामहासुन्दरी राजराजेश्वरी कामेश्वरी महालक्ष्मी श्रीविद्या के विगत शती के महासाधकों में ज्योतिष्पीठ के तत्कालीन जगदगुरु शंकराचार्य स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती के अलावा श्री टी.वी.कपाली शास्त्री ने श्रीविद्या के गोपनीय रहस्य को प्रकट करने का सराहनीय कार्य किया।

यह उल्लेखनीय है कि श्रीविद्या के गुप्त से गुप्त ज्ञान से साक्षात्कार ''त्रिपुरा रहस्य'' तांत्रिक ग्रन्थ कराता है। यह त्रासदी है कि त्रिपुरा रहस्य का तीसरा और अंतिम लगभग 3506 श्लोकों वाला 'चर्या खण्ड' विस्मृति के गर्भ में है। त्रिपुरा रहस्य के चर्याखण्ड की पाण्डुलिपि बडौदा ओरियन्टल इन्स्टीट्यूट, भण्डारकर आरियेन्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, आनन्द आश्रम, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, अडियार, स्वाध्याय मण्डल और चारों शंकराचार्य मठों में उपलब्ध नहीं है ? गवेषणा से मात्र

लगभग 500–700 श्लोक के चर्याखण्ड की पाण्डुलिपि प्राप्त हुई। चर्याखण्ड की दुर्लभ पाण्डुलिपि का सम्पादन डॉ. शीतला प्रसाद उपाध्याय हिन्दी अनुवाद ज्योतिष्पीठ शंकराचार्य मठ के आचार्य पण्डित रविशंकर द्विवेदी शास्त्री ने किया।

इससे पहले महर्षि रमण, श्री गणपतिमुनि से श्रीविद्या के शक्तिपात सम्पन्न श्री टी.वी. कपाली शास्त्री ने ''श्रीविद्या के मूल तत्त्व'' को 'महामनुस्त्व' में रहस्योद्‌घाटन किया। श्री कपाली शास्त्री ने श्रीत्रिपुरसुन्दरी को 'आदिपुरेश्वरमहिषी' के नाम से सम्बोधित किया है। श्रीविद्या साधना में हादी (यानी महर्षि अगस्त्य पद्धत्ति) और कादी (मन्मथ कामदेव द्वारा प्रतिपादित) विधिमंत्रों क्रमशः ''ह स क ल ह्रीं ह स क ह ल ह्रीं स क ल ह्रीं'' और '' क ए ई ल ह्रीं ह स क ल ह्रीं स क ल ह्रीं'' की साधना के मार्ग का द्वार खोला है। श्रीसौभाग्यविद्या का मंत्र ''ऐं क ए ई ल ह्रीं क्लीं ह स क ह ल ह्रीं सौः स क ल ह्रीं'' है। साधक पाँचदसी दोनों मंत्रों से सौभाग्यसुन्दरी की साधना करते हैं। महर्षि अगस्त्य और मन्मथ दोनों के मंत्रों में तीन बार ' ह्रीं' का प्रयोग त्रिक पर आधारित है। सृष्टि के मूल में सत्, रज और तम तीन तत्त्व माने गऐ हैं। श्रीविद्या के यंत्र के त्रिकोण के कूट में ह्रीं अवस्थित है। यहाँ श्रीविद्या के कामेश्वर एवं कामकला कामेश्वरी से ह्रीं का सम्बन्ध समझना आवश्यक है।

एकाक्षरनामकोषसंग्रह मातृकाओं के गोपन रहस्य अर्थात् शक्ति एवं प्रभाव को उजागर करता है। बीजाक्षर ''र'' अग्नि या सूर्य का बीज है। श्री कपाली शास्त्री ह्रीं को तन्त्र (यहाँ तन्त्र शब्द का अर्थ है–तकनीकी, विधि, क्रिया, पद्धत्ति से लें।) में प्रणब ऊँ के समान ही मानते हैं। वेदीक मंत्रों में ओम–ऊँ का महत्व है और तन्त्र में ह्रीं का। यह माया का भी सूचक है। श्रीविद्या में ह्रीं दस महाविद्या की भुवनेश्वरी का मंत्र है। यह एक अक्षर का मंत्र त्रिभुवन तीन लोकों की स्वामिनी का त्रिलोक में आवागमन संचालन को बताया है। श्रीललिता सहस्त्रनाम में इसका उल्लेख है। यह लज्जा बीज भी कहा गया है। यह संकोच के आवरण में है। इसके सम्पूर्ण शक्ति के साथ प्रकटीकरण में दिव्य माता ही समर्थ है। श्रीविद्या में दिव्य माता को जगत में कामकला (कामेश्वरी) के रूप रचनाकार स्वीकारा गया है। अतः ह्रीं के स्पन्दन से नाद हुआ। यही बिन्दु में नाद अनन्त ब्रह्माण्डों की रचना का कारण बना। अतः ह्रीं

जगत माता का दिव्य प्रसाद है। श्रीयंत्र के मंत्र में तीन ह्रीं परमात्मा आत्मा एवं जगत तीनों के ज्ञान से सम्बन्धित है। जगत को जानने का दावा या सृष्टि के रहस्य समझने का दावा भ्रम एवं अज्ञान है। त्रिकोण में प्रथम ह्रीं अज्ञान पर विजय एवं सत्य ज्ञान साधना, द्वितीय ह्रीं जगत, आत्मा, परमात्मा के ज्ञान और तीसरे कूट का ह्रीं सकल ज्ञान को प्रदर्शित करता है।

दिव्य माता समयानुसार नित्य रूपान्तरित करती है। चन्द्रकलाओं के अनुरूप 15 दिन 'नित्या' जगतजननी और 16 वें दिन 'षोडषी' होती है। यही क्रम जप का होना चाहिए। यह भी समझना आवश्यक है कि देवी का स्पन्दन शरीर मंत्र से जुड़ा रहता है। जिससे जगतजननी स्वयं भी मार्गदर्शन करती है, किन्तु यह सौभाग्य विरले ही प्राप्त होता है। सदगुरु से मिलन भी अपवाद स्वरूप होता है। सिद्ध गुरु मंत्र की शक्ति–तेज–ब्रह्म विद्या के लिए योग्य शिष्य ढूंढता है। श्रीविद्या की त्रिपुरसुन्दरी को रक्तवर्ण और उदित होते कोटि करोड़ों सूर्यों की आभावान कहा गया है। रक्त वर्ण ज्ञान एवं प्रकाश का प्रतीक है। त्रिपुरसुन्दरी के हाथ में इच्छवाकु गन्ना मनस और पाँच बाण पाँच तन्मात्राओं को प्रदर्शित करता है। उनका निवास श्रीचक्र में है। वे सभी त्रिकोणों के मध्य बिन्दु स्थित है। जगत्माता ललिता त्रिपुरसुन्दरी महादेव शिव की नाभि से प्रकट कमल के फूल पर बैठी हैं और ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर कंधा दे रहे हैं। यह सृष्टि, संहार और पालन का परिचायक है।

श्रीविद्या का साधक सौन्दर्य और गरिमासम्पन्न होना आवश्यक है। श्रीललिता को प्रेम, सौन्दर्य, गरिमा, शुचिता पसंद है। श्रीसाधना में हमेशा प्रसन्नचित्त रहना, ऐश्वर्यपूर्ण सुरूचिसम्पन्न पोशाक और सुगन्धित रहना प्राथमिक शर्त है। सुवासिनी पूजा का महत्वपूर्ण स्थान है। जप के समय साधक त्रिपुरमहासुन्दरी में सम्पूर्ण समर्पण एवं अटूट आस्था रखे। मंत्र जप के समय मन चित्त को विषयान्तर केन्द्रीकरण से विचलन के लिए श्रीराजराजेश्वरी का चित्र या प्रतिमा भी आवश्यक है। इससे श्रीविद्या की श्रीललिता का भाव उत्पन्न होता है।

मूलमंत्र का जप अथवा ब्रह्मरंध्र हृदय में करना होता है। साधक को अधर बंदकर, जिव्हा को तालू में लगाकर बिना श्वांस लिए हृदय

पटल, आज्ञा चक्र अथवा सहस्त्रार (ब्रह्मरंध्र) में मंत्र पाठ सिद्धि देता है। मंत्रोच्चारण के समय मन को विषय भोग के विचारों से शुद्ध रखना चाहिए। यह भी जानलें कि बाह्याचार पूजा भी एक स्त्र्र पर आवश्यक है। यह स्व के भाव में या अन्तर्मुखी पूजा की पहली सीढ़ि है।

नवावर्णा पूजा श्रीचक्र के नौ आवरणों के रहस्य को उजागर करती है। इन नौ आवरणों को पार करके ही बिन्दु स्थित त्रिपुरमहासुन्दरी तक पहुंचते हैं। वेदीक ऋषियों ने भी बिन्दु ह्दय में मंत्र को विराजमान किया। दिव्य माता के पास बैठकर साधना ही उपासना है। ह्दय में मंत्र पाठ से साधक के अज्ञान के सभी पर्दे स्वयं हटने लगते हैं। माया अविद्या साधक को मोहने में असफल होकर भाग छूटती है। यहाँ विद्या का अर्थ ब्रह्मज्ञान एवं अविद्या का सांसारिक भौतिक विद्या से है। जप स्वतः नाद से सम्बद्ध होकर अनन्त सत्ता से जोड़कर श्री प्राप्त करवाता है।।ऊँ।।

त्रेता से श्रृंगगिरि पर त्रिशक्ति शारदा श्रीचक्र चमत्कार

पश्चिमी घाट पर ऋष्यश्रृंग गिरि पर मलहानिकरेश्वर महादेव, बारह राशियोंवाले विद्याशंकर और श्रीचक्र पर शक्तिस्वरूपा माता शारदा का मंदिर त्रेता से कलियुग की महायात्रा करवाते हैं। पवित्र तुंग नदी और ऋष्यश्रृंग के क्षेत्र में श्रीआदिशंकर ने ज्ञान पीठ की स्थापना की। त्रेतायुग काल का साक्षी ॠृष्य श्रृंग पर्वत क्षेत्र में किग्गा का मलकानिकरेश्वर महादेव का मंदिर है। इस मंदिर के शिवलिंग की विशेषता यह है कि इस पर उभरा हुआ सींग दिखाई देता है। श्याम शिव लिंग में अयोध्या के राजा दशरथ के पुत्र कामेष्टि यज्ञ करवानेवाले महर्षि श्रृंगी ॠृषि समा गए थे।

पौराणिक आख्यानों के अनुसार त्रेता काल में महासाधक विभंड़क–तिझंड़क और हिरूण रूपधारी शापित देवकन्या से सुंदर बालक का जन्म हुआ। हिरणी माता के कारण बालक के ललाट पर लघु, सुंदर सींग था। इसी के कारण उनका नाम श्रृंगी कहलाया। वर्षो विभंड़क और

श्रृंगी तुंगा नदी के पर्वतों को वन में साधना करते रहे। तभी रामपाद के राज्य में 12 वर्षों तक सूखा पड़ा। राजा रामपद ने श्रृंगी ऋषि को राजा दशरथ के पुत्रकामेष्टि यज्ञ करवाने भेजा। श्रृंगी ऋृषि के यज्ञ की कृपा से भगवान् विष्णु के अवतार राम सहित भरत, लक्ष्मण और शत्रुघन का जन्म हुआ। वे पुनः तुंग नदी के वनों में लौटे और महादेव शिव के नीलकठ स्वरूप की पूजा–अर्चना में लग गए। पुराणों के अनुसार अंत में श्रृंगी ऋषि मलहानिकश्वेर महादेव के काले शिव लिंग में जा मिले। उनके पिता ऋषि विभंड़क ने भी स्थूल देह को इसी शिव लिंग में सूक्ष्म रूप में आत्मसात किया। भगवान् राम के युग से आज तक यह शिव लिंग अध्यात्मिक स्वरूप बनाये है।

ईसा से 509 वर्ष आदिशंकराचार्य ने सनातन धर्म की पुनः स्थापना का महायज्ञ प्रारम्भ किया। कलियुग में ईसा पूर्व ऋष्यश्रृंग पर्वत माला को धार्मिक–अध्यात्मिक ज्ञान के प्रसार के लिए शंकराचार्यजी ने चुना। शंकराचार्य और उनके चार उत्तराधिकारियों में से एक श्री सुरेश्वर वर्षों श्रृंग ऋषि की तपोस्थली में रहे। शंकराचार्य महाराज ने लगभग 2500 वर्ष पहले तुंग नदी के बायें तट पर श्रीचक्र तक्षित किया। ईश्वरी–सरस्वती–लक्ष्मी की त्रिमूर्ति की अधिष्ठात्री महादेवी के मंदिर पर प्रारम्भ में घास–फूस के मण्डप का था। श्रृंगेरी की अशुभ शक्तियों से रक्षा के चारों दिशाओं की पहाड़ियों के शिखर पर महाकाल भैरव मंदिर, काली मंदिर, दुर्गा मंदिर और हनुमान आंजनेय मंदिर की स्थापना की। वर्तमान में भी चारों महाकाल भैरव, दुर्गा, काली और आंजनेय हनुमान के प्रतिमाओं की विधिवत पूजा की जा रही है। शंकराचार्यजी माता शारदा की पीठ को दक्षिण में सनातन धर्म के प्रचार और धर्म शासन का उत्तरदायित्व दे गए। उन्होंने यहाँ भगवान् विश्वेश्वर से मिला स्फटिक का लघु चन्द्रमौलीश्वर शिवलिंग भी स्मृति के रूप में छोड़ा। बारह सौ वर्ष पुराना ही रत्नगर्भा गणपति विशिष्ठ है। इन लघु बिल्लोरी घन के गणेशजी में रत्न जड़ा है। दोनों की नित्य ही पूजा का विधान है।

वर्तमान में श्रृंगेरी में शारदा माता की सोने की भव्य और मनोहारी मूरत है। चौदहवीं शताब्दी में तत्कालीन शंकराचार्य विद्यारण्य ने नौवीं शती के शारदा मंदिर का जीर्णोद्धार करवाया। विद्यारण्यजी ने गुरुरूपा शारदा की स्वर्ण की सुंदर प्रतिमा को जादुई विश्वकर्माओं से

ढ़लवाया। परमशक्ति की प्रतीक शारदा के एक हाथ में अमृत कलश है और दूसरे हाथ में ज्ञान एवं वेद की परिचायिका है। देवी के तीसरे हाथ में ब्रह्म को जन्म देनेवाली सृष्टि की बीजमूलक माला और चौथे हाथ में जीव तथा ब्रह्म को एक करनेवाली चिन्मुद्रा है। श्री शारदा ब्रह्मविद्या और सभी अध्यात्मिक ज्ञानों की जननी है। उनकी पूजा ''ललिता सहस्त्रनाम'' से की जाती है। शंकराचार्यजी ने शारदा को शक्ति और सृजनकर्ता शिव दोनों का स्वरूप माना। इस शारदा मंदिर में तेतीसवें शंकराचार्य सच्चिदानंद शिवाभिनवानंद नरसिम्हा भारती और चौंतीसवें शंकराचार्य चन्द्रशेखर भारती तृतीय ने नया रूपाकार दिया।

सन् 1346 में होयसला शैली–द्रविड वास्तुकला का विद्याशंकर मंदिर में संगतराशओं शिल्पकारों विश्वकर्माओं ने उत्कृष्ट तक्षण कला का परिचय दिया है। मंदिर के चारों तरफ देवी देवताओं की बलुआ पत्थर की प्रतिमाओं के जीवन्त स्त्म्भ हैं। विद्याशंकर मंदिर गर्भगृह और मुख्यकक्ष में 12 राशियों को प्रदर्शित करते अदभुत 12 स्त्म्भ हैं। सात सौ वर्ष पहले के मूर्तिकार विश्वकर्माओं की कला से प्रत्येक स्त्म्भ पर भगवान् सूर्य की किरणें एक–एक माह बारी बारी से पड़ती हैं। पुरानी श्रृंगेरी अर्थात् सिम्हगिरि के नाम से प्रसिद्ध इस मंदिर में चतुर्मुखी–ईश्वर, ब्रह्मा, विष्णु एवं विद्यातीर्थ–भारतीतीर्थ–विद्यारण्य की प्रतिमायें हैं। इस पर लक्ष्मी नरसिम्ह की प्रतिमा और शीर्ष पर काला शिव लिंग है।

श्रीविद्यातीर्थ ने लम्बिका योग से 12 वर्ष तक एकान्त साधना करने के लिए प्रतिमाओं के खोल को चुना। लेकिन बीच में ही कक्ष खोलने से श्रीविद्यातीर्थ अदृश्य हो गए। इस कक्ष के ऊपर विद्याशंकर लिंग की स्थापना की गई। यह मान्यता है कि महायोगी लम्बिका आज भी विचरण कर रहे हैं। आधी रात में विद्याशंकर मंदिर में घण्टियों और मंत्रोचारण की आवाज सुनायी देती है। मलहानिकरेश्वर महादेव मंदिर के स्त्म्भ पर गणेशजी की उकेरी प्रतिमा और पीछे खाली खम्भ चौंकाता है। शंकराचार्य सच्चिदानंद भारती को मलहानिकरेश्वर महादेव में गणपति की मूर्ति नहीं होना अखरा। उन्होंने गणेशजी की उकेरी प्रतिमा खंचित की। श्रृंगेरी में भगवान् विष्णु के जनार्दन रूप का मंदिर भी अद्वितीय है। जनार्दन मंदिर में भगवान् गरूड़ और हनुमानजी की प्राचीन कला की मूर्तियाँ हैं। सिंहगिरी में चतुर्विधेश्वर मंदिर है। किग्गा के मंदिर के पाषाण

फलक पर राजा रामपद द्वारा श्रृंगी ऋर्षि को पालकी में राजधानी ले जाने की सुंदर कलाकृति है। फलक में शिल्पकारों ने अपने तक्षण से श्रृंगी ऋषि के तेजस का दर्शाया है। फलक पर श्रृंगी की हिरणी माता के प्रतिनिधि के रूप में हिरण दिखाये गए हैं।

शारदापीठ की स्थापना आचार्यशंकर ने ढ़ाई हजार वर्ष पहले की। पीठ के प्रथम आचार्य श्रीसुरेश्वर को नियुक्त किया। पीठ में प्राचीन काल की दुर्लभ पाण्डुलिपियां, भोजपत्र आदि संग्रहित हैं। विजयनगरम साम्राज्य से टीपू सुलतान और मैसूर के महाराजा त्रिशक्ति शारदा के अनन्य पुजारी रहे। चौदहवीं शती के शंकराचार्य विद्यारण्य ने हरिहर और बुक्का विजयनगर साम्राज्य स्थापना में योगदान दिया। श्रृंगेरी शारदा पीठ के बीसवीं–इक्कीसवीं शताब्दी के शंकराचार्यों में सर्वश्री सच्चिदानंद शिवाभिनव नरसिम्ह भारती, चन्द्रशेखर भारती (तृतीय), अभिनव विद्यातीर्थ और (वर्तमान) स्वामी भारती तीर्थ हैं। शंकराचार्य स्वामी भारती तीर्थ का सन्यास से पहले नाम सीताराम अंजनेयेलू नाम था, वे तेलुगू हैं। उनके सानिध्य में वेदीक सम्मेलन भी हुआ। स्वामी भारती तीर्थ ने अपने उत्तराधिकारी का पट्टाभिषेक किया है।

तुंग नदी तट का सिंहगिरि अथवा श्रृंगेरी पर्वत त्रेता, द्वापर से कलयुग तक ''अध्यात्मिक ज्ञान, ऋषियों, मंदिरों और सृष्टि के रचयिता–पालक–संहारक तीनों शक्तियों'' का केन्द्र रहा है। श्रीशंकर भगवत्पद ने यहॉ काले कोबरा सर्प को गृभवति मेंढ़की की रक्षा करते देखकर ''शारदा माता–श्रीचक्र'' के लिए चुना। त्रिशक्ति शारदा की मूल प्रतिमा और श्रृंगी ऋषि द्वारा पूजित शिवलिंग असाधारण रूप से चमत्कारिक शक्ति सम्पन्न है। श्रृंगेरी का श्रीचक्र भुक्ति–मुक्ति देनेवाला है। गणेश चतुर्थी पर यहाँ शास्त्रों की विभिन्न धाराओं पर विचार के लिए विद्वत सभा बैठती है। जिसमें शास्त्र सम्बंधित विवाद और प्रश्नों का समाधान किया जाता है। श्रीशारदा मंदिर का महाकुम्भाभिषेक बहुत ही दर्शनीय एवं भव्य होता है।।ऊँ।।

नवग्रह के बीजाक्षर
मंत्र जप का चमत्कारिक रहस्य!

सौर मण्डल के प्रमुख नवग्रहों के प्रभाव, दुष्प्रभाव को वैज्ञानिक भी स्वीकारते हैं। वैज्ञानिकों ने शोध अनुसंधान के बाद स्वीकारा कि वेदीक, वेद पूर्व ऋषियों के मंत्रपाठ गूंजन आकाश में विद्यमान हैं।

नवग्रहों का चमत्कारिक प्रभाव और उनकी दिव्य स्तुतियों का सीधा सम्बन्ध अक्षर की पराभौतिक शक्तियों से हैं। नवग्रहों के मंत्र जप से सकारात्मक आभा मण्डल निर्मित होता है। साथ ही नकारात्मक ऊर्जा का समापन होता हैं। एकाक्षरनामकोषसंग्रह में यकार को वायु बीज, रेफं को अग्निबीज, वकार को वरुण बीज, लकारं को पृथ्वी बीज, हकार को धूम्र बीज माना गया है। दूसरे शब्दों में य र ल व ह पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश, वायु पाँच महाभूतों के साक्षात स्वरूप हैं। नवग्रह मण्डल में सूर्यदेव प्रत्यक्ष देवता हैं। सूर्य को जगत की आत्मा कहा गया है। समुद्र को एक चुल्लु में पीनेवाले महर्षि अगस्त्य ने मर्यादा पुरूषोत्तम राम को लंकेश्वर दशानन रावण के संहार के लिए श्रीआदित्यहृदय में सौर मण्डल, सृष्टि रहस्य का ज्ञान दिया। श्रीआदित्यहृदय से राम ने रावण का संहार किया। द्वापर में योगीराज कृष्ण ने पाण्डवों को श्रीआदित्यहृदयम् महामंत्र दिया। त्रेता से कलयुग तक श्रीसूर्यदेव के आदित्यहृदयम को रण में विजय, स्वास्थ एवं मंगल का स्त्रोत्र माना गया है। कलयुग में श्रीआदित्यहृदयम के तीन पाठ करना या पाठ सुनना कल्याणकारी है।

सूर्यदेव नवग्रहों के राजा एवं प्रमुख देव हैं। सूर्यदेव का बीजाक्षर मंत्र 'ऊँ ह्रां ह्रीं ह्रौं सः सूर्याय नमः है।' इसके 7000 जप और दशांश होम का विधान है। वैसे श्रीसूर्यमहाराज को प्रसन्न करने का सरल उपाय गेहूं का चुग्गा और गुड़ के पुए दान देना है। सूर्य या यंत्र अनार की कलम से लाल चन्दन की स्याही से भोजपत्र पर लिखा जाता है। तन्त्रों में ऊँ घृणिः सूर्याय नमः के 28000 मंत्र पाठ का विधान है। सूर्य अथर्वशीर्ष, सूर्य उपनिषद्, अरूण उपनिषद, सविता उपनिषद, सूर्य गीता, सूर्यसहस्त्रनाम, सूर्यस्त्वराज, सूर्याष्टक आदि पाठ भी अत्यन्त लाभदायक है। चन्द्रदेव को मन का स्वामी माना गया है। पूर्णमासी या पूनम को विश्व के समुद्रों में ज्वार उठता है। पूनम को ही सबसे अधिक आत्महत्यायें और पागलपन के दौरे पड़ते । शुभ कार्यों के लिए श्रीचन्द्रदेव की स्थिति देखी जाती

है। चन्द्रदेव के मित्र सूर्य और बुधदेव हैं। चन्द्रमा का बीजाक्षर मंत्र ऊँ श्रां श्रीं श्रौं सः चन्द्रमसे नमः है। इसके 11000 से 44000 जप करने से चन्द्रदेव प्रसन्न होते हैं। वैसे दूसरे तन्त्रों में ऊँ सों सोमाय नमः और ऊँ ऐं क्लीं सोमाय नमः मंत्र भी मिलते हैं। चन्द्रदेव का चन्द्राष्टाविंशतिनाम स्तोत्रम, चन्द्रकवच, चन्द्रस्तोत्र आदि भी दिव्य शक्ति सम्पन्न हैं।

मंगलदेव को पृथ्वीपुत्र और देवताओं का सेनापति स्वीकारा गया है। मंगल देव उग्र, क्रूर होने के साथ पराक्रम के स्वामी हैं। किसी भी व्यक्ति के वैवाहिक जीवन में मंगल की निर्णायक भूमिका है। मंगल का बीजाक्षर मंत्र ऊँ क्रां क्रीं क्रौं सः भौमाय नमः का 10000 अथवा 40000 जप भौमदेव की अनुकूल कृपा करवाता है। भौम का दूसरा मंत्र ऊँ भौमाय नमः, ऊँ अं अंगारकाय नमः, ऊँ ह्रूँ श्रीं भौमाय नमः है। मंगल स्तोत्र, मंगल अष्टोत्तरशतनामावलि, मंगल कवच फलदायक हैं। चन्द्रदेव के पुत्र बुधदेव व्यक्तित्त्व के स्वामी हैं। बुधदेव के मित्र सूर्य, शुक्र, राहु हैं। बुध की कृपा के लिए अष्टोत्तरशतनाम, बुध कवच, पाँचविशतिनाम स्तोत्र, बुध यन्त्र चमत्कारी सिद्ध होते हैं। बुध के ऊँ ब्रां ब्रीं ब्रौं सः बुधाय नमः के 9000 जप, 36000 पाठ और 21500 पाठ का विधान है। जातक हरे रंग के कपड़े पहनकर, दान देकर बुध को प्रसन्न कर सकता है। देवताओं के गुरु बृहस्पति सदज्ञान के स्वामी हैं। बृहस्पति की कृपावान सुन्दर होते हैं। नीचस्थ का बुध गुरु बृहस्पति विदेश में रहने का योग बनाता है। बृहस्पति को प्रसन्न करने के लिए पीले रंग के वस्त्र पहनना, पीले कपड़ों का दान, कक्ष का पीला रंग, पीला बिछौना और गुरुओं—माता पिता का सम्मान आसान उपाय है। बृहस्पति का बीज मंत्र ऊँ ग्रां ग्रीं ग्रौं सः गुरवे नमः, ऊँ बृं बृहस्पतये नमः का 19000, 76000 जप का वर्णन मिलता है। बृहस्पति अष्टोत्तरशतनाम, गुरु कवच, बृहस्पतिस्तोत्र, बृहस्पति गायत्री सौभाग्यदायक है।

भृगुदेव महर्षि के सुपुत्र शुक्र राजसी स्वभाव या ऐश्वर्यदायक है। उच्चस्थ शुक्र तन्त्र मन्त्र, ज्योतिष का ज्ञाता बनाता है। शुक्रदेव संजीवनी विद्या के ज्ञाता हैं। इनके मित्र न्यायप्रिय शनि और बुध हैं। शुक्र के बीजाक्षर मंत्र ऊँ द्रां द्रीं द्रौं सः शुक्राय नमः के 16000 जप से अनुकूल कृपा होती है। ऊँ शुं शुक्राय नमः, ऊँ ह्रीं श्रीं शुक्राय नमः मन्त्र चमत्कारी हैं। शुक्र अष्टोत्तर शतनाम, शुक्र यन्त्र, शुक्रकवच, शुक्र स्तोत्रम असम्भव

को सम्भव बनाते हैं। सूर्यदेव के पुत्र शनिदेव न्याय और आम जन के आराध्य देव हैं। शनिदेव ही सन्यास और राजसत्ता दिलवाता है। छठे भाव का शनि शत्रुओं के लिए काल है। शनिदेव की दशा जातक को जीवन की वास्त्विकता से साक्षात्कार करवाती है। शनि के लिए सदाशिव नीलकण्ठ महादेव, हनुमानजी की उपासना सर्वोत्तम हैं। शनि कल्पना की उड़ान करनेवालों को दण्डित करता है। शमी वृक्ष में सरसों का तेल चढ़ाना—दीपक जलाना फलदायक माना गया है। साथ ही उडद की इमरती भी गाय माता को खिलाने से कष्ट कम होते हैं। शनिदेव को ऊँ प्रां प्रीं प्रौं सः शनये नमः के 23000 जप अथवा ऊँ शं शनिश्चराय नमः के 92000 जप से प्रसन्न किया जाता है। शनियन्त्र, अष्टोत्तरशतनाम, शनिव्रत, शनि सहस्त्रनाम, शनि स्त्ोत्र, शनि कवच दिव्य शक्तिवान हैं। काले घोड़े की नाल का छल्ला धारण शुभ रहता है।

छायाग्रह राहु चाण्डाल ग्रह क्रूर माना गया है। राहु मतिभ्रम पैदा करता है और अचानक लाभ देता है। राहु का बीज मंत्र ऊँ भ्रां भ्रीं भौं सः राहुवे नमः, ऊ सं राहुवे नमः के 18000 से 72000 जप ग्रह शान्ति करते हैं। जैमिनी गोत्र का केतु ग्रह आध्यात्म अचानक लाभ देनेवाला है। केतु का बीजाक्षर मंत्र ऊँ स्रां स्रीं स्रौं सः केतुवे नमः, ऊँ कं केतुवे नमः के न्यूनतम 17000 जप पाठ करने से ग्रह शान्ति होती है। राहु, केतु के यन्त्र, अष्टोत्तर स्त्ोत्र, केतु पाँचविंशतिनाम स्त्ोत्र, केतु—राहु कवच कष्ट निवारक हैं। यामल तन्त्र में नवग्रह स्त्ोत्र, नवग्रह कवच को सर्वशक्तिमान माना है। ऊँ

प्राचीन काल से अर्वाचीन चमत्कारिक संध्योपासना

प्राचीन काल से वर्तमान में प्रचलित संध्योपासना सकारात्मक ऊर्जा शक्ति के साथ चमत्कारिक है। संध्या उपासना के मंत्रों के सही उच्चारण' से दैविक नाद स्वर की चमत्कारिक ऊर्जा का प्रचण्ड प्रवाह

उमड़ने लगता है। वेदीक भाष्यकार पण्डित श्रीपाद दामोदर सातवलेकर संध्या को 'ध्यान योग' मानते हैं। जिसमें मन में विशिष्ट भावना स्थिर करते रहने पर ही ध्यान योग सिद्ध होता है।

संध्या उपासना के समय उच्चारित (बोले गए, पाठ किये गए) मंत्रों की व्याख्या और अर्थ जानने से पाठ का अधिक लाभ मिलता है। वैसे देवभाषा संस्कृत के मंत्रों के निरन्तर या लगातार पाठ से वे स्वयं अर्थ सम्प्रेषित करने लगते हैं। यह वेदीक परम्परा है कि संध्योपासना में साधक निर्गुण निराकार परब्रह्म की निष्काम अर्चना करता है। संध्या के संकल्प में कहा जाता हैः ''अहं ममोपात्तदुरितक्षयद्वारा श्रीपरमेश्वर प्रीत्यर्थ संध्योपासनाकरिष्ये।'' मैं अपने पाप नष्ट करने और ईश्वर की प्रसन्नता के लिए संध्योपासना कर रहा हूँ। वेदीक संध्या में धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की प्रार्थना नहीं की गई है। संध्योपासना के समय भूमि शुद्धि का विशेष महत्व है। साधक सभी पवित्र नदियों को भी आह्वान करने को स्वतन्त्र है। इनमें वेदीक रहस्यमय मिथकीय नदी देवी सरस्वती है। वेदीक सरस्वती ज्ञान की देवी है। इसे भौतिक सरस्वती (वर्तमान में विलुप्त) नदी समझना भूल है। उपासना में आसन का विशेष महत्व है। परन्तु साम्ब सदाशिव शिवगीता में अयोध्या के राजा दशरथ पुत्र श्री रामचन्द्र को कहते हैं कि जिस आसन में, जिस स्थल पर चित्त और मन को शान्ति मिले, वहीं उपासना करें। अतः आसन का महत्व मन की भावना और एकाग्रता के सामने कहीं नहीं टिकता है। ह्रदय में दैविक भावना होने पर मंत्र का देव साक्षात प्रकट होता है। उस समय शरीर देवमय, दैविक शक्तियों से सम्पन्न हो जाता है। आम तौर पर एक ही स्थान पर बैठकर संध्योपासना से वह स्थल सकारात्मक ऊर्जावान या सिद्ध हो जाता है।

इस उपासना में वैष्णव, शाक्त, शैव, गाणपत्य, सौर अलग—अलग तरह की मालाओं—रुद्राक्ष, तुलसी, श्वेतचन्दन, स्फटिक, कमल गट्टे, नीम, मूंगे, हल्दी आदि के मणकों का उपयोग करते हैं। यह आवश्यक है कि शैव रक्त चन्दन अथवा अष्टगंध चन्दन का उपयोग करें। वैष्णव श्वेत चन्दन, केसर, गोपीचन्दन, अष्टगंध आदि काम में लें तो अधिक अच्छा है। सामान्यतः शाक्त समुदाय में रक्त चन्दन, लाल कुमकुम (असली) काम में लेने का चलन है। उपासना में दीपक और

सुगन्धित अगरबत्ती का अपना महत्व है। दोनों वातावरण शुद्धि के अलावा एकाग्रता में सहायक होते हैं। मस्त्क (सिर) पर तिलक से आज्ञाचक्र सक्रित होने लगता है।

श्रीपरमेश्वर प्रीत्यार्थ के बाद संध्या में आचमन में जल को दिव्य मानकर इससे सभी प्रकार के मलों से पवित्र होने का आचमन करने का विधान है। उपासना में प्राणायाम में सबसे पहले प्राण के आधार से स्थिर विश्व को मानकर प्राण को नमस्कार किया जाता है : ''ऊँ प्राणायनमोयस्य सर्वमिदं वशे।'' प्राणायाम में श्वास को अन्दर लेते हुए पूरक में ऊँ भू:। ऊँ भूवः। ऊँ महः। ऊँ जनः। ऊँ तपः। ऊँ सत्यम्ः का पाठ किया जाता है। इसके बाद ब्रह्माण्ड के अनन्त सूर्यों के जनक सविता का मंत्र गायत्री छन्द में किया जाता है। महर्षि अगस्त्य ने श्रीराम चन्द्र को श्री आदित्यहृदय स्त्रोत्र सुनाते हुए बारह सूर्यों का वर्णन किया। हमारे सौर मण्डल की तरह बारह सौरमण्डलों के अलग अलग सूर्य हैं (वैज्ञानिक शोध में अनेक सूर्य होने की पुष्टि की है।)। वेदीक ऋषि अगस्त्य ने बारह सूर्यों का सूक्ष्म से सूक्ष्म देह से साक्षात्कार किया। ऊँ भूर्भुवःस्वः। ऊँ तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियोयोनः प्रचोदयात। अन्त में रेचक मंत्रः ''ऊँ आपोज्योती रसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरोम'' बोलकर श्वास धीमी गति से छोड़ें। सिद्धजनों के अनुसार वैराग्यप्राप्त जन इस गायत्री मंत्र के साथ ही इसका दूसरा भाग भी पाठ करते हैं। गायत्री मंत्र की शक्ति को पाँच बार ऊँ लगाकर पाँच गुना किया जा सकता है। मूलतः गायत्री मंत्र समस्त् सूर्यों के जन्मदाता महासूर्य सविता का मंत्र है। गायत्री मंत्र के जप के साथ धारण करने योग्य ज्ञान, तेज, बुद्धि आदि आने की भावना मन में होने से दैविक शक्तिपात होना निश्चित माना गया है। सम्पूर्ण श्रीसविता देव गायत्री मन्त्र हैः ऊँ भू र्भुः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गोदेवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्। ऊँ आपो ज्योति रसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरोम्। ऊँ।।

पाँचमहाभूतों में जल या आप से मार्जनम् किया जाता है। जल में सत्य तत्त्व, सभी औषधियों, बल, शक्ति का वास माना गया है। सूर्य की रश्मियों और अग्नि को ज्ञान और कल्याणकारी माना गया है। अधमर्षणम् में सभी जगह व्याप्त ईश्वर से सभी पाप दूर करने की स्तुति है। इससे मन में आत्मग्लानि, अपराधबोध समाप्त होती है। शरीर के

सभी अंगों में सकारात्मक नव ऊर्जा का सैलाब उमड़ने के लिए अंगस्पर्श मंत्र है। यहाँ शरीर आत्मनिर्भर अथवा निरोग रहने का स्वसंकल्प है। यह मंत्र अथर्ववेद से लिया गया है।

विश्व अथवा सृष्टि के कल्याण की अथर्ववेद की प्रार्थना बहुत ही सुन्दर है। जिसमें माता पृथिवी से प्रार्थना की गई है कि सत्‌य, तेज, बल, शौर्य, दक्षता, सरलता, विभिन्न जलवायु सहन करने की शक्ति, ज्ञान और आम जनता के कल्याण के लिए तत्परता प्रदान करें। प्रार्थना में आगे कहा गया कि हमारी माता पृथिवी हमारे भूत, भविष्य और वर्तमान काल की स्थिति की पालन करनेवाली है। हे पृथिवी! आप सभी प्राणीमात्र की माता हैं। हम सभी पाँच प्रकार के तुम्हारे पुत्रों को सूर्य अपनी किरणों से जीवन एवं ज्ञान का अमृत दे रहा है। यह स्त्‌ोत्र उपासक को प्रकृति से जोड़ता है। संध्योपासना में सर्वप्रमुख सभी प्रकार की शक्तियों–तेज–बुद्धि और प्राण के संचालक सविता देव की आराधना प्रमुख है। संध्या उपासना में ऋग्वेद के मंत्र ''इन्द्रे मित्रं वरुणमग्निभाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरूत्मान। एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्चनमाहु'' का पाठ किया जाता है। इसका अर्थ है कि ब्रह्म एक है और ज्ञानी जन उसे भिन्न भिन्न नामों से पुकारते हैं। प्रार्थना में स्पष्ट रूप से कहा गया कि हृदय कमल के नौ द्वार और तीन गुण सत्त्व, रज, तम हैं। उसके अन्दर आत्मा है। इस आत्मा का ज्ञान अन्तर मुखी होकर ही किया जा सकता है। अन्त में उपासनाकर्ता अथर्ववेद का मंत्र पाठ करता है कि आत्म को जानने पर मृत्यु का भय नहीं रहता है। आत्मा अन्धकार से दूर सूर्य के समान तेजवाली है। यह स्तुति आन्तरिक भय को जड़ से निकालनेवाली और आनन्द, प्रसन्नता भरनेवाली है। यह निराकार निर्गुण निष्काम ईश्वर की आराधना को प्रेरित करती है। वैष्णव, शाक्त, शैव मत में अन्त में निराकार निर्गुण ईश्वर ही लक्ष्य है। यह अलग बात है कि निराकार ईश्वर के प्रचारक आदिशंकर ने भी साकार ईश्वर की स्तुति की। साकार ब्रह्मोपासना की अन्तिम सीढ़ि निराकार ब्रह्म है। उपासना के अन्त में सत्‌य के पालन का वचन दिया जाता है। ऊँ

तीनों लोक की धुरी अवन्ति उज्जयिनी : सभी कल्पों में रक्षा करनेवाली अवन्तिका

मृत्युलोक पृथ्वी का ज्योतिर्लिंग महाकालेश्वर, आकाश के श्रीताड़केश्वर और पाताल के हाटकेश्वर के मध्य धुरीनुमा है। आर्ष ग्रन्थों वेदीक वांगमय में अवन्ति उज्जयिनी को शून्यरेखा स्थित दर्शित किया है।

यह शून्य रेखा नीचे हिन्द महासागर में सिंहल द्वीप श्रीलंका और ऊपर मेरु पर्वत तक फैली है। वेदीक वांगमय में शून्य रेखा को मध्यरेखा के नाम से भी सम्बोधित किया है। श्रीसनतकुमार ने उज्जयिनी की क्षिप्रा को भूलोक में सबसे अधिक पुण्यदायिनी नदी कहा है। यह पवित्रतम नदी स्वर्ग में ज्वरध्नी, यमद्वार में पापध्नी, पाताल में अमृतसंभवा और वैकुण्ठ में मूल नाम क्षिप्रा से प्रसिद्ध है।

पौराणिक आख्यानों के अनुसार महादेव शिवजी ने महाकालवन में रक्तदन्तिका चण्डिका देवी से ''महापाशुपतास्त्र'' लिया। इसी महापाशुपतास्त्र से सुसज्जित सदाशिव ने प्रबल शत्रु त्रिपुरासुर को ''उज्जित'' किया और वध किया। यही कारण रहा कि महाकालवन क्षेत्र का नामकरण उज्जयिनी हुआ। यह भी मिथकीय कथा है कि महादेव महाकाल शिव की पत्नी दक्षायिणी सत्ी द्वारा प्रजापति दक्ष के यज्ञ में कूदकर दाह के बाद शिवजी ने प्रलयंकर रौद्र ताण्डव किया। प्रकारान्तर में भगवती महादेवी दक्षायिणी सत्ी की कुहनी पृथ्वी की शून्य रेखा के महाकालवन क्षेत्र में गिरी। अतः उज्जयिनी को ''पीकस्थान'' नाम दिया गया। वैसे दुर्लभ मूल्यवान रत्नों की खदानों की भरमार से महाकालवन क्षेत्र आकरावन्ती कहलाने लगा। प्रकारान्तर में आकरावन्ती का नाम अवन्तिका हुआ।

अवन्तिका को वराह पुराण में नाभिक्षेत्र ''मणिपुरचक्र'' बताया गया। मणिपुरचक्र के अधिष्ठातृ स्वयं महादेव महाकालेश्वर हैं। लिंग पुराण, मत्स्यपुराण, विष्णुपुराण, स्कन्द पुराण, शिव महापुराण, वामन पुराण आदि के अलावा इतिहास (रामायण, महाभारत) में श्रीमहाकालेश्वर

अवन्तिका की महिमा का वर्णन है। महर्षि वाल्मीकि की रामायण के किष्किंधा काण्ड में वानरराज सुग्रीव ने देवी सीता को अवन्तिका में तलाशने का निर्देश दिया : ''आब्रवन्तीमवन्तीं च सर्वमेवानुपश्यत।'' वानरराज सुग्रीव अवन्ति के गहरे सघन वन से परिचित रहे। उन्होंने आगे कहाः ''अवन्ती मंगलेपा च तथा चालक्षितं वनम्।।'' महाभारत के वनपर्व में श्रीमहाकालेश्वर क्षेत्र को कोटितीर्थ की संज्ञा दी। ''महाकालं ततो गच्छेन्नियतो नियताशनः। कोटितीर्थमुपस्पृश्य हयमेधफलं लभेत।।'' इस क्षेत्र के स्पर्श से अश्वमेध यज्ञ का पुण्य प्राप्त होता है। ब्रह्मपुराण, अग्निपुराण और गरूड़पुराण के प्रेतकल्प में अवन्तिका उज्जयिनी को संसार के भव बन्धनों से मुक्त करनेवाला बताया है।

उज्जयिनी में काशी से आये महामुनि संदीपनी के आश्रम में भगवान् श्रीहरि विष्णु अवतार श्रीकृष्ण, श्रीशेषनाग अवतार बलभद्रबलराम ने विद्या प्राप्त की। देवगुरु बृहस्पति के बारह वर्ष में सिंह राशि में आने पर महाकालेश्वर वन में सभी प्रकार के पापों को नष्ट करनेवाला पुण्यदायिनी सिंहस्थ का आयोजन होता है। क्षिप्रा नदी वैकुण्ठ की पवित्र नदी का रूप लेती है। इसमें स्नान से सभी मनोकामनायें पूर्ण होती हैं। अध्यात्मिक धार्मिक रूप से महाकालेश्वर वन अनेक युगों से देवता, अवतार, सिद्ध, मुनि, ऋषि आदि की तप स्थली रहने के कारण सकारात्मक स्पन्दन से झंकृत है। उज्जयिनी में ध्यान, जप, तप आदि से तत्काल परम स्थिति मिलती है। सिद्ध भूमि वैकुण्ठ की नदी क्षिप्रा के समीप साधना में अदृश्य दिव्यात्मायें सहायता करती हैं। इसमें शून्य रेखा पर स्थित होना भी अध्यात्मिक रूप से विधायी शक्ति देता है।

इतिहासकार विक्रम संवत के प्रवर्तक विक्रमादित्य को उज्जयिनी का सम्राट मानते हैं। सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य के पौत्र अशोक के राजकुमार महेन्द्र, राजकुमारी संघमित्रा का जन्म भी उज्जयिनी में हुआ। पाटलीपुत्र के सम्राट बनने के लिए राजकुमार अशोक ने उज्जयिनी से ही कूंच किया। भगवान् बुद्ध के प्रमुख शिष्य महाकांचन श्रेष्ठ उज्जैन के रहे। महाकांचन ने उत्तरी भारत के सूरसेन, मत्स्य आदि में बौद्ध धर्म का प्रसार किया। थेरी गाथा और जातक कथा में उज्जैन का नाम बहुत ही पवित्र क्षेत्र के रूप में किया गया है। भगवान् महावीर ने उज्जयिनी के समीप अतिमुक्तक श्मशान में घोर तपस्या की। साधक सिद्धसेन दिवाकर

ने भी श्रीमहाकालेश्वर क्षेत्र में चमत्कारिक दिव्य शक्ति सम्पन्न भक्ताम्बर स्त्|ोत्र की रचना की। सनातन भागवत, बौद्ध एवं जैन धर्म का साधना केन्द्र उज्जयिनी सदीयों रहा। ईसा पूर्व 57 वर्ष पहले सम्राट विक्रमादित्य के भाई भर्तृहरि नाथपंथ के शीर्ष गुरु रहे। नाथ योगी भर्तृहरि ने 25000 श्लोकवाले भर्तृहरि शास्त्र अथवा त्रिपदी (इसके कुछ भाग बर्लिन संग्रहालय में हैं), 3000 श्लोक की पे इन (बेड़ावृत्ति) (चीनी यात्री इत्सिंग ने इसका उल्लेख किया है।) (इसकी टीका धर्मपाल ने 14000 श्लोक में लिखी), 700 श्लोक की वाक्य पदीय (इसकी टीका 7000 श्लोक की है) और त्रिशतकों—श्रृंगार, नीति, वैराग्य की रचना की। विद्वानों ने संस्कृत व्याकरण का अन्तिम ग्रन्थ वाक्य पदीय को स्वीकारा है। भर्तृहरि ने मनुस्मृति में उल्लेखित मत्स्य के सरिस्का, अलवर में महासमाधि ली। नवनाथों में उज्जयिनी के योगीराज भर्तृहरि एवं मत्स्येन्द्र नाथ, गोरक्षनाथ ने नया अध्याय जोड़ा।

आध्यात्म के क्षेत्र में अवन्तिका उज्जैन को सभी कल्पों में देव, प्राणीमात्र, वनस्पति—औषधि—बीज को रक्षण (रक्षा) यानी—अवन करनेवाला माना गया है। अवन्तिका तीर्थ के दूसरे नामों में प्रतिकल्पा, कुमुद्वती, विशाला, हिरण्यवती, पद्मावती, कनकश्रृंग, कुशस्थली आदि भी प्रचलित है। आवन्त्य खण्ड, स्कन्द पुराण में उज्जैन तीर्थ की पावनता के सभी से ऊपर माना है।

''तस्माद्धितकरं क्षेत्रं करूणां च सुरोत्तमा।
तस्माद्दशगुणं मन्ये प्रयाग तीर्थमुत्तमम्।
तस्माद्दशगुणा काशी कास्या दशगुणा गया।
ततोदर्शगुणा प्रोक्ता पुण्यदा च कुशस्थलि।।''

वैसे सप्त पुरियों को मोक्षदायक घोषित किया गया है : ''अयोध्या मथुरा माया काशी कांची अवन्तिका। पुरी द्वारावती चैव सप्तैता मोक्षदायिकाः।।''

उज्जयिनी के सम्राट विक्रमादित्य नवरत्नों के बारे में लिखा है : ''धन्वन्तरिक्षपणकामरसिंह शंकुवेतालभट्ट घटखर्परकालिदासाः। ख्याता वराहमिहिरो नृपतेः समायां रत्नानि वै वररूचिर्नव विक्रमस्या।'' उज्जयिनी भृगुओं के केन्द्र भृगुकुच्छ—भडूच से सम्बद्ध रहा। आदिशंकराचार्य के काल में उज्जैन का राजा सुधन्वा रहे। सुधन्वा ने अवन्तिका के गौरव को लौटाने का जतन किया। रुद्रसागर तट पर महाराज विक्रमादित्य की

हरसिद्धि देवी मन्दिर है। यहाँ सम्राट प्रति वर्ष अपने सिर की बलि देते थे। महादेव शिव ने जगत जननी का नामकरण हरसिद्धि किया। ऊँ

मेरू कैलास पर हनुमद उकेरी प्रतिमा छवि देवताओं के विश्वकर्मा का चमत्कार

महादेव शिव द्वारा वर्णित हिमवत के मेरु कैलास महापर्वत पर रुद्रावतार हनुमत की अस्पट उकेरी प्रतिमा छवि भावविभोर करती है। कपिवर हनुमत दोनों हाथ जोड़े महारुद्र भगवान् धूर्जटी शिव की स्तुति में भावातीत योग की मुद्रा में खड़े प्रतीत होते हैं। इस छवि में कपिराज हनुमत समस्त् आभूषणों, मुकुट, पोशाक, यज्ञोपवित त्यागकर भक्तराज स्वरूप में हैं।

महावीर हनुमत के सामने विशाल (लिंगाकार सरीखी) "अस्पष्ट प्रतिमा" आकृति दिखाई देती है। यह चकित करता है कि कठोरतम ग्रेनाइट की महाचट्टान पर विश्वकर्मा ने हनुमत और दूसरी दिव्याकृति कैसे तक्षित की? कैलास के आमुख पर हनुमद उकारी प्रतिमा भक्ति के भावलोक में ले जाती है। तीर्थयात्री एवं छविकार शक्तिशाली कैमरे से कैलास पर हनुमत मूरत को उतारने के जतन में रहते हैं। यह उल्लेखनीय है कि दिरफुक–डिरफुक–देरफुक सहित सप्त पर्वतमालाओं से घिरे कैलास के सघन घेरे में हिमनदी जैसी बर्फ एवं दलदल है और कैलास से अचानक बर्फ का सैलाब गिरने की सम्भावना बनी रहती है। आगे मानस सरोवर की ओर मुख किए जैन धर्म के प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ का अष्टपद पर्वत है। समीप ही शिव के वासुकी नागफन आकृति का बर्फ से ढ़का श्वेत पर्वत है। यह स्वाभाविक है कि कैलास के

गहरी बर्फवाले सघन वर्तुल में जाकर कैलास के वक्ष पर हनुमत एवं उनके आराध्य की छवि अंकित करना सबसे निपुण शिल्पियों मानवीय विश्वकर्माओं के लिए "असम्भव मुहिम" रहा होगा। तिब्बती कैलास पुराण कड़री करछप में कैलास पर हनुमद आकृति के बारे में रहस्यमय मौन है। यह अवश्य है कि कैलास परिधि के पाँच मठमन्दिर कैलास में "हनुमान जू" शिखर होने की पुष्टि करते है। तिब्बत – चीन – मंगोलिया – साईबेरिया के प्राचीन इतिहास से रहस्योद्घाटन होता है कि पीली रेखा के देश चीन के "एक समय प्रधान देवता कपि (हनुमत) रहे।" प्राचीन काल में कपि देव की पूजा अर्चना का अपना कर्मकाण्ड है। कड.रिपोछे – कैलास पर हनुमत की उकेरी प्रतिमा इसका प्रमाण है।

पराशर संहिता का हनुमदचरितखण्ड, वेंकटेश्वरप्रेसकी हनुमत उपासना, दतियापीठकी श्रीहनुमत उपासना, हनुमत रहस्य, लांगुलोपनिषद्, रामोत्तरतापनीयोपनिषद, वाल्मीकि रामायण, गोस्वामीतुलसीदासकी कृतियां, हिस्ट्री ऑफ कैलास, कैलास पुराण, हनुमानपुराण, रामरहस्य, रामरहस्योपनिषद्, श्रीमाधवाचार्यकी कृतियाँ, अनुष्ठानप्रकाश, तन्त्रसार, मन्त्रमहोदधि, प्रपाँचसारसंग्रह, सावर चिन्तामणि, सुदर्शनसंहिता, हनुमदसहस्त्रनाम्, हनुमन्त्रचमत्कारनुष्ठानपद्धति, मारूतिशतकम, एकाक्षरनामकोषसंग्रह, शाबरमंत्र (कल्याणमंदिर प्रकाशन) आदि "हनुमत तत्त्व" से साक्षात्कार करवाते हैं। आर्ष ग्रन्थों के अनुसार महादेव शिव और कपिराज हनुमान का अंतरंग संबंध है। हनुमतको शंकर सुवन और एकादश रुद्र अवतारों में से एक कहा गया है।

हनुमत–कैलास–शिव त्रिमूर्ति के सम्बन्धों की रोचक गाथा है। रामायण में प्रसंग आता है कि भगवान् राम, लक्ष्मण देवी सीता की खोज में किष्किंध्या पहुंचे। सम्राट बाली से प्रताड़ित युवराज सुग्रीव सशस्त्र राम लक्ष्मण को देखकर चिन्तित हुए कि कहीं तपस्वी वेश में बाली ने गुप्तचर जानकारी लेने भेजे। कथा में प्रसंग आता है कि हनुमान ने श्रीराम को सीता अनुसंधान में सफलता और प्राप्ति के लिए "लांगूलोपनिषद् हनुमदघोरास्त्र के अन्तर्गत हनुमतोपासना" को कहाँ लांगुलोपनिषत् प्रकरण से रहस्य खुलता है कि श्रीराम से मिलनेवाले सुग्रीव के "दूत हनुमान और आदिहनुमान"दोनों अलग अलग हैं। इसी कड़ी में अयोध्या के सम्राट दशरथ के सपुत्र राजकुमार "श्रीराम और आदिराम दोनों पृथक

पृथक हैं।" एकाक्षरनामकोषसंग्रह के अनुसार रामनाम के तीन अक्षरों का अर्थ अग्निबीज, संहारक, ब्रह्मदेवत्त का है। राम शब्द की अध्यात्मिक दैविक शक्ति अनन्त और संहारक भी है। अतः केवल "राम शब्द का जप निषेध है।" राम उच्चारण से अग्नि एवं संहारशक्ति पर नियंत्रण बहुत कठिन अथवा असम्भव है।

पराशर संहिता में आदिदेव सूर्य द्वारा हनुमत को नौ विद्यायें प्रदान करने का उल्लेख है। पराशर संहिता में ब्रह्मविद्या के लिए "सबसे पहले हनुमद विद्या सीखने का स्पष्ट निर्देश है" (हनुमद्विद्या, रहस्य के गर्भ में है।)। यह भी रहस्य है कि हनुमान को सूर्यदेव ने कहाँ नौ विद्याओं का गुप्त ज्ञान दिया? यह स्मरण रहे कि महादेव रुद्र शिव का एक नाम "दिवो वराह (आकाश का शूकर)" है। शिव को सूर्य के रूप में रुद्र माना गया है। यानी सूर्य ही रुद्र है। रुद्र रूप सूर्य ने रुद्रावतार हनुमान को गोपनीय विद्याओं का शक्तिपात किया। भगवान् रुद्र शिव का भूलोक पर हिमालय में कैलास पवित्रतम क्षेत्र होनेसे यह घोर तपस्या की। इसका प्रमाण कैलास में हनुमान जू पर्वत शिखर है। हनुमान रुद्र के द्वार के रखवाले हैं और भक्त शिरोमणि हैं। यमुनोत्री–गंगोत्री के द्वार पर भी हनुमान चट्टी है।

पौराणिक आख्यानों और इतिहास (रामायण, महाभारत) के अनुसार हनुमान चिरंजीवी हैं और मदरांचल पर्वत पर भक्ति में लीन हैं। आर्ष ग्रन्थों में दिव्य पर्वत–मदरांचल, मेरु, सुमेरु का उल्लेख मिलता है। समुद्र मंथन के समय मदरांचल अथवा मेरु मथनी बना। पण्डित जयचन्द की भारतभूमि में मेरु को पृथ्वी की धुरी कहा गया। आर्ष ग्रन्थों के सभी विद्वानों ने महादेव शिव के निवास कैलास को ही दिव्य मेरु– मदरांचल –सुमेरु की संज्ञा दी है। यहीं चिरंजीवी महाभक्त हनुमान का अपनी भक्ति में प्रगल्भ होना अचरज नहीं है। दिव्य कैलास के वर्तुल में ही शाम्भाला (पवित्र भूमि या उत्तम भमि) है। रुद्रावतार हनुमत मदरांचल में आसन जमाये हुऐ हैं।

आंजनेय हनुमान हिमवत के पर्वतों से ही दिव्य "मृतसंजीवनी बूटीवाला लघुपर्वत सिंहल देश लंका ले गए थे।" पर्वतीय क्षेत्र के अजेय महायोद्धा हनुमान के लिए पवित्र हिमालय और कैलास अपरिचित नहीं था। आर्षग्रन्थों में महादेव शिव, महादेवी पार्वती के साथ भक्ति मुद्रा में

"आदि" हनुमान का चित्रण मिलता है। रुद्रावतार हनुमान की छवि पवित्र कैलास पर होना त्रिपुरा में उनाकोटि के समूचे पर्वत पर महादेव शिव आदि की उकेरी प्रतिमाओं का स्मरण कराती है। उनाकोटि में एक करोड़ (एक कोटि) में एक कम प्रतिमाओं की संगतराशी दिव्य विश्वकर्मा का चमत्कार हैं। ये मानवीय कृतियाँ नहीं लगती हैं।

अल्मोडा से कैलास महातीर्थ यात्रा में हिमवत्त पर्वत शृंखला में "ऊँ पर्वत भी दिव्यकृति है।" ऊँ पर्वत पर स्वयं हिमबर्फ से ऊँ लिखा स्पष्ट दिखाई देता है। ऊँ पर्वत दिव्य कैलास में दैविक स्पंदन का चमत्कार है। कैलास प्रदक्षिणा में महादेव शिव निवास पर हनुमद छवि साधकों को निष्काम भाव से आराध्य की सेवा, धर्मसत्य के लिए महायुद्ध से भी नहीं हिचकने, कर्तव्य परायणता, भक्ति का संदेश देती है। महादेव शिव की तरह रुद्रावतार हनुमान भी भक्ति से शीघ्र प्रसन्न होते हैं। कैलास में हनुमत भक्ति से वे हिमवत पार चीन में पूज्य हुए। ओढ़रदानी अविनाशी शिव कैलास पर ध्यान योग में मग्न हैं। ऊँ

आदिहनुमत की गोपन हनुमद् विद्या का रहस्यः शिवस्वरूप हनुमतविद्या

कैलासवासी आदिहनुमत और रामायण के हनुमान में मूलभूत अन्तर है। विशुद्ध ब्रह्मविद्या वेद के कपिराज हनुमद्विद्या की ओर संकेत करती है। यह ब्रह्मविद्या वेदीक ऋषियों को साधना से प्राप्त हुई। वेद एवं शास्त्र में यह स्पष्ट लिखा हैः "ये त्वतार्किका भावा न तांस्त्र्केण योजयेत्।" अर्थात् अनुभूति गम्य साधना से प्राप्त ब्रह्मविद्या तर्क वितर्क का विषय नहीं है।

वेद में उल्लेख आता हैः "अग्नि अनेक हनुओं, अर्थात् दाढ़ीवाला हनुमान है।" हनुमान के सहस्त्रों नेत्र हैं यानी निराकार हैं (ऋग्वेद : 10 : 79 :1)। वेदमंत्रों में अग्नि ही विकराल दाढ़ीवान हनुमत है। यही पौराणिक देवता हनुमान के चरित का सूत्रपात हुआ। कहीं कहीं

पर विशाल जबड़े–दाढ़ीवाले (हनु) हनुमान ही मरुत्वान इन्द्र का पर्याय हैं।

ऋग्वेद में इन्द्राणी और वृषाकपि का संवाद आदिहनुमत् पर नया अध्याय जोड़ता है। यह वृषाकपि मेघ बरसाने में सक्षम है। यजुर्वेद में शुक्र ज्येष्ठ के महिने में 'कपि' को बलि का उल्लेख है। चीन के राशिचक्र में ज्येष्ठ माह को "वानर राशि" माना गया। वाल्मीकि रामायण में ब्रह्मा द्वारा सभी देवताओं को दिव्य अप्सराओं से "वायुतुल्य वानर रूपी संतानों को उत्पन्न करने का निर्देश दिया गया। ऋग्वेद के इन्द्र, सूर्य, बृहस्पति, द्विअश्विनीकुमार आदि देवताओं से दिव्यशक्ति सम्पन्न वानर पैदा हुए। उनमें परमशक्तिवान वायु ने हनुमान को जन्म दिया।" वैसे तारामण्डल के दिव्य नक्षत्रों के संयोग से ऋक्षों का जन्म हुआ। इन वानरों और ऋक्षों ने दशरथ पुत्र राम की महासंग्राम में सहायता की।

महाकपि हनुमान के बारे में रामायण के सुन्दरकाण्ड में लिखा हैः "यह पर्वताकार और तीव्र वेगवाले मरुत्पुत्र हनुमान वरुणालय समुद्र को तैरकर श्रीलंका जाना चाहते हैं। महाकपि समुद्र के जिस भी भाग से होकर गए, वह उनकी महागति से मंथित हो गया।"

"एष पर्वतसंकाशो हनुमान् मारूतात्मजः।
तितीर्षति महावेगः समुद्र वरुणालयम्।।
यं यं देशं समुद्रस्य जगाम स महाकपिः।
स तु तस्यांगवेगेन सोन्माद् इव लक्ष्यते।।"

यह भी आश्चर्यजनक है कि आर्ष ग्रन्थों में प्रसंग आता है कि सूर्यदेव ने हनुमत को नौ विद्यायें देने का वचन दिया, परन्तु पाँच विद्याओं के बाद विराम दिया। पराशर संहिता के हनुमत चरित में इस सन्दर्भ में सूर्यदेव की ब्रह्मचारिणी सुपुत्री "सुवर्चला" प्रसंग है। हनुमत को सुवर्चला के सानिध्य से सूर्यदेव से ही शेष चार विद्याओं का गोपनीय ज्ञान मिला। सूर्यदेव द्वारा हनुमत को प्रदान नौ विद्यायें त्रेता से कलियुग तक रहस्य बनी हैं। यह भी पहेली है कि हनुमद्विद्या क्या है ? स्वयं हनुमान ने राम से सीता प्राप्ति में सफलता के लिए "लांड.गूलोपनिषत्–हनुमद्घोरास्त्र" के पाठ को कहाँ हनुमदघोरास्त्र में ध्यान हैः

वज्रांग पिंगनेत्र कनकमयलसत्कुण्डलाक्रान्तगण्डं,
दम्भोलिस्त्म्भसारप्रहरणविवशीभूतरक्षोऽधिनाथम्।

उघल्लाड्.गूलघर्षप्रचलजलनिधि भीमरूपं कपीन्द्रं,

ध्यायन्तं रामचन्द्रं प्लवगपरिवृदं सत्त्वसारं प्रसन्नम्।।

यह हनुमदघोरास्त्र लाड.गूलोपनिषत् अथर्वण रहस्य के अन्तर्गत है। ऋक्संहिता में भी आता हैः तत्र श्रिये मरुतो मर्जयन्त रुद्र यत्ते जनिम चारूचित्रम्। पदं यद् विष्णोरूपमं निधायि तेन पासि गुह्यं नाम गोनाम्।। 5 |3 |3।। इस प्रसंग से स्पष्ट है कि आदिहनुमत अलग हैं।

राम भगवान् ने हनुमान की तुलना वायुदेव एवं पक्षीराज गरूड़ से करते हुए कहा :

न हि तं परिपश्यामि यस्त्रेत महोदधिम्।

अन्यत्र गरूडाद्वायोरन्यत्र च हनुमतः।।

राम ने सीता की सूचना लाने और लंका से सकुशल लौटने पर राम ने हनुमान के बारे में कहा : हनुमान ने इस भूमण्डल में सबसे दुर्लभ पराक्रम किया है। इस भूलोक पर कोई भी लंका जाने एवं लौटने की कल्पना मन में भी नहीं कर सकता। "कृतं हनुमता कर्म सुमहद्भुवि दुर्लभम्। मनसापि यदन्येन न शक्यं धरणीतले।।" तारसारोपनिषत् मकाराक्ष से हनुमान की उत्पत्ति लिखी है :"मकाराक्षरसम्भूत शिवस्तु हनुमान्स्मृतः।" इसी भाव को तारसारोपनिषत् में इस प्रकार भी स्पष्ट किया है कि मकार शिवस्वरूप हनुमान का बोधक है : "मकारवाच्यः शिवस्वरूपो हनुमान्।"रामोत्तरतापिन्युपनिषत् में मकार को प्रज्ञारूप (प्रज्ञात्मकस्तु) कहा गया है। द्राविड़ रामायण में हनुमान को पवनंजय का पुत्र एवं हनुवर देश का राजा बताया गया है।

हनुमत सूक्ष्म से स्थूल (विशालाकार बनने) के वेदीक विज्ञान के महापण्डित एवं संस्कृत के महाविद्वान ऋषि हैं। यहाँ प्रश्न उठता है कि ऋषि क्या है? "प्राणा वा ऋषयः, यानी प्राण स्वरूप ऋषि है।" ऋग्वेद का प्राचीनतम भाष्य श्रीयास्क मुनि का निरूक्त है। निरूक्त में देव शब्द की परिभाषा है : जो मनुष्यों को धनधान्य दे, जो दीप्तिमान हो, जो द्युतिमान हो, जिसका स्थान द्युः यानी आकाश है, वह देव है। देव ही देवता है। देवता तीन श्रेणियों—पृथ्वी के देवता, अंतरिक्ष के देवता और आकाश के देवता के हैं। इनमें इन्द्र, वायु अंतरिक्ष के देवता हैं। "देवो दानाद्वा दीपनाद्वा द्योतनाद्वा द्यु स्थानो भवतीतिवा। यो देवः सा देवता।।" इस पृष्ठभूमि में हनुमत शब्द के दिव्यतेज, दिव्य शक्ति, देवता, वर्ण और

भौतिक जगत में प्रभाव का रहस्य आदिहनुमत की हनुमद्विद्या रहस्य की कुंजी है।

हनुमत शब्द में पाँच अक्षर ह–न–उ–म–त हैं। पाँचों अक्षरों के बारे में मातृका देवता रहस्यमय आवरण हटाती है। पाँचों अक्षरों के बारे में वागीश शिव ने वागीशा शिवा को गोपन रहस्य ज्ञान दिया :

सदाशिवं हकारं स्याद् धूम्रं ज्ञानार्थ सिद्धिदम्।
अणिमाद्यष्टसिद्धिः स्याच्चतुःषष्टिकला अपि।।
नकारं निर्विकल्पं – स्याद् सर्वप्रमेयाभमक्षरम्।
वायुवेगं मनोवेगमिच्छारूपं भवेद् ध्रुवम्।।
उ कारं कालदैवत्वं शामलोकवशंकरम्।
मातृकोत्थापनं पुण्यं क्रूररोगविनाशनम्।।
मकारमीश्वरं विद्याज्ज्योतिरक्तं सुखावहम्।
वश्याऽऽकर्षण–सन्तान सिद्धि दानैकतत्परम्।।
तकारं धनदं विद्यात् पीतमैश्वर्यवर्धनम्।
यक्ष–किन्नर–सिद्धानां वशीकारं जगद्वशम्।।

इस प्रकार प्रथम अक्षर "ह" सदाशिव का बीज और धूम्र वर्णमाला है। यह ज्ञान द्वारा सिद्धिप्रदान करनेवाला, अणिमा एवं अष्ट सिद्धिदायक, चौबीस कलाओं में समर्थ बनानेवाला है। दूसरा अक्षर 'न' निर्विकल्प स्थिति प्रदान करता है। यह सभी प्रमेयों का दाता है। यह वायु के समान गति देता है। यह सभी कामनाओं – मनोवेगों – इच्छाओं को पूरा करता है। तीसरा अक्षर 'उ' कालदेवत्व का प्रतीक है। यही तीनों लोकों को वश में करनेवाला है। यह मातृका का उत्थापन करता है। मकार ईश्वर बीज है। म प्रलय अथवा सर्वसंहार का सूचक है। यह रक्तिम् विद्याज्योति सरीखा, सुख देनेवाला, सर्व वशीकरणकर्ता, सन्तान देनेवाला एवं हमेशा दान देने के लिए प्रस्तुत है। लकार पीत वर्ण का है। यह विद्या, ऐश्वर्य (भौतिक–अध्यात्मिक) वृद्धि करनेवाला है। यह यक्ष, किन्नर, गन्धर्व आदि ही नहीं बल्कि सिद्धों को भी वशीकरण करता है। सारसंक्षेप में हनुमत् नाम का केवल उच्चारण मात्र कल्याणकारी है हनुमत उपासना में आचार प्रथम धर्म है : आचार : प्रथमो धर्मः। ऊँ

आदि हनुमत् के चिरंजीव होने का अमृतकुण्ड कैलास

आर्षग्रन्थों में भक्ति सेवा समर्पण कर्तव्यपरायणता सत् के लिए संघर्ष एवं लोकसंग्रह के लिए हमेशा तैय्यार आदि हनुमत् के चिरंजीवी होने का घोष करते हैं। हनुमत् कलियुग में मंदार–मेरु–सुमेरु पर्वत पर ईशान की भक्ति में लीन हैं।

चिरंजीवी हनुमत की त्रेतायुग से द्वापरयुग एवं द्वापरयुग से कलियुग की गाथा ''पिशाच गीता'' कह रही है। जय संहिता (भारत संहिता–महाभारत) के अनुसार योगीराज कृष्ण ने मृत्युंजय शिवस्वरूप हनुमत से महासंग्राम में अर्जुन के रथ की ध्वजा पर विराजमान होने का आग्रह किया। महासंग्राम स्थल पर अर्जुन के युद्ध से पलायन के मनोभाव को रोकने के लिए कृष्ण ने अट्ठारह अध्याय की गीता का संदेश दिया। कृष्ण के गीता संदेश को सुनने से हनुमत को पिशाच स्वरूप होने का प्रसंग आता है। उस समय कृष्ण ने समाधान किया कि महाभारत समापन पर हनुमत शिवनगरी काशी में गीता भाष्य करके पिशाच होने के शॉप से मुक्त होंगे। प्रकारान्तर में हनुमत ने काशी में गीता का भाष्य लिखा। यह पिशाच गीता के रूप में प्रसिद्ध हुआ। काशी में हनुमत भाष्यस्थली विस्मृति में हैं। काशी में श्रीयंत्र तक्षित शिव लिंग है। श्रीयंत्र तक्षित लिंग की विधिविधान से पूजा हजारों वर्ष से हो रही है। छोटी काशी जयपुर में भी श्रीयंत्र तक्षित लिंग है। आर्ष ग्रन्थों के अनुसार शिव लिंग पर श्रीयंत्र का तक्षण तत्काल ज्ञान, ऐश्वर्य, श्रेय (अध्यात्मिक–भौतिक) देता हैं। यह स्मरण रहे कि हनुमत को ''ज्ञान का सागर'' कहा गया है।

यहाँ इस तिलिस्म की कुंजी खोजना आवश्यक है :''हनुमत तत्त्व एवं चिरंजीव का गूढ़ अर्थ क्या है?'' ऋग्वेद के रुद्र का रौद्र स्वरूप हनुमत हैं। रुद्र स्वरूप हनुमत में वेदीक रुद्र की सभी शक्तियॉ हैं। वेदीक रुद्र रूदन को प्रसन्नता में परिवर्तित करवानेवाले एवं वेदीक देवों–इन्द्र, सूर्य, सविता, उषा, वायु, वरुण, अग्नि, आश्विनौ कुमार आदि को नैतिक मर्यादा पालन करवानेवाला शास्त्ा हैं। रुद्र ने नैतिक मूल्यों से विचलित होते ही प्रजापति का सिर पिनाकी धनुष के बाण से काटा।

हनुमत विधायकी (सकारात्मक) ऊर्जा का महापुंज है। पौराणिक काल में दृष्टा ऋषियों ने हनुमत तत्त्व की साधना से अनुभूति की (यह तर्क और प्रमाण का विषय नहीं हो सकता है।)।

पुराण एवं इतिहास–रामायण, महाभारत में ''चिंरजीवी'' सम्बोधन हनुमानजी सहित बलीराजा, विश्वबाहु परशुराम, लंकानरेश विभीषण, धनुर्विद्या के परमगुरु द्रोणाचार्य के सुपुत्र अश्वत्थामा आदि के लिए करने का अध्यात्मिक एवं भौतिक दोनों सन्दर्भों में कूट, प्रतीक, संकेत, लक्षण आदि का गूढ़ (गोपनीय) अर्थ है। आर्षग्रन्थ में चतुर्युगों में प्रवृत्ति, गुण, धर्म, शक्ति, मेधा, क्षमता, विचार, दिव्य गुणधर्म आदि के आधार पर चिरंजीवी को रूपाकार दिया। ब्रह्मविद्या में शरीर के पोषण के लिए ''सूर्य के उदय के समय रक्तिम–सिन्दूरी आभापान सक्षम है।'' इस पर विशद विस्तृत चर्चा या संवाद किया जा सकता है। दैविक शक्तिवान शरीर को भौतिक भोजन की कोई आवश्यकता नहीं होती है। ऐसे में मानवकोष अनन्त काल तक क्षय या नष्ट नहीं होंगे। कैलास में हजारों वर्ष की आयु के सिद्ध ऋृषि वर्षों लगभग आहार नहीं लेते हैं। फलस्वरूप उनकी आयु उनके नियंत्रण में रहती हैं। हनुमत वेदीक रूप से रुद्र के अतिरौद्र रूप है। उनके त्रेतायुग से कलियुग तक चिरंजीवी रहने को अध्यात्मिक रूप से सत्‌य मानना आवश्यक हैं। मध्यकाल में गोस्वामी तुलसीदास की अद्‌भुत रचना ''रामचरितमानस'' पवननन्दन हनुमान की कृपा का उदाहरण है। क्षमा करें ! सहस्त्रों वर्षों से भारतीय सेना संग्राम के समय रुद्र के रौद्र रूप को जाग्रत करने के लिए ''जय बजरंग बली, जै हनुमान, हर हर हर महादेव'' आदि का रक्तसंचारी घोष करती रही है। चिरंजीवी हनुमान और सृष्टि के लय एवं प्रलयकर्ता महादेव शिव रौद्र रस का संचार करते हैं। यहाँ जैसा विचार भाव होता है, उसी प्रकार का भाव प्रकृति रूप बदलती है। ''दृष्टि एवं सृष्टि में अन्तर्संबन्ध है।'' हम प्रकृति से विचारानुसार उसी तरह की शक्तियॉ ग्रहण करते हैं। रौद्रस्वरूपी अदृश्य शक्तियाँ सहयोग को आती है। यह शास्त्र अनुभूति–साधना–प्रयोगधर्मी है।

अध्यात्मिक रूप से यह भाव प्रधान है। हनुमत तत्त्व एवं चिरंजीवी दोनों का भाव जगत से गहरा सम्बन्ध है। रुद्रात्मक हनुमत का दशाक्षर मन्त्र ''हं पवन नन्दनाय स्वाहा'' है। इस मन्त्र पाठ में भय भी

उत्पन्न हो सकता है, किन्तु भयभीत नहीं हों। श्रीविष्णु ने अर्जुन को द्वारशाक्षर मन्त्र ''हं हनुमते रुद्रात्मकाय हुं फट्'' प्रदान किया। इसके एक लाख जप सिद्धि प्रदान करते हैं। हनुमत का पाँचकूट मन्त्र ''ऊँ हस्फ्रें ख्फ्रें हस्त्रों हसौं'' है। हनुमत का अष्टादशाक्षर मन्त्र का बीज 'हूं' है। यहाँ पाँच भूतों के बीच ''हँ, यँ, रँ,लँ एवं वँ'' हैं। ''हं'' शिव कहे गए हैं। परन्तु मेरुतन्त्र में इसका बीज ''हं'' है। ''ऊँ हृदयं भगवान् ङे.ऽनतं आंजनेय–महाबलो, तद्–वद् वाह्नि–प्रियान्तोऽयं मनुरष्टादशाक्षरः।'' हनुमत का सिद्ध 125 अक्षर मन्त्र हैं :

''ऊँ वज्रकाय, वज्र तुण्ड कपिल पिंगल उर्ध्व केश,
महाचीन, सुरक्त–मुख, तडिज्जिह्व !, महा रौद्र,
दंष्ट्रोत्कट ! कह–कह करालिने महा–दृढ़ प्रहारिन!
लंकेश्वर–वधाय महा–सेतु–बन्ध–महां–शैल–प्रवाह–गगने–चर!
एह्ये भगवन, महा–बल पराक्रम,
भैरवाज्ञापय एह्येहि महारौद्र।
दीर्घ–पुच्छेन वेष्टय वैरिणं भंजय हुं फट् ।।''

वैसे द्वारशाक्षर मूल मन्त्रः ''ऊँ हौं ह सफ्रें खफ्रें हसौं ह सुख्फ्रें ह सौं हनुमते नमः'' भी मिलता है। अष्टोदशाक्षर मूल मन्त्रः ''ऊँ नमो भगवते आंजनेयाय महाबलाय स्वाहा'' भी माना गया है। वेताल साधन मन्त्रों में: ''शतषटकं जपेद्रात्रों श्मशाने दिवसत्रयम्। ततोवेताल उत्थाय वदेद्भात्रि शुभाशुभम्।। उदितं कुरते सर्वं किंकरोभूय मन्त्रिणः।'' उल्लेख मिलता है। हनुमत का रक्षाकारक मन्त्रः ''ऊँ ह्रीं ह्रीं ह्रूं ह्रैं ह्रौं ह्रः हों हः ऊँ'' अचूक है। आत्मसाधना की वृद्धि के लिए ''ऊँ नमो भगवते हनुमते मम मदनक्षोभं संहर संहर आत्मतत्त्वं प्रकाशय प्रकाशय हुँ फट् स्वाहा।।'' मंत्रपाठ उपयोगी है। वैरिदुष्टानां वंशविच्छेदकारक मन्त्र 265 अक्षर, 342 अक्षर एवं 592 अक्षर का है। आंजनेयास्त्र मन्त्र है :

ऊँ ह्रीं क्लीं ऐं सौं ग्लौं यं शोषय शोषय यं ग्रस ग्रास
यं विदारय विदारय यं भस्मी कुरू कुरू यं स्फुर–स्फुर
यं स्फुट प्रस्फुट यं सौं ग्लौं हुं फट् स्वाहा।।

पुराणों में हनुमत एवं सिन्दूर पर्याय हैं। सिन्दूर चढ़ाने का ''ऊँ सिन्दूर हेम सौभाग्य सुगन्धि पुष्टिवर्द्दनम्। चर्चितो वीर सर्वांगे मंगलं सुखवर्द्धनम्।।'' मन्त्र है। यह सिन्दूरलेप मंगलवार एवं शनिवार को

क्रमशः गौघृत एवं चमेली के तेल से करने का विधान है। विभीषण द्वारा रचित मन्त्रः ''ऊँ ह्रां ह्रीं ह्रूं हनुमते रुद्राय सर्वदुष्टमुख स्त्म्भनं कुरू कुरू मम सर्वकार्यसिद्धिं कुरू कुरू ह्रां ह्रीं ह्रूं फट् स्वाहा।।'' सुदर्शन संहिता में मिलती है। अगस्त्य मुनि ने लोपामुद्रा को एकादशमुख हनुमत कवच का रहस्य समझाया। आदिशंकराचार्य एवं गोस्वामी तुलसीदास रचित हनुमत पाँचरत्न स्त्रोत्र, हनुमानाष्टक आदि प्रभावकारी हैं। सनत्कुमार ने हनुमान दीपदान विधि का रहस्योद्घाटन किया। हनुमत शाबर–साबर मन्त्रों का अपना जगत है। साबर मन्त्रों का अर्थ खोजना बेकार है, वे अनुभवगम्य हैं।।ऊँ।।

राजनयन कूटनीति के अग्रदूत पवनपुत्र हनुमान : गत्यात्मकता एवं प्रायोगिकता

वैश्विक राजनयन में भारतीय मिथकीय चमत्कारी महान्ायक आज भी आदर्श माने जाते हैं। राजनयिज्ञ अथवा राष्ट्र के दूत की भूमिका में चिरंजीवी हनुमान, युवराज अंगद, योगीराज श्रीकृष्ण, उधव और तीनों लोकों में भगवद् दूत देवर्षि नारद आदि प्रमुख हैं।

राजनयन की गत्यात्मकता और प्रायोगिक–व्यावहारिक राजनयन पर पूर्व निर्वाचन आयुक्त श्री जी.वी.जी. कृष्णमूर्ति, पूर्व राजदूत श्री टी.पी. श्रीनिवासन, पूर्व राजघराने के एवं पूर्व राजदूत श्री अप्पा साहिब पंत आदि ने नये आयाम उद्घाटित किए हैं। तेईस सौ वर्ष पहले मगध साम्राज्य के संस्थापक, तक्षशिला विश्वविद्यालय में दीक्षित आचार्य कौटल्य विष्णु गुप्त चाणक्य की कालजयी रचना कौटल्य का अर्थशास्त्र राजनयन में मील का पत्थर है। आचार्य चाणक्य ने देवताओं के गुरु बृहस्पति, दानवों के गुरु शुक्राचार्य से लेकर सभी महर्षियों की रचनाओं में से राजनयन आदि के सार को प्रस्तुत किया है। यह चाणक्य की कूटनीति का चमत्कार था कि सम्राट चन्द्रगुप्त और यूनानी सैल्यूकस के मध्य मैत्री सेतुबन्ध निर्मित हुआ।

पूर्व राजदूत श्री टी.पी. श्रीनिवासन के लेखों की सुश्री दिव्या एस. अय्यर द्वारा सम्पादिक एप्लाइड डिप्लोमेसी में एक सम्पूर्ण अध्याय मिथकीय सप्त चिंरजीवियों पर है। आर्ष ग्रन्थों में सप्त चिरंजीवियों में दानवराज बलि, दशावतारों में से आवेशावतार परशुराम, हनुमान, विभीषण, अश्वत्थामा आदि सम्मिलित हैं। महर्षि वाल्मीकि के आदिकाव्य रामायण के अनुसार राम के दूत के रूप में हनुमान लंकेश्वर रावण की लंका में गए। इन्द्रजीत मेघनाद ब्रह्मास्त्र का प्रयोगकर अशोकवाटिका में हनुमत को बन्दी बनाकर दशानन लंकेश्वर रावण के दरबार में ले गए। जहां क्रुद्ध राक्षस शूरवीरों ने हनुमान के वध की सलाह दी। इस नाजुक समय विभीषण ने लंकेश्वर रावण को कूटनीति की परम्परा का स्मरण कराते हुए कहा कि दूत का वध नहीं किया जा सकता। इस तरह यह प्रमाण मिलता है कि जम्बूद्वीप में वेदीक काल से राजदूत को मारा नहीं जा सकनेवाला माना जाता था। प्रकारान्तर में दोबारा युवराज अंगद एवं हनुमान श्रीराम का संदेश लेकर लंका गए। श्री श्रीनिवासन मानते हैं कि विदेश सेवा के आदर्श नायक चिरंजीवी हनुमान हैं। स्मरण रहे कि अपने कृत्यों को लेकर महाभारत के कौरवों–पाण्डवों के गुरु द्रोणाचार्य के पुत्र अश्वत्थामा कल्प के अन्त तक भूलोक पर घूम रहे हैं। आर्ष ग्रन्थ तटस्थ गुरु कृपाचार्य की तुलना संयुक्त राष्ट्र संघ से करते हैं।

महासमर में पाण्डवों के दूत के रूप में योगीराज श्रीकृष्ण सम्राट धृतराष्ट्र की राजसभा में जाकर कम से कम पाँच गांव देने का प्रस्त्ाव रखते हैं। धृतराष्ट्र की राजसभा में युवराज सुयोधन दुर्योधन क्रोधित होकर अनचाहा करने की सोचता है। तब श्रीकृष्ण रौद्ररूप में आते हैं। अन्त में महासमर होता है। श्रीकृष्ण ने कूटनीति में नये आयाम स्थापित किए। उन्होंने द्वापरयुग में असंख्य राजाओं को धर्म सत्य के पक्ष में लड़ने को सहमत किया। भीष्म पितामह ने मरने से पहले पाण्डवों को नीति, राजधर्म, धर्मसम्मत राजनयन का सारगर्भित उपदेश दिया। भीष्म ने राजधर्म की बारीकियों की भी व्याख्या की। प्राचीन भारत के ऋषियों की संहिताओं, स्मृतियों, सूत्रों में भी राजनयन की दिशा और दशा उल्लेखित है। इन समूची संहिताओं–स्मृतिओं का विश्लेषण अध्ययन होना अभी शेष है।

प्राचीन काल से देव ऋषि नारद के तीनों लोकों–पृथिवी, स्वर्ग, पाताल में भगवान् के दूत के रूप में घूमने की मीठी कथा मिलती है। देव ऋषि सभी का संदेश लेकर त्रिदेवों तक जाते हैं। तीनों लोकों का संयुक्त ब्रह्माण्ड संघ (वर्तमान पृथिवी लोक का संयुक्त राष्ट्र संघ यूएनओ) त्रिदेव सभा थी। जिसमें अन्यायी राजा को त्रिदेव की सेना–शक्ति दण्डित करती थी (वर्तमान में यूएनओ शान्ति सेना भेजता है।)। प्राचीन भारत के इतिहासकारों के अनुसार एक समय सभी उपमहाद्वीपों में नाग संस्कृति (नाग को पवित्र मानकर पूजनेवाले) का झण्ड़ा लहराता था। जम्बूद्वीप, प्राचीन मिश्र, प्राचीन यूनान ग्रीक, प्राचीन माया संस्कृति आदि में सम्राटों की राजसभाओं में दूसरे देशों के राजदूतों का विवरण मिलता है।

आचार्य विष्णु गुप्त चाणक्य कौटल्य ने कूटनीति, राजप्रबन्धन, राज्य विधि एवं न्याय से लेकर गुप्तचरी, उद्योग, कर आदि को लिपिबद्ध कर नया कलेवर दिया। चाणक्य ने जम्बूदीप ब्रह्मवर्त के भारत के समीपी सभी देशों से कूटनीतिक सम्बन्धों को नया रूपाकार दिया। शुंग साम्राज्य के संस्थापक सेनानी पुष्यमित्र प्राचीन पारस (वर्तमान ईरान) में राजनयिक केन्द्र के दस्ते् में नायक रहे। यानी मोर्य साम्राज्य के दौत्य सम्बन्ध फारस से यूनान तक थे। सम्राट अशोक की राजकुमारी संघमित्रा एवं युवराज महेन्द्र बौद्ध धर्म की दीक्षा लेकर लंका में धर्म प्रचार के लिए गए। सम्राट अशोक के राजनयिक सम्बन्ध मध्य एशिया, दक्षिण एशिया, पूर्वी एशिया के देशों से रहे। समूचे एशिया, दक्षिणी अमेरिका में चिरंजीवी हनुमान की कथा लोकप्रिय है। यहाँ तक कि रूस के साईबेरिया और चीन में भी कपिवर हनुमानदेव के रूप में पूजित रहे। अर्थात् में हनुमत विश्वभर में मिथकीय देव हैं।

पुराकथाओं के अनुसार कैकयक्षेत्र देश–कास्पीयन समुद्र समीपी देश से अयोध्या के राजा दशरथ के दौत्य सम्बन्ध थे। डॉ. विश्वम्भरनाथ उपाध्याय ने विश्वबाहु परशुराम में परशुराम द्वारा पामीर के पर्वत–अर्थात् विश्व की छत पर देवराज इन्द्र से दिव्यास्त्र लेने का उल्लेख किया है। अफ्रीकी देशों में वानरदेव हनुमान के देवत्व रूप की पूजा प्रचलन में हैं। हनुमान के पिता पवनदेव के अंश पाण्डव पुत्र भीम का अफ्रीकी राजकुमारी हिडम्बा से पुत्र घटोत्कच (अर्थात् सिर पर बाल नहीं वाला)

था। महासमर में पाण्डवों की सेना में मित्र राष्ट्रों की सेना के रूप में घटोत्कच भी लड़े। महर्षि कृष्णद्वैपायनव्यासजी ने महाभारत में विभिन्न स्वतन्त्र देशों के बीच राजनयन राजदूत आदि का ब्योरा दिया है।

आर्ष ग्रन्थों में पृथिवी से दूसरे ग्रहों पर दूत भेजने की भी रोमांचक कथायें मिलती हैं। यद्यपि इन मिथकीय कथाओं पर वैज्ञानिक प्रश्नचिन्ह खड़ा करते हैं। मिथकीय कथाओं में सभी ग्रहों का रूपाकार पेश किया गया है। यह आश्चर्यजनक है कि मिथकों में वर्णित ग्रहों का विवरण एवं दूरी आदि वैज्ञानिक शोध अनुसंधानों में सटीक मिली। यह अभी पहेली है कि दूसरे ग्रहों से पृथिवी पर और पृथिवी से अनन्त दूरीवाले ग्रह नक्षत्रों तक की यात्रा प्रतिनिधि किस यान में करते थे ? क्या देवाधिदेव महादेव शिव अयोध्या के राजा दशरथ के राजकुमार राम को दिव्यास्त्र देने और दिव्यज्ञान देने आये ? यह दुर्भाग्यजनक है कि आधुनिक विचार के नाम पर भारतीय परम्पराओं, मान्यताओं एवं इतिहास ग्रन्थ रामायण, महाभारत का उपहास उडाया जा रहा है। यह पूछा जा सकता हैं कि राजनयन के अग्रणी हनुमान की पूजा अफ्रीका से चीन तक, साईबेरिया, जापान से जावा सुमात्रा तक क्यों की जाती रही ? आखिर भारतीय मिथकीय गरूड़देव और सम्पाति के नाम पर पूर्वी एशियायी देश ने एयरलाइन्स के नाम क्यों रखा ? लुफ्थान्सा शब्द भी अप्रभ्रन्ष होकर भारतीय मिथक का है ?

सारसंक्षेप में भारतीय विदेश सेवा के राजनयिकों को प्राचीन भारत में राजनयन की सृमद्ध परम्परा की जानकारी होना आवश्यक है। विश्वभर में भारतीय मिथक कुतुहल और प्रेरणा का विषय बने हैं। इन मिथकों का ज्ञान कूट संकेतों और प्रतीकों में सम्माहित है। राजनयन में कौटल्य का अर्थशास्त्र दिशा निर्देशक की अहम् भूमिका में है। ऊँ

विश्वभर में हनुमानजी एवं श्री राम की पूजा का रहस्यलोक

विश्व के अधिकांश महाद्वीपों में रुद्रावतार महावीर हनुमत के देवत्व और प्रतिमाओं के प्रमाण मिलते हैं। वेद से पूर्व अर्थात् 29 वर्ष पहले भी संस्कृति में कपि बन्दर आकृति की देव प्रतिमाओं को दुर्लभ खजाना मिला है।

प्राचीन मिश्री सभ्यता, बेबिलान संस्कृति, यूनानी संस्कृति, अफ्रीका, साईबेरिया से आहड़ सभ्यता से लेकर मोहन जोदड़ो तक में रुद्रावतार हनुमान की प्रतिमायें मिली हैं। औरायण क्षेत्र की सभ्यता संस्कृति में कपि रूप हनुमान के देवत्व को प्राचीन काल से पूजने का विधान रहा। यही मूलभूत कारण है कि यूरोप, मध्य एशिया, दक्षिणी एशिया, पूर्वी एशिया, अफ्रीका, रूस आदि में हनुमानजी की पूजा अर्चना और मूर्तियों का तिलिस्मी खजाना मिलता है।

साम्यवादी–कम्युनिस्ट चीन में दशरथ कथानकम् का अनुवाद त्सा पोत्संग में है। यह कथा पाँचवी शती में चीन में लोकप्रिय हुई। चीन के अनामक जातकम् में मर्यादा पुरूषोत्तम श्रीराम, जानकी सीता, कपिवीर हनुमान के चरित्र का वर्णन अपने ढ़ंग से है। पीली किरणवाले चीन में श्रीराम का नाम बदलकर अनामक हुआ। अनामक बोधिसत्त्व हैं और उनकी पत्नी को समुद्र के द्वीप में रहनेवाला नागराज काम आसक्ति के कारण हरण करके ले गया। उस समय देवराज इन्द्र एक छोटे वानर का रूप धारण करके आये। वैसे श्रुति ऋग्वेद में इन्द्रदेव के मित्र वर्षाकपि हैं। इसत्रह चीन में कपि वानर हनुमानजी की पूजा हो रही है। चीन में मिथकीय दशरथ कथानकम् के अनुसार प्राचीन युग में मनुष्यका जीवनकाल 10000 वर्ष का था और दसरत (दशरथ) यमक दर्रे जम्बूद्वीप के सम्राट थे। उनके पुत्रों का नाम रम एवं रमन था। यह कथा चीन में तीसरी शती में जन जन का कण्ठहार बनी।

तिब्बत में रामायण का नवनीकृत रूप है। इसमें राजा दशरथ को ऋषियों के दिव्य फल से रामन और लक्ष्मण राजकुमार जन्म लेते हैं। तिब्बति रामायण में जानकी को लंकेश्वर रावण की अशुभ पुत्री बताया है। जिसे लीलावती पालती हैं। दशरथ के उत्तराधिकारी चयन में रामन को वनवास मिलता है। वे अशोक वन में सीता जानकी के साथ रहने लगते हैं। रावण सीता को अशोक वन सहित उठाकर ले जाता है। इस कथा में जटायु का नाम अजगम और उसके साथ संपदा (सम्पाति) है।

यहाँ भी हनुमान रामन की मुद्रिका लेकर सीता के पास जाते हैं। लाओस में फारक फालाम एवं फोम्मचक महाकथा के रूप में प्रचलन में हैं। लाओस की राजधानी लुअंग के मन्दिर में रामकथा को भित्ति चित्रों में संजोया गया है। लाओस को अयोध्या के रूप में वर्णित करते हुए श्रीराम को गौतम बुद्ध और सीता को यशोधरा के रूप में प्रदर्शित किया है। सुन्दर राजकुमार देवदत्त रावण के चरित्र में है। भगवान् बुद्ध भिक्षुओं को इन्द्रप्रस्थ के राजा दशरथ की कथा सुनाई। कथा के अनुसार इन्द्रप्रस्थ की रानी के गर्भ से लुपलूल का जन्म हुआ। लुपलुल को थेने देव को अर्पित किया गया। लुपलूल ने पुनः देवलोक से आकर देवी मल्लिका के गर्भ से जन्म लिया। उसके हाथों में तलवार, धनुष, बाण थे। अतः उसका नाम रावणासुर रखा। रावणासुर के आतंक से त्रस्त् उसके चाचा दशरथ की रानी के गर्भ में भावी बुद्ध (बोधिसत्त्व) ने प्रवेश किया। राम जातक में एक ऋषि ने मिट्टी की सुन्दर युवति देवी खेसी में प्राण डाले। प्रकारान्तर में वह वानरी बनी और वानर रूपी राम से हनुमान का जन्म हुआ।

कम्बदेश कम्बोडिया में भी ग्यारहवीं शती तक राम कथा और हनुमानजी की पूजा होने लगी। उत्तरी ध्रुव के नजदीक साईबेरिया के बुर्यात साड्. सुबाशिदी महाकथा रामायण का ही सारसंक्षेप है। साईबेरिया में कपिराज हनुमान लोकरक्षक देव के रूप में पूजित रहे। विश्व प्रसिद्ध अंकरकोट महामन्दिर की दीवारों पर चित्रकारों ने प्रदर्शित किया है। खमेर साहित्य की अमरकृति रेयार केर–रामकिर्ती महाग्रन्थ में राम, हनुमान, सीता,रावण, मन्दोदरी, सुग्रीव का रोमांचक वर्णन है। पूर्वी जावा में जोगुजकार्ता में परमवनन (शिव) मन्दिर की आन्तरिक नीचे की दीवार पर राम कथा शिल्पियों ने उत्कीर्ण की है। परमतनगण शिव मन्दिर के प्रस्त्र पर राम कथा शिल्पियों ने उकेरी है। परमतनगण शिव मन्दिर के प्रस्त्र फलकों पर रामायण काकविन का प्रदर्शन बहुत उत्तम है। जावा का सेरतकाण्ड काव्य–रामकेलिंग भी रामायण का ही रूप है। इस महाकाव्य के ऋषि यस दी पुरा हैं। रामकेलिंग में हनुमान सीता से चूड़ामणि लेते हैं।

मलाया में श्रीरामकथा को हिकायत सेरीराम, हिकायत महाराजरावण, श्रीराम के रूप में प्रचलित है। जिसका मंचन और गायन लगभग 400 वर्षो से अधिक से किया जा रहा है। हिकायत सेरीराम में

लंकेश्वर रावण और हनुमान के चरित्र को विलक्षण रूप में पेश किया है। बाली में बयांग बोंग ही रामायण का रूप है। जावामें रामकथा नृत्य की विधिवत शिक्षा सोलो शहर में दी जाती है। जावा में चमड़े की रूपाकार पुतलियों से रामकथा की प्रस्तुति की जाती है। पुतलियों को चित्ताकर्षक रंगों से संजोया जाता है। परन्तु यहाँ हनुमानजी श्वेतवर्ण हैं और उन्हे श्रीराम से अधिक पूज्य माना गया है। वियतनाम में महर्षि वाल्मीकि की पत्थर की सुन्दर प्रतिमा महाराज प्रकाशधर्म के छठवीं शती के मन्दिर में मिली है। मन्दिर के शिलालेख में राम को विष्णु का अवतार लिखा है। परवर्ती अट्ठारहवीं शती की वियतनामी रावण को हिन्दचीन का राजा बताया गया है। श्रीलंका की सिंहल रामायण में वनवास केवल राम जाते हैं और इसमें हनुमान के स्थान पर बालि हैं। बर्मा म्यमार में भी श्रीराम कथा में बर्मा के राजा को रामयागन चित्रित किया है। रामयागन महाकाव्य रामकियेन पर आधारित है।

थाईलैण्ड में रामायण राम जातक के स्वरूप में है। राम जातक में देवी अंजना का नाम फावंगसी है। फावंगसी के हनुमान जन्म लेते हैं (राम जातक में हनुमान राम के पुत्र हैं।)। थाईलैण्ड की राजधानी बैंकाक में सुप्रसिद्ध वात फ्रो केओ (बुद्ध मन्दिर) में हरे पत्थर की भगवान् बुद्ध की मोहक प्रतिमा है। मन्दिर में एवं रूतबुराना विहार के सुथात शैली के रामकथा भित्ति चित्र लुभावने हैं। पूर्वी तुर्किस्तान में खेतानी रामकथा प्रचालित रही। सो हनुमान जी वहाँ भी विराजे। मिश्र में आधे वानर–आधे मानवरूप थोथ देवता हैं। लगभग 3800 वर्ष पुराने रामजेज द्वितीय के विशाल मन्दिर के समीप थोथ देव (हनुमानजी) को विशाल प्रतिमायें मिली। प्राचीन यूनान के छोटे कोरिन्थ एवं रोडज द्वीप टापू में मिट्टी कुट्टी की वानर प्रतिमायें प्राप्त हुई। वैसे मिश्र में वानर रूपी हनुमत की होपी के रूप में पूजा होती है। साइलूसिया के पुराने शहर में भी लबादा पहने वानरराज की पूर्ति ईसा पूर्व की हैं। इसमें एक के हाथ में मुदगर है। अफ्रीका के टोनोलाण्ड में वानरदेव की उपासना अपने चरम पर रही। सिन्धुघाटी के उत्खनन में कपि रूप प्रतिमाओं का खजाना मिला। यानी उत्तरी ध्रुव के पास साईबेरिया से अफ्रीका, मिश्र, इराक, जार्जिया से भारत तक औरायण में हनुमानोपासना की जाती रही। ॐ

रहस्यमय श्वेत के कपिदेव :
मध्य अमेरिका होन्डूरस के मिथकीय कपिदेव के विलक्षण देवालय

निकारागुआ से लगे होन्डूरस के घनघोर घने जंगलों के बीच मिथकीय कपिदेव (श्रीहनुमान वानर रूप) के पिरामिडनुमा देवालय जमींदोज हैं। होन्डूरस की मिथकीय देवकथाओं के अनुसार कभी इन दुरसाध्य जंगलों में कपिदेव की पर्वताकार विशाल प्रतिमा थी। लेकिन इस मिथकीय देव की गगनचुंबी प्रतिमा का कोई पता नहीं लगा है।

होन्डूरस के घने जंगलों के बहुमूल्य पुरातात्विक खजाने पर पुरा सामग्री तस्करों की गिद्ध दृष्टि रही है। होन्डूरस के पुरातत्त्ववेत्ता, नेशनल ज्योग्राफिक्स और संयुक्त राष्ट्र के विशेषज्ञ घने जंगलों में 1000 से 2000 वर्ष पुराने ''श्वेत शहर अथवा चिउडा बिनाका शहर'' के पुरातात्विक शेष होते अवशेषों को ढूंढने में लगे हैं। इस मिथकीय श्वेत शहर के प्रधान देवता वानर रूप कपि माने जाते हैं। श्वेत शहर के उत्खनन में अर्धमानव अर्धपशु, अर्धमानव अर्धपक्षी देवों की मन्त्रमुग्ध करनेवाली मूर्तियां मिली हैं। प्राचीनकाल के इतिहासकारों के अनुसार आर्य संस्कृति–एशिया–मध्य, दक्षिणी, पूर्वी, उत्तरी, पश्चिमी, यूरेशिया, चीन, अरबदेश, यूरोप, अफ्रीका, अमेरिका, उत्तरीध्रुव के समीप साइबेरिया में वानरकपि शरीरधारी देव (हनुमानजी) की पूजा अर्चना के प्रमाण मिले हैं। साम्यवादी चीन में भी कपिश्वर की पूजा का विधान रहा। मिश्र के अजूबे कपि की प्रतिमा मिली है। इसलिए होन्डूरस के जंगलों में मिट्टी में दबे पिरामिड रूपाकार पूजागृहों में कपिदेव की मिथकीय भव्य प्रतिमा को होना कोई नया नहीं है।

पुरातित्त्वाविदों के अनुसार 32000 वर्ग किलोमीटर में फैले होन्डूरस के अभेद्यवन में 1000 वर्ष से अधिक प्राचीन समृद्ध सास्कृतिक केन्द्र रहा। दूरदर्शी संवेदनशील उपग्रहों से रहस्योद्घाटन हुआ कि कभी इन जंगलों में मिट्टी के पिरामिड रहे। यह सभ्यता, संस्कृति एक हजार वर्ष पहले एकाएक कैसे विलुप्त हुई ? इन वनों तक जाने के लिए वृक्षों के एक दूसरे से गुथे झुण्ड़ों, जंगली दैत्याकार बेलों, भयानक सांपों,

छिपकलियों और बड़े–बड़े मच्छरों आदि का सामना करना पड़ता है। देश विदेश के पुरातत्त्ववेत्ताओं के लिए इस अंजान वन की सभ्यता संस्कृति का नाम, उसके निवासी और उनका विज्ञान उलझी पहेली बना है। इसकी लिपि, पवित्र ग्रन्थ, मन्त्र अनुष्ठान भी अज्ञात हैं। पर आम बोलचाल में इसे खतरनाक मच्छर इलाका कहा जाता है।

इस अज्ञात सम्यता के उत्खनन में 52 पुरातात्विक कलात्मक प्रतिमायें मिली हैं। होन्डूरस पुरातात्विक संस्थान के निदेशक के सामने मुख्य समस्या इस कपिदेववाले श्वेत शहर की अज्ञात सभ्यता संस्कृति के केन्द्र मच्छर भयानक वन को सुरक्षित रखने की है। उन्होनें अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय से इसमें सहयोग मांगा है। कोलम्बियायी क्षेत्र के भयानक जंगलों की रहस्यमय अदृश्यघाटी की अज्ञात संस्कृति की बहुमूल्य धरोहर पुरातात्विक चोरों के कारण संकट में है। इतिहासकारों के अनुसार लगभग 575 वर्ष पहले स्पेन के खोजकर्ता श्री हेरनान कोर्टेस ने कपिदेव की रहस्यमय घाटी का सुराग मैक्सिकों की गहन यात्रा में किया। कुछ पुरातत्त्वशास्त्री मानते हैं कि अज्ञात कपिदेव घाटी की कलात्मक मूर्तियाँ 10वीं से 14 वीं शती के मध्य की हैं।

यह सबसे भयावह है कि दुधारू पशुओं के कथित चरने आदि से अज्ञात कपिदेव वन के समीप 12 किलोमीटर तक वन की सघनता बहुत कम हो चुकी है। कुछ पुरातत्त्वविदों के अनुसार मध्य अमेरिका में यह अज्ञात सभ्यतावाला मच्छर वन आज भी अछूता अरण्य है। पुरातत्त्ववेत्ताओं को सभी पुरातात्विक महत्व की प्रतिमायें जमीन की खुदाई में प्राप्त हुई। इनमें बलि का यूप, अनुष्ठान पीठ आदि प्रमुख हैं। जिन पर लपलपाती जिह्वावाले देव सर्प, गरूड़ और विचित्र दिव्य पक्षियों को पत्थर पर उकेरा गया है। एक प्रस्त्र पर अर्ध मानव, अर्ध पशुदेव को तक्षित किया गया है। यानी अज्ञात पिरामिडवासी देवात्मा, शैतान और आत्मा में विश्वास करते थे। यह पिरामिड़ सैंकड़ों वर्षों में जमींदोज हुआ। छियासठ वर्ष पहले अमेरिकी श्री थियोडोर मोर्डे ने श्वेत शहर को ढूंढने का दावा किया। यह बात अलग है कि प्राचीन सामग्री के लुटेरों से श्वेतशहर को बचाने के लिए उसका स्थान गुप्त रखा गया। स्मरण रहे कि मैक्सिकों, ग्वाटेमाला में 7500 वर्ष पुरानी माया सभ्यता संस्कृति के दिव्य पिरामिड़ों की श्रृंखला मिली है। माया संस्कृति के ऋषियों ने

हजारों वर्ष के कलेण्डर का यन्त्र भी आविष्कार किया। जिसमें घिर्रियों से वर्ष, दिन और वार की जानकारी मिलती है। क्या श्वेत शहर का माया संस्कृति से कोई सम्बन्ध रहा है? ।।ऊँ।।

गंगाजल के वर्षों खराब नहीं होने की रससिद्धि कीमियागिरी का रहस्य

पश्चिमी देश तीन सौ वर्षों से पावन गंगाजल के दशकों खराब नहीं होने, नहीं सड़ने, कीड़े नहीं पड़ने की चमत्कारिक रससिद्धि कीमियागरी के रहस्य को जानने में लगे हैं। देवभूमि हिमालय से निकली गंगा के पवित्र जल से रोगों के उपचार की दिव्यशक्ति से भी पश्चिमी जगत चकित है। ईसा पूर्व आदिशंकराचार्य ने गंगास्त्ोत्रम् में इस बारे में सिंह गर्जना की :

रोगं शोकं तापं पापं हर में भगवति कुमतिकलापम्।
त्रिभुवनसारे वसुधाद्वारे त्वमसि गतिर्मम खलुसंसारे ॥ 9 ॥

श्रीस्कन्द पुराण के काशी खण्ड के गंगा दशहरा स्त्ोत्र में भी इसकी पुष्टि करते हुए कहा गया : ''रोगस्थो रोगतो मुच्येद्विपदश्च विपद्युत :॥ 42 ॥ '' महर्षि श्रीवाल्मीकि ने गंगा अष्टक में गंगाजल की दिव्य रसायनिक शक्तियों को कूट प्रतीक सांकेतिक शब्दों में कहा : ''पापापहरि दुरितारि तरंगधारि, दूरिप्रचारि गिरिराजगुहाविदारि। झंकारकारि हरिपादरजोविहरि, गांगं पुनातु सत्तं शुभकारि वारि ॥ 7 ॥ महर्षि वाल्मीकि ने स्पष्ट कहा कि गंगा जल सर्वदा तरंगों के लिए पर्वतराज हिमालय की गुफाओं को विदीर्ण कर बहुत दूर तक फैला हुआ है। श्रीवृहन्नारदीय पुराण में गंगोत्पत्ति प्रसंग में गंगाजल को सभी प्रकार

के विषों का नाश करनेवाली कहा गया : 'स्थाणु जंगम संभूत विषहंत्रि नमोऽस्तु ते। संसार विषनाशिन्यै जीवनायै नमोनमः ॥ तापत्रियहंत्र्यै च प्राणेश्वर्ये नमोनम :। यानी गंगा अधिभौतिक, अधिदैविक, अध्यात्मिक तीनों तापोंको नाश करनेवाली है। इसी प्रसंगमें आगे लिखा है : 'दशधा संस्थितैर्दोषै : सर्वैरेव प्रमुच्चते। रोगी प्रमुच्चते रोगान्मुच्येतापन्नआपद ॥''

श्रीब्रह्मवैवर्त पुराण के गंगास्त्ोत्र में गंगा की अलौकिक सिद्धियों का संकेत है : ''सिद्धिदा सिद्धिसंसेण्या सिद्धिपूज्या सुरेश्वरी। साधिका साधना तुष्टा साधकानां प्रियंकरी ॥'' 'योगगम्या योगिधरा योगप्रीतिविवर्द्धनी। योगमार्गरता साध्या साधकाभीष्ट दायिनी।'' पुराण और महर्षि वाल्मीकि, आदिशंकराचार्यने अपने स्त्ोत्रोंमें गंगाकी अद्‌भुत दिव्य चमत्कारी, रोगों को हरनेवाली शक्तियों का सीधा सम्बन्ध हिमालय पर्वतमाला और पर्वतराज में हजारों वर्षों से होनेवाली अध्यात्मिक साधना (जप,तप, स्त्ोत्र, स्तुति और योग) की स्पंदन शक्ति से माना। आर्ष ग्रन्थों में गंगा जल को कभी नहीं सड़नेवाला लिखा गया। यद्यपि पश्चिमी जगत अध्यात्मिक शक्ति को नकारता रहा है। यह अवश्य है कि वे हिमालयी त्रिनदियों भागीरथी, अलकनन्दा, मन्दाकिनी आदि के पवित्र संगम से जनित श्रीगंगा की दिव्य शक्ति से चमत्कृत हैं।

राष्ट्रीय पर्यावरण अभियांत्रिकी शोध संस्थान ने गंगा जल की विशिष्ट शक्तियों की गहन जांच की। गंगोत्री अथवा गौमुख से निकली भागीरथी और महादेव शिव की जटा से निकली अलकन्दा के पवित्र जल में विषाक्त जीवाणु बैक्टीरिया को समाप्त करने की शक्ति कैसे है ? प्रो. जी.डी. अग्रवाल गंगा बचाने के लिए आमरण अनशन पर देह त्यागी। अध्यात्मिक कीमियागरों ने रहस्योदघाटन किया कि गंगाजल के पात्रों में नीचे रेत और मिट्टी पैदे में बैठ जाती है। इस हिमालयी रेत एवं मिट्टी में खनिज ताम्बा, खनिज क्रोमियम, स्टेराइड आदि होते हैं। खनिज ताम्बे की विशेषता है कि वह गगांजल में उत्पन्न जीवाणुओं और फफूंदी को नष्ट करने की शक्ति रखता है (इसी कारण प्राचीनकाल से जम्बूद्वीप में जल मिट्टी के घड़े और ताम्रपात्र में रखने की समृद्ध परम्परा है। भारतीय ऋषियों को ताम्बे की जीवाणु फफूंदी नाशक शक्ति की जानकारी थी।)। दूसरे, क्रोमियम जल की विषाक्ता को जड़ मूल से हटाता है। क्रोमियम

रोगाणुओं के कायाशं पैदा होते ही शिकार बनता है। स्टेराइड जीवनी शक्ति है।

हिमालय की पर्वतमालाओं के वनों में पैदा होनेवाली जड़ी बूटियां आदि भी गंगाजल की धारा में मिलती हैं। गंगाजल में ऊँची पर्वतमाला में पायी जानेवाली कायाकल्प में सक्षम औषधि स्वतः ही घुलती हैं। वैज्ञानिक अध्ययनों के अनुसार हिमालय पर्वतमाला में खनिज स्टेराइड और संजीवनी पौधे प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं। ये विभिन्न नामधारी गंगा की धाराओं में बिना रूकावट मिलते रहते हैं। यही रहस्य है कि साधक केवल गंगाजल पीकर एवं सूर्य ऊर्जा से स्वस्थ रहते हैं। हिमालय के केदारनाथ हिमनद, श्रीबदरीविशाल हिमनद, गंगोत्री हिमनदों और हिमनदों के मध्य असंख्य जलाशयों–झीलों का जल तेजोविकिरण से सम्पन्न होता है। हिमनदों की बर्फ से प्रत्यावर्तित सूर्य किरणें तेजोविकिरणमय होती है। स्मरण रहे कि इन हिमनदों के मध्य अदृश्य अध्यात्मिक ज्ञानगंज, वसिष्ठ आश्रम, विश्वमित्र आश्रम आदि हैं। सूर्य की संहारक नील बैंगनी किरणें तेजोविकरण (रेडियोएक्टीविटी) के साथ गंगाजल में समाती हैं। फलस्वरूप गंगाजल में सामान्य जल से 150 प्रतिशत अधिक तेजोविकिरण मिलने की पुष्टि हुई है। वैज्ञानिक शोध के अनुसार में सामान्य से अधिक तेजोविकिरण मानवीय शरीर के लिए हानिकारक नहीं होकर वरदान बना है। इसी तेजोविकिरण, ताम्बे, क्रोमियम, स्टेराइड, संजीवनी और अन्य खनिज एवं जड़ी बूंटियोंने गंगाजल को 'अमृतमय रोग हरने' की दिव्य शक्ति दी।

इसे योगियों–साधकों के तेजोमय मंत्रमय स्पन्दन ने अदृश्य रूप से अधिक रहस्यमय शक्ति सम्पन्न किया। पुराणों से लेकर आदिशंकराचार्य ने इसी रहस्य को समझकर गंगाजल को रोग, शोक, ताप, पाप को हरनेवाली कहकर स्तुति की (यहाँ रोग–शरीरगत बीमारी, शोक–मानसिक संताप, ताप–पाप–अध्यात्मिक व्याधि है।)। वैसे प्रो. अग्रवाल के अनुसार हिमालय की चट्टानों के तेजोविकिरण खनिज गंगाधारामें विकिरण बढ़ाते हैं और रेत के रूप में रहते हैं।

गंगा उत्पत्ति में त्रिधाराओं भागीरथी, अलकनन्दा एवं मन्दाकिनी का भगवान् शिव, भगवान् विष्णुपद एवं श्रीब्रह्मा के कमण्डल से निकास माना गया है। तीनों का महासंगम देवप्रयाग में होता है। यदि तीनों

नदियों की धाराओं को रोककर बांध बनाए गए और 27 किमी तक लम्बी सुरंगोंमें नदियोंका जल बहाया गया तो उसके दुरगामी प्रभाव होना निश्चित है। हिमालयी नदियाँ चट्टानों के खनिजों, दिव्य जड़ी बूटियों और तेजोविकिरण के सम्पर्क में कैसे आयेंगी ? राष्ट्रीय पर्यावरण अभियान्त्रिकी संस्थान के अनुसार गंगाजल की लगभग 90 प्रतिशत मिट्टी रेत तल में बैंठ जाती है। इसीमें खनिज ताम्बा, क्रोमियम, तेजोविकिरण धातु आदि होते हैं। चुनाचे टिहरी बांध के जल की आन्तरिक शक्ति खत्म हो जाती है। टिहरी बांध से निकले गंगाजल में चमत्कारिक पानी नहीं सड़ने की शक्ति नाम मात्र की रह जाती है । जबकि भागीरथी, अलकन्दा के जल में नहीं सड़नेवाली विशेषता है। गंगाजल में कायांशओं की उत्पत्ति सामान्य जल की ही तरह होती है लेकिन उसमें उपस्थित मिट्टी सभी को निवाला बनाती है।

भागीरथी, अलकनन्दा के कायांशों का अपना ही महत्व है। वे गंगा की दोनों नदियों के जल में पैदा होनेवाले कीड़ों को जन्मने से पहले खत्म कर शुद्ध सौ टंच सोना अर्थात् रोगनाशक अमृतमय रूप देते हैं। यह चकित करता है कि ये कायांश हिमालयी वनस्पति में भी मिलते हैं। हिमालय में उत्तर में $30^{0}55$ 'एवं पूरब में $79^{0}7$' स्थित गंगा 13800 फीट से भी ऊपर से निकलती है। गंगोत्री से 2 मील दक्षिण में बिन्दुसार स्थल पर महाराजा भगीरथ ने महादेव नीलकण्ठ शिव की कठोर तपस्या की। बिन्दुसार के ऊपर हिमनदों का अपना रहस्यलोक है। हिमनदों के जल में अप्रत्याशित रूप से चमत्कारिक औषधीय शक्ति होना पाया गया है। इन हिमनदों में भारतीय योगी साधु आदि शून्य से नीचे की हड्डियों को गलानेवाली सर्दीमें नंगे भष्म लीपे शरीर और लंगोटीमें नंगे पैर विचरण करते हैं। इन साधुओं के चलने की गति सामान्य मानव की चाल की तुलना में तेज भागने के समान होती है। साधु प्रातः अरूणोदय के सूर्य की ऊर्जा का पान करते हैं और गंगाजल से तृप्त होते हैं। वैज्ञानिक अभी आध्यात्म जगत और गंगा के सम्बन्ध को समझने में असमर्थ हैं। वे नहीं जानते कि गंगा से सम्बन्धित चार धाम पवित्र तीर्थ हैं। गंगा स्वयंभुतीर्थ है। तीर्थ के बारे में लिखा है : ''रजस्त्मोविरहितैस्त्पसा धूत कल्मषै :। यदध्यासित्मर्हद्भिस्त्दुधितीर्थ प्रचक्षते ॥'' ऊँ

वेदों के अनुसार
ब्रह्माण्ड का दिव्य अप गंगा

'सर्वमापोमयं जगत'यानी ब्रह्माण्ड में अप (अम्भः) दिव्य जल व्याप्त है। वेद में गंगा शब्द मात्र दो बार उपयोग में आया है। स्मृति एवं इतिहास में सुमेरु पर्वत के ऊपर दिव्य नदी गंगा के जल प्रवाह का उल्लेख है।

श्रुति–स्मृति के अनुसार आकाश में असंख्य ब्रह्माण्ड हैं और अनेक (बारह/अनन्त) सूर्य हैं। ऋृग्वेद में कहा हैः चन्द्रमा अप्स्वन्तर सुपर्णो धावते दिवि –चन्द्रमा अप के अन्दर दौड़ रहा है। ब्राह्मण ग्रन्थों से लेकर उपनिषद, स्मृति, पुराण में समूची सृष्टि की उत्पत्ति अप या जल से स्वीकारी गई। किन्तु अप का सामान्य वेदीक अर्थ जल लेना सही नहीं है। वेदों के सूक्तों का गुह्य रहस्य प्रतिकात्मक, कूट शब्दों में है। उदाहरण के लिए वेद में गौ शब्द सूर्य की रश्मियों, वाक, प्रजनन, मातृत्व आदि के रूप में उपयोगित है। वेद का अम्भ, अप एक रूप द्रव्य है। अतः अम्भः या अप ब्रह्माण्ड का दिव्य जल है। ऋृग्वेद में ही उल्लेख हैः 'असूर्या उपसूर्ये याभिर्वा सूर्यः यह तानो हिन्वन्ल्वध्रम्।।' इसका अर्थ है कि सूर्य के साथ और नजदीक अप विद्यमान है। अथर्ववेद कहता है कि अग्नि और सूर्य अप में ही उत्पन्न हुएः हिरण्यवर्णाः शुचयः पावका यह सुजातः सविता या स्वातिः।' सूर्य के अन्दर हाइड्रोजन एवं हिलियम का दहन हो रहा है। वैज्ञानिक दृष्टिकोण से जल की रचना हाइड्रोजन अग्नि और जल दोनों के लिए काम आती है।

भगवान् सूर्य के उदय होने और अस्त् होने पर अप की स्थितियों में परिवर्तन होता है। स्मरण रहे कि देववाणी वेद श्रुतिका साक्षात्कार करनेवाले ऋृषियों ने दावा किया कि उन्होने सूर्य का चक्कर लगाया और अन्दर दहनशील धूम्र को देखा (वैज्ञानिक अभी सूर्य देव की परिक्रमा लगाने में सफल नहीं रहे हैं। वेदीक देवताओं के शरीर विज्ञान में सूर्य को स्नायु तन्त्र माना है।)। अथर्ववेदके मन्त्र में तीन प्रकार के जल की घोषणा

की गई हैः 'या आपो दिव्य पयसा मदन्तयरिक्ष उत वा पृथिव्याम। तासां त्वा सर्व साम पापन्निषिचामि वर्चसा।।' इस प्रकार तीन अप–दिव्य अप, अन्तरिक्ष अप और पृथिवी भूमि अप हैं। दिव्य अप सूर्यलोक द्युलोक का है। अनुष्ठानिक मन्त्र भी है : 'ऊँ या दिव्या आपः पयसा सम्बभूवु र्या अन्तरिक्षा उत पार्थिवीर्याः।' हम दिव्य अप जल को सभी रसों में शामिल स्वीकारते हैं।

यह दिव्य जल, सूर्य लोक द्युलोक का जल और अंतरिक्ष जल के बारे में पश्चिमी जगत ने भ्रान्ति फैलायी। द्युलोक और अनेक सूर्यों की वेदीक अवधारणा को पश्चिम ने लगातार नकारा, प्रकारान्तर में स्वीकारा। वेदीक विज्ञान के अनुसार सूर्योदय के समय सूर्य किरणों के तेज के कारण ब्रह्माण्ड का अप अपनी जगह से हटने को विवश होता है। यहाँ यह समझना आवश्यक है कि आकाश में ब्रह्माण्डों की अपनी–अपनी सीमायें हैं। इस सीमा पर एक सूर्य की किरणों का तेज खत्म होता है और दूसरे सूर्य की शुरू होती है। इस सीमान्त पर सूर्य की शक्ति एवं तेज बहुत ही क्षीण कमजोर होता है। यहाँ अप एकत्र होने लगता है। यह ब्रह्माण्ड का दिव्य जल–दिव्य अप है। हमारी पृथिवी पर भी ध्रुवक्षेत्र में अप घनीभूत होकर हिम का स्वरूप लेता है। स्मृतियों में रचिताओं ने सृष्टि को गोपनीय रखते हुए 'ब्रह्माण्ड की गंगा' का रहस्योद्घाटन किया। इसी से प्रेरित होकर 'आकाशगंगा' का उद्घोष हुआ ।

वैज्ञानिक रूप से देखें तो अंतरिक्ष में एकत्र जल अपने भार से नीचे पृथिवी की ओर आया। ''यह सूर्यलोकका दिव्य जल पवित्र दिव्य पर्वत सुमेरु पर प्रवाहित हुआ।'' यही ''गंगा'' कहलाया। इसे वामन अवतार, वराह अवतार आदि की कथाओं में पिरोया गया। यह समझना आवश्यक है कि सूर्य के सहस्त्रनामों में विष्णु एवं वराह भी है। श्रीरुद्रका एकनाम दिवो वराह है। दिव्य दृष्टा वेद के ऋषियों ने गंगा के भीतर अदृश्य दिव्य गुणों को उद्घाटित किया (यद्यपि सांकेतिक प्रतीकात्मक कूट रूप में ही। उन्होंने गंगा के द्युलोक से सम्बन्धों की बारीकियों को जानाः ''इदमापः प्रवहत युत्किञ् च दुरितं मयि। यद्वाहमभि दुद्रोह यद्वा शेष उतानृतम्।।)''।

जगतकी आत्मा सूर्य सवितादेव की किरणों में अप की उपस्थिति का रहस्य ऐतरेय ब्राह्मण में 'मारीचि' शब्द से किया। स्पष्ट है कि वेद में

अप का एक रूप मारीचि कहा गया। वेदीक ऋषियों की स्पष्ट मान्यता थी कि यह अप समूचे ब्रह्माण्डों में फैला हुआ है। चाहे धूम्र गैस रूप में ही हो। यही कारण है कि वेद के ऋषि दिव्य जलवाली पवित्र नदियों की स्तुति करते हैं 'इमं में गंगे यमुने सरस्वती शुतुद्रि स्त्ोमं सचता परूष्ण्या असिक्न्या मरूवृधे वितस्त्थार्जोकीये श्रृणुत्वार सुषोमया।।' यह आकाशीय अप या श्रीजल रोग, शोक, ताप, पाप और मन, कर्म, वचन के पापों को हरनेवाला है। सूर्यलोक से आया जल पृथिवी पर दिव्य चमत्कारी औषधीय शक्तियों से सम्पन्न है। इसकी दिव्यता ही इसे वर्षों तक सड़ने नहीं देती है। काक भुशण्डी और वाल्मीकि ने गंगा की दिव्यता का गान किया। कथानकों में स्वर्गलोक से सदाशिव की जटाओं एवं सुमेरु पर्वत की चट्टानों से टकराती गंगा का भव्य वर्णन वाल्मीकि ने कियाः 'ब्रह्माण्ड खण्डयन्ती हरशिरसि जटावल्लि मुल्लासयन्ती। स्वर्लोका दापतन्ती करक गिरि गुहा गण्ड शैलाल्स्खलन्ती।। अंतरिक्ष में ही सूर्य किरणें से यमुना दिव्य नदी की उत्पत्ति कही गई। यमुना को सूर्यदेव की तनया (सुपुत्री) नामकरण दिया गया।

स्मृति ग्रन्थों के अनुसार हजारों वर्ष दिव्य अप धूम्र अथवा दूसरे रूप में आकाश में मौजूद रहा । उसके बाद ही अप जल द्रव्य–द्रव के रूप में आया। श्रीविष्णुपुराण में गंगा के श्री विष्णु के पैर से निकलने का आख्यान है। वामन अवतार की कथा के मर्म में जाने से नये रहस्य उद्घाटित होते हैं। वामन भगवान् के पद से ब्रह्माण्ड का सीमान्त क्षेत्र टूटा। इस सीमान्त क्षेत्र में घनीभूत अप दिव्य जल धारा बह निकली। यही सुमेरु पर्वत पर बह चली। अध्यात्मिक भाषा में विष्णु पैर 'सप्तऋषि प्रदेश' है। सदाशिवका एकनाम व्योमकेश है। महाभारत के भीष्मपर्व में जम्बूखण्ड निर्माण में वर्णन मिलता है : 'तां धारयामास तदा दुर्धरां पर्वतैरपि शतं वर्ष सहस्त्राणां शिरसैव महेश्वरः।' स्मरण रहे कि भीष्म पितामह गंगा पुत्र थे। श्रीमद्भागवद में भी गंगा के विष्णु के वाम पद से प्रवाहित होने का ब्योरा है। मन्त्रों में उल्लेख हैः 'अप्सु में सोमो अब्रवीदन्तर्विश्वानि भेषजा अग्नि च विश्वशभुवम्।' मन्त्र बताता है कि अप में विद्यमान सोम में सभी औषधियां हैं। साथ ही अप में अग्नि है। स्वाभाविक रूप से अप में सोम और अग्नि दो तत्त्व हैं। ब्रह्माण्ड के दिव्यजल में अधिदैविक शक्तिवाला सोम और अग्नि दिव्यशक्ति सम्पन्न है। यह दिव्यजल सूर्यलोक के अलावा मह और

जन लोक में भी उपलब्ध है। सारसंक्षेप में वेदीक ग्रन्थों में वर्णित दिव्यजल गंगा के रूप में है। यह कल्याणपरक है।।ऊँ।।

वेदीक नदी गंगा के पुराणों के महाकाल रूप में सावधान

प्रथम वेद ऋग्वेद में गंगा का नाम मात्र दो बार ही आया है। वेदीक गंगा के लिए उसके शाब्दिक एवं कूट सांकेतिक भाषा के अर्थों को समझना आवश्यक है। गंगा का शाब्दिक अर्थ लगातार बहनेवाला जल प्रवाह है। वेद के भाष्यकार महापण्डित श्री टी.वी. कपाली शास्त्री ने वेदीक सरस्वती को ज्ञान का प्रवाह माना। वास्त्व में वेदों के सांकेतिक, कूट, प्रतीकात्मक शब्दों का अपना इन्द्रजाल है। वेदीक गंगा और प्रकारान्तर में पुराने कथनों को नये समसामयिक परम्परा में कहने 'पुराण' की गंगा बिलकुल अलग–अलग है।

पुराणों में कहा गया : ''गम्यते ब्रह्मपद्मनया''। अर्थात् विग्रह ब्रह्म होने के कारण गंगा नाम हुआ। प्राचीन काल से गाया गयाः ''गंगा तारयति वै पुंसां दृष्टा, पीताऽवगाहिता'' (पतित पावन गंगा के मात्र दर्शन, अवगाहन एवं पीने से मनुष्य भवसागर से पार हो जाता है, यानी वैतरणी पार करवानेवाली है।)। उल्लेखनीय है कि देश में गंगा के उपजाऊ दोआब के समीप लगभग एक तिहाई जनसंख्या रहती है। उत्तराखण्ड, उत्तरप्रदेश, बिहार, पश्चिमी बंगाल की 6 लाख 2 हजार छह सौ आठ वर्ग किलोमीटर खेतीहर क्षेत्र गंगा से सिंचित है। महान्दी गंगा का

महत्व सत्युग, त्रेतायुग, द्वापरयुग से कलियुग में समान मिलता है। कुछ पुराणों के अनुसार सदाशिव महादेव की जटा से गंगा की उत्पत्ति ज्येष्ठ शुक्ल दशमी को हुई ''दशमी शुक्ल पक्षे तु ज्येष्ठे मासि कुजेऽहनि। अवतीर्णायतः स्वर्गात हस्त्क्षे स सरिद्वारा।।'' यह चेतावनी वराह पुराण में दी गई हैः ''पृथ्वी गंगयाहीना भविष्यत्यन्तिमें कलो'' (कलिकाल के आखरी चरण में पवित्र नदी गंगा का बहना बन्द हो जाएगा।)।

श्रीवृहन्नारदीय पुराण के गंगोत्पत्ति प्रसंग में वसु ने कहा कि भगवती गंगा के तट पर ब्रह्मस्वरूप किसी भी देवी, देवता की अर्चना से भक्त देवमय हो जाता है। गंगा पर ''नमः शिवाय'' के पाँचाक्षरी मन्त्र के 24 लाख जप से भक्त शिव स्वरूप लेता है। वहीं छह महिने तक गंगा तट पर ''ऊँ नमो नारायणाय'' महामन्त्र जप से सिद्धि मिलती है। इसी पुराण में गंगा के शान्त एवं उग्र दोनों रूपों की स्तुति की गई है। यह भी स्पष्ट किया है कि ईश्वर का एक ही स्वरूप रुद्र एवं विष्णु, गंगा एवं रुद्राणी, लक्ष्मी एवं पार्वती है। उनमें भेद करना पागलपन मूर्खता है। श्रीगंगासहस्त्रनाम का विवरण स्कन्दपुराण के केदारखण्ड में मिलता है। श्री गंगासहस्त्रनाम स्वर्ग से पृथिवी पर उतरी गंगा के पालनहार एवं महासंहारक रूप से साक्षात्कार करवाता है। इसमें गंगा को ''रक्तम्बधरा रक्ता रक्ताक्षी रक्तवर्जिता। रक्तृप्ता रक्तहरा रक्तस्य वृद्धिदायिनी'' कहा है (गंगा रक्तको धारणकर्ता, रक्त सरीखे रूप की, लाल नेत्रवाली, रक्त से तृप्ति करनेवाली, रक्त को हरनेवाली, रक्त को बढ़ाने वाली है।)। इसी स्त्ोत्र में गंगा को कराल मुँहवाली, ज्वाला, ज्वलनांगी, सर्वभक्ष्या, कालतनया, रुद्राणी, महाभैरवनादकरनेवाली, भैरवी, भष्म को धारण करनेवाली, अग्निस्वरूप, कृतिका, चट्टानों को तोड़नेवाली, पर्वतों के टुकड़ेकर बहानेवाली, देव एवं दानव स्वरूपिणी कहा है। ईश्वर ने स्त्ोत्र में गंगा को कालरूपिणी, कालिका, मुण्डमाला, काली, चण्ड अट्टहासकत्री, शैवी, कालेश्वरी, रूण्डा, कालांगी, अग्निगर्भा, षाढ़ांगी, त्रिजिह्वा, त्रितन्त्री, त्रिनेत्रवान आदि के नामों से स्तुति की है। इन नामों से गंगा के संहारक रौद्र स्वरूप से परिचय होता है।

गंगोत्पत्ति वर्णन में गंगा के महाकाल स्वरूप की चेतावनी उल्लेखित है। ''तीर त्यक्त्वा वसेत्क्षेत्रे तीरे वासो न चेष्यते। एक योजन विस्त्ीर्णा क्षेत्र सीमा तटद्वयात।। गंगासामां न लंघति पापान्यखिलान्यपि।

तां दृष्ट्वा पलायंते यथा सिंह वनौकसः।। यत्र गंगा महाभागे राम शंभुतपोवन। सिद्ध क्षेत्रं तु तज्ज्ञेयं समन्तातु त्रियोजनम्।।'' इसका अर्थ है कि गंगा के तीर तट छोड़कर क्षेत्र में रहना चाहिए। गंगा के दोनों किनारों से सीमा चार कोस चौड़ी होती है। सभी प्रकार के पाप गंगा की सीमा की लक्ष्मण रेखा का लंघन नहीं करते हैं। उसे देखकर सिंह और हिसंक पशु भी भाग खड़े होते हैं। यदि गंगा के समीप राम और शिव का तपोवन हो तो उसके 12 कोस के घेरे में सिद्ध क्षेत्र होता है। वर्तमान परिपेक्ष्य में श्रीवृहन्नारदीय पुराण के गंगोत्पत्ति प्रकरण में गंगा के तीर तट से दोनों तरफ दो–दो कोस तक निर्माण नहीं करने का चेतावनी दी गई है। साथ ही गंगा के गंगोत्री, भागीरथी, अलकनन्दा, मन्दाकिनी के तपोवनों की पवित्र यथावत रखने को कहा है। यहाँ गंगा का गर्भ, तीर एवं क्षेत्र की व्याख्या है। देवभूमि उत्तराखण्ड में साम्ब सदाशिव की दैविक जटा से निकली अनेक गंगाओं के तीर और तपोवन विकास और ऊर्जा की महत्वाकांक्षा से अतिक्रमण, निर्माण से क्षत–विक्षत हैं। ऐसे में त्रिनेत्री रुद्राणी गंगा अपने बचाव के लिए क्या करें ? गंगाजल की दैविक शक्ति अंधी दानवी सुरंगों, पनबिजली के जननयन्त्रों से गुजरकर कभी खराब नहीं होने का तेज खोने लगी है। क्या गंगा के शॉप मोचन का समय आ गया ? ''अद्य प्रभृति देवेशि ! कलेः पाँचसहस्त्रकम्। वर्ष स्थितिस्त् भारत्याः शापेन भारते भुवि।।'' स्कन्दपुराण में भी उल्लेख हैः ''कलर्दश सहस्त्रान्तै विष्णुस्त्यक्ष्यति मेदिनीम्। तदर्ध जाह्नवी तोयं तदर्ध ग्राम देवता।।'' गंगा महामात्य से स्पष्ट होता है कि वेदीक नदियों की तुलना में गंगा नई है। गंगा को हिमालय के पर्वतों की घनघोर शृंखलाओं अर्थात् जटा से पश्चिमी बंगाल में गंगासागर तक ले जाने के लिए महाराजा भगीरथ ने कठोर तप किया। अन्त में गंगा महान्दी के रूप में आर्यवर्त –ब्रह्मवर्त की संजीवनी बनी। हिमालय की पर्वतमाला के नवीन भुरभुरे स्वरूप को ध्यान में रखकर पुराणकाल के ऋृषियों ने गंगा के मैदान तक हरद्वार आने तक के क्षेत्र को सिद्ध तपोवन की संज्ञा दी। चाहे वर्तमान में विकास की आंधी में गंगा की चेतावनी को सुना अनुसुना करें।

भगीरथोपाख्यान में गंगा को सम्पूर्ण संसार में गमन करनेवाले नामकरण के पीछे गोपन सन्देश है। गंगास्त्रोत्र में गंगा के ब्रह्मलोक के

क्षेत्र, शिवलोक के क्षेत्र, इन्द्रलोक के क्षेत्र, ध्रुवलोक के क्षेत्र, चन्द्रलोक के क्षेत्र, सूर्यलोक के क्षेत्र, गौलोक के क्षेत्र, सत्यलोक के क्षेत्र, तपोलोक के क्षेत्र आदि का वर्णन है। गंगा कैलास को सहस्त्र योजन चौड़ाई एवं सात सहस्त्र लम्बाई में घेरे है। व्यासजी ने लिखा कि गंगा सत्युग में दुग्धवर्णा, त्रेता में चन्द्रवर्णा, द्वापर में चन्दन की भांति थी। कलियुग में जल रूपा है। महर्षि वाल्मीकि के गंगाष्टक स्त्रोत्र में गंगा का वर्णन हिमालय की गुफाओं से गुजरनेवाला लिखा। वाल्मीकि ने गंगा को शैलसुतासपत्नि यानी गिरिजासपत्नि माना। उनके अनुसार गंगा स्वर्गारोहण का सोपान है। वाल्मीकि ने गंगा के सभी नामों को पापों का उद्धारक स्वीकारा।उनके अनुसार कलियुग में गंगा ही पापों से मुक्ति का एकमात्र साधन होगा।

यह त्रासदी है कि शक्ति स्वरूपाजगत जननी गंगा के रूपाकार को विकृत किया गया। आधुनिक विकास की आंधी में उत्तर से दक्षिण एवं पूरब से पश्चिम तक जन–जन की आस्था का केन्द्र गंगा त्रस्त् है। पुराणों की भावमय गंगा के द्वारा ही अध्यात्मिक पुनर्जागरण सम्भव है। ।।ऊँ।।

गंधमादन–रुद्रहिमालय गंगा के सिद्ध क्षेत्र

ऋग्वेद में हिमवान के उल्लेख में परमब्रह्म की महन्ता का वर्णन है : ''यस्येमे हिमवन्तो महित्वा यस्य समुद्रं रसया सहाहु :। यस्येमे प्रदिशो यस्य बाहू कस्मैं देवाय हविषा विधेम ||'' (1–121–4)।

महर्षि लोमेशने देवी गंगा और उसके सुमेरु पर्वत से सिंहगर्जना के साथ प्रचण्ड प्रवाह की स्तुति में कहा : 'इन्द्रस्य जाम्बूनदपर्वताद् वै शृणोमि घोषं तव देवि गंगे। गोपाययेमं सुभगे गिरिभ्यः सर्वाजमीढोपचितं नरेन्द्रम् ||' महर्षि लोमेशने गंगासे सम्बद्ध गन्धमादन पर्वत को तपस्या के लिए श्रेष्ठ बताते हुए युधिष्ठिर को कहा : 'तपसा शक्यते गन्तु पर्वतं गन्धमादनम्।' पौराणिक आख्यानोंमें रुद्र हिमालयके भाग और एक शिखर

को 'गन्धमादन' स्वीकारा है। रुद्र हिमालय पर्वतमालामें ही सिद्धक्षेत्र सुमेरु है। रुद्र हिमालय के ही शिखर स्वर्गारोहिणी, विष्णुपुरी, ब्रह्मपुरी, उदगिरिकण्ठ एवं रुद्र हैं। आख्यानों के अनुसार महादेव शिव की जटाओं से निकली सातधाराओं में दो काली गंगा (वर्तमान मंदाकिनी) (श्रीकेदारनाथ) एवं महागंगा अलकनन्दा (श्रीबदरीविशाल) प्रकट हुई।

यह पौराणिक मान्यता है कि पौराणिक कालसे पूर्व श्रीबदरिकाश्रम वनके एक पर्वत में ही श्रीकेदारनाथ, श्रीबदरीनाथ स्थल थे। श्रीबदरिवनमें धर्म और काल के पुत्र नर एवं नारायण ऋृषिने भगवान् की शिव का मिट्‌टी का शिव लिंग बनाकर घोर तपस्या की । भागवतमें इसके विषय में स्पष्ट लिखाः तुये धर्मकलासर्गे नरनारायणावृषी। भूत्वाऽऽत्मो–पशमो पेतमकारोद् दुश्चरं तपः।। ऋग्वेद के पुरूषसूक्त के अनुसार नारायण ऋृषि हैं और नर देवता हैं। पुरूष सर्व व्याप्त ब्रह्म का स्वरूप है। वास्त्व में नारायण शब्द की उत्पत्ति जल से हुई। नर एवं नारायण की तपस्या से वेदीक देवता इन्द्र का सिंहासन डोलने लगा। पुराणों में स्पष्ट लिखा हैः अर्धासंन गोत्रभिदोऽधितस्थो । बदरीवनही महाभारत के रचयिता महर्षि व्यास का क्षेत्र हैः

'व्यासोच्छिष्टं जगत्सवम्।
पुण्येहिमवतः पादे मेध्ये गिरिगुहालये
विशोध्य देहं धर्मात्मा दर्म संस्त्रमाश्रितः।।
शुचिः सनियमो व्यासः शान्तात्मा तपसि स्थितः।
भारतस्येइतिहासस्य धर्मेणान्वीक्ष्य तां गतिम् ।
प्रतिश्य योगं ज्ञानेन सोऽपश्यत्सर्वमन्तः।'

वेदीक ऋृषि वसिष्ठ के पौत्र पराशर मुनि ने लिखाः 'त्तस्त् ऋृषयः सर्वे धर्मत्तवार्थकांक्षिणः। व्यासं पुरूस्कृत्य गता बदिराकाश्रम।' देवराज इन्द्रके पुत्र वीर अर्जुन भगवान् शिवसे पाशुपतास्त्र प्राप्त करनेके उद्देश्यसे गन्धमादन पर्वत पर तपस्या करने गए। कवि भैरवी ने महादेव शिव के किरात स्वरूप और अर्जुन के मध्य भीषण युद्ध का सुन्दर वर्णन किया है। भैरवीने अन्त में साम्ब सदाशिव के प्रसन्न होने के प्रसंग में लिखाः 'तपस्या तथा न मुदमस्य ययौ भगवान् तथा विपुलसत्त्वतया।' भैरवी ने लिखा कि हिमालय सिद्ध, यक्ष और योगी साधुओं की सृष्टि के आरम्भ से साधना स्थली रही। महाकवि कालिदास ने कुमार सम्भव में

महादेव शिव को वीरासन मुद्राके बारे में मधुर वर्णन किया: पर्यकबन्ध स्थिर पूर्वकाय मृज्वायतं सन्नमितोभयीसम्।' शिवपुराण के कोटिरुद्र खण्ड में घोषणा की कि भगवान् केदार शम्भु भारतवर्ष के अधिष्ठाता हैं:

'अस्य खण्डस्य स स्वामी सर्वेशोऽपि विशेषतः।
सर्वकामप्रदः शम्भुः केदाराख्यो न संशयः।।'

मन्दाकिनी काली गंगा और महागंगा अलकनन्दा गंगा क्षेत्र में दिव्य यक्षराज धनाधिपति कुबेर 'झील' है। कुबेर झील में कल्याण सुगन्धिवाले कमल पुष्पों के झुण्ड हैं। श्रीलक्ष्मीघर (सन 1100 से 1130) के तीर्थ कल्पतरू के अनुसार पवित्र काली गंगा (मन्दाकिनी) के रेतस कुण्ड में स्नान से जन्ममृत्यु के चक्र से छुटकारा मिलना सुनिश्चित है। श्रीविष्णु धर्मसूत्र में महागंगा (अलकनन्दा, श्रीबदरीविशाल) और काली गंगा की अलौकिक शक्तियों का ब्योरा मिलता है। आदिशंकराचार्य ने चौथेवेद 'अथर्ववेद' के अध्ययन, शोध, अनुसंधान और प्रसार का उत्तरदायित्व श्रीबदरिकाश्रम पीठ को सौंपा। शंकरचरित में लिखा :

'गत्वैकादशवार्षिको बदरिकारण्यं सुपुण्याश्रमं'
पाँचाब्दान्नरकुण्ठया निजधिया भाष्यणिाय : षोडश।
निर्माय प्रथमां चकार बदरीनारायणार्चोक्तः
श्रीज्योतिर्मठमाबबन्ध सगुरुः श्रीशंकरो वन्द्यते ।।'

महान् भक्त उधव भी श्रीकृष्ण के उपदेशामृत सुनकर तपस्याके लिए बदरीवन ही गए। पाण्डव श्रीकेदारनाथ श्रीबदरीविशाल के पर्वतों के पार स्वर्गारोहण के लिए गन्धमादन पर्वत पहुंचे। ऋग्वेद काल से पर्वतराज हिमालय और उसकी पवित्र नदियों का चित्रलिखित वर्णन मिलता है। ऋग्वेद में जहां गंगा का नाम मात्र 2 बार आया है वहीं सरस्वती का विवरण विस्त्ार से है। भूगोलीय अध्ययन के अनुसार पर्वतराज हिमालय श्रृंखला लगभग 2400 किलोमीटर लम्बी और 160 से 400 किलोमीटर चौड़ाई में फैली हैं। महाराज मनु ने सरस्वती और द्वषद्वती नदियों के बीच के इलाकों को ब्रह्मवर्त माना है। सरस्वती का उदगम पलाक्ष प्रश्रवण माना गया है।

श्रीगंगा के गन्धमादन, सुमेरु पर्वत की भौगोलिक स्थिति को लेकर अलग–अलग दावे हैं। परम्पराओं के अनुसार 11 वर्षीय अवस्था में आदिशंकर ने रावीग्राम के पर्वत में 5 वर्ष गुफा में रहकर साधना की।

हिमालय में कालीगंगा, धवलगंगा, महागंगा के दिव्य तटों पर आदिशंकर ने प्रसिद्ध ब्रह्मसूत्र भाष्य की रचना प्रारम्भ की। आदिशंकरने बदरीवन में ब्रह्मसूत्र भाष्य रचनाकर नरनारायण ऋषि को समर्पित किया। यह अवश्य है कि हिमालयके सिद्धों ने परमेश्वर को पाषण मूर्ति अथवा काष्ठ प्रतिमा के स्थान पर भाव के सर्वोपरि होने का घोष किया :

’न काष्ठे विद्यते देवो न शिलायां कदाचन।
भावे हि विद्यते देवस्त्स्माद् भावं समाश्रयेत।।
न देव : पर्वताग्रेषु न देवः शिवसद्मनि।
देवश्चिदानन्दमयो हृदि भावेन दृश्यते ।।’

पवित्र नदी गंगा आदि के बारे में लेख है कि वे दो माह ’रजस्वला’ रहती हैं, जब सूर्य कर्क और सिंह में रहता है (यह वर्षाकाल है।) । श्रीगंगा में श्रीसूर्य देव, श्रीबृहस्पति देव अस्त् होने पर सभी कार्य स्थगित रखने का विधान है। श्रीगंगा के अध्यात्मिक तेज एवं शक्ति सम्पन्न सुमेरु पर्वत आदि की तीर्थ यात्रा के लिए मानसिक शुद्धि को पवित्र जल स्थान से उत्तम कहा गया :

’जायन्ते च म्रियन्ते च जलेष्वेव जलौकस :।
न च गच्छन्ति ते स्वर्गम विशुद्ध मनोमला :।’

इसीलिए ऋग्वेद में कहा है : ’आ नो भद्राः क्रतवोयन्तु विश्वतः’ अच्छे विचार हमें विश्व में सभी तरफ से आयें।।ऊँ।।

शिवस्थली हिमालय में भूचाल के अध्यात्मिक वैज्ञानिक कारण

महादेव शिव के निवास हिमालय के नेपाल, तिब्बत, उत्तराखण्ड, उत्तरपूर्व में भीषण संहारक भूचाल के धार्मिक एवं वैज्ञानिक परिस्थिति विज्ञानके अपने कारण हैं। क्या हिमालय में विकास गंगा बनाम परिस्थितिकी में भयानक असंतुलनसे शिवका तीसरा नेत्र खुला है?

उल्लेखनीय है कि पुराकथाओं के अनुसार सृष्टि में लय और प्रलय के कालरुद्र, काल के भी महाकाल महादेव शिव का निवास हिमालय एवं कैलास पर्वत है। जैन अगमों में कैलास मानसरोवर को चौबीस तीर्थकरों में प्रमुख आदिनाथ का स्थान माना गया है। बौद्ध आख्यानों में परमबुद्ध और हिमालय दोनों ही सम्बद्ध हैं। ब्रह्म विज्ञानविदों के अनुसार पीपल पूर्णिमा को परमेश्वर (अमिताभ परमबुद्ध) वर्ष में एकबार तिब्बत के अज्ञात क्षेत्र में अवतरित होकर दिव्य शक्ति का शक्तिपात करते हैं। स्कन्द पुराण के अनुसार श्वेत वराह कल्प के वैवस्वत मनु प्रलय तक हिमालय के अज्ञात कलाप में रह रहे हैं। इस प्रकार छः अध्यात्मिक मतों सनातन भागवत (हिन्दु), बौद्ध, ताओ, शिन्तो, पोन एवं जैन की पवित्र धार्मिक स्थली हिमालय है। आध्यात्मविदों के अनुसार पवित्र तीर्थ स्थलों की पवित्रता पर आघात का प्राकृतिक प्रलयंकर आपदाओं से सीधा सम्बन्ध है। यद्यपि वैज्ञानिक इसे नहीं मानते।

धार्मिक ग्रन्थों में तीर्थ स्थल को विकट परिस्थितियों (भौगोलिक) में स्थित बताया गया है। तीर्थ स्थल हजारों हजारों वर्षों तक तपोभूमि रही हैं। इस कारण ही तीर्थ झंकृत करनेवाली सकारात्मक चमत्कारिक दिव्य ऊर्जावान हुआ। पुराणों के अनुसार बदरीवन में नर एवं नारायण ऋषि ने मिट्टी का शिवलिंग बनाकर हजारों वर्ष शिव आराधना की। उत्तरकाशी में भैरोंघाटी से आगे महाराजा भगीरथ ने स्वर्ग की नदी देवी गंगा के पृथिवी पर अवतरण के लिए हजारों वर्ष प्रार्थना की। महादेव शिव की पूजा अर्चना काश्मीर से केदारक्षेत्र, कैलास मानसरोवर और दक्षिण, उत्तर पूर्व में की जाती है। दशावतारों में से एक भगवान् परशुराम ने कैलास मानसरोवर में घोर तपस्या के बाद कैलास की महान्दी ब्रह्मपुत्र का जल सूखे से त्रस्त् असम, बांगलादेश की तरफ भेजा।

पुराकथाओं के अनुसार महाभारत में नरसंहार के बाद पापों से मुक्ति के लिए पाण्डव काशी में भगवान् विश्वनाथ की शरण में गए। पर शिव काशी छोड़कर चले गए। अन्तमें शिव के केदारनाथ की घाटी में होने का समाचार मिला। आख्यानों में उल्लेख है कि सदाशिव पाण्डवों को देखते ही नन्दी या महिष रूप में पृथिवी में समा गए। पाण्डव शिव के नन्दी या महिष रूप की पूंछ ही पकड़ पाये। अर्थात् शिव ने पाण्डवों को दर्शन ही नहीं दिए। सदाशिव नेपाल के काठमाण्डू में पाँचमुखी

पशुपतिनाथ के रूप में प्रकट हुए। इसी प्रसंग में नवनाथों में महासिद्ध गोरक्षनाथ (गोरवनाथ) और काठमाण्डू की मीठी कथा है। शिवस्वरूप गोरखनाथ के कुपित होने से वर्षों काठमाण्डू में वर्षा की एक बूंद नहीं गिरी। एक दूसरे आख्यान के अनुसार नेपाल में शिव के उग्रतमरूप श्रीवीर शरभसालुव पक्षिराज आकाशभैरव का मन्दिर है। हिमालय से ही ऋग्वेद में वर्णित सप्तसिन्धुओं का उद्‌गम है। हिमालय क्षेत्र में ही आदि शंकराचार्य ने साधना की और वेदीक प्रचार के लिए श्रीबदरीआश्रम में ज्योतिर्पीठ की स्थापना की। उधर उत्तरपूर्व में ढ़ाई किलोमीटर लम्बी गुफा में भगवान् परशुराम ने साधना की। तिब्बत में भगवान् बुद्ध के अवतार दलाई लामा हैं। लद्दाख के महालामा कुशक बकुला को जीवन्त बुद्ध माना जाता था। इन कथाओं के पीछे रहस्यमय गुप्त संदेश है।

इसलिए हिमालय की देवस्थली की पवित्रता को यथावत बनाए रखना धार्मिक अध्यात्मिक रूप से पहली आवश्यकता है। साधकों की तपोभूमि हिमालय के विकट स्थनों पर स्थित तीर्थ स्थल ''धार्मिक पर्यटन'' और विकास की परियोजनाओं से सांसत् में हैं। हजारों वर्ष पुराने देवालय पर्यटन उद्योग के लिए कुबेरी खजाना बने हैं। यहाँ हम यह जान लें कि धार्मिक आस्था, विश्वास, आध्यात्म कोई पर्यटन का मनभावन खिलौना नहीं हैं। तीर्थ स्थल भगवद उपासना, साधना, अर्चना और प्रार्थना का स्थान है। तीर्थ स्थल में भौतिक कष्ट सहकर ही अपने संचित कर्मों एवं प्रारब्ध के पापों से छुटकारा पाने का विधान है। तीर्थ में तीर्थयात्री अन्तर्मुखी होकर स्व के भाव में जाए और मन, हृदय को पवित्र करे। तीर्थस्थल में भौतिक भाव उत्पन्न नहीं हों। तीर्थ का प्रचण्ड पवित्र कंपन तीर्थयात्री अनुभव करे। यह उत्तरदायित्व ब्रह्म साधना में लीन संत समुदाय, ज्ञानी वर्ग का है कि वे इसमें उत्प्रेरक बनें।

यह यक्षप्रश्न है कि क्या महादेव शिव की स्थली और पवित्र स्थलों की अध्यात्मिक शक्ति को ज्यों का त्यों रखने के लिए क्या प्रयास किए जा रहे हैं ? यह अन्यथा नहीं लें कि धार्मिक पर्यटन ने पवित्र तीर्थों का स्वरूप बदला है। भगवान् केदारनाथ, भगवान् पशुपतिनाथ, भगवान् अमरनाथ के निकटवर्ती स्थानों का स्वरूप कितना बदला ? क्या भगवान् की एकनगरी में जुआधर कैसीनों, मदिरालय नहीं हैं? केदारनाथ के पर्वत पर मकान और होटल निर्माण क्या है ? यह भी प्रश्न है कि हिमालय में

बर्फ के पर्वतों का रूपाकार क्यों घट रहा है ? क्यों अमरनाथका हिम शिव लिंग समय से पहले पिघल जाता है ? क्यों गर्मी की छुट्टियों में सैलानियों के झुण्ड़ भारत में चार धाम और नेपाल में काठमाण्डू जाते हैं? इनका धार्मिक आस्था से कितना क्या सम्बन्ध है ? प्राचीनकाल से यह परम्परा है कि तीर्थ में तीर्थयात्री एक आन्तरिक शत्रु एवं प्रिय वस्तु छोड़ें? क्या आमतौर पर धर्मालु जिस सब्जी को पसन्द नहीं करते, उसे तीर्थ में छोड़कर कथित पुण्य अर्जित करते हैं ? तीर्थों में चट्टियों में सादा भोजन के स्थान पर मनमाफिक स्वाद का लज़ीज भोजन मिलना क्या है ? तीर्थ यात्रा कितनी अन्दर से सदगुणयुक्त धार्मिक हुआ ? तीर्थ यात्री कितना सर्वकल्याण के लिए समर्पित हुआ ? यह सभी आधुनिक सुविधाओं के साथ तीर्थ यात्रा और मौजमस्ती के सैर सपाटे में कितनी समानता है।

इसका एक पक्ष यह भी है कि हिमालय को देव भूमि के महादेव शिव के क्षेत्र कैलास मानसरोवर, यमुनोत्री, गंगोत्री, श्रीकेदारनाथ, श्रीआदिशंकराचार्यपर्वत, श्रीपशुपतिनाथ, वृद्धकेदार, श्रीबदरीविशाल, भविष्यकेदार, श्रीदतात्रेय मन्दिर, श्रीआकाशभैरव मन्दिर आदि की तीर्थयात्रा में अधिकारिक पौराणिक आख्यान, तन्त्र–मन्त्र साहित्य, साधना पद्धत्ति और महामात्य कहीं भी उपलब्ध नहीं है। शैवदर्शन, शिवगीता, शिव संहिता, शिवदृष्टि, शिवआगम, आकाशभैरवकल्प, सूर्यपुत्री यमुना का साहित्य, शिवके स्तोत्र–मन्त्र–तन्त्र–स्तुति आदि की पुस्त्कें ढूंढना आकाश से तारे तोड़ने के समान है। शिवाराधना, बुद्ध आराधना, जैनाराधना, शिन्तो एवं ताओ के अध्यात्मिक पक्षों का प्रमाणिक साहित्य कहीं भी तीर्थ यात्रा में नहीं मिलता है।

ऐसे में तीर्थ की पवित्रता के खण्डित होने पर ही संकट उत्पन्न होता है। धर्मग्रन्थों के अनुसार इसके फलस्वरूप ही भगवान् के कोप के रूप में प्रलयंकर स्थिति आमन्त्रित होती है। हमें तीर्थों की पवित्रता की पुनर्स्थापना के लिए अध्यात्मिक भौतिक प्रयास प्राण वन से करने होंगे।
।।ऊँ।।

नीलकण्ठ में सिद्धि–साधना :
काठमाण्डू–ऋषिकेश–कालींजर–राजौरगढ़

पौराणिक काल में देवताओं के श्रीविहीन होने पर समुद्र मंथन का उल्लेख है। देवताओं और दानव असुरों को समुद्र मंथन में समान भागीदारी स्वीकारने की व्यूहरचना होती है। समुद्र मंथन में मथनी (राई–बिलौनी) और महाविशाल रस्सी भी समस्या बनी। अंत में ऋग्वेद में वर्णित वेदीक देवताओं के नियामक महारुद्र महादेव शिव से समस्या के बारे में निवेदन किया गया। शिवपुरी कैलास के "सुमेरु" मदरांचल पर्वत की मथनी और रुद्र कण्ठ के महासर्प वासुकी नाग की रस्सी बनी।

समुद्र मंथन में प्रारम्भिक उपहार रत्नों में भयानकतम महामहाकाल स्वरूप "कालकूट विष" प्राप्त हुआ। कालकूट विष का पान श्रीब्रह्मा, श्रीहरिविष्णु सहित सभी वेदीक देवताओं के लिए करना समापन था। पुराण के अनुसार महादेव शिव इस हलाहल को तीनों लोकों के कल्याण के लिए ग्रहण करने को तैय्यार हुए। स्वाभाविक रूप से जगतजननी शक्ति स्वरूपा शिवा भगवती सावधान हुई। महादेवी शिवा कालकूट विष हलाहल के कण्ठ से नीचे उतरने के परिणाम को जानती थी। महादेवी शिवा पार्वती ने इसे कण्ठ में ही स्थिर करने की रचना की। महारुद्र शिव ने त्रिलोक के कल्याण के उद्देश्य से कालकूट हलाहल को अधरों से लगाकर आनन्दपूर्वक पीना शुरू किया। कालकूट विष की कालाग्नि से अधर, जिह्वा और कण्ठ जलने लगे। वहीं रुद्राणी शिवा ने अपनी दैविक शक्ति से विष को कण्ठ में स्थित किया। समूचा कालकूट विष महारुद्र के कण्ठ को दग्ध (जलाने) करने लगा, देवी ने उसे स्त्म्भित कर शान्त किया। कालकूट विष के प्रभाव से महारुद्र महादेव का कण्ठ नीला हुआ और देवों के देव "नीलकण्ठ" कहलाये। ऋग्वेद के बाद पौराणिक काल में पुनः महारुद्र ने सभी देवों में अपने श्रेष्ठता और सर्वकल्याण के लिए कालकूट तक ग्रहण करने का सर्वोच्च उदाहरण किया।

यह सबसे महत्त्वपूर्ण है कि हिमवान के हिमालय क्षेत्र में "नीलकण्ठ" देश रहा। प्रकारान्तर में इसी नीलकण्ठ का नामकरण "नेपाल" हुआ। नेपाल की राजधानी "काष्ठमण्डप (काठमाण्डू)" में

महादेव के ''पशुपतिनाथ स्वरूप का पाँचमुखी शिवलिंग'' है। आदिशंकराचार्य महाराज ने काठमाण्डू में देवलोक कैलास से लाये स्फटिक शिव लिंग की प्राणप्रतिष्ठा की और सदीयों से अवरूद्ध भगवान् पशुपतिनाथ की वेदीक पूजा को पुनः प्रारम्भ करवाया। श्रीनीलकण्ठ महादेव के सबसे चर्चित तीन देवालय राजौरगढ़ (सरिस्का, अलवर), कालींजर किला और ऋषिकेश के समीप हैं। तीनों नीलकण्ठ महादेव देवालयों का अपना इतिहास है। इनमें राजौरगढ़ मत्स्य के पारानगर में है। मनु संहिता में मत्स्य को ऋषि मुनियों की साधना स्थली बताया गया। मत्स्य की देवभूमि पर ही वेदीक ऋषि वसिष्ठ के पौत्र महर्षि पराशर ने राक्षसनाशक यज्ञ किया और सूर्य सिद्धान्त (ज्योतिष) के ग्रन्थों की रचना की। नाथ सम्प्रदाय में गुरु गोरक्षनाथ के बाद सर्वाधिक चर्चित भर्तृहरिनाथ भी उज्जैन से चलकर मत्स्य में साधना करने आये।

मत्स्य में सरिस्का के सघन वन के बीच घेराकार अरावली पर्वतमाला से घिरी प्राचीन अध्यात्मिक शिवलोक पारानगर है। जिसमें लगभग 364 केवल शिवमन्दिरों के भग्नावशेष हैं। यहाँ उत्खनन में 23000 प्रतिमायें प्राप्त हुई। इन शिवमन्दिरों में नन्दी, पार्वती, गणेश, कार्तिकेय की प्रतिमायें नहीं हैं। किसी भी मन्दिर में शिव परिवार और वाहन नन्दी आश्चर्यजनक रूप से लुप्त हैं। शास्त्रों के अनुसार केवल मात्र शिव लिंगवाला देवालय ही अनन्त दैविक शक्ति सम्पन्न होता है। पारानगर में एकमात्र नीलकण्ठेश्वर महादेव मन्दिर सुरक्षित है। इतिहासकारों के अनुसार छठवीं से दसवीं शती में गुर्जरप्रतिहार काल में पारानगर की शिवपुरी के वैभव का स्वर्णकाल रहा। इस प्रकार पारानगर (वर्तमान राजौरगढ़) का नीलकण्ठेश्वर मन्दिर 1000 से 1400 वर्ष प्राचीन है। इस नीलकण्ठेश्वर मन्दिर की जलझरी वर्गाकार और लगभग दो फीट ऊँची है। उस पर दिव्य नीलकण्ठ लिंग है। लिंग पर खड़ी और गोलाकार दो रेखायें तन्त्रानुसार हैं। मन्दिर की तक्षणकला मन्त्रमुग्ध करती है। मन्दिर प्रवेश के स्त्म्भ पर नृत्य करते यक्ष–गंधर्व–किन्नर–अप्सरा–देवी देवता उकेरे गए हैं। समूचे मन्दिर के स्त्म्भ, आन्तरिक मण्डप तक्षणकला से सजा है। गहरे काले नीले नीलकण्ठेश्वर महादेव के गर्भगृह में घुसते् ही शान्ति और दिव्य चेतना

का संचार होता है। योगी (जोगी) पूजा अर्चना करवाते हैं। गर्मी में गर्भगृह को जल से भरा जाता है। पर्वत से नीचे मानस सरोवर है।

यह लोकविश्वास है कि समुद्र मंथन के कालकूट हलाहल पान स्थल नीलकण्ठ (नेपाल) या ऋषिकेश के पर्वत के मध्य नीलकण्ठ अथवा कालींजर का नीलकण्ठ मन्दिर अथवा पारानगर मत्स्य का नीलकण्ठ महादेव है। नीलकण्ठ देश नेपाल में महादेव द्वारा हलाहल पीने का स्थल ''अज्ञात'' है। परन्तु सुमेरु–मेरु–सम्बाला और वासुकी नाग शारदा क्षेत्र (काश्मीर) समीप होने से हलाहल स्थल नीलकण्ठ नेपाल अधिक सही प्रतीत होता है।

बुन्देलखण्ड में एक हजार वर्ष पहले शैवमत के चन्देल शासक रहे। इतिहासकार लिखते है कि कालातीत किले का नामकरण ''कालींजर'' रखा गया। इस कालींजर काल को विजित करनेवाले किले का निर्माण 9वीं से 13 शती मध्य चला। यह कालींजर श्रीसोमनाथ मंदिर पर आक्रामक महमूद गजनी के हमले से भी सुरक्षित रहा। किले में 165 भव्य सीढ़ियों वाला नीलकण्ठ मन्दिर सम्मोहक है। सदीयों के थपेड़ों से चिताकर्षक मण्डप का गुम्बद ध्वस्त् हो चुका है। परन्तु रास्ते् में चट्टानें और स्त्म्भों पर संगतराशों ने मोहिनी कला का प्रदर्शन किया है। मण्डप के स्त्म्भ भी चन्देल शिल्पकला के सुन्दर उत्कृष्ट उदाहरण है। भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण ने उत्खनन में 874 दुर्लभ शिल्पकला कृतियाँ एकत्र कर संग्रहालय में रखी हैं।

विकट रास्ते् से प्रवेश से पहले विशाल शिला पर महागणपति की मोहक प्रतिमा है। मण्डप में रौद्ररूपा चामुण्डा देवी से साक्षात्कार होता है। मण्डप में आगे चट्टान में काटकर निर्मित विशाल नीलकण्ठ शिवलिंग का दिव्य दर्शन होता है। यह अद्भुत है कि चट्टान की विशाल शिला ही एकसमय कपाट का काम करती रही। यह नीलकण्ठ लिंग हमेशा चट्टानों से निकले रहस्यमय जल से भीगा रहता है (ऋषिकेश के नीलकण्ठ शिवलिंग पर ही स्वाभाविक रूप से जल प्रवाह होता है। पारानगर मत्स्य के नीलकण्ठ लिंग पर वर्षाकाल में प्रथम वर्षा रुद्राभिषेक करती है। मन्दिर के समीप बावड़ी एवं जलाशय मानस सरोवर है।)।

कालींजर का वशीकरणकर्ता कला के संगतराशों ने चट्टान को तक्षितकर 24 फीट ऊँचे काल भैरव की महाकाल–महारौद्र रूपा 18 हाथोंवाली प्रतिमा का निर्माण किया। कालभैरव की दिव्य मुखाकृति एवं नेत्र आन्तरिक शान्ति और जीवन के सत्य से सामना कराते हैं। मन्दिर से 35 सीढ़ियां उतरकर नील सरोवर भी चट्टानों का काटकर निर्मित किया गया है। इसकी दीवारों पर प्रतीकात्मक कूटभाषा में तिलिस्मी खजाने का रहस्य लिखा गया समझा जाता है। सदीयों से कालींजर के खजाने की खोज जारी है। ऋषिकेश में हिमालयी पर्वत ऋंखला के मध्य पीपल वृक्ष के नीचे मूल नीलकण्ठ शिवलिंग है। जहां निरन्तर गंगाजल आता रहता है।।ऊँ।।

मूलाधार के महासर्प अहिर्बुध्न्य : सुदर्शन चक्र रचना का गोपन रहस्योद्घाटन

पाँचरात्र में सृष्टि की रचना, पालन और संहार के दिव्य स्वरूप के सुदर्शन महाचक्र गोपन रहस्य बना है। देवर्षि नारद ने कालनेमि वध में श्रीमहाविष्णु द्वारा दिव्यास्त्र सुदर्शन महाचक्र के उपयोग को देखा। नारदजी सुदर्शन के बारे में गोपन रहस्य जानने श्रीअहिर्बुध्न्य के यहाँ गए।

श्रीअहिर्बुध्न्य का शाब्दिक अर्थ सर्प और मूलाधार है। स्वाभाविक रूप से ब्रह्माण्ड के मूलाधार से सन्दर्भित महासर्प महादेव शिव हैं (स्मरण रहे कि सृष्टि के रचयिता ब्रह्मा और श्रीहरि विष्णु दोनों महारुद्र शिव के अग्नि रूप स्त्म्भ का आदि और अन्त नहीं जान सके थे।)। महादेव शिव अहिर्बुध्न्यसे देवर्षि नारदने पूछाकि ये सुदर्शन किसकी शक्ति है ? यह सुदर्शन स्वयं उत्पन्न हुआ या इसका निर्माण किया गया ? सुदर्शन महाचक्र कैसे काम करता है ? यह सुदर्शन क्या है? इसके कार्य क्या हैं? यह सुदर्शन सृष्टि को कैसे संचारित करता है, क्या यह सृष्टि का पालक है, क्या ब्रह्माण्ड का आधार है ? सुदर्शन चक्र का संचालन कैसे किया जाता है ? सुदर्शन की प्रकृति और उद्देश्य क्या है ? इसका विष्णु

से क्या सम्बन्ध है ? क्या सुदर्शन हमेशा विष्णु के साथ है ? ये सन्देह शास्त्रों के अध्ययन से उत्पन्न हुए ? प्रकारान्तर में नारद ने सुदर्शन के अध्यात्मिक, योग, ध्यान, उपासना आदि पक्षों पर भी जिज्ञासा व्यक्त की।

श्रीसुदर्शन महाचक्र पर मूल अहिर्बुध्न्य संहिता में 240 अध्याय रहे। जिन्हें समय काल के अनुसार संक्षिप्त कर 40 अध्याय में समेटा गया। देश में उपलब्ध पाण्डुलिपियों के अनुसार कुल 220 संहितायें प्रचलन में रही। उनमें से अनेक अभी भी लुप्त हैं। अहिर्बुध्न्य के संवाद को नारदजीने दुर्वासा ऋषि को सुनाया और उन्होंने भरद्वाज ऋषि को इस गुप्त से गुप्त संहिता का ज्ञान दिया।

महासर्प अहिर्बुध्न्य ने ब्रह्माण्ड और सृष्टि से सुदर्शन के सम्बन्धों के गोपन सम्बन्ध के सूत्र को उजागर किया। संहिता के आठवें अध्याय में स्पष्ट किया कि परमशून्य के बारे में अज्ञान की स्थिति है। ''सुदर्शन चक्र सृष्टि का आधार है। यह महारात्रिधारा चक्र का समपूरक है। यही सृजनचक्र, पालनकर्ताचक्र, संहारचक्र आदि तत्त्व लिये हैं।'' अतः यह महाविभूति चक्र है। ''सुदर्शन चक्र असंख्य ब्रह्माण्ड आकाश में धारण किए है। महाविष्णु का संकल्प सुदर्शन है। यह प्रेक्षणा अर्थात् अग्रगामी विचारवान, निष्णांत सर्वोत्तम समय एवं काल से सम्बद्ध है। सुदर्शन प्राकृतिक शक्ति से रूपाकार में प्रकट हुआ (इसको निर्मित नहीं किया गया।)। यही परमब्रह्म और मुक्ति की भावना से परिपूर्ण है।''

इसके मूल में सूक्ष्मावस्था में क्रिया शक्ति, मूर्ति शक्ति, इच्छा, मेधा, ब्रह्म की लक्ष्मी का विश्वरूपी स्पन्दन आदि है। विष्णु की शक्ति ब्रह्म परिवर्तित होकर अग्नि भाव (नारायण एवं शक्ति) में आई। अहिर्बुध्न्य के अनुसार सूर्योदय चक्र में 2 आरे, सर्वशक्तिमान चक्र में 4 आरे, शक्ति चक्र में 5 आरे, सभी ऋतुओं के छह आरे, अवतार चक्र में 12 आरे और अन्तिम चक्र में 1000 आरे हैं। सुदर्शन का देवोंकी तरह दिव्य शरीर है। संहितामें ब्रह्मस्वरूपी चक्र के 62 हाथों में दिव्यास्त्र बताये गए हैं।

महादेव शिव द्वारा जंघा से प्रकट कर विष्णु को प्रदान सुदर्शन चक्र की प्रतिमा, यन्त्र और यज्ञ के विधान को अहिर्बुध्न्य संहिता में विस्त्ार से समझाया गया है। यह भी उल्लेख है कि दो तरह के दिव्यास्त्र–परावर्तक एवं निवार्तक हैं। परावर्तक आक्रामक संहारक (कुल 62) और निवार्तक अस्त्र रक्षात्मक अवरोधात्मक (कुल 43) हैं। दिव्य अस्त्र

दिव्य देह युक्त होते हैं। उनमें अधिकांश के भयानक दांत लाल आंखों से निकलती अग्नि, भयभीत करनेवाले केश एवं मुख और लाल श्वेत, सलेटी, श्याम देह होती है। इन दिव्य अस्त्रों में सर्वोपरि सुदर्शन चक्र की विशेषता यह है कि यह चेतन है, अपनी मेधा से निर्णय लेता है। इसका दार्शनिक पक्ष योगांग हैं। सुदर्शन जीवात्मा का परमात्मा से मिलन करवाता है। इसका उद्धारक मंत्र *सहस्त्रार हुं फट* है। अंग मंत्र में *चक्राय स्वाहा* समाहित हैं। सुदर्शन महायन्त्र निर्माण में यन्त्र, मन्त्र, विमान निर्माण, भूमि चयन–भूमि शुद्धि आदि महत्वपूर्ण है। पूर्वांग में सुदर्शन पुरूष में 12 उपव्यूह और मंत्र हैं। विमान निर्माण सर्वसिद्धि के लिए किया जाता है। इसमें भूमि चयन में विशेष सावधानी रखती होती है। ब्रह्म स्वरूपी सुदर्शन का ध्यान ''श्री'' (अध्यात्मिक एवं भौतिक ऐश्वर्य, श्रेय, सभी कार्यों में सफलता आदि) प्राप्ति के लिए होता है।

संहिता में सुदर्शन प्रतिमा को 16 भुजा का विधान मिलता है। सभी प्रकार के अनिष्ट एवं रोगों के निवारण का उपचार देवर्षि नारद को अहिर्बुध्न्य ने सुदर्शन ''महाभिषेक'' बताया। महाभिषेक में विमान (मन्दिर) में माहिन्द्र वर्तुल में सुदर्शन चित्र रखा जाना चाहिए। सुदर्शन महायज्ञ में 8 दिशाओं के प्रतीक रूप में आठ ऋत्विज हों। नौ पवित्र नदियों का जल लाया जाए। अहिर्बुध्न्य ने यह भी स्पष्ट किया कि महाभिषेक का पुरोहित कैसा हो ? महाशान्ति कर्म कैसे करें ? यज्ञ की आहुति किस की दी जाए ? सुदर्शन महायज्ञ में महादेव शिव को प्रसन्न करनेवाले कमल के फूल चढ़ाने की समृद्ध परम्परा है। सुदर्शन मंत्र को सभी महामंत्रों का मूल मंत्र घोषित किया गया। संहिता के 51 से 59 अध्याय में सुदर्शन को वैष्णव मंत्र, तारा तारक मंत्र, नृसिंहानुस्तुभा मंत्र का विवरण है। पांत्ररात्र आगम का भाग होने से अहिर्बुध्न्य संहिता के अंत ब्रह्म रूप पुरूष सूक्त के पाँच गीत हैं।

काशीराज, श्रुतकीर्ति, कुशाध्वज, हरिपदा, विशाला, सुनन्दा, चित्रशेखर, अम्बरीष, कीर्तिमालिन आदि की प्राचीन कथायें सुदर्शन चक्र की चमत्कारिक दिव्य शक्ति से परिचय करवाती है। देवर्षि नारद और व्यास वार्ता में प्राचीनतम ''सुदर्शन सहस्त्रनाम'' मिलता है। इस सहस्त्रनाम की विशेषता यह है कि इसमें वर्णमाला ककारादि के बीजाक्षरों

के अनुरूप रचना की गई है। दिव्यास्त्रों में महाशक्तिवान सुदर्शन दुष्ट प्रकृतिवालों को नहीं देने का निर्देश है।।ऊँ।।

श्री सुदर्शन चक्र :
सभी अनिष्ट संहारक महाचक्र

वर्तमान काल में श्रीमहाविष्णु का सुदर्शन चक्र सभी प्रकार के अनिष्टों विपत्तियों का संहारक है। श्रीमहाविष्णु के सुदर्शन चक्र की स्तुति में कहा गया है : ''आप ही धर्म हैं, आप ही सत्य हैं, आप ही प्रेरक घोषणा हैं, आप ही त्याग की बलि हैं। आप ही समस्त् ब्रह्माण्ड के स्वामी संरक्षक हैं और आप ही परमेश्वर के हाथों में रिपु जन संहारक परमास्त्र हैं। आप ही परमेश्वर की दिव्य दृष्टि हैं। इसी सुदृष्टि के कारण आप सुदर्शन कहलाये। आप की क्रियाओं से सभी की उत्पत्ति हुई।''

त्वं धर्मस त्वं ऋतम् सत्यम् । त्वं यजनों खिला–यजन–भुक्।
त्वं लोका–पालाह सर्वात्मा । त्वं तेजह पुरूषं परम्।।

श्रीसुदर्शन चक्र की महिमा शक्ति का विवरण वैष्णव उपनिषद्–सुदर्शन उपनिषद, अहिर्बुध्न्य संहिता, श्रीनृसिंह षटचक्र उपनिषद, नृसिंपूर्वतापनीयोपनिषद आदि में मिलता हैं। श्रीवैष्णव पाँचरात्रिका, श्रीसुदर्शन संहिता, सुदर्शन स्मृति, सुदर्शन चक्र और पुराणों में श्रीमहाविष्णु के महास्त्र श्रीसुदर्शन चक्र का दिव्य वर्णन है। दृष्टा ऋषियों ने सुदर्शन शतक, सुदर्शन अष्टक, सुदर्शन सहस्त्रनाम, सुदर्शन अष्टोत्तर शतनामावली, सुदर्शन गायत्री, सुदर्शन स्तुति, सुदर्शन महामंत्र, सुदर्शन मंत्र विनियोग, सुदर्शन ध्यान, श्रीसुदर्शन मूलमंत्र, श्रीसुदर्शन कवच, श्रीसुदर्शन ह्रदय, श्रीसुदर्शन षडाक्षर मंत्र आदि की रचना की। तांत्रिक साहित्य में श्रीसुदर्शन चक्र को श्रीब्रह्मास्त्र से भी शक्तिवान माना गया है।

वैष्णव मत के श्रीसुदर्शन चक्र होने से इसकी प्रवृत्ति सात्विक मानी गई है। यही कारण है कि श्रीसुदर्शन महायज्ञ में आहुति में ''पद्म अर्थात् कमल के फूल'' हवन की अग्नि में अर्पित किए जाते हैं। कमल के फूल और श्रीसुदर्शन चक्र की चमत्कारिक कथा है। ओढ़रदारी

महारुद्र महादेव शिव को प्रसन्न करने के उद्देश्य से श्रीविष्णु ने प्रतिदिन 1000 कमल पुष्प अर्पित करने का संकल्प कर अर्चना शुरू की। यहीं महारुद्र शिव ने माया प्रारम्भ की। एक दिन श्रीविष्णु 999 कमल पुष्प एकत्र कर पाये। श्रीविष्णु पूर्व संकल्प में ''एक कमल'' कम होने से चिन्तित हुए। उन्हें ऐसे में स्मरण आया कि उन्हें ''कमल नयन'' कहा जाता है। श्रीविष्णु ने अपना दाहिना नेत्र निकालकर महादेव शिव को चढ़ाया। महादेव शिव श्रीविष्णु की भक्ति समर्पण त्याग निष्ठा से प्रसन्न होकर प्रकट हुए और दिव्यास्त्रों में सर्वोत्तम सुदर्शन चक्र श्रीविष्णु को प्रदान किया। स्वाभाविक रूप से श्रीविष्णु का कमल पद्मनेत्र श्रीसुदर्शन चक्र बना। श्रीसुदर्शन चक्र को संवत्सरचक्र, सुरक्षा चक्र, मायाचक्र, कालचक्र और धर्मचक्र कहा जाता है। प्रासादों (देवालयों) में श्रीसुदर्शन चक्र के स्वरूप की प्रतिमाओं में रथांगपहिया, प्रस्फुटित कमल आरेवाला और अलंकृत चक्र तीन रूपाकार मिलते हैं।

इस महाचक्र का वर्णन प्रसिद्ध प्रजापति ने किया। प्रजापति ने कहा : ''यह सुदर्शन नामक महाचक्र छः अक्षरों का है। इसीलिये यह छह अरोंसे युक्त होता है। छह दलोंवाला चक्र बनता है। ऋतुएँ छः ही होती हैं। इसके अरों–आरों की समानता ऋतुओं से की जाती है। अर्थात् इसके छह दलों में छह ऋतुओं की भावना करनी चाहिए। इसकी मध्य नाभि में अरे प्रतिष्ठित होते हैं। यह सारा चक्र माया रूप नेमि में आवेष्टित होता है। माया आत्मा का स्पर्श नहीं करती है। अतः षड्दल चक्र बाहर की ओर से माया द्वारा आवेष्टित होता है। इसके बाद अष्टदल चक्र घेरा बनता है। आठ अक्षरों की ही एक पाद गायत्री होती है। इस घेरे के बाद द्वादश अरों से युक्त द्वादशदल का चक्र वलय होता है। जगतीकी अक्षर संख्या से ही यह चक्र संतुलित होता है। चौथे घेरे में षोडशारचक्र सोलह दलवाला चक्र है। परमपुरूष की सोलह कलायें कही गई हैं। उसके बाद बत्तीस दलों का चक्र है। अनुष्टुपछन्द बत्तीस अक्षर होते हैं। यह बाहरकी ओर से माया द्वारा आवेष्टित है।''

''मूलतः श्रीसुदर्शन चक्र में वेद ही इसके अरे हैं। पत्तों से ही यह चारों ओर घूमता है। छन्द ही इसके पत्ते हैं'' । यह बत्तीसदलों से सम्पन्न महाचक्र ही सुदर्शन नाम से विख्यात हैं। इसका अविनाशी छह अक्षरोंवाला तारक मन्त्र ''सहस्त्रार हुं फट'' है। आठ दलों में आठ

अक्षरवाले ''ऊँ नमो नारायणाय'' नारायण मन्त्र न्यास है और बारह दलों में द्वादशाक्षर वासुदेव मन्त्र ''ऊँ नमो भगवते वासुदेवाय'' का न्यास किया जाता है। यह महाचक्र सभी कामनाओं को पूर्ण करनेवाला, मोक्ष का दरवाजा, त्रिवेद, अमृतमय और ब्रह्ममय है। इस सुदर्शन चक्र के पूरबी हिस्से में आठ वसुगण, पश्चिमी हिस्से में बारह आदित्य, उत्तरी हिस्से में विश्वदेव, दक्षिण में ग्यारह रुद्र और नाभि में ब्रह्मा, विष्णु, महेष और पार्श्व में सूर्य, चन्द्र हैं। श्रीसुदर्शन महाचक्र का महायंत्र तत्काल प्रभावदायक है।

श्री महाविष्णु के महाचक्र का दिव्य मंत्र है : ''ऊँ सुदर्शन महाज्वाल कोटिसूर्य समप्रभ। अज्ञानं तस्यमे देव विष्णोमार्गम प्रदर्शय।।'' महाचक्र के ध्यान का मंत्र है : ''शंख चक्र च चापं परशुमसिमिषुं शूलपाशांकुशाग्नीन ब्रिभ्रांण वज्रखेटों हलमुसल गदाकुन्त मत्युग्रदंष्ट्रम्। ज्वालाकेशं त्रिनेत्रं ज्वलदननिभं हारकेयरभूषं ध्यायेत् षट् कोणसंस्थं सकल रिपुजन प्राण संहार चक्रम्।।'' श्रीसुदर्शन चक्र का चमत्कारी शक्तिवाला मूल मंत्र है : ''ऊँ श्रीं ह्रीं क्लीं कृष्णाय गोविंदाय गोपीजनवल्लभाय पराय परमपुरूषाय परमात्मने परकर्म–मंत्र–तंत्र–यंत्र–औषध अस्त्र–शस्त्राणि संहर संहर मृत्योर मोचय मोचय आयुवर्धय–शत्रुन नाशय नाशय। ऊँ नमों भगवते महासुदर्शनाय दीप्त्रे ज्वाला–परीताय सर्वदिक–क्षोभणहराय हुं फट परब्रह्मणे परंज्योतिषे ऊँ सहस्त्रार हुं फट स्वाहा।'' समसामयिक रूप से श्री सुदर्शन चक्र यंत्र और चित्र से अनिष्ट रूक जाते हैं, वाहन दुर्घटना का नाश होता है। सारसंक्षेप में सुदर्शन चक्र की हर दिन पूजा से विधायकी सकारात्म (पॉजीटिव) ऊर्जा मिलती है।

पुराख्यान के अनुसार राजा अम्बरीष को श्रीसुदर्शन चक्र प्राप्त हुआ। राजा अम्बरीष ने श्रीसुदर्शन को स्थापित कर राज्य सौंपा और पूजा अर्चना में लीन हुए। प्रकारान्तर में कुपित होकर दुर्वासा ऋषि ने अम्बरीष को दण्डित करना चाहा। अम्बरीष हाथ जोड़कर खड़े हो गए। वे उत्पन्न विकराल कृत्या से नहीं डरे। तब स्वयं श्रीसुदर्शन चक्र आये और कृत्या का शिर विच्छेद कर दुर्वासा ऋषि को ओर चले। तीनों लोकों में दुर्वासा मुनि को रक्षा करने वाला कोई नहीं मिला। अन्त में दुर्वासा ऋषि को क्षमा मांगकर जीवन रक्षा करनी पड़ी। अतः श्रीसुदर्शन

चक्र ब्रह्मास्त्र से भी कहीं अधिक महाबली है। आइये, इस दिव्य महाशक्तिवान सभी विघ्नविनाशक की शरणागत हों।

नौ प्राचीन दिव्य ग्रन्थों की चमत्कारिक शक्तियाँ कहाँ

बीसवीं शती में नौ अज्ञात ब्रह्मविद् ऋषियों के चमत्कारिक गुप्त ग्रन्थों की खोज को लेकर दिल दहलानेवाले महासंघर्ष चलते रहे। यह उलझी गुत्थी है कि क्या ईसाई सर्वोच्च धर्मगुरु पोप भी इन रहस्यमय अलौकिक शक्तिवान पोथियों के अनुसंधानकर्ता–गवेषक रहे ?

श्री टालबोट मुण्डी के नाईन अननोन में उल्लेख मिलता है कि धर्माचार्य पोप के हाथों एक पोथी का एक भाग लगा। समझा जाता है कि पोप सिलवेस्टर द्वितीय ने ब्रिटिश राज में गुप्त रूप से भारत की यात्रा कर इसे प्राप्त किया। प्रकारान्तर में पोप सिल्विस्टर ने अपने महल में तांबे का सिर बनवाकर रखवाया। यह ताम्र सिर सभी प्रकार के प्रश्नों का तत्काल उत्तर देता था। यह अवश्य है कि पोप सिल्विस्टर द्वितीय ने दिव्य पोथी के अनुसार अनेक प्रयोग किए। इसके ठीक विपरीत पोप की गुप्त पोथी, भारत यात्रा और वेद विज्ञान के प्रयोगों के कोई साक्ष्य सबूत या प्रमाण नहीं मिलते हैं। यह कहा जाता है कि सभी प्रमाणों को नष्ट कर दिया गया।

पुराण परिशीलन से पता चलता है कि पवित्रतम हिमालय के अज्ञात रहस्यमय ''कलाप ग्राम'' में वर्तमान सातवें वैवस्वत सूर्यपुत्र मनु सृष्टि के अन्त महाप्रलय तक प्रवास कर रहे हैं। स्कन्द पुराण में इसका विवरण मिलता है। श्रीनीलमत पुराण के अनुसार देव के देव महादेव शिव द्वारा रौद्र ताण्डव से प्रलय के समय काश्मीर वासुकी नाग का क्षेत्र हुआ। पवित्र महापर्वत कैलास के साथ मेरु पर्वत का ठोर ठिकाना अभी विस्मृति के गर्भ में है। जम्बूद्वीप में पर्वतराज कैलास के साथ परमबुद्ध, जैन धर्म के श्री आदिनाथ का सम्बन्ध जुड़ा है। अन्तरिक्ष से देवराज इन्द्र के

पृथिवी पर आगमन और कौन्तेय अर्जुन को दिव्यास्त्र प्रदान करने का स्थल मेरुपर्वत बताया गया है।

भारद्वाज मुनि के ''यन्त्र सर्वस्व'' का एक खण्ड ''वैमानिक शास्त्र'' है। वैमानिक शास्त्र में महा अंतरिक्ष में सौर्य मण्डल के पार देवलोक जानेवाले विमानों–यानों की संरचना को बारीकियों को समझाया गया है। ये दूसरे ग्रहों–दूसरे ब्रह्माण्डों की यात्रा करनेवाले यान सौर्यऊर्जा और पारे आदि की शक्ति से संचालित होते थे। ब्रह्मविद ऋषियों ने देवताओं से ऋग्वेद में सूर्य की वाणी को सुना। वेद त्रि के अनुसार सूर्य का जबड़ा लोहे का है। इस कारण सूर्यदेव लगभग बंद होठों से प्रणब ''ॐ'' का पाठ करता है (नासा ने सूर्य की ध्वनि के वीडियो में इसकी पुष्टि की है।) (भगवद्दत्तःसविता देवता)। इससे प्रमाणित होता है कि वेदीक विवरण शत प्रतिशत सत्य है। राईटर्स बन्धुओं द्वारा हवाईजहाज के परीक्षण से पहले ब्रिटिश भारत में वैमानिक शास्त्र के आधार पर विमान उड़ाने का परीक्षण किया गया।

नौ दिव्य गुप्त पोथियों के अनुसार महान्दी गंगा के जल को नौ अज्ञात ब्रह्मविद् ऋषि जगह–जगह सोने के अणुओं से शोधनकर कभी नहीं सड़नेवाली दिव्य शक्ति को यथावत रखने में लगे समझे जाते हैं। प्राप्त विवरणों के अनुसार ऐसी ही गुप्त प्रयोगशाला महादेव शिव की नगरी वाराणसी में भी होना बताया जाता है। इन अज्ञात ब्रह्मविद ऋषियों के आश्रम नील नदी से मैक्सिको, ग्वाटेमाला एवं उत्तर में साईबेरिया, पूरब में मंगोलिया चीन और दक्षिण में जावा सुमात्रा तक होने के प्रमाण मिले हैं। श्री गुर्जियेफ ने सहारा के रेगिस्तान में ऐसे चमत्कारिक मठ का वर्णन किया है। यानी ऋषियों के समूह के गुप्त स्थानक चौतरफा फैले हैं। ऋषियों के ''गुप्त गुरुकुल'' में दाखिले के अपने नियम विधान हैं। इंका सभ्यता में चमत्कारिक दैवीय शक्ति सम्पन्न ओझाओं का रहस्यमय संसार है। वयोवृद्ध ओझा बगैर भाषा जाने अतिथि के विचार, प्रश्न समझने और उसका उत्तर देने में सिद्धहस्त् हैं। उनके लिए विश्व की भाषाओं की दीवार ढ़ह जाती है। सिद्ध ओझा इंका सभ्यता संस्कृति के भारतीय गरूड़नुमा पक्षी पर सवार होकर महाकाश की यात्रा करते हैं। उनके बुलाने पर पवित्र गरूड़ पल भर में प्रकट होते हैं। ये ओझा भी

नंगे पैर बर्फ पर दौड़ते हैं। इंका संस्कृति के रखवाले ओझाओं की दिव्यशक्ति साइन्सदांओं के लिए पहेली बनी है (बिमल दे पुस्त्क)।

यह माना जाता है कि नौ ऋषियों में से एक ऋषि ब्रह्माण्ड के दूसरे ग्रहों लोकों से निरन्तर संवाद और सम्पर्क बनाये हुए हैं। दूसरे ग्रहों के विद्वानों से लगातार संवाद से नई नई जानकारी, नये–नये आविष्कारों आदि की कुंजी मिल रही है। यह जानकारी कूट गुप्त सांकेतिक प्रतीकात्मक भाषा में दिव्य ग्रन्थ में लिखी जाती रही है। इन पर शोध अनुसंधान के लिए ''चेलों'' को आवश्यक राशि स्वर्ण में दी जाती रही है। अज्ञात ब्रह्मविद् ऋषि शीशे को पिघलाकर उसकी आणुविक संरचना में परिवर्तन कर सोना बनाते समझे जाते हैं। यह कोई चमत्कार नहीं विशुद्ध वेद विद्या है। वर्तमान में वैज्ञानिक द्रव्य की आणुविक संरचना बदलने के अनुसंधान में सफल नहीं हुए हैं। वेद विज्ञान को माने तो सोना बनाने की विद्या प्राचीन भारत में सिद्धऋषियों को प्राप्त रही। चुनाचे वेद सूक्तों–ऋचाओं–मंत्रों आदि के प्रयोग परीक्षण के लिए द्रव्य (अर्थ–धन) कोई समस्या नहीं थी।

जयपुर के तीन महाराजाओं माधोसिंह, मानसिंह एवं भवानी सिंह के राजगुरु पण्डित श्रीविद्यानाथ ओझा भी हजारों वर्षों से वेद विज्ञान के रहस्मय चमत्कारिक गुप्त ग्रन्थों की दैविय शक्तियों से परिचित रहे। राजगुरु श्रीविद्यानाथ ओझा महामहोपाध्याय पण्डित मधुसूदन ओझा के शिक्षार्थी रहे। उन्हें गुप्त खजानेवाले तिलिस्मी जयगढ़ के किले के रहस्य की जानकारी थी। राजगुरु ओझाजी किसी से कोई भौतिक भेंट भी नहीं लेते और गुप्त आर्ष विज्ञान की भूल से भी चर्चा नहीं करते थे। यह उल्लेखनीय है कि लेखक को 4 वर्षों तक राजगुरु ओझाजी ने ब्रह्मविद्या से साक्षात्कार करवाया। वे अपने देहत्याग से पहले अधिकांश पुस्त्कें दान दे गए।

अट्ठारहवीं शती के प्रारम्भ में बीदर के तत्कालीन प्रधानमंत्री पण्डित भास्कर राय आसाध्य बीमारी में अज्ञात नौ ब्रह्मविद् ऋषियों में एक अथवा उनके प्रमुख पट्टशिष्य के सम्पर्क में आये। उन्होंने भास्कर राय से सूर्य की तीन ऋचाओं के साथ आदिदेव सूर्य की आराधना का गुप्त मंत्र दिया। दसवें दिन भास्कर राय का ''कायाकल्प'' हुआ। पर इस ज्ञान को देनेवाले ''अज्ञात'' ही रहे। सूर्याराधना या सूर्यविद्या से महाकवि

कालिदास–मयूर के कुष्ठ रोग ठीक होने की घटना मिलती है। वैश्विक तापमान बढ़ने से हिमालय के हिमनद (ग्लेशियर) पीछे सरक रहे हैं। उसी के साथ नौ चमत्कारिक ऋषियों के आश्रम स्थान बदलने को विवश है। भौगोलिक बदलाव से दिव्याश्रमों ने भी स्थान परिवर्तन किया है। ऊँ

प्राचीन गुप्त पाण्डुलिपियों से ही वैज्ञानिक आविष्कार

प्राचीन ब्रह्मवर्त (यानी वर्तमान भारत) की हजारों वर्ष पुरानी आर्ष (ऋषि) पाण्डुलिपियों का सीधा सम्बन्ध वर्तमान वैज्ञानिक आविष्कारों से रहा है। वेदों में प्रथम ऋग्वेद की ऋचाओं की गूढ़, कूट, लाक्षणिक, सांकेतिक, प्रतीक विद्या और लुप्त संस्कृत में भौतिक विज्ञान के ज्ञान का भण्डार उपलब्ध है।

ऋग्वेद में देव आयुर्विज्ञान के स्वामी दोनों अश्विनी कुमार च्यवन ऋषि की आंखों को न केवल दोबारा रोशनी प्रदान करते हैं अपितु उनकी वृद्धता दूर कर युवा बनाते हैं। अश्विनी कुमारों ने महर्षि दधिची के अश्वघोड़े के सिर का प्रत्यारोपण किया। चिकित्साविद् हजारों वर्ष बाद मानव में पशु सिर लगाने के प्रयोग में लगे हैं। वेदीक देवता अश्विनी कुमार मानवीय सभी अंगों के स्थान पर कृत्रिम अंग लगाने का सफल प्रदर्शन करते रहे। हम यह समझें कि वैज्ञानिक शोध अनुसंधान में मूल है–परिकल्पना। वेदीक देवता अश्विनी कुमारों के सूत्रों की तत्कालीन संस्कृत के कूट रहस्य का चक्रव्यूह भेदन अभी शेष है।

आर्यावर्त–आर्यवर्त में हम वेद को श्रुति मानते हैं। वेद को दिव्य दृष्टा ऋषियों ने सीधे देवताओं से सुना। उनतालीस लाख वर्ष पहले ऋग्वेद को लिखने की परम्परा नहीं थी। भारतीय ऋषियों ने, भारतीय सृजनधर्मा कवियों ने श्रुति और स्मृति की परम्परा से वेद के गुप्त को सुरक्षित रखा। वेद के सूक्तों में नई से नई प्रौद्योगिकी के रहस्य छिपे हैं। यह बुनियादी समस्या है कि वेद की देव भाषा संस्कृत इक्कीसवीं शती की संस्कृत से लगभग लगभग अलग है। यह प्राकृत, पाली, शारदा,

ब्राह्मी आदि से भी इतर है। निरूक्त में यह स्वीकारा गया कि वर्तमान वेद के बहुत से शब्दों के अर्थ नहीं जाने जा सकते हैं। यह स्वाभाविक ही है कि वेद वर्णित प्रौद्योगिकी–विज्ञान के सूत्रों की व्याख्या करना तिलिस्म बेधन के समान है।

यह समझा जाता है कि भारत की तरह ''सर्वश्रेष्ठ आर्य संस्कृतिवाले जर्मनी में उन्नीसवीं शती से वेद विद्या के सूत्रों पर शोध अनुसंधान में वैज्ञानिक लगे हैं।'' नाईन अननोन, गन्स ऑफ गॉड के रचयिता श्री टालबोट मुण्डी के अनुसार वेदीक गुप्त विद्या के दस हजार वर्षों से रखवाले पहरूए नौ अज्ञात ऋषिगणों ने ही आविष्कारकर्ता शोधक वैज्ञानिकों को मानव सभ्यता संस्कृति के कल्याण परमार्थ के लिए यह ज्ञान दिया। नौ अज्ञात ऋषि विश्वभर में मानव कल्याण की शोध एवं कल्याण में लीन आधुनिक ऋषिनुमा अनुसंधानकर्ताओं का मार्गदर्शन करते हैं। यही कारण रहा कि श्री अलबर्ट आईन्सटीन अस्ति्त्ववादी बने। इन अज्ञात नौ ऋषियों का ''गुप्त समाज'' ब्रह्मवर्त (भारत) की सीमाओं के आरपार सभी सात महाद्वीपों में फैले होने के संकेत एवं प्रमाण मिले हैं।

देश में प्रख्यात वैज्ञानिक डॉ. जगदीश चन्द्र बोस ने वृक्ष एवं पौधो में जीवन को अनुसंधान कर प्रमाणित किया। भारतीय मनीषा में न केवल वनस्पति में जीवन का जयघोष किया बल्कि वृक्षों में देवताओं का निवास भी बताया। वेद विद्याविद यह रहस्य जानते थे कि पीपल वृक्ष चौबीस घण्टे प्राणवायु 'आक्सीजन' देता है। वेद विद्याविदों ने वृक्षों का प्रतीकात्मक नामकरण किया। देवराज इन्द्र के चिरयुवॉ रहने के रहस्य को इन्द्रपुत्र अर्जुनवृक्ष से नत्थी किया। अर्जुनवृक्ष की छाल के रस से हृदय की धमनी साफ होती है। सो हृदय की शल्य चिकित्सा (ओपन हर्ट सर्जरी, बाई पास सर्जरी, बैलूनिंग आदि) का सरल साधारण उपचार अर्जुनवृक्ष है। वेद वैज्ञानिकों ने अपने शोध अनुसंधान रहस्यमय प्रतीकात्मक कूट लिपि में अंकित किए। वेद वैज्ञानिकों के लिए सबसे महत्वपूर्ण है और था कि मानव कल्याण के सूत्र मानवीय सभ्यता के संहार या विनाश के महास्त्र नहीं बने। गरूड़ पुराण की धनवन्तरी संहिता (श्री मन्मथनाथदत्त शास्त्री : सन् 1908 कोलकाता प्रकाशन) में विष के

औषधीय प्रयोग का खजाना छिपा है। परन्तु ''विष बम अथवा रसायनिक बम'' के विरोधियों पर उपयोग ने विश्व को झकझोरा।

खगोल विज्ञान सभी आधुनिक अनुसंधानों का श्रेय भारतीय आर्ष (ऋषि) ग्रन्थों को जाता है। उनतालीस लाख वर्ष पहले ही ऋषियों ने सूर्य सिद्धान्त में सूर्य चन्द्र सहित ग्रहों की गति–चाल की गणना की। यह गणना आज भी सटीक निकलती है। यह स्मरण रहे कि त्रेतायुग में अयोध्या नरेश दशरथ के सुपुत्र राम के जन्म की घड़ी, नक्षत्रों का वर्णन मिलता है। इसी अनुरूप जय संहिता (भारत संहिता अथवा महाभारत) में अजेय भीष्म पितामह की मृत्यु की घड़ी नक्षत्र आदि का ब्योरा है। उस समय ''घड़ी का आविष्कार नहीं हुआ था।'' प्राचीन भारत में सूर्य यन्त्र से काल की गणना की परम्परा थी। प्राचीन भारत में हजारों वर्षों के पाँचाग प्रचलन में थे।

प्राचीन भारत के अस्त्र शस्त्रों की परिकल्पना को ही आधार बनाकर उन्नीसवीं बीसवी शती में जर्मनी में अनुसंधान हुए। जर्मन वैज्ञानिक को ही यह श्रेय जाता है कि उसने ''महाविध्वंसक परमाणु बम को विकसित् किया।'' ब्रह्मसूत्र में अणु परमाणु, न्यूट्रोन, क्लेप्ट्रोन आदि को रहस्यमय ढ़ंग से लिखा है। ब्रह्मज्ञानी समाज (थियोसोफिकल सोसायटी ऑफ इण्डिया) की पुस्त्क ने रहस्योद्घाटन किया कि वैज्ञानिकों के अनुसंधान से पहले ब्रह्मविद्या से किसी भी ''पदार्थ'' की आंतरिक आणुविक (अणु, परमाणु, न्यूट्रोन, क्लेप्ट्रोन आदि) संरचना को उदघाटित किया गया। साईन्सदां अचरज में है कि लगभग 7500 वर्ष पहले ग्वाटेमाला आदि की ''माया सभ्यता'' में विशालतम बहुमंजिला पिरामिडों का निर्माण बिना क्रेन कैसे हुआ ? वर्तमान क्रेन भी इतनी भारी पत्थर शिलाओं को उठाने और निर्माण स्थल पर लगाने में समर्थ दिखाई नहीं देती है ? मय–माया सभ्यता के तत्कालीन सिविल इंजीनियरों– उस्त्ताओं– राजमिस्त्रियों ने पिरामिड़ निर्माण में किन दैत्याकार विशाल संयंत्रों को काम में लिया ?

आर्षग्रन्थों मे किसी भी जल को ''पेयजल'' योग्य बनाने की अनेक विधियाँ मिलती हैं। पौराणिक काल से ईसा पूर्व महान् आचार्य विष्णुगुप्त चाणक्य के काल में ''अग्निरोधक वस्त्रों'' का उल्लेख मिलता है (वर्तमान फायरप्रूफ क्लाथ उनका नवातार कहा जा सकता है।)। नौ गुप्त आर्ष

ग्रन्थों में देशकाल परिस्थिति अनुरूप यन्त्र आदि के भेद को गुप्त कूट प्रतीकात्मक एवं अंकात्मक सूत्रों में समेटने के पीछे एक मात्र आशंका ''गलत हाथों में पड़ने की रही।'' ग्रन्थों में लिखा सभी प्रमुख ग्रहों का वर्णन उन ग्रहों पर भेजे यानों से सही मिला। आज आवश्यकता यह है कि नौ अज्ञात वेदविद्याविद दिव्य ऋषियों नमनकर ज्ञान को कल्याण के काम में लें।।ऊँ।।

दस हजार वर्षों से नौ अज्ञात ऋषि दिव्य चमत्कारिक ग्रन्थों के रखवाले

पश्चिमी देशों ब्रह्मविद्याविद (थियोसोफिस्ट) दो शताब्दियों से ब्रह्मवर्त के नौ दिव्य ऋषियों और उनकी धरोहर नौ दिव्य चमत्कारिक ग्रन्थों को येन केन प्रकारण प्राप्त करने में लगे हैं।

इन दिव्य ऋषियों द्वारा हजारों वर्षों से वेद विज्ञान पर शोध अनुसंधान गवेषणा और सूत्रों को क्रियान्वन रूप देने की गोपनीय विधि अभी रहस्य बनी है। सन् 1884 में भारत में फ्राँसीसी उपनिवेश के प्रधान न्यायधीश लुइस जकोलियट ने आकल्ट साइंस इन इण्डिया में वेदीक चमत्कारिक विद्याप्राप्त सन्तों का उल्लेख किया है। सन् 1824 में ब्रिटिश भारत में राजधानी में पुलिस अफसर रहे श्री टालबोट मुण्डी ने 'नाईन अननोन' और 'गन्स ऑफ गॉड' प्रकाशित कर छह हजार से 10 हजार वर्षों से नौ ब्रह्मज्ञानी ऋषियों की गोपनीय से गोपनीय प्रायोगिक वेदीक

विज्ञान के ग्रन्थों का रहस्योद्‌घाटन कर सनसनी फैलायी। लेकिन श्री मुण्डी यह रहस्य ही छोड़ गए कि ये नौ अज्ञात ऋषि कहाँ हैं ?

थियोसोफिकल सोसायटी (ब्रह्मज्ञान समाज) के श्री सी.डब्ल्यू. लीड़बीटर ने 'मास्टर्स पथ' में हिमालय के तिब्बत के अज्ञात क्षेत्र में दो पर्वत शिखरों की गहरी घाटी में नदी के मुहाने पर अलौकिक शक्ति सम्पन्न श्री कुथमी बाबा की कथा लिखी है। चमत्कारी श्री कुथमी बाबा 1600 वर्ष की आयु के और यूरोप में इंग्लैण्ड में अपने आकर्षक घोड़े पर पलक झपकते पहुंचने में समर्थ रहे। आध्यात्मविद सुश्री ऐनी बिसेन्ट ने ''अदृश्य सहायक'' में रहस्योद्‌घाटन किया कि विश्व में अनन्त अच्छी और बुरी आत्मायें विचरण कर रही हैं। अच्छी दिव्य आत्मायें हमारे शुभ अच्छे कार्यों में सहायक होती हैं। यह आवश्यक है कि शुभ कर्मों से नया भाग्य लिखें (योगवासिष्ठ)।

महामहोपाध्याय पण्डित गोपीनाथ कविराज ने हिमालय में दिव्याश्रम ''ज्ञानगंज'' का ब्योरा लिखा है। इन दिव्याश्रमों के प्रमुख हजारों वर्ष की आयु के परमाचार्य महातपा हैं। परमाचार्य महातपा श्रीविद्या की अधिष्ठात्री महादेवी राजराजेश्वरी के आराधक हैं। ज्ञानगंज में सूर्यविद्या, शब्दविद्या, वायुविद्या, नक्षत्रविद्या आदि का अध्ययन और परीक्षण कर सिद्ध गढ़े जाते हैं। अदृश्य ज्ञानगंज से सूर्यविद्या में पारंगत स्वामी विशुद्धानन्द परमहंस अपने आश्रम से मिले आतशी शीशे (लैंस) पर सूर्य की किरणों को विभाजित कर हीरे से लेकर रसगुल्ला बनाकर दिखाते थे। वे इसे जादू नहीं ''विशुद्ध विज्ञान'' और सूर्य की 7 रंगों की किरणों में सभी तत्त्व उपलब्ध होना बताते थे। ज्ञानगंज के ''कठोरतम अनुशासन'' से स्वामी विशुद्धानन्द परमहंस को सूर्य विद्या प्रयोगशाला स्थापित करने और ज्ञान देने की अनुमति ''नहीं'' मिली। इसी श्रृंखला में बारह वर्ष श्रीबदरीनाथधाम स्थित आदिशंकराचार्य द्वारा स्थापित श्रीज्योतिष्पीठ के जगदगुरु शंकराचार्य स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती का नाम आता है। स्मरण रहे कि एक सौ पैंसठ (165) वर्ष तक शंकराचार्य ज्योतिष्पीठ पर कोई पीठाधीश्वर नहीं था। स्वाभाविक रूप से सत्तर के दशक की आयु के शंकराचार्य स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती के सामने 165 वर्ष में शेष होते अवशेषों को पुनः भव्य रूप देने का गुरुतर दायित्व था।

संयोगवश ज्ञानगंज में दीक्षित शंकराचार्य स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती ने श्री विद्या के प्रयोग से आवश्यकतानुरूप धन निर्माण कार्य के लिए दिया। शंकराचार्य ब्रह्मानन्द सरस्वती के बाद कुछ को ज्ञानगंज में भेजा गया (यह दुखद है कि वे अधबीच में लौटे। इसकी कथा अलग है।)। इस दिव्याश्रम ज्ञानगंज के गुप्त स्थल की खोज आज भी जारी है। वैसे श्री लीडबीटर ने राज खोला कि प्रति वर्ष एक निश्चिम शुभ दिन ब्रह्माण्ड के स्वामी ''परमेश्वर परमात्मा'' आकर अध्यात्मिकविदों में शक्ति जाग्रत करते हैं।

धर्मविद् सुदर्शन सिंह चक्र ने श्रीकैलास मानस सरोवर यात्रा के दौरान दिव्य ऋषियों (वसिष्ठ मुनि, विश्वमित्र मुनि, कौशिक मुनि, अगस्त्य मुनि आदि) के आश्रमों का वर्णन किया है। इन दिव्य आश्रमों में हजारों वर्षों से वेद विज्ञान की शिक्षा मयप्रयोग दी जाती है। दिव्य आश्रमों में चयनितों को कठोर साधना करवायी जाती है। श्रीमहादेव शिव के पवित्र कैलास एवं मानस सरोवर की सन् 1956 में यात्रा करनेवाले तरूण श्री बिमल दे ने बर्फ से ढ़के पवित्र कैलास क्षेत्र में बित्ते भर मात्र की लंगोटी पहने नंगधड़ंग, नंगे पांव घूमते जटाजूटधारी साधुओं का रोमांचक रोचक खांका खींचा है। सहयात्रियों ने शून्य से नीचे के तापमान में परेशान श्री बिमल दे को एक पत्ती और कंकड़ सा जिह्वा जीभ के नीचे रखने को दिया। श्री बिमल दे पर शीत का कोई असर नहीं था। कैलास की गुफाओं में साधु साधनारत मिले। चीन द्वारा तिब्बत पर नियंत्रण के समय तिब्बत की गुफाओं में 4000 से अधिक साधु घोर तपस्या में तल्लीन थे। ''तिब्बत का गुप्त ग्रन्थ'' आध्यात्म शोधार्थियों के लिए पहेली बना है। तिब्बत के ''ज़्यान के सूत्र'' ग्रन्थ में ब्रह्माण्ड से लेकर पृथिवी रचना अथवा सृष्टि ज्ञान के रहस्य को उद्घाटित किया गया है। ब्रिटिश उपनिवेश के दौरान हजारों—हजारों गुप्तज्ञान के तिब्बति ग्रन्थ चोरी हुए। नौ ब्रह्मज्ञानी ऋषियों को पिछले सौ वर्षों से अधिक में सम्भवतः उनका कोई शिष्य दर्शन कर पाया हो। नौ ऋषियों के अधीन नौ उपाचार्य हैं। इन उपाचार्यो के निर्देशन में नौ नौ सह आचार्य और उनके मार्ग दर्शन में नौ नौ प्रमुख चेले काम करते हैं। चेले अपने नौ नौ प्रमुख सहायक और आगे फिर प्रत्येक के नौ नौ उप चेले होते हैं। इस जटिल मकड़जाल में अंतिम चेला नौ ऋषियों में से एक को जान ही नहीं

सकता है। ब्रह्मज्ञानी ऋषि को लगातार एक विषय की नवीनतम ज्ञानकारी मिलती रहती है। नौ ब्रह्मविद ऋषि वर्ष में एकबार अपने नौ शिष्यों से मिलते हैं। यही सिलसिला नीचे तक चलता है। नौ ब्रह्मविद ऋषि अपने आर्षग्रन्थ में प्रतीकात्मक कूट रहस्यमय लिपि में नई से नई शोध लिखते रहे हैं। इन शोध में अंतरिक्ष विज्ञान, आयुर्विज्ञान, यन्त्र सर्वस्व, धातु विज्ञान, दूसरे ग्रहों के वासियों से सम्पर्क एवं आकाशयान, शब्द एवं ध्वनि विज्ञान, सूर्य विज्ञान, नक्षत्रज्ञान आदि सम्मिलित हैं। वेदीक विज्ञान से नौ ब्रह्मविद ऋषियों की आयु हजारों वर्ष रहती है। उनमें से जब कोई देह छोड़ता है तो अपना उत्तराधिकारी बनाकर ''दिव्यग्रन्थ'' सौंप जाता है। नौ ब्रह्मज्ञानी ऋषि ही सूक्ष्म देह से आविष्कारकर्ता वैज्ञानिक का मार्गदर्शक करते हैं।

इन नौ ब्रह्मविद ऋषियों का चिन्ता का विषय यह रहा है कि वेदीक विज्ञान के नौ दिव्य ग्रन्थों के दुरूपयोग से पृथिवी का एकक्षण में विनाश भी सम्भव है। वेद में वर्णित अणुशक्ति का महाविध्वंसक रूप परमाणु बम है। अतः नौ ब्रह्मविद ऋषि दिव्य ग्रन्थों के रखवाले बने हैं।।ऊँ।।

वेद वर्तमान विज्ञान तक से कोसों आगे : वेद उनतालीस लाख वर्ष प्राचीन होने के साक्ष्य की रहस्यकथा

दृष्टा ऋषियों ने लगभग उनतालीस लाख वर्ष पहले देवों से देववाणी वेद सुने। वेदीक ऋषियों को कवि अथवा आत्मज्ञानवान कहा गया है। वेदीक ऋषियों को ''आत्मानुसंधान'' में दिव्य रचना वेद मिले।

ऋग्वेद से लेकर यजुर्वेद, सामवेद में सृष्टि की रचना और रहस्य का प्रतीकात्मक, कूटात्मक, संकेतात्मक वेदीक संस्कृत में सूक्ष्मतम वर्णन है। यह भ्रान्ति है कि कुछ विद्वान पश्चिमी प्रभाव में वेद का काल ईसा पूर्व एक हजार वर्ष अथवा पाँच हजार वर्ष पुराना सिद्ध करते हैं। जर्मन वेदीक अध्येता मैक्समूलर तक ने वेद को 25000 वर्ष पुराना स्वीकारा है।

पश्चिमी विद्वानों ने 26000 वर्ष पहले उत्तरी ध्रुव की स्थिति को इसका आधार बताया है।

सूर्य सिद्वान्त में सृष्टि की रचना के काल की गणना की है। वेद छन्दों के रूप में सृष्टि रचना के तृतीय चरण में (वेद ऋचायें) आकाश में उच्चारित हुई। सृष्टि की रचना और लय (प्रलय) ब्रह्माण्ड में लगातार चल रही है। सूर्य सिद्धान्त में ब्रह्मा दिन और ब्रह्मा रात्रि को रचना एवं प्रलय स्वीकारा गया है। ये दोनों 8,64,00,00000 (8 अरब 64 करोड़) सौर वर्ष के होते हैं। यह स्वाभाविक है कि ब्रह्मा दिन–ब्रह्मा रात्रि में 4,32,00,00000 (4 अरब 32 करोड़) वर्ष होते हैं। ऋषियों ने ब्रह्मा दिन को 1000 चतुर्युगियों में बांटा है। वहीं एक मन्वन्तर में 71,428 चतुर्युगियां होती हैं। एक चतुर्युगी में 43,20,000 (43 लाख 20 हजार) वर्ष होते हैं। वर्तमान में 6 मन्वन्तर अर्थात् 1,85,14,13760 (एक अरब 85 करोड़ 14 लाख तेरह हजार सात सौ साठ) वर्ष गुजर चुके हैं।

आर्ष (ऋषि) ग्रन्थों के अनुसार सातवें मन्वन्तर की 27 चतुर्युगियां या 11,64,40,000 (11 करोड़ 64 लाख 40 हजार) वर्ष व्यतीत हुए हैं। सातवें मन्वन्तर के 7 वें वैवस्वत मनु के काल में सत्युग, त्रेता एवं द्वापर में कुल 38,93,000 (38 लाख 93 हजार) व्यतीत होने की गणना है। सत्युग में देवगणी वेद दृष्टा ऋषियों ने सुने। इसीलिए इन्हें श्रुति कहा गया। प्रकारान्तर में हजारों हजारों वर्ष श्रुति को स्मृति परम्परा से गोपन एवं सुरक्षित रखा गया। उसकी भाषा वेदीक संस्कृत रही। ऋग्वेद में सृष्टि रचना के सूक्त (1–163) का देवता अश्वोऽग्निः (अग्नि अश्व) है। सूक्त में रहस्यमय तरीके से ''विषय'' को ''देवता'' से सम्बोधित किया है। अश्व का अर्थ भी घोड़ा नहीं होकर रचना प्रारम्भ करनेवाले से है। ऋग्वेद का मन्त्र (1–163–1) हैः यदक्रन्दः प्रथमं जायमानं उद्यनत्समुद्रादुत वा पुरीषात। श्येनस्य पक्षा हरिणस्य बाहू उपस्तुत्यं महि जातं ते अर्वन। ऋग्वेद के सूक्त से पता चलता है कि एक सौ एक देव वर्ष तक सृष्टि रचना में परमाणुओं का संचारण होता रहा। परमात्मा पाँच महाभूतों से विश्व के विविध पदार्थों का तानाबाना बुनते रहे। वेदीक सूक्तों के अनुसार सूक्त प्रकट करनेवाले देवता नहीं बल्कि परमेश्वर हैं। देववाणी की ध्वनि तरंगों को दृष्टा ऋषियों ने ह्रदय में सुना और स्मृति में रखा। वेद में स्वयं स्पष्ट किया कि वेद का अविर्भाव (उत्पत्ति) कैसे

हुआ ? दृष्टा ऋषियों ने वेद को ग्रहण कर मानुष को समझाया। वेद के प्रकटीकरण में ध्वनि में स्वर और व्यंजन के 42 चिन्हों में वेद को लिपिबद्ध किया गया। दृष्टा ऋषियों ने सूक्त के भाव एवं सम्बन्ध को जानकर देवता (विषय) नियत किया। मंत्र अथवा सूक्तका अर्थ–भाव उसके देवता से ही मालूम होता है। शौनक ऋषि ने इसकी पुष्टि की है। यास्क को कहना है कि सूक्त, मंत्र का भाव एवं अर्थ देवता ही उजागर करता है।

निगम शब्द को उपयोग श्रुति वेद के लिए किया गया है। यहाँ निगम से बोध करवानेवाले का अर्थ है। निरूक्त में चार प्रकार के पद माने गए हैं। वेद के पदो के संग्रह को समाम्नाय कहा जाता है। यही निघण्टु है। वेद के चार पद–नाम (संज्ञावाचक), आख्यात (क्रिया), उपसर्ग (संज्ञा एवं क्रिया के सम्बन्ध), निपात हैं। उनतालीस लाख वर्ष पहले वेद भाषा और लोकभाषा समानान्तर चली रही। वेद की ऋचाओं का सौन्दर्य यह है कि वे प्रवृत्ति से प्रारम्भ होकर निवृत्ति आध्यात्म पर जाती हैं। निरूक्त के अनुसार अध्यात्मिकता की ऋचायें कम संख्या में हैं। वेदमन्त्र मुख्यतः 7 छन्दों–गायत्री, उष्णिक, अनुष्टुप, बृहती, विराट, त्रिष्टुभ एवं जगती में रचे हैं। छन्द से यह पता चलता है कि मन्त्र लिखते समय क्या त्रुटि रही। छन्द में मुख्य सात स्वर–षडज, ऋषभ, गन्धार, मध्यम, पाँचम, धैवत एवं निषाद आदि का उपयोग किया गया। वेद मंत्रों के नीचे खड़ी, आड़ी, सीधी रेखाओं का सम्बन्ध उदात्त (ऊँचा स्वर), अनुदात्त (नीचा स्वर) और स्वरित (मध्यम स्वर) से है। वेद पाठ के समय ये तीन रेखायें मार्गदर्शन करती हैं। सामवेद में उदात्तादि स्वरों के चिन्ह रेखाओं के स्थान पर अंकों का उपयोग मिलता है। पद के उदात्त आदि चिन्ह रेखा से बोलने के भाव और अर्थ ही बदल जाते हैं।

''भाव वृत्तम'' विषय के सूक्त सृष्टि रचना का रहस्य परत दर परत खोलते हैंः (ऋग्वेद 10–129–2) न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि न रात्र्या अह्न आसीत् प्रकेतः। आनीदवातं स्वधया तदेकं तस्माद्धान्यन्न परः किं चनास।। भाव वृत्तम में आदिअग्नि परमेश्वर शक्ति के ब्रह्माण्ड में प्रकट होने का ब्योरा मिलता है। अणु परमाणुओं के तीन प्रकार के निबन्धन से विश्व का निर्माण होता है। ईश्वरीय प्राण को वैश्वानर अग्नि (आदि अग्नि) कहा गया। सामान्य अग्नि को जातवेदा अग्नि नाम दिया गया।

इसे ही आनीत अवातम की संज्ञा दी गई। वेद में अग्नि के मन्त्र सर्वाधिक हैं। आत्म को भी चित्त अग्नि माना गया है। ऋग्वेद के सूक्त में स्पष्ट किया गया सभी वनस्पति–औषधियों में प्रवेश कर काम करती है। अग्नि या सूर्य की किरणों से वनस्पति में प्रोटिन कार्बोहाईड्रेट आते हैं (हजारों वर्ष बाद 200 वर्ष पहले पश्चिमी वैज्ञानिक सूर्य की इस शक्ति का रहस्य समझ पाये।)।

यास्क के अनुसार ''सविता सर्वस्य प्रसविता।'' सविता में नाद से सभी उत्पन्न हुए। ऋग्वेद में लिखा है : (10–149–1) ''सविता यन्त्रैः पृथिवीमरम्णादस्कम्भने सविता द्यामदृंहत। अश्वमिवाधुक्षद्धनिमन्तरिक्षमतूर्ते बद्धं सविता समुद्रम।।''सविता ने यन्त्रों से पृथिवी को थामा है। आश्रय रहित स्थान में सविता ने द्यौ–सूर्य को दृढ़ किया। जैसे घोड़े को झाड़ा जाता है। सविता ने अचल में अंतरिक्ष को धुन ड़ाला। वेद सत्य विद्याओं की तर्कपूर्ण मानव लाभ के लिए परमात्मा से प्राप्त ज्ञान है।।ऊँ।।

वेदीक पौराणिक दिव्यास्त्र
चेतन एवं मेधावान बुद्धिमत्ता के वैज्ञानिक अस्त्र

त्रेता में वेदीक ज्ञान और विज्ञान चरमोत्कर्ष पर रहा। महाभारत में पाण्डव और कौरवों ने महाविनाशक अस्त्र शस्त्रों से महासंहार किया। इस महासमर से पहले धनुर्धर अर्जुन ने योगीराज श्रीकृष्ण से प्रश्न किया कि वेदीक विज्ञान के ब्रह्मास्त्र सहित दूसरे दिव्य अस्त्रों के उपयोग से भयानक संहार के बाद क्या होगा ? महासमर के समापन के बाद करोड़ों युवा विधवाओं से समाज में व्रात्य पैदा होंगे, उनसे भीषण स्थिति उत्पन्न होगी?

योगीराज श्रीकृष्ण का उत्तर रहा कि यह उन पर छोड़ें। कालचक्र के बाद वेदीक ज्ञान का नवकाल प्रारम्भ होगा। हमारे परमाचार्य वेदव्यास ने सभी वेद सहित श्रुति स्मृति के आर्ष (ऋषिगणो के) ग्रन्थों की पुनर्रचना की। वेदीक एवं पौराणिक काल के दिव्य अस्त्र जड़ नहीं चेतन थे। ये दिव्य अस्त्र बिना सोचे समझे विनाश के लिए विनाश नहीं करते थे। इसकी सुन्दर कथा सुदर्शन की है। राजा अम्बरीश को दण्ड

देने के लिए महर्षि दुर्वासा ने कृत्या उत्पन्न की। राजा अम्बरीश महाविष्णु के दिव्यास्त्र श्रीसुदर्शन चक्र के शरणागत थे। महाविकराल कृत्या के सामने अम्बरीश हाथ जोड़े खड़े थे। उस विकट परिस्थिति में चैतन्य शक्ति श्रीसुदर्शन चक्र प्रकट हुए और कृत्या का सिर काट डाला। श्रीसुदर्शन चक्र महर्षि दुर्वासा की ओर चले। भयभीत महर्षि तीनों लोकों में शरण के लिए भागे। यहॉ श्रीसुदर्शन चक्र ने चैतन्य होने के कारण महान् ज्ञानी वेदज्ञाता दुर्वासा महर्षि को मारा नहीं, उन्हें मात्र भयभीत कर सदमार्ग पर लाये। वर्तमान में विज्ञान के सभी अस्त्र शस्त्र एक बार दागने के बाद संहार ही करते हैं। वे सभी जड़ अस्त्र हैं। हम मानते हैं कि विज्ञान ने अभूतपूर्व प्रगति की है। किन्तु वर्तमान विज्ञान आर्ष ग्रन्थों की तुलना में एकांश भी नहीं है।

आर्ष ग्रन्थों में 108 ब्रह्माण्डों का वर्णन है। इन ब्रह्माण्डों में अनगिनत तारें निहारिकाये हैं। वैज्ञानिक वर्तमान में सौर्य मण्डल के तारों ग्रहों की खोज में लगे हैं। खगोल वैज्ञानिक नित नये तारे का नामकरण कर रहें हैं। महामुनि अगस्त्य ने बारह सूर्यों आदित्यों का वर्णन किया है। विज्ञान के लिए अनेक सूर्य रहस्य बने हैं। यह प्रश्न उठता है कि आखिर भौतिक विज्ञान अभूतपूर्व विकास के दौर में एक शतक से अधिक ब्रह्माण्डों की जानकारी क्यों नहीं प्राप्त कर पाया ? वेदीक एवं पौराणिक के ऋषियों को इन ब्रह्माण्डों की सूक्ष्मतम जानकारी प्राप्त करने की ''विद्या'' क्या रही ? ऋषि किस यान से इन ब्रह्माण्डों के ग्रहों तक गए ? उपासकों ने महाकाल साम्ब सदाशिव रुद्र, इन्द्र, सूर्य, महाविष्णु, ब्रह्मा, देवी आदि से दिव्यास्त्र कैसे प्राप्त किए ? इन दिव्यास्त्रों को जाग्रत करने की विधि चर्या क्या थी ?

वर्तमान में यह रहस्योद्घाटन हुआ है कि सूर्योदय के समय सिन्दूरी श्रीसूर्य देव को निहारने देखने से अनन्त ऊर्जा मिलती है। किसी भी प्रकार के भोजन आदि की आवश्यकता नहीं रहती है। श्रीसूर्यदेव प्रत्यक्ष देवता हैं। श्री सूर्यदेव की अनन्त दिव्य शक्ति पर आधारित सूर्य विज्ञान महाचमत्कारिक है।

परमगुरु वेदव्यास के बाद ढ़ाई हजार वर्ष पहले श्रीआदिशंकराचार्य ने पुनः समस्त् वेदीक पौराणिक ज्ञान को नवजीवन दिया। उन्होंने अद्वैत की अलख जगाई। अद्वैत में ब्रह्म और पिण्ड

जीवात्मा पृथक नहीं है। भारत के सभी मनीषियों ने यही कहा कि जो ब्रह्माण्ड में है, वही अण्ड में है। जीवात्मा के अन्दर ब्रह्माण्ड है। अतः आध्यात्म एवं अद्वैत में अन्तस की यात्रा पर बल दिया गया है। आध्यात्म की पहली अनिवार्य शर्त अन्तर्मुखी होना है। आत्म साक्षात्कार से ही स्व के अस्तित्त्व को जाना समझा जा सकता है। यह आन्तरिक प्रक्रिया है। यद्यपि भौतिक विज्ञान की चकाचौंध में बाहर ही ''मैं''–आत्मा–स्वयं की तलाश करते रहते हैं। यह भी सत्य है कि वेद की चिदाग्नि ''आत्मा'' है। इस आत्मा से मिलन के लिए ''मन के मैल'' को हटाना बहुत जरूरी है।

यह संग्रहित कर्मों का सौभाग्य होता है कि हमें सदगुरु मिले। हमें आदि गुरु ''शिव'' की शरण में जाना चाहिए। उसमें सम्पूर्ण समर्पण का भाव हो। अध्यात्मिक ज्ञान के लिए अन्तस का घड़ा रिक्त खाली होना भी आवश्यक है। हम श्रीआदिशंकराचार्य को कोटि–कोटि नमस्कार करते हैं कि उन्होंने वेदीक संदेश के मूल अद्वैत को प्रदान किया। आर्ष गन्थों में ''शिक्षा एवं अशिक्षा'' का उल्लेख आता है। ''शिक्षा का अर्थ ब्रह्मज्ञान आध्यात्म से और अशिक्षा का अर्थ भौतिकतावाली (रोजगार मूलक) शिक्षा'' से हैं। आधुनिक विद्वानों ने शिक्षा अशिक्षा के गूढ़ रहस्य को सही नहीं समझा। यही भ्रम का कारण बना है। मानुस के जीवन में शिक्षा, अशिक्षा के बीच संतुलन की आवश्यकता है। इस पर चर्चा से पहले श्रीआदिशंकराचार्य की रचनाओं का अध्ययन कर लें तो मर्म समझना सरल होगा।

कुछ भक्त पूछते हैं कि काम, क्रोध, मद, मोह, मत्र्स्य आदि आन्तरिक शत्रुओं पर विजय कैसे प्राप्त करें, कैसे छुटकारा पायें ? वे इन आन्तरिक शत्रुओं से संघर्ष में ही समूची शक्ति लगाए हैं। अरे भई, इनसे संग्राम में क्यों लगे हो ? सबसे पहले वैचारिक प्रक्रिया को अध्यात्मिक अद्धैत की ओर मोड़ें। सत्संग करें। आन्तरिक ब्रह्माण्ड के यात्री बने। ब्रह्म को समझने का जतन करें। मन को एकाग्र करें। धीरे–धीरे ब्रह्म की महायात्रा में आन्तरिक शत्रु सहयोग करने लगेंगे। ब्रह्म की ललक ही दिव्य शक्ति से साक्षात्कार करवायेगी। ब्रह्म ही वह सर्वशक्तिमान है जो सूक्ष्म से भी सूक्ष्म और विशाल से भी अनन्त विशाल है। इस सूक्ष्मतम ब्रह्म का रहस्य सुलझाने में वर्षों से विश्वभर के वैज्ञानिक अरबों रूपए

झौंक चुके हैं। यह सच्चाई है कि ब्रह्म के नाद और सृष्टि की उत्पत्ति का रहस्य अभी रहस्य है। भारतीय धर्म आध्यात्म मूलभूत रूप से आस्था, विश्वास आधारित है। अनास्था से आर्ष ग्रन्थों के दिव्यज्ञान के रहस्य को नहीं जाना जा सकता है। ऊँ

मानवीय ब्रह्मरंध्र में ब्रह्मांड–सृष्टि–विश्व मानचित्र, कहीं भी संवाद क्षमता

चौंके नहीं ! विज्ञान के नोबल पुरस्कार प्राप्तकर्ता (विज्ञान) ने रहस्योद्घाटन किया कि हर व्यक्ति के मस्तिष्क (ब्रह्मरंध्र–सहस्त्रार) में सृष्टि के मानचित्र का विवरण (जी.पी.एस.) होता है। साथ ही स्वीकारा कि विचारों के कंपन, तरंग से कहीं संवाद की क्षमता होती है।

यह शोध अनुसंधान कोई ''नया रहस्योद्घाटन'' नहीं है। बल्कि आर्यायण के वेदीक ऋषियों की देववाणियों, पुराने तथ्यों की नये रूप से प्रस्तुति है। ब्रह्मविद्या (थियोसोफिकल) के मनीषियों ने वैज्ञानिक अनुसंधान से दशकों पहले खनिज धातु, रसायन के अणु, परमाणु, न्यूट्रोन, इलैक्ट्रोन, क्लेप्ट्रान, नियोन की संरचना की जानकारी दी। आर्यायण–पारस वर्तमान ईरान, यूनान, यूरोशिया, मंगोलिया, चीन, कम्बदेश–कम्बोडिया, वियतनाम, इण्डोनेशिया, मलेशिया, थाईलैण्ड, म्यमार, सिंहल श्रीलंका, तिब्बत, नेपाल, बांगलादेश, कंधार–अफगानिस्त्ान और भारत में वेद से पूर्व और वेदीक काल में तप, साधना और योग से सहस्त्रार–ब्रह्मरंध्र स्थित जीपीएस को सुप्त अवस्था से सक्रिय करने और सृष्टि को नापनेवाली विचार तरंगों का रहस्य उद्घाटित कर लिया था। वेदीक ऋचाओं के दिव्य मंत्रदृष्टा ऋषि द्वारा अक्षर ब्रह्म की शक्तिवाले मंत्र का पाठ करते ही वेदीक दैवता वरुण, अग्नि, मित्र, वायु, उषा, सविता, द्विअश्विनीकुमार, इन्द्र, सूर्य, रुद्र आदि उसी क्षण प्रकट होते। इतना ही नहीं देवत्व प्राप्त ऋषि को आर्त भाव से शिष्य द्वारा पुकारे जाने पर विश्व में अनाम स्थान पर ऋषि प्रकट होते थे। ऋषि ब्रह्मरंध्र

स्थिति सृष्टि के मानचित्र (जीपएस) से उन्हें याद करनेवाले स्थल की तरंगों को जानने में माहिर थे।

भारतीय पौराणिक इतिहास ग्रन्थों में श्रीहरिविष्णु के अवतार श्री परशुराम द्वारा आकाशमार्ग से सीधे मिथिला के राजा जनक की सुपुत्री सीता के स्वयंवर में पहुंचने का उल्लेख मिलता है। वेदीक युग से त्रेता तक तपस्वी ऋषियों ने कठोर साधना, दिव्य यज्ञ और योग के बल पर शरीर को सूक्ष्मतम रूप देने और पुनः उसे वर्तमान स्वरूप–स्थूल रूप देने की महारथ प्राप्त की थी। इसीलिए वाल्मीकि कृत रामायण में विदुषी लोपमुद्रा के पति और समुद्र को चुल्लु में पीनेवाले ऋषि अगस्त्य श्रीआदित्यहृदय स्तोत्र में श्रीराम को सृष्टि विज्ञान और अनेक सौर लोकों को प्रसव (जन्म) देनेवाले आदि सूर्य–सविता की शक्तियों की जानकारी देते हैं। अगस्त्य ऋषि बारह सूर्यों का भ्रमण कर चुके थे। वर्तमान में वैज्ञानिकों ने स्वीकारा कि समूचे ब्रह्माण्ड में अनेक सौर मण्डल हैं, अनेक सूर्य हैं। इन सूर्यों तक जाना वर्तमान में भी असम्भव है। यह दुर्भाग्यजनक है कि अगस्त्य ऋषि द्वारा सूर्य में नाद (स्फोट) से पृथ्वी के जन्म के कथन को कपोल कल्पना मानकर हवा में उड़ाया गया। वेदीक काल से आज तक ब्रह्मवर्त आर्यायण का स्फोटवाद पश्चिमी वैज्ञानिकों के लिए अनुत्तरित पहेली बना है।

ऋग्वेद काल में मंत्रदृष्टा दिव्य ऋषियों ने सृजन और संहार दोनों में समान सक्षम सर्वशक्तिमान ऋचाओं को प्रतीक एवं कूट भाषा के तिलिस्म में रखा। जिससे दुष्ट प्रवृत्तिवाले इन मंत्रों का दुरूपयोग नहीं कर सकें। भारतीय प्राचीन इतिहासग्रन्थ महाभारत में सम्राट धृतराष्ट्र के दरबार में महारानी द्रौपदी चीरहरण के समय द्वारका (गुजरात) के राजमहलों में बैठे योगीराज कृष्ण का स्मरण करती है। वेदव्यास लिखते हैं कि योगीराज कृष्ण नंगे पैर ही भागते धावते हैं, उनके पीछे–पीछे पवनवेग से रथ दौड़ता है। यहाँ कृष्ण ने सूक्ष्म से अतिविशाल करने बृहण की विद्या का प्रयोग किया। दौपदी की साड़ी अनन्त बन गई। वैसे वैज्ञानिक वर्षों से यूरोप की महाप्रयोगशाला में ईश्वर तत्त्व को खोजने में लगे हैं। यह ईश्वरतत्त्व सूक्ष्म से भी सूक्ष्म है। इस सूक्ष्म तत्त्व के स्फोट से ही पृथ्वी की रचना हुई। वेद के दिव्य ऋषि ब्रह्म ईश्वर को सूक्ष्म से सूक्षम और विशाल से विशालतम सभी जगह व्याप्त (विष्णु) मानते हैं।

उसी ब्रह्म का अंश मानवीय शक्ति में है। वेदीक काल में ऋषियों ने प्रकाश की गति से सूक्षम रूप से पृथ्वी और ब्रह्माण्ड में घूमने की गुप्त कूट गोपनीय विधि विकसित् की। ऋषियों ने सभी ग्रहों–सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, छायाग्रह–राहू, केतु आदि की संरचना, रूपाकार आदि का सटीक वर्णन किया। स्पष्ट है कि ऋषियों ने इन ग्रहों की आकाशीय यात्रा की। भारतीय ऋषि सूर्य विज्ञान में विशेष दक्षता प्राप्त थे। उसके परिणामस्वरूप सूर्य गणना से हजारों वर्ष के पाँचागों की रचना की। पाँचांगों में सूर्यग्रहण, चन्द्रग्रहण, पूर्णिमा, अमावस्या आदि का सैंकड़ों वर्षों का विवरण मिलता है।

योग और साधना में ब्रह्मरंध्र अथवा सहस्त्रार में जप करने को सर्वोच्च माना गया है। कनफट्टा नाथ सम्प्रदाय के शिवावतार गोरक्षनाथ (गोरखनाथ) द्वारा दिव्यदृष्टि (जीपीएस) के कामरूप में फंसे गुरु मत्स्येन्द्रनाथ (मच्छंदरनाथ) की जानकारी लेते हैं। नाथ सम्प्रदाय के इतिहास के अनुसार गुरु गोरखनाथ कामवासना में फंसे महाराजा भर्तृहरि (भरथरी) को योगमार्ग पर लाने उज्जैयनी जाते हैं। ईसापूर्व में सन्यासी बनने से पहले आदिशंकर अपनी माता को मृत्यु के समय पुकारने का कालड़ी, केरल आने का वचन देते हैं। उधर मृत्यु के समय माता शंकरा पुकारती है। इधर आदिशंकर के ब्रह्मरंध्र में उसके स्वर की कंपन ग्रहण होती है। आदिशंकर के मस्त्ष्कि का जीपीएस उन्हें कालडी का आकाश मार्ग बताता है। नौ सौ वर्ष पहले मरूभूमि के नाथ सिद्ध गोगाजी आकाश मार्ग से आते–जाते रहे।

बींसवीं शती में हिमालय की ज्ञानगंज दिव्यस्थली में सूर्य विज्ञान में दीक्षित स्वामी विशुद्धानन्द परमहंस देश के किसी भी कोने से शिष्य द्वारा रक्षा की पुकार पर सूक्ष्म देह से जाकर संकट से उबारते थे। महामहोपाध्याय पण्डित गोपीनाथ कविराज ने ज्ञानगंज में शब्द विज्ञान, वायु विज्ञान, अग्नि विज्ञान, सूर्य विज्ञान आदि की शिक्षा का रहस्योद्घाटन किया है। सर्च ऑफ सिक्रेट इण्डिया में श्री पॉल ब्रिण्टन ने विशुद्धानन्द परमहंस द्वारा मृत चिडिया को सूर्यविज्ञान से जीवित करने की घटना का रोमांचक वर्णन किया है। एकबार म.म.गोपीनाथ कविराज हरिद्वार में नीलकण्ठ के पास आत्महत्या करने का विचार कर रहे थे। हिमालय के ज्ञानगंज से लालटेन लिए साधक उसी समय आया और

कविराज को बचाया। श्री रमण महर्षि, तेलंग स्वामी, बाबा नीब करोली, श्री राम ठाकुर, महर्षि अरविन्द, सुश्री ऐनी बीसेन्ट, श्री सी. डब्लू. लीडबीटर, श्री शंकराचार्य ब्रह्मानन्द (बदरिकाश्रम), राजगुरु विद्यानाथ ओझा आदि के चमत्कारों की असंख्य गाथा हैं। प्रधानमंत्री के पूर्व मीडिया सलाहकार आईएएस अधिकारी श्री पी.वी. आर.के. प्रसाद ने पुस्त्क वेन आई सा बालाजी में ईश्वर कृपा के वरुण यज्ञ से चमत्कारिक वर्षा का वर्णन है। जयपुर के राजगुरु रहे विद्यानाथ ओझा मुम्बई से बिना बात किए विचार तरंग भेजकर मंत्र शक्ति पर लेखक से लेख लिखवाने में सक्षम थे। यहॉ समस्या यह है कि कठोर साधना, तप से ही ब्रह्म के जीपीएम और विचार तरंग भेजने का ज्ञान कैसे प्राप्त हो? ।।ऊँ।।

मस्तिष्क के अन्दर पृथिवी की भौगोलिक स्थितियों का अनन्त भण्डार

प्राचीन काल से तपस्वी साधक ऋषियों को संसार और सौर मण्डल के ग्रहों की सूक्ष्मतम भौगोलिकी की सटीक जानकारी थी। तपस्वी अंतरिक्ष के आकाश से संसार के चप्पे चप्पे पर दूरदृष्टिवान दिव्य नेत्रों से नज़र रखते थे।

हजारों वर्ष बाद फिजियोलोजी में नोबल प्राप्त वैज्ञानिकों की तिकड़ी यूनिवर्सिटी कॉलेज ऑफ लंदन के सर्वश्री जॉन ओ कीफे, मेंब्रिट मोजक एवं एडवर्ड मोजर ने इसकी पुष्टि की। उसके अनुसार मानवीय मस्त्ष्कि में अश्व और समुद्री दानव के रूपाकर का हिप्पोकाम्पस भौगोलिक स्थिति–जीपीएस प्रणाली का नियंत्रक है। इससे इन्टोरहीनल कारटेक्स (ईआरसी) और ग्रिड जेनेरेटिंग सैल (जीजीसी) भौगोलिक जानकारी सम्बन्धित रहती है। स्नायुतन्त्र के डॉ. एन्ड्रीज हेर्ज (म्यूनिख,

जर्मन) के अनुसार मस्तिष्क गणित के सूत्रों के अनुरूप ज्यामितीय रूप में काम करता है। उनकी मान्यता है कि मस्तिष्क के अदृश्य नेत्र से आकाश से देखते हैं। यह संज्ञान मस्तिष्क द्वारा विश्व को स्वीकारते ही विकसित् होने लगता है। डॉ. एलीसन एबडोट का मानना है कि मस्तिष्कका कल्पित षट्कोण भौगोलिक स्थिति प्रणाली (जीपीएस) के रहस्य से जुड़ा है। यह षट्कोण अभी अबूझ पहली है।

औद्योगिक क्रान्ति के चौथे चरण इलक्ट्रोनिक कम्प्यूटर युग में विश्व के किसी भी स्थान की जानकारी इन्टरनेट पर गूगल सर्च ईंजन के जी.पी.एस. से पलक झपकते ही मिलती है। गूगल ने जीपीएस के लिए दुनियाभर के देशों के शहरों की जानकारी गैस के गुब्बारे आदि से एकत्र की। अंतरिक्ष के उपग्रह से जुडा जीपीएस महादेव शिव के नेत्रों की तरह संसार की छोटी से छोटी जानकारी देता है।

इस गूगल के जीपीएस से कहीं विकसित् भौगोलिकी सूचना प्रणाली के मस्तिष्क की अन्तर चेतना की परतों में छिपे होनेसे तहलका मचा है। भारतीय योगी मानुस के मस्तिष्क में जीपीएस होने की वैज्ञानिकों द्वारा पुष्टि को पुराने ज्ञान को नये कलेवर में पेश करना मात्र मानते हैं। वैज्ञानिक शोध से पता चलता है कि विशेष भौगोलिक इलाके की जानकारी पर स्नायुतन्त्र का एक सूक्ष्मतम कोष सैल कण सक्रिय होता है। यानी अलग अलग भौगोलिक स्थिति पर अलग अलग कण कोष ही हरकत आते हैं। मस्तिष्क में भौगोलिक पथ का खाका बनता है। यह उसका अदृश्य रूप से मार्गदर्शन करता है। यह मार्गदर्शक निर्धारित स्थल का मुकाम गणतव्य पर पहुंचाता है। वैज्ञानिक सूक्ष्मतम ईआरपी एवं जीजीसी दोनों के तिलिस्मी किले की चाबी नहीं ढूंढ पाये हैं।

वेदीक काल से ऋषि बारह, दस, आठ, छह चक्रों के भेदन में सफल रहे। यहीं से तृतीय नेत्र और छठी इन्द्री की परिकल्पना को साकार किया गया। ऋषियों ने आज्ञाचक्र और ब्रह्मरन्ध्र सहस्त्रार को सक्रिय करने की रहस्यमय प्रणाली जप,तप, साधना और योग से विकसित् की और ब्रह्मरन्ध्र की सर्पाकार शक्ति कुण्डलिनी को जाग्रत किया। कुछ योगियों ने श्रीगणेश विज्ञान में ब्रह्मरन्ध्र से मूलाधार की तन्त्री का स्वरूप गणेश के मस्त्क और सूंड सरीखा प्रदर्शित किया। वे मानते हैं कि इस गणेशाकार प्रतीकरूपा तन्त्री को चेतन करना ही सर्वोच्च

स्थिति है। प्रोफेसर श्याम शर्मा वासिष्ठ के अनुसार हृदयाकाश, आज्ञाचक्र और मन (सहस्त्रार ब्रह्मरन्ध्र) में जप का विधान है। हृदय का भौतिक अर्थ लेना गलत है। ऋषि हृदय जप स्थल वास्त्विक हृदय को नहीं मानते हैं। आमतौर पर दोनों आखों के उपर मध्य में आज्ञाचक्र कहा जाता है। सिर के ऊपर चोटी रखने के भाग के नीचे ब्रह्मरन्ध्र होता है। पौराणिक आख्यानों के अनुसार विश्वदेव भगवान् शंकर की पत्नी दक्षायिणी सत्ी के शव से ब्रह्मरन्ध्र करांची के पास हिंगल नदी से लगे पर्वतों के बीच गिरा। पर्वतों की गुफा में हिंगलाज शक्ति पीठ है। वेदीक ऋषि ब्रह्मरन्ध्र में चेतना स्थिर करके ही सीधे परमेश्वर से ऋग्वेद की देववाणी को सुनने में समर्थ हुए। वे ब्रह्मरन्ध्र पर नियंत्रण माध्यम से पृथिवी की भौगोलिक जानकारी और ब्रह्माण्ड के ग्रहों की जानकारी को जान पाये। श्रुतिवेद देववाणी में प्रतीकों और गूढ़ कूट गोपनीय शब्दों का खजाना है।

ऋषियों ने भौगोलिक सूचना प्रणाली (जीपीएस) का रूख शरीर के अन्दर नाड़ियों, हड्डियों के मानवीय शरीर के आन्तरिक रहस्यों से पर्दा हटाया। ऋषियों ने सुदर मंगल ग्रह की लाल मिट्टी और शनिदेव पर वृताकार घेरे का उल्लेख भी बगैर विशालतम दूरदर्शी यंत्र के किया। देवसेनानी स्कन्द द्वारा ब्रह्माण्ड सृष्टि परिक्रमा का विज्ञान अभी रहस्य है। देव ऋ़षि नारद ने अनन्त का ज्ञान भूमा विद्या को साधना से जोड़ा है। इससे साधक के बंधन टूटते हैं। इसका आगामी चरण ब्रह्मविद्या है। जिसमें प्राण ही ब्रह्म है। साथ ही आकाश मुख्य प्राण है। दोनों में अन्तर्संबन्ध ही जीपीएस संचालन है। प्राणविद्या का मुख्याधार उपासना है। अंह ब्रहास्मि, सर्व खल्विदं ब्रह्म के सिद्धान्त को गहरे में विचारों में उतारना और अनुभव करना प्राथमिक शर्त है। प्राण विद्या के अनुसार आकाश शरीर ब्रह्म है, आकाशः प्रतिष्ठा, आकाशः गति, आकाशः परायण (विश्व का अन्तिम अप्रिय स्थल) और सर्वाणि है वा इमानि भूतान्याकाशदेव समुत्पद्यन्त आकाशं प्रत्यस्त् यात्ने (सभी को उदय और अस्त् आकाश में होता है।)। प्राण विद्या में चेतना को जीवन का प्रज्ञात्मा कहा गया है। शाण्डिल्य विद्या में मनोमय पुरूष प्राणमय शरीर का उल्लेख है।

वैश्वानर विद्या में जीवन की कला को रहस्योद्घाटित किया गया है। वैश्वानर विद्या में साधक के लिए आचार्यवान पुरूषों वेद मानते हुए ज्ञान के लिए गुरु शरण लेने का निर्देश है। यह विद्या आत्मा से साक्षात्कार करवाती है। यहाँ स्मरण रहे कि आत्मा का भविष्य उसके ज्ञान पर ही निर्भर है। साधना से व्यक्ति की आत्मा की तरंगे सीधे आकाश में ब्रह्म से मिलती हैं। नचिकेता कथा के अनुसार भारतीय आध्यात्म में आस्था और विश्वास आधारशिला है। साधना में श्रद्धा से ही चेतना की किरणोंवाली गौ, ज्ञान के प्रचण्ड प्रवाह सरस्वती से साक्षात्कार होता है। साधना में बाहरी कर्मकाण्ड अनुष्ठान के स्थान पर अन्तर मुखी होते ही ब्रह्मरन्ध्र सहस्त्रार तक पहुंचना सम्भव है। सृष्टि विज्ञान की रहस्यलोक के पर्दे एक एक कर खुलने लगते हैं। आन्तरिक ब्रहाण्ड में सभी कुछ स्पष्ट दिखाई देने लगता है। तभी तंत्रदृष्टा अन्तर्चेतनावान ऋषियों ने पिण्ड में ब्रह्माण्ड कहा है। यह अवश्य है कि पिण्ड के अन्दर ब्रह्माण्ड को देखने के लिए वर्षों की लम्बी कष्टमय साधना तपश्चर्या आवश्यक है।।ऊँ।।

दिव्य शक्ति एवं चमत्कारी संत :
विज्ञान के लिए रहस्य

विश्वभर के वैज्ञानिक जमीन के नीचे यूरोप की प्रयोगशाला में ''परमेश्वर तत्त्व'' के अनुसंधान में लगे हैं। वे सूक्ष्म से भी सूक्ष्म परमेश्वर तत्त्व की सृष्टि का जन्मदाता मानकर रहस्य जानने में लगे हैं। क्या परमेश्वर तत्त्व को प्राप्त किया जा सका ? भारतीय दर्शन में ब्रह्म अथवा परमेश्वर को सूक्ष्म से भी सूक्ष्मतम और विशाल से भी विराटतम अनन्त रूपाकारवाला स्वीकारा गया है। भारतीय आर्ष ग्रन्थों के अनुसार ब्रह्म के सूक्ष्मतम अदृश्नीय रूप परमशून्य में नाद हुआ और सृष्टि की रचना हुई। इस ब्रह्म को देखा नहीं जा सकता, केवल अनुभूति की जा सकती है।

वास्त्व में पश्चिमी जगत की समस्या यह है कि वह भारतीय पराविद्या को प्रयोग के धरातल पर देखना चाहता है। देश में महादेवी श्रीतारा के महातान्त्रिक वामाखेपा चमत्कारिक शक्ति से असाध्य रोगों का उपचार करते थे। स्वामी रामकृष्ण परमहंस ने स्वामी विवेकानन्द में शक्तिपात किया। स्वामी रामकृष्ण परमहंस महाकाली को स्वयं भोजन कराते। यद्यपि वैज्ञानिक सोचवालों को यह दृष्टान्त गल्प लगेंगे।

यह सैंकड़ों वर्षों से रहस्य है कि हिमालय में अदृश्य कौशिकाश्रम, वसिष्ठाश्रम, विश्वमित्राश्रम, ज्ञानगंज, कलापग्राम आदि में हजारों वर्ष की उम्र के साधु कैसे रह रहे हैं ? थियोसोफिकल सोसायटी और स्वामी विशुद्धानन्द परमहंस, ज्योतिष्पीठ के जगदगुरु शंकराचार्य स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती आदि के दृष्टान्तों ने इसकी पुष्टि की है। विज्ञान के लिए यह आश्चर्य होगा कि हमारों वर्ष के तपस्वी हिमनद (ग्लेशियर) के बीच कैसे रहते हैं, उनका खानपान, दिनचर्या क्या है? इन चमत्कारी अदृश्य दिखनेवाले आश्रमों में विशेष रूप से चयनित छात्रों को सूर्य विज्ञान, वायु विज्ञान, स्वर विज्ञान, आकाश विद्या, श्रीविद्या, शब्दविद्या, अग्निविद्या, नक्षत्रविद्या आदि की शिक्षा दीक्षा दी जाती रही। विगत में 165 वर्ष शंकराचार्य ज्योतिष्पीठ पर पीठाधीश्वर नहीं होने से मठों की दुर्दशा थी। जगदगुरु शंकराचार्य बनते ही श्रीविद्या दीक्षित स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती ने इस दैविक शक्ति से मठों का जीर्णोद्धार करवाया। यह अवश्य है कि इन दैविक शक्ति के अदृश्य आश्रमों का कठोर नियम हैं कि जाननेवाला दूसरे को नहीं सिखायेगा। अतः वाराणसी में सूर्य विज्ञान सिखाने की प्रयोगशाला निर्माण शुरू करते ही ज्ञानगंज से पत्र आया। जिसमें सूर्य विज्ञान सिखाने की प्रक्रिया छेड़ते ही चमत्कारिक शक्ति समापन की चेतावनी दी गई। सो, आज तक काम अधूरा है।

महामहोपाध्याय गोपीनाथ कविराज को मुम्बई के टाटा संस्थान ने असाध्य रोग बताया। म.म. गोपीनाथ कविराज के गुरु ने उनका कुर्ता बनियान उतरवाकर सीने पर हाथ फेरा और रोग गायब हुआ। इसकी कोई वैज्ञानिक व्याख्या नहीं की जा सकती है। इसी क्रम में जयपुर के पूर्व राजगुरु पण्डित विद्यानाथ ओझा की कथा है। राजगुरु पण्डित विद्यानाथ ओझा गठिया के कारण दीवान पर बैठे—बैठे ही लघुशंका पात्र

में करते। उन्होंने मंत्रपाठ से सभी पवित्र नदियों का आह्वान किया और कमरा सुगन्धित हुआ।

नाथ योगी भर्तृहरिजी की समाधि पर औघड़ मस्त्ाबाबा रहा करते थे। मस्त्ाबाबा आनेवाले के बैठते ही उसकी समस्या हल और पिछली जिन्दगी का बयान करते। वैसे मस्त्ाबाबा निरक्षर थे, परन्तु कभी कभी संस्कृत, विशुद्ध हिन्दी और अंग्रेजी में बतियाते। वे श्रीभर्तृहरिनाथ के झरने के पानी और धूणे की भभूत को ही सभी रोग हरनेवाला बताते। उनकी चमत्कारी शक्ति के गवाह जयपुर घराना कथक नृत्य के अन्तिम गुरु पण्ड़ित चरण गिरधर चांद (वर्तमान में सिंगापुर में) हैं। मर्यादा पुरूषोत्तम राम के गुरु वसिष्ठ मुनि के पौत्र महर्षि पराशर की यज्ञस्थली (मत्स्य) के आश्रम के महन्त प्रेमदास, महन्त जगमोहनदास के भी चमत्कारों के अनेक साक्ष्य हैं। यह बात अलग है कि वैज्ञानिक समाधि के झरने के पानी और भभूत पर प्रश्न करेंगे ?

महान् संत रमण महर्षि ने स्वयं श्री टी.वी. कपाली शास्त्री को सम्बोधित कर बुलाया और सिर एवं शरीर पर हाथ फेरा। श्री टी.वी. कपाली शास्त्री ने ऋग्वेद का भाष्य, श्री रमण ज्ञान सहित 50 अध्यात्मिक ग्रन्थों की रचना की। स्वामी हरिहरानन्द करपात्रीजी महाराज ''श्रीविद्या'' की चमत्कारिक शक्ति सम्पन्न थे। बाबा नीब करौली, तेलंग स्वामी, लाहड़ी महाशय, स्वामी योगानन्द परमहंस, तंत्र स्वामी रमादत्त शुक्ल, श्रीपीताम्बरापीठ के श्री अनन्तस्वामी आदि सहित अनन्त साधु दैविक चमत्कारिक शक्ति सम्पन्न थे। अमेरिकी अरबपति भी बाबा नीब करोली के शिष्य बने। देश के सूफी संतों, जैन संतों की चमत्कारिक शक्तियों की अनेक कथायें सुनी जा सकती हैं।

यह विचारणीय है कि सैकड़ों किलोमीटर दूर बैठे बाबा आंखों देखा आपका हाल कैसे सुनाते हैं? उन्हें कैसे जानकारी मिलती है कि आपके घर परिवार में क्या समस्या है ? इसमें पाखण्ड़ी और ढ़ोगियों से दूर रहने या बचने की आवश्यकता हैं। यह सबसे दुखद है कि पराशक्ति तांत्रिक शक्ति के नाम पर पाखण्डियों ने कारोबार फैलाया है। परिणामतः पराविद्या के वास्त्विक साधकों को समस्याओं का सामना करना पड़ा है।

वेद में देवताओं के चिकित्सक दो अश्विनी कुमार मानव शरीर पर पशु सिर प्रत्यारोपण, सभी अंग बदलने आदि प्रदर्शन करते रहे। वेद

से लेकर उपनिषद तक गम्भीर रोगों के उपचार के लिए जड़ी बूटियों का वर्णन मिलता है। इसी विद्या के आधार पर कुछ साधक देश में अस्थमा, पीलिया आदि का जड़ियों से उपचार करते हैं। भारतीय मनीषा में उल्लेख है कि हिमालय में दिव्य जड़ियां मिलती हैं। हिमालय की जड़ी बूटी में सामान्य से अधिक तेजो विकिरण (रेडियेशन), खनिज स्टेराइड़ आदि होता है। यह रेडियेशन, स्टेराइड क्यों अभी अनुत्तरित है। यूनान, मुम्बई के पास समुद्र, द्वारका के पास समुद्र और अयोध्या में भूगर्भ समुद्रतल में हजारों वर्ष प्राचीन शेष होते अवशेष मिले हैं। इनसे मानवीय सभ्यता पाँच हजार वर्ष पुरानी होने की पश्चिम की अवधारणा के धुर्रे उड़ते हैं। यह रहस्य खुलना शेष है कि पराविद्या के यंत्र, ताबीज आदि कैसे काम करते हैं ? इसीतरह मंत्र विद्या के साधकों की चमत्कारिक शक्तियों का रहस्य अभी रहस्य बना है।।ऊँ।।

योगीराज कृष्ण का समसामयिक युग धर्म : आमजन को कुमार्ग से रोकना लोकसंग्रह

''उत्सीदेयुरिमे लोका न कुर्यां कर्म चेदहम्।
संकरस्य च कर्ता स्यामुपहन्यामिमाः प्रजाः।।
सक्ताः कर्मण्य विद्वांसो यथा कुर्वन्ति भारत।
कुर्याद्विद्वांस्त्यथा सक्तश्चिकीर्षु लोकसंग्रहम्।।'' गीता 3:25

ढ़ाई हजार वर्ष पहले समय की आवश्यकता को दिव्यदृष्टि से देखकर भगवान् श्रीआदिशंकराचार्य ने श्रीभगवद गीता के भाष्य में ''लोकसंग्रह'' की समसामयिक व्याख्या की। श्रीआदिशंकराचार्य ने लिखाः ''त्वं लोकसंग्रह एवं अपि लोकस्य उन्मानि प्रवृत्ति निवारणं''। श्रीआदिशंकराचार्य ने लोक (आमजन) को उन्मानि प्रवृत्ति निवारण को लोकसंग्रह कहाँ लोकसंग्रह लोक को कदाचार दुराचार से चलने से रोकना है। कुमार्ग पर चलने से अंकुश लगाना है। लोकसंग्रह धर्ममें प्रवृत्त

करना है (मनुस्मृति में मनु महाराज ने मनुष्य के दस सदगुणों को धर्म की संज्ञा दी है।)।

श्री भगवद् गीता के तृतीय अध्याय में योगीराज श्रीकृष्ण ने धनुर्धर गााण्डीवधारी अर्जुन से कहा :

कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः।
लोकसंग्रह मेवापि संपश्यन्कर्तुमर्हषि।।20।।
यद्यदाचरति श्रेष्ठस्त्त्त देवतरो जनः।
स यत्प्रमाणं कुरते लोकस्त्दनुर्वते।।22।।

महाभारत के महासमर में कौरव उन्मानि प्रवृत्ति अर्थात् अधर्म कुमार्ग पर हैं। कुन्ती पुत्र अर्जुन मोहग्रस्त् है। इस निर्णायक समय योगीराज श्रीकृष्ण ने समझाया कि ज्ञानयोगी ओर कर्मयोगी दोनों को ही लोक को कुमार्ग कुपथ से रोकने के उद्देश्य से लोकसंग्रह करना चाहिए। कर्मयोगी का लोकसंग्रह से चित्त निर्मल होता है। दूसरे, लोक यानी समाज में श्रेष्ठजनों ज्ञानमार्गियों का अनुसरण आमजन करता है। ज्ञानमार्गी के लोकसंग्रह से उन्मानि प्रवृत्ति पर स्वतः ही अंकुश लगेगा। अतः लोकसंग्रह से ज्ञानयोगियों का अनुशरण लोक में होगा। लोक में स्व–अनुशासन की प्रवृत्ति का उदय होगा। महान् आचार्य रामानुजजी ने लोकसंग्रह से उन्मानि प्रवृत्ति नाश का संदेश दिया है।

ऋग्वेद में लिखा है कि नास्ति्क का अपने कर्मों से नाश होता हैः ''य इन्द्र सस्त्यव्रतो अनुष्वापमदेवयुः। स्वै ष एवैर्मुमुरत, पोष्यं रयिं, सनुमधर्मेहि तं तत।। श्रुति देववाणी में लिखा हैः मार्गदर्शक लोकसेवियों को नमस्कार (लोककृतः पथिकृता यजामहे)। ऋग्वेद के मंत्र में समाज में श्रीवृद्धि हेतु दो कर्तव्यों का निर्देश है। पहला, प्राकृतिक नियमों को नहीं तोड़ना। दूसरा, एक स्थान पर इकट्ठा होकर सामूहिक निर्णय लेना।''

''समान ऊर्वे अधिसंगतासः सं जानते न यतन्ते मिथस्त्े।
ते देवानां न मिनन्ति व्रतानि अमर्धन्तो वसुभिर्यादमाना।।''

प्रथम वेद ऋग्वेद में अग्निदेव से प्रार्थना की गई कि तुम हमें दुर्बुद्धि, अवीरता, असमृद्धि और निन्दा के वशीभूत नहीं होने दें। तुम हमारे (इन) हजारों शत्रुओं से दूर रखेंः

''मानों अग्नेऽमतये, मावीरतायै रीरथः।

मागोतायै सहसस्पुत्र मा निदे, अप द्वेषांस्या कृधि।।''

अथर्ववेद में शुभ कर्मों में प्रवृत्ति की प्रार्थना करते हुए उल्लेख है : ''अकर्म ते स्वपसो अभूम ऋतमवस्त्रन उषो विभातीः। विश्वं तद् भद्रं यदवन्ति देवा, बृहद वरेम विदथे सुवीराः।'' अथर्वेवद में ही आगे आस्ति्कता के वातावरण में सभी सुखी का संदेश है। सभी गाय, अश्व, पशु मानव यानी प्राणीमात्र सुख से रहते हैं, जहॉ ब्रह्म सुखी जीवन के घेरे के रूप में रखा जाता है:

''सर्वो वै तत्र जीवति, गौरश्वः पुरूषः पशुः।
यत्रेदं ब्रह्म क्रियते, परिधिर्जीवनाय कंम्।।''

यह स्पष्ट है कि ऋग्वेद से अथर्ववेद तक सदमार्ग पर चलने का निर्देश है। श्रृति में उन्मानि प्रवृत्ति कदाचार, दुराचार, अधर्म के कुमार्ग पर नहीं चलने का स्पष्ट निर्देश है। वेद ने सिंहगर्जना कीः पाप्मा हतो, न सोम (पाप नष्ट हों, सदगुण नहीं।)। मान्तः स्थुर्नो अरातय (शत्रु हमारे अन्दर नहीं रहने पायें।) । अथर्ववेद में समाज के अग्रणी–नेतृत्वकर्ता के बारे में सीधे–सीधे दिशानिर्देश है। लोक या समाज का एक नेता होना चाहिए। उसके नियन्त्रण में समाज के अन्य हों। समाज के नेता का उत्तरदायित्व है कि वह समाज की समस्याओं का हल करे और समाज का सही मार्गदर्शन करे (यही दूसरे शब्दों में लोकसंग्रह है।):

''अहं गृभ्णामि मनसा मनांसि, मम चित्तमनु चित्तभिरेत।
ममं वशेषु हृदयानि व कृणोमि, मम यातमनुवर्त्मान एत।।''

जय संहिता–भारत संहिता–महाभारत में उल्लेख मिलता है कि अधर्मयुक्त जीवन से अधिक समय तक श्री नहीं मिलती है : ''मूहर्त ज्वलितं श्रेयो न धूमायितं चिरम।'' महाभारत मे ंअधर्मयुक्त उन्मानि प्रवृत्ति का निषेध है। मूलतः श्रीयोगीराज श्रीकृष्ण का लोकसंग्रह इन्द्रीय निग्रह सदाचार के मार्ग पर चलने की सीख है। इक्कीसवीं शती में भी ''लोकसंग्रह'' अर्थात् लोक–आमजनता को उन्मानि प्रवृत्ति कुमार्ग–कदाचार–अधर्म के मार्ग से रोकना समसामयिक है। यह समाज के श्रेष्ठजनों को चाहिए कि वे अपने लोकसंग्रह से आमजन को सदाचार के मार्ग पर चलने की प्रेरणा दें। सामाजिक कार्यो कर्मयोग में लगे लोकसंग्रह के माध्यम से आन्तरिक शोधन कर चित्त निर्मल करें। भारतीय वांगमय में ब्रह्म की उपासना में लोक शब्द का व्यापक प्रयोग किया गया

हे। श्रीहरि विष्णु की स्तुति में लोकनाथ कहा गया है। लोकनाथ समस्त् प्राणिमात्र के स्वामी हैं। श्रीभगवती स्त्ोत्रम् में ''जय महिष विमर्दिनि शूल करे, जय लोक समस्त्कपापहरे'' (देवी महिषासुर मर्दिनी को लोक के समस्त् पापों को दूर करनेवाली कहते हुए स्तुति की है।)। श्रीशिवप्रोक्तं सूर्याष्टक में श्री सूर्य देव को ''सर्वलोक पितामहम्'' से सम्बोधित किया है।

श्री आदिशंकराचार्य ने लोकसंग्रह को ही केन्द्र में रखकर ''श्रीचपर्टपन्जरिका स्त्ोत्रम्'' लिखाः ''पुनरपि जननं पुनरपिमरणं पुनरपि जननी जठरे शयनम्। इह संसारे खलु दुस्त्ारे कृपयापारे पाहि मुरारे। भज गोंविन्दं भज गोविदं भज गोविन्दं मूढ़मते।'' संसार में पुनः पुनः जन्म, पुनः–पुनः मृत्यु और बारंबार माता के गर्भ में रहना पड़ता है। अतः हे मुरारे ! मैं आपकी शरण में हूँ, इस दुस्त्र एवं अपार संसार से कृपया पार कीजीये। यह लोकसंग्रह में प्रवृत्त होने का ही संदेश है''।।ऊँ।।

दुर्लभ अध्यात्मिक ग्रन्थ
उत्तरगीता में ब्रह्मयोग प्राणायाम की सहजता

योगीराज श्रीकृष्ण की उत्तरगीता ब्रह्म–प्राणायाम–योग के गूढ़ रहस्य को सरलता सहजता से प्रस्तुत करती है। आदिशंकराचार्य के पितामह गुरु आचार्य गौडपाद ने उत्तरगीता का व्याख्या बहुत ही सरल अर्थों में करने का चमत्कार दिखाया।

उत्तरगीता की अनेक पाण्डुलिपियाँ और उन्नीसवीं सदी में प्रकाशित प्रतियां मिलती हैं। यह बात अलग है कि आठ से अधिक पाण्डुलिपियों के पाठ में बहुत ही मामूली सा अन्तर मिलता है। उत्तरगीता के व्याख्याकार आदिशंकराचार्य के गुरु आचार्य गौडपाद स्वामी को ईसा पूर्व छठी सदी का माना जाता है। कांची कामकोटिपीठम ने ईसापूर्व से वर्तमान तक के शंकराचार्यों का अदभुत ऐतिहासिक विवरण प्रकाशित किया है। उधर अंग्रेजी प्रेमी

अध्येताओं ने आदिशंकराचार्य का काल नौंवी सदी माना। क्षमा करें ! नाथ सम्प्रदाय के नवनाथों में महायोगेश्वर गोरक्षनाथ (गोरखनाथ) को ग्यारहवी–बारहवीं सदी का दर्शित किया है। जबकि संस्कृत साहित्य के इतिहासानुसार गोरखनाथ के चर्चित शिष्य श्रृंगार–नीति–वैराग्य त्रिशतक के एवं वाक्यपदीय रचयिता भर्तृहरिनाथ को सातवीं शती का लिखा गया है। वाम झुकाववाले प्राचीन भारत की सभ्यता संस्कृति प्रकाण्ड महापण्डित दामोदर धर्मानन्द कौशम्बी ने भारतीय विद्या भवन की सिंघि श्रृंखला में त्रिशतकों का सम्पादन किया। आचार्य कौशम्बी ने भर्तृहरि को तीसरी सदी का साक्ष्यों के आधार पर सिद्ध किया (डॉ. कौशम्बी सैकूलर और नास्त्िक थे।)। भला यह कैसे हो सकता है कि गुरु गौरखनाथ के जन्म से 900 से 500 वर्ष पहले शिष्य का जन्म हो ? यही गौरखधंधा आदिशंकराचार्य और उनके गुरु गौडपाद के साथ हुआ। वैसे भी सातवीं शती तक भारत में ऋषि आचार्य अपना काल और परिचय नहीं लिखते थे।

पाण्डुलिपियों में उत्तरगीता के तीन अध्यायों में न्यूनतम 116 और अधिकतम 241 श्लोक मिलते हैं। परन्तु आचार्य गौडपादीय उत्तरगीता की सर्वमान्य पाण्डुलिपि में 122 से 137 श्लोकों को ही अधिकारिक का स्थान मिला। अध्येता श्रीमहाभारत के भीष्मपर्व के श्रीगीतासार और आचार्य गौडपाद की व्याख्या में संदेश के कुछ स्थानों पर साम्यता पाते हैं। स्कन्दपुराण का गीतासार योगीराज श्रीकृष्ण की कुरूक्षेत्र महासमर के मध्य वीर अर्जुन को संदेश की मूलतत्त्व है। इसमें श्रीकृष्ण जीव और गुरु के अन्तर्सम्बन्धों को परतदर परत पेश करते हैं।

आचार्य गौडपाद की व्याख्या में उत्तरगीता के प्रथम अध्ययन में 57 श्लोक, द्वितीय अध्याय में 48 श्लोक और तृतीय अध्याय में 17 श्लोक हैं (श्रीमदभगवद् गीता में 700 श्लोक हैं और श्रीकृष्ण अर्जुन से प्रत्येक अध्याय के अन्त में यही पूछते हैं कि मोह नष्ट हुआ ? श्रीमद भागवद गीता में ब्रह्म क्या है, आध्यात्म क्या है कि गूढ़ व्याख्या है।) (जय संहिता की गीता में 100 श्लोक हैं।)। उत्तरगीता के प्रथम अध्याय के प्रारम्भ में ही वीर अर्जुन पूछता है :

''यदेकं निष्कलं ब्रह व्योमातीतं निरेजनमा अप्रतर्क्यमविशेयं विनाशोत्पत्ति वर्जितम् ।। 1।। कारणं योगनिर्मुक्तं हेतु साधन वर्जितम। हृदयाम्बुज मध्यस्यं ज्ञान ज्ञेय स्वरूपकम्। तत्क्षणा देव मुच्यते यज्ज्ञानात्त्ब्रूहि केशव ।। 2।।

श्रीकृष्ण सबसे पहले ब्रह्म की व्याख्या करते हुए ''भावना'' कहते हैं। ब्रह्म का प्रतिनिधित्व ओम करता (प्रणब) है। यह हंस है। इसकी साधना से जीवन मरण के चक्र से मुक्ति मिलती है। अध्यात्मिक ग्रन्थों के अनुसार मन्त्र साधना हृदय केन्द्र पर करनी चाहिए। यह प्रश्न उठता है कि क्या मानुस शरीर में रक्त को भीतर बाहर उलेचनेवाले वक्षस्थल के हृदय चक्र में साधना करें। योगियों ने मूलाधार से सहस्रार (अनन्त आरियोंवाले ब्रह्मरन्ध्र) चक्रों का वर्णन किया है। इन चक्रों में हृदय कहाँ है ? जयपुर के पूर्व राजगुरु श्रीविद्यानन्द ओझा के अनुसार ललाट पर आज्ञाचक्र और दसम अथवा बारहवां चक्र ब्रह्मरन्ध्र या आभा मण्डल भी हृदय है। स्वाभाविक रूप से साधक प्रारम्भ में शरीरगत हृदय से मन्त्रपाठ अन्तर्मुखी करते हुए आज्ञाचक्र एवं ब्रह्मरन्ध्र की यात्रा करें। श्रीकृष्ण अर्जुन से योग अर्थात् यम से ब्रह्म में स्थित होने को कहते हैं। इस योग साधना में मन हृदय को पवित्रकर निराकार के जप से अहं ब्रह्म तक पहुंचाना है।

साधना से साधक को देवत्व की प्राप्ति होना निश्चित है। किसी भी साकार देवी देवता की साधना का उद्देश्य साधक के शरीर का देवमय दैविक शक्ति सम्पन्न होना है। इसी अध्याय में अर्जुन को प्रणव का दिव्य अर्थ भी समझाते है। प्रणव पाठ में लीन होना अनिवार्य शर्त है। हाल ही अमेरिकी अन्तरिक्ष संस्था नासा ने श्रीसूर्यदेव द्वारा निरन्तर ओम पाठ की ध्वनि का मय चित्र वीडियो जारी किया। प्रथम वेद ऋग्वेद के सूर्य–सविता के मन्त्रों में दृष्टा ऋषियों ने लोह समान भारी जबड़े से मन्दस्वर में प्रणव का उल्लेख किया है। वीर अर्जुन ने प्रकारान्तर में धर्म ओर अधर्म की व्याख्या चाही। श्रीकृष्ण कहते हैं : ''धर्मो धर्मौ मनश्चैव पाँचभूतानि यानि च। इन्द्रियाणि च पाँचैव याश्चान्याः पाँचदेवताः ।45 ।ताश्चैव मनसा सर्वे नित्यमेवाभिमानतः। जीवने सह गच्छन्ति यावत्तत्वं न विन्दति।।46।।''

आगे श्रीकृष्ण ने इन्द्रियों पर संयम का उपदेश देते हुए कहाः ''इन्द्रियाणां निरोधेन देहे पश्चन्ति मानवाः। देहे नष्टे कुतो बुद्धिर्बुद्धिनाशे कुतो ज्ञता।।54।। ब्रह्म की प्राप्ति के लिए देह एवं मन की निर्मलता आवश्यक है।

द्वितीय अध्याय में मानुस द्वारा स्वयं को ब्रह्म रूप मानने का प्रमाण मांगा। श्रीकृष्ण ने जीव की पहचान को लेकर कहा : ''यथा जलं जले क्षिप्तं क्षीरे क्षीरं घृते घतम। अविशेषो भवेत्तद्वज्जीवात्मपरमात्मनोंः ।।2/2।।'' योगीराज आगे कहते हैंः ''यत्र यत्र मृतोज्ञानी येव ला केन मृत्युना। यथा सर्वगंत व्योम तत्र तत्र लयं गतः ।।2/8।। जब कभी ज्ञानी मृत्यु गति को प्राप्त होता है, वह सर्वव्यात महाकाश में लीन हो जाता है। श्रीकृष्ण जीव के शरीर में विभिन्न लोकों भूलोक (नाभिदेश), भुवलोक, स्वर्गलोक का रहस्य उद्घाटित करते हैं। वे सबसे महत्वपूर्ण आत्मा को मानते हैं। यह आत्मा चित्ततत्त्व है और तीन कोशों से निर्मित है।

तृतीय अध्ययन में योगीराज कृष्ण अर्जुन से संवाद का निष्कर्ष कहते हैं। जीव विभिन्न मार्गों से ब्रह्म का साक्षात्कार करता है। उसे परमतत्त्व से जोड़नेवाला ही प्राणायाम योग है। जब जीव यह जान लेता है कि वह ब्रह्म स्वरूप है जीवनामुक्त हो जाता है। भण्डारकर ओरियन्टल इन्सीट्यूट ने श्रीमती शीलवती ओक द्वारा अंग्रेजी अनुवाद की उत्तरगीता सन 1957 में प्रकाशित की।।ऊँ।।

अर्णव में डूबी कृष्णनगरीः
रणछोड श्रीकृष्ण की नगरी द्वारका का रहस्य!

चौंकें नहीं! मुम्बादेवी के आगे और बूढ़ी द्वारका के बीच के गहरे समुद्र के तल में लगभग 10,000 वर्ष से पुराने शिल्पियों द्वारा विश्वकर्मा के जादुई शिल्प से तक्षित पत्थर स्त्म्भ मिले हैं। पुरातत्त्ववेत्ताओं का एक

वर्ग इन शिल्पकला के अदभुत शेष होते अवशेषों का सम्बन्ध महाभारतकालीन योगीराज श्रीकृष्ण की प्राचीन द्वारका से मानते हैं।

इसीलिए श्रीकृष्ण के द्वारकाधाम की तीर्थयात्रा के समय वर्तमान द्वारका से बूढ़ी द्वारका–भेट द्वारका जाने को सुकार्थ मानते हैं। वैसे द्वारका की ''पीली मिट्टी'' को 'चन्दन' की तरह भक्त गण उपयोग में लाते हैं। द्वारका शहर से बूढी द्वारका लगभग 30 किमी पर है। बूढ़ी द्वारका समुद्र के बीच लघु द्वीप है। इसके सबसे नजदीक बंदरगाहवाला शहर ओखा है। ओखा रेल्वे मार्ग से भी जुडा है। पश्चिमी तटीय ओखा के रास्ते् में बेकार किस्ति्यों और सूखती मछलियां दिखाई देती हैं। इस रास्ते् में कहीं भी पानी का सैलाब नजर नहीं आता है। ओखा में परम्परागत गुजराती पोशाक पहने बासिन्द छाये हैं। द्वारका से प्रसाद, फूल, अगरबत्ती, दीपक, चन्दन लेकर तीर्थयात्री मोटरचलित जेटी से बूढ़ी भेट द्वारका रवाना होते हैं। अक्सर जेटी में लगभग 100 तीर्थयात्री सवार होते हैं। चारों और जल के बीच बूढ़ी द्वारका बिन्दु आकार की लगती है। लगभग आधे घण्टे की जल यात्रा के बाद श्रीकृष्ण की मूल द्वारका पहुंचते हैं। पौराणिक आख्यानों के अनुसार श्रीकृष्ण ने मूल द्वारका के जलमग्न होने से पहले गाण्डीवधारी वीर अर्जुन को सोलह हजार एक सौ आठ रानियों को ले जाने का संदेश भेजा।

महाभारत काल की द्वारका समुद्र के बीचों बीच वृक्षों के झुरमुट में है। लेकिन बूढ़ी द्वारका में श्रीकृष्ण के भव्य चिताकर्षक महलों के अवशेष नगण्य हैं। श्रीकृष्ण के पावन मंदिर की प्रतिमा जाग्रत और शक्ति सम्पन्न है। परंतु बूढ़ी द्वारका योगीराज श्रीकृष्ण की वास्त्विक द्वारका के रहस्य को गहराती है। आखिरकार महाभारतकालीन योजनों में फैली द्वारका के मिथकीय रूक्मणि, सत्यभामा, प्रद्युमन और दूसरे राजप्रसाद कहाँ हैं? श्रीकृष्ण की प्राचीन नगरी के अमात्यों के राजनिवास और श्रेष्ठियों की गगनचुम्बी स्वर्णमयी अट्टालिकायें कहाँ जल समाधि में हैं? क्या ट्राम्बे की खाडी के समुद्र के सीने में दफन शिल्पकला का अलौकिक खजाना द्वारकापुरी का है? स्वतंत्रता के बाद समुद्र तल में श्रीकृष्ण को द्वारकापुरी को खोजने का काम क्यों नहीं किया गया? भारतीय पुरातात्विक सर्वेक्षण और नौ सेना के गोताखोर संयुक्त रूप से द्वारका की पहेली को हल करने में पहल कर सकते हैं? वास्त्व में

वास्त्विक द्वारका की खोज प्राचीन भारतीय सभ्यता संस्कृति में नये पन्ने जोड़ सकती है। उल्लेखनीय है कि योगीराज श्रीकृष्ण ने लगभग 122 वर्ष की आयु में उधव को नवगीता का उपदेश दिया। जिसे "उधव गीता" के नाम से जाना जाता है। उधव गीता को आध्यात्म में कुरूक्षेत्र के महासमर में वीर अर्जुन को श्रीकृष्ण द्वारा गीता ज्ञान से अधिक महत्वपूर्ण माना जाता है। प्रो. श्याम शर्मा वासिष्ठ ने रहस्योद्घाटन किया कि दोनों गीताओं के प्रत्येक अध्याय के समापन पर लगता है कि श्रीकृष्ण का उपदेश समाप्त हुआ। यह आश्चर्य है कि फिर नये अध्याय से उपदेश शुरू होता है। प्राचीन भारत की सभ्यता संस्कृति के महापण्डित दामोदर धर्मानन्द कौशम्बी ने गीता पर नये रहस्योद्घाटन किये हैं। यह यक्षप्रश्न है कि उधव को द्वारका में किस स्थल पर द्वारकाधीश श्रीकृष्ण ने गीतमय उपदेश दिया? बूढ़ी द्वारका में छोटी छोटी गलियों में कुछ निवासी भी रहते हैं?

श्रीकृष्ण के पद को हिरण का खुर समझकर निषादने निशाना साधकर बाण छोड़ा। परिणामतः एक सौ बाइस वर्षीय योगीराज श्रीकृष्ण के प्राण पखारू हुए। यह स्थल "बाण तीर्थ" बना है। यह अनुत्तरित प्रश्न है कि कहाँ निषादों, किरातों, शबरों आदि ने गाण्डीवधारी अर्जुन के सामने श्रीकृष्ण के निवास की राजनारियों को लूटा? देवराज इन्द्र पुत्र अर्जुन का अजेय गाण्डीव क्यों धरा रह गया? भक्त शिरोमणि सुदामा से श्रीकृष्ण की भेंट और दो भुवन देने का स्थल भी विस्मृति के गर्भ में है। गुजरात की राजधानी गांधीनगर से श्रीकृष्ण की नवनगरी द्वारका यात्रा लगभग नौ घण्टे की है। पुराण एवं कृष्णद्वैपायन व्यास की महाभारत के अनुसार श्रीकृष्ण और सम्राट जरासंध के बीच लगातार भीषण युद्ध हुए। जरासंध के बारम्बार आक्रमणों से श्रीकृष्ण प्रिय मथुरा, वृन्दावन, गोवर्धन में संकट छाया। फलस्वरूप मथुरा में शांति समृद्धि खतरे में थी। अंत में भगवान् विष्णु के अवतार श्रीकृष्ण ने चमत्कारिक वास्तुकार विश्वकर्मा देव को बुलाया। उन्होंने मथुरा से हजार मील से अधिक दूर पश्चिमी समुद्री तट पर चकाचौंध करनेवाली नव नगरी, राजमहल आदि निर्माण को कहाँ विश्वकर्मा देव ने कुबेर की स्वर्णमयी लंका से भी बेहतर शिल्प की जादुई नगरी तैयार की। फिर चुपचाप श्रीकृष्ण बन्धु बान्धव और नागरिकों के साथ द्वारकापुरी गए और जरासंध के सामने रणछोड़ने के कारण रणछोड़

कहलाए। श्रीरणछोड़ कृष्ण की नवद्वारका में समुद्र के किनारे द्वारकाधीश का मंदिर है। जनश्रुति के अनुसार श्रीकृष्ण के वंशज राजा वज्रनाम ने 2500 वर्ष पहले द्वारकाधीश मंदिर का निर्माण करवाया इसपर 156 फीट लम्बी धर्म पताका दस किलोमीटर से ही दिखाई देती है। द्वारकाधीश का स्थापत्य और मूर्ति शिल्प आश्चर्यचकित करता है। मंदिर में द्वारकाधीश की काली प्रतिमा को नक्काशी मन्त्रमुग्ध करती है। द्वारकाधीश को परंपरागत रेशमी वस्त्रों, दुपट्टे, रत्नों की मालाओं, स्वर्ण आभूषण और मुकुट से सजाया जाता है। श्रीकृष्ण की प्रतिमा तीर्थयात्रियों को सम्मोहित करती है। इस सम्मोहन को तीर्थयात्रियों के जत्थों की रेलम पेल धक्कों से तोड़ती है। द्वारकाधीश की जै के जयकारों और श्रीकृष्ण संकीर्तन से वातावरण भक्तिमय भाव प्रधान होता है। मंदिर की आरती दर्शनीय है। समुद्र तट पर द्वारका से मात्र दो किलोमीटर पर श्रीकृष्ण की पटरानी रूकमणि का मंदिर निर्जन में है। इसके बार में सदा क्रोधी दुर्वासा ऋषि का रथ खींचते हुए भयानक प्यास लगी। तब पटरानी ने ऋषि की आज्ञा बगैर पानी पी लिया। इससे क्रोधित होकर दुर्वासा ऋषि ने रूक्मणि को प्रियतम श्रीकृष्ण से अलगाव का शॉप दिया। धर्मशास्त्रों के अनुसार श्रीकृष्ण ने देवी रूक्मणि के दंभ, अहंकार को चकनाचूर करने के लिए माया रची और ऋषिवर ने शॉप दिया। द्वारका में रणछोड़दास मंदिर और जगदगुरु शंकराचार्य की शारदापीठ भी दर्शनीय है।।ॐ।।

संस्कृति : विद्वान होना,
सम्राट बनने की तुलना में श्रेष्ठ

भारतीय वांगमय आर्ष ग्रन्थों के अनुसार ज्ञानी विद्वान सम्राट की तुलना में श्रेष्ठ है। नीति ग्रन्थों के अनुसार सम्राट अथवा राजा का सम्मान अपने देश में ही होता है, परन्तु ज्ञानी विश्वभर में सम्मान पाते हैं। मूल समस्या यह है कि विद्यार्जन में अविद्या (सांसारिक भौतिकवादी रोजगार मूलक शिक्षा) ही ग्रहण करते हैं। वहीं श्रेय या श्री अथवा

कल्याणकारी विद्या को ग्रहण नहीं करते है। इसीलिए प्राचीन भारत में विद्यादान देने की अदभुत परंपरा थी। गुरुकुलों में और गुरुजन विद्यार्जन करनेवालों से कोई शु:ल्क नहीं लेते थे। गुरुकुलों में गुरुवर शिष्यों को अविद्या के अलावा विद्या देते थे। अतः विद्यवान बनने की पहली सीढी अविद्या के स्थान पर ज्ञान–विद्या लेने की है।

आचार्य विष्णु गुप्त ''चाणक्य'' ने 2339 वर्ष पहले विद्यार्थी के गुणों में श्वान निन्द्रा, बकोध्यानम्, काक चेष्टा आदि को सर्वोपरि माना। महाभारत के उद्योग पर्व में विद्यार्थी के लिए लिखा हैः

सुखार्थिनः कुतो विद्या विद्यार्थिनः कुतः सुखम्।
सुखार्थी वा त्यजेद विद्यां विद्यार्थी वा त्यजेद सुखम्।।

अर्थात् सुख चाहनेवाले को विद्या कहाँ? विद्या चाहनेवाले की सुख कहाँ? सुख की चाह हो तो विद्या छोड़ देनी चाहिए। विद्या की इच्छा हो तो सुख छोड़ना पड़ेगा। नीतिशास्त्र में लिखा हैः 'विद्यातुराणां न सुखं न निद्रा' अर्थात् जो विद्या पाने को आतुर है उन्हें न कोई चैन है, न उन्हें नींद ही आती है। चाणक्य नीतिशास्त्र में लिखा है कि जिस धन के बारे में राजा से और चोर से कोई भय नहीं है, उस 'विद्या नाम के धन का उपार्जन करो।' विद्या के अलावा शेष धन नष्ट हो जाते हैं। नीति के ग्रंथ हितोपदेश का प्रसिद्ध श्लोक हैः

विद्या ददाति विनयं विनयंद्वाति पात्रताम।
पात्रत्वाद्धनमाप्नोति धनाद्धर्म ततः सुखम्।।

विद्या विनय लाती है। विनय से व्यक्ति पात्र बनता है। पात्रता से ही धन प्राप्त करता है। धन से धर्म, मोक्ष, सुख आता है। अतः सभी का मूल विद्या है। उत्तर रामचरित के रचयिता भवभूति ने कहाः गुणाः पूजा स्थानं गुणिषु न च लिंगं न च वय (गुण यानी ज्ञान–विद्या की पूजा होती है, गुणियों स्त्री, पुरूष और उनकी आयु की नहीं)। आचार्य विष्णु गुप्त के अनुसार ऊंचे कुल में उत्पन्न, रूप यौवन वैभववान परन्तु विद्याविहीन व्यक्ति वैसे ही शोभित नहीं होते जैसे सुगन्ध रहित किंशकु फूल शोभावान नहीं होते।

नीति ग्रन्थों में यहाँ तक लिखा है कि अपने बालक को नहीं पढ़ानेवाले माता–पिता उसके महाशत्रु हैं। क्योंकि विद्याहीन बालक विद्वानों के बीच हंसों के झुण्ड़ में बगुला की तरह शोभित नहीं देता।

इससे स्पष्ट है कि बाल्यकाल में संस्कार और ज्ञान का प्रकाश देना माता–पिता का कर्तव्य है। भक्त कवि कबीर ने कहा हैः गुरु कुम्हार शिष्य कुम्भ है – गढ़ गढ़ काढ़े खोट, अन्दर हाथ सहार दे, बाहर मारे चोट। नीतिकारों ने माता–पिता के मोह को सावधान करते कहा कि पुत्र एवं शिष्य का लालन–पालन लाड़ प्यार से 5 वर्ष तक करना चाहिए और विद्यार्जन के समय ताड़न (कठोर अनुशासन) करना चाहिए। क्योंकि लाड़ प्यार से अनेक दोष उत्पन्न होते हैं। उसके उपरांत पडौसी मानें।

संस्कृत के व्याकरणकार मुनि पाणिनी ने अज्ञानरूपी अंधकार को ज्ञान रूपी काजल शलाका से नेत्र खोलनेवाले गुरु को नमस्कार कहा है। योगीराज श्रीकृष्ण ने अक्षर को परमब्रह्म कहा है। दूसरे शब्दों में अक्षर ही ज्ञान, ज्ञान ही चेतना, चेतना ही सत्य, सत्य ही ब्रह्म है। वेदों का ब्रह्म वाक्य है कि जब जीवन है तब तक अध्ययन करेंः स्वाध्यायान्मा प्रतिदितव्यम्, यावज्जीवमधीते विप्र। शिक्षा प्राप्त करने के लिए आठ काम, क्रोध, लोभ, स्वाद, श्रृंगार, खेल तमाशे (रागरंग), बहुत अधिक सोना और अधिक सेवा का त्याग करना चाहिए।

कामं क्रोधं तथा लोभं स्वादं श्रृंगार कौतुके।
अति निद्रातिसेवे च विद्यार्थी ह्यष्ट व वर्जयते।।

परदेश में विद्या को ही मित्र कहा गया हैः विद्या मित्रं प्रवासेषु। प्राचीन आर्षग्रन्थों में नीति वाक्य हैः

अनन्त शास्त्रं बहुलाश्च विद्या स्वल्पश्च कालो बहुविघ्नता च।
यत्सार भूतं तदुपासनीयं हंसो यथा क्षीर मिवाम्बुमध्यात।।

वेद, शास्त्र अनन्त है और विद्याएं भी अनेक प्रकार की हैं। विश्वभर के शास्त्र एवं विद्याओं को पढ़ने के लिए जीवन भर की आयु भी कम है। इसके अलावा उसमें अनेक विघ्न आते हैं। इसलिए हंस का अनुसरण करना चाहिए। हंस दूध, पानी मिश्रण से केवल दूध लेता है। उसी तरह व्यक्ति को विद्याओं में से ‘‘सार’’ को ही लेना चाहिए। अन्यथा विद्याओं के मायाजाल में समय व्यर्थ करेगा। कामन्दकीय के अनुसार प्राचीन काल में आन्वीक्षिकी (दर्शनशास्त्र), त्रयी (तीनों वेद–वेद का ही उपवेद चिकित्सा–आयुर्वेद, वास्तुकला, इंजीनियरिंग, संचार हैं।), वार्ता (खेती, वाणिज्य–व्यापार–पशुपालन आदि), शाश्वती (प्रशासन–प्रबंधन–दण्डनीति) चार विद्याओं को व्यक्ति के योगक्षेम के लिए माना। राजशेखर ने काव्य

मीमांसा में चौदह और श्रीहर्ष ने नैषधीयचरित में अठ्ठारह विद्याओं का ब्योरा दिया है। मनु ने आध्यात्म विद्या को इनमें शामिल किया। देवभूमि भारतवर्ष में ज्ञान का सार बहुत ही सरल अर्थों में समझाया गया है। विद्या ज्ञान माता के समान रक्षा करती है, पिता के समान हितकारी कार्यों में लगाती है। प्रियतमा की भांति सभी दुख दूर कर मन को प्रसन्न करती है। सभी दिशाओं में कीर्ति फैलाती है, ऐश्वर्य प्रदान करती है। विद्याज्ञान–कल्पलता के समान वह क्या–क्या काम नहीं करती है? स्मरण रहे कि प्रथमवेद ऋग्वेद की ऋचाओं के गहन मंथन कर अणु–परमाणु शक्ति का रहस्य खोजा गया। अंत में अणु बम सामने आया। ऋग्वेद की ऋचाओं में सूर्य विज्ञान का रहस्य उदघाटित किया गया है। प्रश्न यह है कि हजारों वर्ष की परातन्त्रता के कारण मूल वेद जर्मनी चले गए और वेद का स्वरूपों के अनुरूप पाठ करनेवाले और व्याख्याकार विरले ही मिलते है।

भूलें नहीं, वेद का अर्थ ही सृष्टि विज्ञान है। यही कारण रहा कि 2339 वर्ष पहले तत्कालीन संयुक्त भारत के तक्षशिला विश्वविद्यालय में कौटल्य अर्थशास्त्र सरीखी कालजयी रचना के रचयिता विष्णुगुप्त चाणक्य आचार्य (प्रोफेसर) थे। विश्वभर से छात्र तक्षशिला विश्वविद्यालय में पढ़ने आते थे। प्रकारान्तर में मौर्य साम्राज्य में नालन्दा विश्वविद्यालय की कीर्ति चमकी। यह दुर्भाग्यजनक है कि विदेशी हमलावारों ने हजारों वर्षों से संचित तक्षशिला, नालन्दा की दुर्लभ पुस्त्कों को महिनों जलाकर भारतीय ज्ञान की प्रचण्ड गंगा को सुखाने का घृणित प्रयास किया। यह बात अलग है कि श्रुति और स्मृति परंपरा के कारण भारतीय आर्षग्रन्थों की पुनः रचना की गई। विश्व में कल भी भारत ज्ञान गुरु था और आज भी है। अंग्रेजी शोधकर्ताओं ने सभ्यता–संस्कृति का विकास 5000 वर्ष पूर्व हड़प्पा मोहन जोदड़ो से होने की परिकल्पना दी। परंतु 5500 वर्ष पुराने मिश्र के पिरामिड, 7500 वर्ष पुराने मैक्सिको के भव्य पिरामिड, 8000 वर्ष पुरानी आहड़ सभ्यता, 10000 वर्ष पुराने तक्षित स्त्म्भ आदि हजारों वर्ष पहले समृद्ध ज्ञान, विज्ञान, वास्तुशास्त्र, शिक्षा आदि से साक्षात्कार कराते हैं। अतः भारतीय गौरव का प्रतीक विद्या है। सो विद्यार्जन करें, अविद्या त्यागें।।ऊँ।।

नाथ गुरु मछेन्दरनाथ ने कैलासपति साम्बसदाशिव से सीधे तंत्र सीखा

नव नाथों में कैलासपति श्रीआदिनाथ साम्ब सदाशिव से सीधे तंत्र सीखनेवाले मत्स्येन्द्रनाथ (लोक में प्रचलित मछेन्दर या मच्छेन्दर नाथ) रहे। गोरक्षविजय, मीनचेतना ग्रन्थों के अनुसार सदाशिव ने मत्स्येन्द्रनाथ को शॉप दिया कि निर्णायक समय उनको इस सर्वशक्तिमान शक्ति विद्या का ज्ञान नहीं रहेगा।

आगम ग्रन्थों के अनुसार इसलिए महिलाओं के देश तत्कालीन कामरूप अथवा काडाली में नाथ गुरु मत्स्येन्द्रनाथ तांत्रिक शक्तियां भूलकर रागरंग रसरंजन में डूब गए। गोरक्षविजय में लिखा है कि गुरु गोरक्षनाथ (गोरखनाथ) ने अपनी अन्तर्दृष्टि से अपने गुरु मछेन्द्रनाथ की दारूण दशा जानी । प्रकारान्तर में गुरु गोरखनाथ महिला नृत्य मण्डली में शामिल होकर रानी के दरबार में पहुंचे। दरबार में मृदंग में से 'भाग मछन्दर गोरख आया' के स्वर ने मोहपाश में बंधे गुरु मछेन्दरनाथ को सत्य का ज्ञान करवाया।

पश्चिम के विद्वानों ने नाथ गुरु मत्स्येन्द्रनाथ के काल को लेकर विरोधाभाष पैदा किया है। प्राचीन भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति के महापण्डित दामोदर धर्मानन्द कौशम्बी ने अपनी शोध में तथ्य और प्रमाणों के आधार पर पाया कि नवनाथों में गुरु योगी भर्तृहरि नाथ (भरथरी नाथ) तीसरी शताब्दी के रहे। योगी भर्तृहरि शिवस्वरूप गोरक्षनाथ के शिष्य थे। परिणामतः हठ योग के प्रवर्तक गुरु गोरखनाथ का काल संबोधिप्राप्त गौतम तथागत (बुद्ध) और महावीर के समकालीन था। जगदगुरु शंकराचार्य की कांची काम कोटीपीठम द्वारा प्रकाशित कांची महामात्य के अनुसार आदिशंकराचार्य का समय काल ईसा पूर्व पाँचवी शती था। दूसरे शब्दों में आदिशंकराचार्य, गुरु गोरक्षनाथ, संबोधि बुद्ध, महावीर चारों ही समकालीन रहे। कुछ पौराणिक मीठी कथाओं के अनुसार मर्यादा पुरूषोत्तम राम और आध्यात्म एवं नीति ग्रंथ के

महारचयिता वशिष्ठ गुरु के काल के मध्य में राजा उधोधर के शुक्राणु से मछेन्द्रनाथ का जन्म हुआ। एक अन्य कथा में आदिनाथ शिव द्वारा सृष्टि का रहस्य छिपकर सुनने से मगरमच्छ को चैतन्य प्राप्त हुआ। संगलद्वीप की दो रानियों ने तांत्रिक शक्तियों से मछेन्दरनाथ को रनिवास में बंधित किया। गोरक्षनाथ मक्खी के रूप में महल में घुसे और मछेन्द्रनाथ को छुड़ाकर लाऐ।

काश्मीर के धार्मिक आख्यान तन्त्रालोक के अनुसार योग के प्रवर्तक सदाशिव ने सृष्टि युग के प्रारम्भ में मत्स्येन्द्रनाथ को सीधे तंत्र ज्ञान दिया। अतः वे काली तंत्र कौल के योगनाथ थे। उन्हें मच्छन्दा, मछेन्द्रा, मच्छेन्द्रक, मच्छेन्द्र, मछिन्द्रा, मच्छघनपदा, मीनपाद, मीननाथ आदि नामों से भी सम्बोधित किया गया। काश्मीर तंत्र की अदभुत रचनाओं कौलज्ञाननिर्णय, अकुलवीरतंत्र, कुलानन्दतंत्र, ज्ञानकारिका, कामख्यागुहा सिद्धि, मत्स्येन्द्र संहिता, महार्थमंजरी आदि की रचना नाथ गुरु मत्स्येन्द्रनाथ ने की। उत्तरपूर्व के नगा मानते हैं कि मत्स्येन्द्र नाथ नगा थे। नगा आख्यानों में आदिवासी परम्परा के राजा चोल ने मत्स्येन्द्र नाथ से दीक्षा ली। कहीं कहीं राज चोल को चौलेन्द्रनाथ लिखा है। चौलेन्द्रनाथ कदली देश (केले के वन में) मछन्दरनाथ से मिले।

तिब्बती के दपांग बसम गोन बजन्स अध्यात्मिक ग्रंथ में 'केवट' परिवार से महान् संत ना–इतो–पा अर्थात् लुई पा का उल्लेख है। लुई पा ने महासिद्ध शवरीपा से दीक्षा ली। लुई पा को 84 सिद्धियां प्राप्त की। तिब्बती शब्द ना ना–इतो–पा का संस्कृत अनुवाद मत्स्येन्द्र नाथ है। तिब्बत के धार्मिक ग्रन्थों के अनुसार लुई पा को कामरूप में साक्षात सदाशिव महादेव ने तांत्रिक सिद्धी दी। मत्स्येन्द्र नाथ का शरीर वज्र के समान होने से उन्हें वज्र पा भी कहा गया। स्कन्द पुराण के नागरखण्ड में लिखा है कि प्राकृतिक आपदा में उनके परिवार ने उन्हें बचाने के लिए समुद्र में फेंक दिया। समुद में बृहद मछली उन्हें निगल गई। उस समय सदाशिव अपनी शिवा भवानी पार्वती एवं पुत्र कार्तिकेय के साथ श्वेतद्वीप के रामायका पर्वत पर गए। यह पर्वत दूध के समुद्र से घिरा था। पर्वत शिखर पर सदाशिव ने पार्वती को काली तंत्र, ध्यान योग, ज्ञान योग का रहस्यमय ज्ञान दिया। उसी समय महामछली उछली। मछली के पेट में फंसे बच्चे ने बताया कि गंदान्तयोग से उत्पन्न हुआ है

और ज्ञान योग सुना है। सदाशिव नन्हे बालक से बहुत प्रसन्न हुए। सदाशिव ने कहा कि तुम विप्र हो, मेरे पुत्र के समान हो। समूचि शक्ति लगाकर मछली से बाहर निकलकर मेरे पास आओ। जगतजननी शक्ति स्वरूपा पार्वती ने बच्चे को गोद में उठाया। सदाशिव–पार्वती शिशु को आकाश मार्ग से पवित्र मंदार कैलास पर्वत ले गए। जहां उन्हें मत्स्येन्द्र नाथ नाम मिला।

नेपाल में मत्स्येन्द्रनाथ को संबोधि बुद्ध का अवलोकितेश्वर अवतार मानकर पूजा करते हैं। नेपाल की संस्कृति में बुगमा पर्वत पर मछेन्द्रनाथ की अर्चना की जाती है। श्रीमछेन्द्रनाथ दक्षिण नेपाल में कामारी पर्वत की निरन्तर यात्रा करते थे। एक बार उनके महान् शिष्य गोरक्ष नाथ नेपाल आये। परन्तु नेपाल के पहाड़ों के कारण वे श्रीमछेन्दर या मच्छेन्द्र नाथ तक नहीं पहुंच सके। इससे गोरक्षनाथ ने नेपाल को सबक सीखाने की ठानी। गोरक्षनाथ ने सात नागों को वशीकृत कर कछुए के नीचे दबाकर साधना शुरू की। परिणामतः नेपाल में 12 वर्ष तक वर्षा नहीं हुई। राजा नरेन्द्रदेव वर्षा नहीं होने का कारण जानते थे। राजा नरेन्द्रदेव असम्भव चढ़ाई के पर्वतों से गुरु मत्स्येन्द्र नाथ को लेने गए। राजा नरेन्द्रदेव की कापोटाला में पूजा से अवलोकितेश्वर प्रसन्न होकर प्रकट हुए। अवलोकितेश्वर ने राजा नरेन्द्रदेव को गोपनीय मंत्र दिया। निर्देशों के अनुसार दिव्य शक्तिमान मंत्रों का पाठ भानुदत्त ने शुरू किया और अवलोकितेश्वर खींचे हुए मधुमक्खी के रूप में 'कमण्डलु' की ओर गए एवं अन्दर बैठे। भानुदत्त ने राजा को सचेत किया कि कमण्डलु का मुख बंद कर नेपाल चलें। इसे बुगमा पर्वन पर स्थापित किया गया। कौलज्ञान निर्णय में भृगपदा का उल्लेख मिलता है। अवलोकितेश्वर के आते ही वर्षा शुरू हुई। बुद्ध पुराण में भी मत्स्येन्द्रनाथ, गोरक्षनाथ का विवरण है। ब्राह्मण ग्रंथों में लिखा है कि एकबार गोरक्षनाथ गुरु मत्स्येन्द्र नाथ के पीछे नेपाल गए। नेपाल में आतिथ्य नहीं होने से गोरक्षनाथ ने अपने नाग रक्षित आसन के नीचे बादल छिपा लिए। जिससे वर्षों वर्षा नहीं हुई। नेपाल को बचाने के लिए गुरु मछेन्दरनाथ गए। गुरु मछेन्दर को देखते ही गोरख चरण स्पर्श को उठे और वर्षा हुई। इस प्रकार मछेन्दरनाथ और प्रकारान्तर में गोरखनाथ नेपाल गए और पूजित हुए।

कौलज्ञाननिर्णय कुलागम तन्त्र का रहस्य सदाशिव ने भगवती पार्वती को चन्द्रद्वीप पर दिया। काश्मीर में मछेन्द्रनाथ को पाँचवी, छठवीं शती का माना जाता है। क्योंकि तंत्रलोक रचयिता अभिनवगुप्त का काल पाँचवी शती माना गया। आश्चर्यजनक यह है कि संबोधि तथागत, महावीर भी मछेन्द्रनाथ, गोरखनाथ की भांति हठयोग के अध्येता रहे।।ऊँ।।

महायोगी कैलासी शिव गोरखनाथ :
भरंते थीरं झलझंलतिं आधा
मूरष सभा न बैसिबा अवधू पंडित सौं न करिब बादं

ईसा पूर्व श्रीमहादेव शिव के अवतार कैलासी गुरु गोरक्षनाथ (गोरखनाथ) ने देवभाषा संस्कृत और जनभाषा हिन्दवानी में आध्यात्म के गूढ़ तत्त्व की शिक्षा दी। संस्कृत में सूक्ति है कि तर्को अप्रतिष्ठा यानी अज्ञानी से शास्त्रार्य अप्रतिष्ठा है। मेरु अर्थात् कैलास में गुरु गोरखनाथ ने गुरुओं के परम गुरु सदाशिव के महादर्शन किए। महायोगीश्वर वागीश कृपा से गोरख शिवगौरक्ष हुए। गुरु गोरखनाथ ने सबदी में बहुत ही सहज ढ़ंग से कहा :

''मूरिष सभा न बैसिबा अवधू पंडित सौं करिब बादं।
राजा संग्रामें झूझ न कराबांहेलै न षोइबा नादं।।22।।''

(हे अवधूत! मूर्खों की सभा में नहीं बैठना चाहिए, पंडित ज्ञानी से शास्त्रार्थ नहीं करना चाहिए, ज्ञानगर्व दूसरे प्रकार की मूर्खता है, वास्त्विक ज्ञान उसे नहीं होता। अतएव ज्ञान बघारने के उद्देश्य से शास्त्रार्थ में पड़ना व्यर्थ समय को नष्ट करना है। राजा से संग्राम नहीं

करना चाहिए। राजा उस क्षेत्र में (ज्ञान आध्यात्म) शूर नहीं है। राजा के पास बाहुबल है, किन्तु साधक के पास साधना का बल है। इसलिए दोनों में कोई प्रतिस्पर्धा कैसी ? अर्थात् लापरवाही से नाद (ब्रह्म) को नहीं खोना चाहिए। गुरु गोरखनाथ ने कलियुग में अवधूत साधकों को सावधान करते हुए सबदी में स्पष्टरूप से कहा कि इस कलिकाल में लोगों के हृदय में अच्छे भाव नहीं हैं। यह उनके कर्मों से प्रकट होता है। क्योंकि हृदय के आन्तरिक भावों के अनुसार ही कर्म होते हैं। साधक! जो गडुवे (जल पात्र) में होगा, वही बाहर निकलेगा :

''हिरदा का भाव हाथ में जाणिये यह कलि आई षोटी।
बदंत गोरष सुणौरे अवधू करवैहोई सु निकसै टोटी''

सन्यासी की परिभाषा गोरखनाथजी ने सर्वस्व त्याग करनेवाले की है। सन्यासी शून्य मण्डल में ब्रह्म अनुभूति के लिए लगा रहता है। वह अनाहत (ब्रह्मनाद) को सुनकर उन्मनावस्था में लीन होता है। सन्यासी स्व अनुभव से अगम परम ब्रह्म का कथन करता है।

''सन्यासी सोई करै सर्ब नास, गगन मंडल महि मांडै आस।
अनहद सूं मन उनमन रहै, सो सन्यासी अगम की कहै।।

काल और गुरु गोरखनाथ के बीच का संवाद रोचक है। महाकाल ने ललकारा कि तुम मुझसे बचकर नहीं जा सकते। तुम चाहे खड़े, बैठे, जागते, सोते किसी भी दशा में रहो, उसी दशा में मैं (काल) तुम्हे मार सकता हूॅं। तुम्हें मायाजाल में पकड़ने के लिए तीनों लोकों में योनि रूप जाल पसारा है। इससे बचकर तुम कहाँ जाओगे ? सिद्ध योगी ने काल को चुनौतीपूर्वक कहा : मेरा नाम अवधूत गोरख है। मैं सोता रहूं, खड़ा रहूं, चाहे जिस अवस्था में रहूं। मैं कालचक्र को ध्वस्त् कर तीनों लोकों के बाहर निकल जाऊंगा।

''ऊभा मारूं बैठा मारूं, मारूं जागत सूता।
तीनि लोक भग जाल पसारया कहाँ जाइगौ पूता।।
ऊभा षडौ बैठा षडौ षडौ जागत सूता।
तिहं लोक तै रहं निरंतरि, तौ गोरख अवधूता।।''

नवनाथों में सिद्ध गोरखनाथ ने सिंहगर्जना की कि जो ज्ञान से परिपूर्ण हैं, भरे हैं, वे ही स्थिर (गम्भीर) होते हैं। वे अकारण अपने ज्ञान की प्रदर्शन नहीं करते। इसके ठीक विपरीत अधकचरे ही छलछलाते हैं।

वे दिखाने के लिए चंचलता के कारण अकारण ज्ञान का प्रदर्शन करते हैं। यद्यपि उनको ज्ञान नहीं होता है। उन्होंने निर्देश दिया कि सिद्ध विभूतियों को ऐसों से शास्त्रार्थ या संवाद से बचना चाहिए। वास्त्विकता में जब एक सिद्ध से दूसरा सिद्ध मिलता है, तभी साधना और ब्रह्मज्ञान की गंगा बहती है। इसीलिए लोक कहावत बनी अध जल गगरी छलकत जाए। गोरखनाथजी ने महातीर्थ कैलास में घोर साधना की।

''भरतें थीरं झलझंलंति आधा। सिधें सिध मिल्यारे अवधूत बोल्या अरू लाया।''

सबदी में श्रीआदिनाथ परम्परा में गोरखनाथ ने कहा कि आकाश (गगन मंडल) में अनुभूति के शिखर पर सिद्धों ने परमानुभूति तत्त्व की प्राप्ति की। उसी तत्त्व के सार रूप में उपनिषद आदि ग्रन्थों की रचना की। ज्ञानियों–पण्डितों ने इन रचनाओं को छोड़कर वास्त्विक तत्त्व के अमृत को ग्रहण किया।

''गिगनि मंडल मैं गाय बियाई कागद दही जमाया।
छांछि छांणि पिंडता पीवी सिधां माषण षाया।। ''

सबदी में गोरखनाथ ने संकेतात्मक–प्रतीकात्मक–कूट भाषा का प्रयोग किया। सबदी के दोहे में गाय परमानुभूति के लिए कही गई और दूध का अर्थ सार है। कागज पर दही जमाने का संकेत तत्त्वज्ञान की पुस्त्क उपनिषद से है। तत्त्व ज्ञान और शब्दज्ञान के लिए छाछ और मक्खन शब्दों का प्रयोग है। गुरु गोरखनाथ के अनुसार सिद्ध के अन्तर्मन में आत्मज्ञान, करूणा, प्रेम, निश्च्छलता का झरना निरन्तर बहना चाहिए। यदि इनका अभाव है तो वह सिद्ध कहाँ ?

''ऊजल मीन सदा रहै जल में सुकर सदा मलीना।
आतम ग्यांन दया बिणि कहु नाहीं कहा भयौ तन षीणा।।''

यह सबसे महत्वपूर्ण है कि गुरु शिष्य को कितना ज्ञान दे ? भारतवर्ष में मीठी कथा मिलती है कि गुरु ही योग्य शिष्य को ढूंढता है। गोरखनाथ महाराज द्वारा अवन्तिका के महाराजा भर्तृहरि में वैराग्य जाग्रत करने के अनेक कथानक मिलते हैं। शिवगोरखनाथ मानते हैं कि सिद्ध योगी की परीक्षा यही है कि वह बहुत ही मनन विचार के बाद शब्दों को व्यवहार में ले। शिष्यगण जितने ज्ञान के पात्र हों उतना ही ज्ञान दे। शिष्य को पात्रता से अधिक ज्ञान देना बेकार है। क्योंकि बर्तन पात्र में

भराव क्षमता से अधिक भरने या दबादबा कर भरने से बर्तन पात्र फूट सकता है।

''जोगेसर की इहै परछया सबद बिचारया बैलै।
तिना लाइक बासणा होवै, तेतो तामैं मेल्है।।
चापि भरै तो बासण फूटै बारै रहे तो छीजै।
बसण धणेरी बासण वोछा कहो गुरु क्या कीजै।।''

सिद्ध योगी गोरखनाथ ने कहा कि हमारा शब्द कथनी खाँडे तलवार की तेज धार की तरह है और रहना कथनी के अनुरूप है। हमने आदिनाथ परमात्मा के पत्र को पद लिया है। यह पत्र न तो कागज पर लिखा गया, ना ही शब्दों में ''सबद हमारा षरतर षांडा, रहणि हमारी साची। लैषै लिखी न कागद माडी, सो पत्री हम बांची।।'' सिद्ध योगी के अनुसार अज्ञानमय जीवन ही रात्रि है। अंधकार से निकलने का मार्ग समर्थ योगी सिद्ध ही बता सकता है। शब्द का उच्चारण ही सबसे अहम है। एकाक्षरनामकोषसंग्रह में सभी अक्षरों की शक्ति का उल्लेख मिलता है। अक्षर ब्रह्म की साधना से परब्रह्म से मिलन (योग) होता है। अनाहत नाद से मन और पवन का योग होता है। शिवगोरख अजपाजप जपने से परमपद निश्चित रूप से प्राप्त होने की उद्‌घोषणा करते हैं।।ऊँ।।

पाँच पक्षीतंत्र शास्त्र से
वर्तमान भूत भविष्य की सटीक भविष्यवाणी का तन्त्र

दक्षिण में पाँच महाभूतों ऋत का प्रतिनिधित्व करनेवाले पाँच पक्षी भूत–भविष्य–वर्तमान की पल दर पल सटीक सूचना देते हैं। पाँच पक्षियों को दिनभर में बदलती दिनचर्या जातक (व्यक्ति) को प्रभावित करती हैं।

पाँच पक्षी रहस्यवाद के आर्ष ग्रन्थ तंत्रशास्त्र तमिलनाडु, कर्नाटक, केरल, आन्ध्रप्रदेश, तेलंगाना एवं पुदूच्चेरी में दुर्लभ ही मिलते हैं। पाँचपक्षी तन्त्र के हस्त्‌लिखित ग्रन्थ पत्राकार और कूटभाषा में लिखे

हैं। पाँचपक्षी रहस्यवाद में जातक के नाम सम्बोधन में स्वर का अहम् स्थान है। ये पाँच पक्षी पाँच महाभूत—पृथ्वी, जल, आकाश वायु और तेजस (अग्नि) के स्वरूप माने गए हैं। दक्खन के ऋषियों ने पाँच पक्षी और महाभूतों के सम्बन्धों में दीप्तमान अर्धचन्द्र में कोआ—पृथ्वी, मुर्गा—जल, मयूर—आकाश, उल्लु—वायु और गिद्ध—अग्नि के प्रतीक उद्घाटित किए हैं। पक्षीतंत्र में पक्षियों के रंग भी उलटबांसी हैं। ग्रन्थों के अनुसार उल्लु का रंग सुनहरी, मयूर का काला, कौआ का रक्तिम लाल, मुर्गे का हरा और गिद्ध का श्वेत बताया गया है (यह रंगक्रम पक्षियों के वास्त्विक रंगों से मेल नहीं खाता है।)। पाँच महाभूतों के रंग क्रम में उत्तर की मान्यता में भी ये बेमेल लगते हैं। दक्खन के ऋषिगण श्रीविद्या एवं सूर्यविज्ञान के प्रेणता महामुनि अगस्त्य के नाड़ीशास्त्र, वैमानिक शास्त्र एवं यन्त्र सर्वस्व, सविता विज्ञान आदि की कड़ी में पाँच महाभूत और पाँच पक्षियों के कूट गोपन सांकेतिक प्रतिकात्मक सम्बन्धों को केन्द्र में रखे हैं।

पाँच पक्षियों की दिनचर्या शासनकर्ता, चलायमान, भोजनग्रहण, शयन और मृत्यु के काल खण्ड (घण्टों) के अनुसार जातक पर अच्छा और खराब प्रभाव होता है। पक्षीतंत्र में व्यक्ति के जन्म के समय नक्षत्र, शुक्ल अथवा कृष्ण पक्ष, वर्चस्ववाले प्रभावी ग्रह, राशि और नाम से ''स्वामी पक्षी का निर्धारण'' होता है। जन्म के समय पक्षी की दिनचर्या में क्या क्रिया कलाप रहा ? यह स्मरण रहे कि जब जातक का स्वामी एक क्रिया कर रहा होता है तो शेष 4 पक्षियों की दिनचर्या दूसरी होती है। पाँचों के कंपन स्पंदन तरंग मनस अलग अलग होते हैं। पाँचों में मैत्री और शत्रुता भी इसमें सहायक होती है। अग्नितत्त्व के गिद्ध के मित्र मयूर, उल्लु और शत्रु कोआ, मुर्गा है। वायु तत्त्व के उल्लु का मित्र गिद्ध, कोआ एवं शत्रु मयूर, मुर्गा है। पृथ्वी तत्त्व के कोआ के मित्र उल्लु, मुर्गा और शत्रु गिद्ध मयूर है। जल तत्त्व के मुर्गा के मित्र मयूर, उल्लु एवं शत्रु गिद्ध, कोआ है। आकाश तत्त्व के मयूर की मित्रता गिद्ध, मुर्गे और शत्रुता उल्लु, कोआ से है।

इस प्रकार जातक के जन्म के समय ''स्वामी पक्षी की मित्रता और शत्रुतावाले पक्षी प्रभावित करते हैं।'' जन्म के समय दीप्तिमान चन्द्र और आधे कालिमावाले चन्द्र के अधिपति पाँच महाभूत अलग अलग होते

हैं। अर्धकाले चन्द्र के अधिपति की भूमिका वर्तमान और भविष्य दोनों में रहती है। जातकके नाम उच्चारण से भी उस लग्न के अधिपति स्वामी पक्षी को जाना जा सकता है। पक्षीतंत्र रहस्यवाद में दीप्तिमान चन्द्र का अधिपति पक्षी उच्चारण में ए–अ–आ–औ का अग्नितत्त्व गिद्ध (अंधेकाले चन्द्र का स्वामी पक्षी आकाश तत्त्व मयूर), इ–ई का दीप्तिमान चन्द्रस्वामी वायुतत्त्व उल्लु (काले चन्द्र का अग्नि तत्त्व गिद्ध), उ–ऊ का दीप्तिमान चन्द्र का पृथ्वी तत्त्व कोआ (काले अर्ध चन्द्र का वायु तत्त्व उल्लु), ए का स्वामी दीप्तिमान चन्द्र में जल तत्त्व मुर्गा (कालेचन्द्र का आकाश तत्त्व मयूर), औ–औ–का दीप्तिमान चन्द्र में आकाश तत्त्व का स्वामी मयूर दीप्तिचन्द्र (अर्ध स्याम चन्द्र स्वामी पृथ्वी तत्त्व कोआ) है। दक्खन में प्राचीन तमिल भाषा में ग्यारह स्वर माने गए हैं। इन्हें पाँच पक्षियों में विभाजित किया गया है। किसी भी नाम संम्बोधन का प्रथम अक्षर पाँचमहाभूत के कंपन स्पंदन अधिपति पक्षी को गतिशील करता है। उदाहरण के लिए उत्तर में जातक के प्रश्न पूछने के समय से कुण्डली बनाकर वर्तमान और भविष्य का लेखा जोखा सुनाया जाता है। उत्तर में आमतौर पर राहुकाल में कार्य को यथासम्भव टालने की सलाह दी जाती है। सूर्य विज्ञान विशेषज्ञों के अनुसार प्रतिदिन दोपहर 11.15 बजे से 12. 15 बजे तक शुभ अभिजित मूहर्त रहता है। इस अभिजित मूहर्त में सकारात्मक प्रचण्ड शुभ कंपन–स्पंदन–तरंगें चलती हैं।

दक्खन के पक्षीतंत्र रहस्यवाद का मानना है कि जातक के नाम लेते ही सम्बन्धित महाभूतों में से एक का कंपन–स्पंदन– स्फोत–तरंग क्रियाशील होती है। यह जानना आवश्यक है कि उस समय शेष चार महाभूतों के पक्षियों का कंपन क्या होता है ? यानी एक समय दो महाभूत अवस्था में नहीं होते हैं। मित्र महाभूत सहयोग करते हैं और शत्रु महाभूत विरोध करते हैं। पाँच महाभूत पक्षियों की दिनचर्या में शासनारूढ़ एवं भोजन को उच्चतर स्त्र का और शासनारूढ़ को सर्वश्रेष्ठ कहा गया है। उच्चतर क्रियावान जैसे शासनारूढ़ शेष भोजनरत, चलायमान, शयन और मरने पर स्वाभाविक रूप से विजय प्राप्त करता है। भोजनरत महाभूत पक्षी चलायमान, शयन और मरणधर्मा पर विजयश्री में सफल होता है। वहीं चलायमान महाभूतपक्षी शयन एवं मरणधर्मा को पराजित करता है, परन्तु शासनारूढ़, भोजनरत से मात खाता है। शयनकर्ता पक्षी

केवल मरणासन्न को ही हरा सकता और शेष से हारता है। मरणधर्मा पक्षी सभी से हारता है। सारसंक्षेप में जातक के अधिपति पक्षी का सर्वोत्तम सर्वश्रेष्ठ समय शासनारूढ़ रहने और भोजनरत रहने की दिनचर्या का समय है। इस समय जातक अप्रत्याशित सफलता प्राप्तकर कीर्तिमान रचता है।

तमिल पक्षी तंत्र रहस्यवाद की पोथियों के अनुसार रविवार एवं मंगलवार को दिन के पाँच पहरों के शासनारूढ़ अधिपति–प्रथम प्रहर कोआ, द्वितीय प्रहर उल्लु, तृतीय प्रहर गिद्ध, चतुर्थ प्रहर मयूर एवं पाँचम प्रहर मुर्गा हैं। सोमवार एवं बुधवार को शासनारूढ़ पक्षी प्रथम प्रहर मुर्गा, द्वितीय प्रहर कोआ, तृतीय प्रहर उल्लु, चतुर्थ प्रहर गिद्ध एवं पाँचम प्रहर मयूर है। गुरुवार को शासनारूढ़ अधिपति पक्षी प्रथम प्रहर मयूर, द्वितीय प्रहर मुर्गा, तृतीय प्रहर कोआ, चतुर्थ प्रहर उल्लु, पाँचम प्रहर गिद्ध है। असुर देव के दिन शुक्रवार को शासनारूढ़ अधिपति पक्षी प्रथम प्रहर–गिद्ध, द्वितीय प्रहर मयूर, तृतीय प्रहर मुर्गा, चतुर्थ प्रहर कोआ, पाँचम प्रहर उल्लु है। सूर्यदेव के महाशक्तिवान पुत्र शनिदेव के शनिवार का शासनारूढ पक्षी अधिपति प्रथम प्रहर उल्लु, द्वितीय प्रहर गिद्ध, तृतीय प्रहर मयूर, चतुर्थ प्रहर मुर्गा और अंतिम प्रहर कोआ है। ये सभी दीप्तिमान चन्द्र के अधिपति पाँच महाभूत हैं। यह स्वाभाविक है कि अर्ध स्याम चन्द्र के अधिपति पक्षी इनसे अलग होंगे। इन शासनारूढ़ अधिपति पाँचमहाभूत पक्षी के सकारात्मक विधायी स्पंदनं–कंपन–तरंग के सामने शत्रु पासंग भी नहीं ठहरते हैं।

तंत्रानुसार पक्षियों से सम्बन्धित नक्षत्र : मयूर–श्रवण, धनिष्ठा, शतमिषा, पूर्वाभाद्रा, उत्तराभाद्रा उल्लू–आद्रा, पुनर्वसु, पुष्य, अश्लीषा, मेघा, पूर्वाफाल्गुनी गिद्ध–अश्विनी, भरणी, कृतिका, रोहिणी, मृगशिरा कोआ–उत्तराफाल्गुनी, हस्त्, चित्रा, स्वाति, विशाखा और मुर्गा–अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढ़ा, उत्तराषाढ़ा उल्लेखित माने गए हैं। शुक्ल पक्ष में गिद्ध 1,2,3,4,5, तिथि, उल्लु 6,7,8,9,10,11 तिथि, कौआ 12,13,14,15,16, तिथि, मुर्गा 17,18,19,20,21 तिथि और मयुर 22,23,24,25,26,27 तिथि अधिपति हैं। कृष्णपक्ष की तिथियों के स्वामी मयूर 1,2,3,4,5 तिथि, मुर्गा 6,7,8,9,10,11 तिथि, कौआ 12,13,14,15,16 तिथि, उल्लु 17,18,19,20,21

तिथि और गिद्ध 22 से 27 तिथि हैं। अतः कृष्ण पक्ष और शुक्ल पक्ष के अधिपति पाँच महाभूत पक्षीगणों में आमूलचूल अन्तर हैं।।ऊँ।।

झेन साधना की रहस्यमय कुंजी : जम्बूद्वीप का ध्यान ही झेन

विश्व में पूरब के देश जापान की झेन पद्धति एक रहस्य बनी है। झेन के चुम्बकीय आकर्षण के वशीभूत होकर विश्वभर के अध्यात्मिक जिज्ञासु खींचे चले आते हैं। श्री भगवान्गौतमबुद्ध का कमलसूत्र (लोटस सूत्र) नये कलेवर में नवसाधकों का प्रिय मंत्र बना है।

झेन का सीधा सम्बन्ध जम्बूद्वीप भरतखण्ड भारतवर्ष ब्रह्मवर्त के वेदीक वांगमय से है। वेदीक मनीषा दृष्टा ऋषियों की हजारों वर्ष की साधना की दैविक कृति ध्यान है। समस्त् जम्बूद्वीप में आर्यों के आदिदेश ब्रह्मवर्त के ऋषियों के ''ध्यान और साधना'' की ख्याति सातों द्वीपों तक पहुंची। यही ध्यान साधना का रहस्यमय तिब्बत की भोटियां भाषा से जापानी में नामकरण बदलता गया। जापानी भाषा में ध्यान अपभ्रंष होकर ''झेन'' कहलाया। पूरब के द्वार जापान में सूर्य पूजा और ध्यान का अनुष्ठान देश काल परिस्थिति के कारण नवस्वरूप में सामने आया।

ध्यान यानी झेन में निष्णान्त साधकों ने बहुत ही अनोखे तरीके साधना के नवपथ चुने। झेन फकीरों की विचित्र साधना शैली कुतुहल और आकर्षण दोनों का केन्द्र रही। तलवारबाजी के माध्यम से ध्यान की मीठी कथायें मिलती हैं। देश और दुनिया में सर्वश्रेष्ठ तलवारबाजी से सर्वोच्च साधना के लिए एक झेन फकीर प्रसिद्ध थे। झेन साधक फकीर गहरे वन के बीच गायों के साथ रहता था। एक समय सुदूर हिमालय से उनका नाम सुनकर एक तरूण धर मंजिल धर कूंच ढूंढ़ता ढूंढ़ता वन के समीपी गांव पहुंचा। गांव के मुखिया को आश्चर्य हुआ कि तरूण झेन क्षेपा (झेन पागल) की खोज में आया है। मुखिया ने समझाया कि खापा

क्षेपा से मिलकर कुछ नहीं मिलेगा, वापस लौट जाओ। इससे तरूण के मन में झेन फकीर से मिलने का कामना ओर प्रबल हुई।

घने वन के बीच गायों के बाड़े में झेन फकीर अपनी अजेय तलवार को धार लगा रहे थे। तरूण ने दौड़कर फकीर के पैर पकड़े। झेन फकीर ने तरूण को देखा अनदेखा किया। तरूण यही प्रतीक्षा में पैर पकड़े था कि कभी गुरु उससे पूछेंगे की क्यों आये ? उधर फकीर तलवार को धार लगाते और स्वयं मुस्करा कर गीत गाते। घण्टों से यही क्रम चला। अन्त में तरूण ने कहाः महात्मा, मैं आपसे ध्यान पद्धत्ति की सर्वोत्तम तलवारबाजी सीखने परमपवित्र कैलासवाले क्षेत्र से आया हूँ। फकीर ने घूरकर तरूण को देखा। तरूण बार–बार आने का कारण बताता रहा । घण्टों बाद फकीर बुदबदायेः पिचहत्तर वर्ष साधना करोगे ?

फकीर का उत्तर तरूण को सन्न करनेवाला रहा। उसने बहुत ही विनम्र स्वर में कहा कि महात्मा, सौ वर्ष की आयु में सर्वश्रेष्ठ साधक बनकर क्या करूंगा ? आप मुझ पर दया कर साधना शीघ्र फलित होने का उपाय बतायें। फकीर ने सर्दस्वर में कहा कि चलो, सत्तर वर्ष। तरूण ने एकबार फिर गुरु से दया की भीख मांगी। यह क्रम घण्टों चला। तब कहीं झेन फकीर ने पसीजकर कहा कि साधना में कम से कम 50 वर्ष तो चाहिए। तरूण के सामने धर्मसंकट था कि क्या करे ? यदि वह स्वदेश लौटता तो जग हंसाई होती और यहाँ रहे तो साधना का परम पद वृद्धावस्था में आता । इस विकट स्थिति में तरूण गुरु के पैरों में सिसक सिसक कर रोने लगा। उसके रोते रोते भी घण्टों गुजरे। अन्त में फकीर ने उठते हुए कहा : देखो, आज से ही साधना ध्यान शुरू करो। उसमें जितना समय लगेगा, लग जायेगा।

तरूण आनन्द से नाचने लगा। तभी फकीर ने गुरुतर गम्भीर स्वर में कहा कि मेरी एक ही शर्त है कि तुम मैं कहूंगा वही करोगे। तरूण ने बिना सोचे विचारे कहा कि हे महात्मा ! स्वीकार है। झेन फकीर तरूण को कुटिया में ले गए और पवित्र भष्मी से अभिषेक किया। फकीर ने आदेश दिया कि आज से तलवार या शस्त्रों को हाथ नहीं लगाओगे। आश्रम की गायों को चराओ और उनका दूध पकाओ। यह कहकर फकीर बिजली की तरह निकले और देखते देखते घने वन में अदृश्य हुए। पलक झपकते झेन खापा गांव के बढ़ई के घर पहुंचे। बढ़ई

से लकड़ी के दो खाण्डे (तलवार) बनवाये। खण्डों को लिए नाचते झूमते फकीर आश्रम में प्रकट हुए। आश्रम में प्रदोषकाल में तरूण गायों का दूध निकाल चुका था। उसने चूल्हा जलाया। बड़े कलश में छानकर दूध भरा। जैसे ही तरूण ने दूध में पानी डालना चाहा सड़ाक से खाण्डे की मार पड़ी। तरूण मार से कराह उठा।

दूसरे दिन, तरूण द्वारा गायों के दूध दोहन की बाल्टी से दूध छलका कि फिर खाण्डे की मार पड़ी। झेन फकीर दूध के कम पकने पर भी गलती बताने के स्थान पर खाण्डा लहराते। तरूण के वसन्त दर वसन्त बीते पर दूध दोहने, पकाने और परोसने में कमी पर खाण्डे का तेज प्रहार होता। वह मन ही मन सोचता कि गुरुजी, तलवार की साधना कब शुरू करेंगे ? वह गलती होने पर गुरु की छाया से खाण्डे की मार से बचने का जतन करता। अथवा दूध उफनते ही हवा की सरसराहट से खाण्डे की मार का अनुमान लगाकर बचने का उपक्रम करता। उसके लिए हर दिन पिटाई से बचना ही ध्यान साधना बना था।

इस मीठी कथा के अन्तिम पड़ाव में वर्षों बाद झेन फकीर के गुरुभाई आये। उन्होंने उल्हाना दिया कि अब आनन्द है। चेला काम कर रहा है। फकीर ने उत्तर दिया कि तलवार ध्यान क्या खाक सीखेगा, दूध पकाना तक नहीं आता। लो, आज तुम और हम असली तलवार से इसकी गलती की सजा देंगे। तरूण का ध्यान नंगी तलवारों के भय से कांप उठा। उसके हाथ डगमगाये और घड़े से दूध छलका। दोनों झेन फकीर नंगी तलवार लिए मारने दौड़े। तरूण अपने बचाव में निहत्था लगा था। वह बचने पर ध्यान केन्द्रित किए रहा। आखिर उसने दोनों को गिराकर उनकी तलवार उन्ही के सीने पर रख दी। सुखद आश्चर्य यह रहा कि दोनों फकीरों ने ताली बजाकर अट्टाहास किया। तरूण हतप्रभ हुआ। झेन फकीर ने उसके मस्त्क को छूकर विश्व का सर्वश्रेष्ठ तलवार ध्यान साधक घोषित किया। उन्होंने कहाः हे पुत्र, हमने तुम्हे बचाव के द्वारा ध्यान साधना का महारथी घड़ा है। तभी तुम सर्वश्रेष्ठ तलवारबाजों को पराजित कर सके। आज ध्यान में नया अध्याय जुड़ा है। तुम निहत्थे सभी पर भारी हो। इस प्रकार झेन फकीरों की रोचक कथायें हैं।।ऊँ।।

कैलास मानस की पवित्रता नष्ट करने की महायोजना के चार शतक

पश्चिमी विचार आर्ष ग्रन्थों में वर्णित पूर्व वेदीककाल के महादेव महारुद्र शिव के कैलास मानस की दिव्यशक्ति पवित्रता को नष्ट करने की महायोजना में लगे लगते हैं। वेदीक देवों के शास्त्ा रुद्र की कैलासपुरी की दिव्यता जप–तप साधना उपासना केन्द्र की चमत्कारिक गाथा स्वर्णयुग, सत्युग, त्रेतायुग, द्वापरयुग, ॠषियुग से वर्तमान कलियुग तक में मिलती है। वेदों में उल्लेखित मेरु पर्वत भी हिमालय का कैलास है। हिमालय की दोनों बाहें अफगानिस्त्ान में गंधार से पामीर, काश्मीर से तिब्बत, तिब्बत से असम होती ब्रह्मदेश (म्यमार) तक फैली हैं।

त्रिविष्टप, किन्नरखण्ड, स्वर्णभूमि यानी वर्तमान तिब्बत विश्व विशेषकर पश्चिमी देशों के लिए हजारों वर्षों से ''रहस्यमय तिलिस्म'' बना था और है। त्रिविष्टम में अलौकिक घटनायें, दिव्य चमत्कारी शक्तियाँ, इन्द्रजाल सरीखी विद्यायें, सूर्यविज्ञान से सभी भौतिक पदार्थों का पलक झपकते जादुई रचना, मंत्रमुग्ध करती प्रकृति, विचित्र पशु आदि के रहस्य की उलझी गुत्थी सुलझाने में पश्चिमी विद्वान, गवेषक, खोजीदल आदि लगे हैं और थे। ए स्कैच ऑफ ज्योग्राफी एण्ड जियोलाजी ऑफ हिमालय एण्ड तिब्बत, सिक्रेट ऑफ तिब्बत, एक्सप्लोरेशन ऑफ तिब्बत, एक्सप्लोरेशन ऑफ तिब्बत (स्वामी प्रणवानन्द), हिस्ट्री ऑफ तिब्बत, कैलास पुराण, स्कन्दपुराण मानस खण्ड, ब्रह्माण्ड पुराण, मनुस्मृति, उपनिषद्, इतिहास–रामायण एवं महाभारत, जैनधर्म के ग्रन्थ, बौध धर्म के कंजूर–तजूंर, बौद्धधर्म का तंत्र साहित्य, तिलोपा–निलोपा–मिलारेपा, दा मास्टर्स पाथ, भारतभूमि, मेघदूत, कुमारसम्भव, ज्ञानगंज, तिब्बतः बुक ऑफ डैड, दा तान्त्रिक मिस्टीसिजम ऑफ तिब्बत, रायल ज्योग्राफिकल सोसायटी लंदन के पूर्व प्रमुख सर फ्रेंसिस यंगहस्बैंड आलेख, ए ट्रिप टू कैलास मानसरोवर (स्वामी शिवानन्द हृषीकेश), दा होली माउण्टेन (श्री पुरोहित स्वामी), महापण्डित राहुल सांकृत्यायन, महामहोपाध्याय गोपीनाथ कविराज–मनीषी की लोकयात्रा,

कैलासदर्शन (श्री रामशरण विद्यार्थी), डायरी ऑफ ए पिलग्रिमेज टू लेक मानसरोवर एण्ड माउण्ट कैलास (महाराजा मैसूर 1931), वल्लभदास तुलसीदास भाटिया पुस्त्क, स्वामी सच्चिदानन्द सरस्वती एवं स्टूडेन्टस न्यू हाईजीन एण्ड फिजिकल कल्चर, श्रीआदिशंकराचार्य जीवनवृत, तिब्बती चोड.खपा पुस्त्क, गुप्त भारत की खोज (श्री पॉल ब्रण्टन), अलौकिक की तलाश में गुर्जियेफ पुस्त्क, आचार्य पद्मसंभव ग्रन्थावली, आचार्य दीपंकरश्रीज्ञान रचनावली, तिब्बत में काश्मीर के पण्डित सोमनाथ का पाँचांग–रब्यूड., जगदगुरु शंकराचार्य स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती, महातीर्थ के अन्तिम यात्री आदि ग्रन्थ तिब्बत कैलास एवं मानस सरोवर के देव तिलिस्मी रहस्य के मात्र चन्द पन्नों पर ही प्रकाश डालते हैं, शेष अभी यथावत रहस्य के गर्भ में हैं।

यहाँ यह समझना आवश्यक हैः ''अंग्रेजी पश्चिमी विद्वानों की पाँच सौ वर्षों में कैलास खण्ड की दुर्गम यात्रा का उद्देश्य क्या रहा ?'' यह स्मरण रहे कि ब्रिटेन में लार्ड टी.बी. मैकाले के पिता प्रेस्बिटेरियन चर्च के पादरी श्री खे.जोन मैकाले थे। लार्ड मैकाले सन् 1833 में ईस्ट इण्डिया कम्पनी की सर्वोच्च संचालन परिषद के चौथे सदस्य थे। ईस्ट इण्डिया कम्पनी भारत में अपने राज्य का विस्त्ार कर रही थी। सन् 1832 में श्री मैकाले मद्रास आये। सन् 1835 में श्री मैकाले ने भारत में ''संस्कृत के स्थान पर अंग्रेजी को शिक्षा माध्यम करने का तानाशाहीपूर्ण निर्णय थोपने की सिफारिश'' की (अर्थात् भारतीय संस्कृति साहित्य अंग्रेजी की दृष्टि से पढ़े।)। इसके पीछे की ''भयानकतम महायोजना'' रही। स्वयं लार्ड मैकाले ने 1838 को लंदन में कहाः ''मैं नहीं समझता कि हम कभी इसे (भारत को) विजित कर सकेंगे, जब तक इनके मूलाधार को ही नष्ट नहीं करें। इस(भारत) देश की अध्यात्मिकता और सांस्कृतिक धरोहर मूल–आधार है। इसीलिए मैं प्रस्त्ावित करता हूं कि हम उनकी (भारत की) प्राचीन शिक्षा पद्धति और संस्कृति को ही बदल दें। क्योंकि यदि भारतीय यह सोचने लगे कि जो विदेशी अंग्रेज हैं उनकी संस्कृति भारतीय संस्कृति से उच्च्व और सर्वोत्तम है। परिणामतः भारतीय अपना स्वाभिमान और संस्कृति खो देंगे। इस प्रकार वो (भारतीय) वहीं बनेंगे जो हम चाहते हैं (पराधीन) और हमारा सच्चे रूप से शासन होगा।'' इससे दर्पण की भांति स्पष्ट है कि विगत लगभग 300

वर्षों में पश्चिमी देशों ने भारतीय धर्म आध्यात्म संस्कृति की लाखों वर्ष पुरानी जड़ों को निर्ममतापूर्वक उखाड़ फैंका। परिणामतः विगत 300 वर्षों में हम भारतीय अंग्रेजी की पुस्त्कों में त्रिविष्टप तिब्बत कैलास मानसरोवर आदि के बारे में वहीं पढ़ते हैं जो वे हमें जान बूझकर पढ़ाना चाहते हैं।

ए स्कैच ऑफ ज्योग्राफी एंड जिओलाजी ऑफ हिमालय एंड तिब्बत में (सन् 1907ः भारत सरकार) दिव्य मानसरोवर के परत दर परत सर्वेक्षण नक्शे नहीं मिलते हैं। गुप्त तिब्बत की खोज में तत्कालीन अंग्रेज अफसर ने पश्चिमी तिब्बत (कैलास मानसवाले) के मन्दिर मठों से भोट लिपि में लिखी दुर्लभ पाण्डुलिपियाँ कैसे प्राप्त की ? ईसा पूर्व लौटे यूनान से दिग्विजय पर भारत आये सिकन्दर (एलक्जेण्डर) को उनके दार्शनिक गुरु ने भारत से दुर्लभ देववाणी के आर्षग्रन्थ एवं विद्वान लाने को कहाँ ईसा पूर्व में विदेशी आक्रामकों ने तक्षशिला विश्वविद्यालय का पुस्त्कालय छह महिने जलाकर खाक किया। सो कैलास मानस को अधिकारिक पोथियों को समाप्त करने का षड़यंत्र रहा।

एशिया विशेषकर भारत में धर्म आध्यात्म आस्था विश्वास के शेषनाग पर खड़ा है। मिश्र, मय, भारत, तिब्बत, चीन, मंगोलिया, साईबेरिया, जापान, बर्मा (म्यमार), कम्बोडिया, वियतनाम, रूस, मलेशिया, इण्डोनेशिया, थाईलैण्ड, भूटान, नेपाल, श्रीलंका आदि ईश्वरवादी परमेश्वर को आस्था विश्वास की धुरी पर ही मानते हैं। इसके ठीक विपरीत पश्चिमी जगत में ईश्वरीयसत्ता को विज्ञान की कसौटी पर सिद्ध होने पर ही मानने में भरोसा करते हैं। पश्चिमी प्रयोगशाला में ''परमेश्वरीय सूक्ष्म से सूक्ष्मतम बिन्दुकण'' (गॉड़ पार्टीकल) को प्रकट करने के जतन वर्षों से जारी है। अदृश्यसत्तामान सूक्ष्मतम परमेश्वर बिन्दु अभी भी रहस्य ही है। इस पृष्ठभूमि में पूर्व वेदीककाल, उपनिषद काल, पौराणिककाल, पौराणिककाल से रामायण महाभारतकाल और वर्तमान 10 हजार वर्षों में शिवलोक देवताओं की तपस्या स्थली एवं पुरावेदीक से कलिकाल के ऋषिओं की तपस्यास्थली साधना तप जप अर्चनास्थली श्रीकैलास मानस सरोवर जम्बूद्वीप के देशों में पूज्य पुनीत है।

यूरेशिया से समूचे एशिया में वेदीक धर्म–संस्कृति, सात्वत सनातन धर्म, बौद्धधर्म, जैनधर्म, ताओधर्म, बोनधर्म, पोन धर्म, शिन्तो धर्म

आदि के अनुयायी महादेव शिव के लिंगाकार श्रीकैलास महापवित्र पर्वत पर चढ़ने और प्रजापति श्रीब्रह्मा के मानस में मात्र संकल्प से उत्पन्न मानसरोवर में नौकाविहार का अशुभ विचार मन तक में नहीं ला सकते। श्रीकैलास के अधिष्ठातृ देवता धर्मपाल मुण्डमालधारी, त्रिशूल, सर्प, गजचर्म, डमरू, पॉश आदि लिए हैं। सिंहचर्म पहने धर्मपाल (यानी शिव) के महातेजोग्र रूप को सभी नतमस्त्क करते हैं।।ऊँ।।

भारतीय संस्कृति के मूलाधार : कैलास में प्रयोग बहाने क्या

श्रीकैलास के समीत महादेवीउमा रुद्राणी पार्वती के पवित्र स्नानवाला गौरीकुण्ड अथवा गौरी सरोवर भी पुनीत स्वीकारा गया है। महादेवी का गौरीकुण्ड वर्ष भर बर्फ की रजत चांदी की चादर के आवरण में रहता है। वर्षों में कभी अनायास ही गौरीकुण्ड में जल के दिव्य दर्शन होते हैं।

इसलिए जगत जननी जगदम्बा पार्वती के कुण्ड में नौका विहार अध्यात्मिकों तीर्थयात्रियों के लिए कल्पना से बाहर है। श्रीकैलास परिधि में द्रव्याधिपति यक्षराज कुबेर की अलकापुरी का कुबेरताल भी पूजनीय है। इसी श्रृंखला में मानस सरोवर के साथ ही लंकेश्वर दशानन रावण के रावणताल में भी नौकाविहार लंकाधिपति के कोप का भाजन बनना है। इस पर भी कैलास मानस छह प्राचीन धर्मों—वेदीक, सनातन भागवत, बौद्ध, जैन, बोन, शिन्तो, ताओ का केन्द्र है।

यह त्रासदी है कि ए स्कैच ऑफ ज्योग्राफी एण्ड जिओलॉजी ऑफ हिमालय एण्ड तिब्बत में ''कैलास मानस का सत्ही वर्णन है। रहस्यमय ब्रह्मविद्या की पीठ कैलास के मानसरोवर में ब्रिटिश पराधीनता के दौरान बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में मोटरचलित नौका, रबड़ की नौका का परिचालन हुआ। मानस में हजारों हजारों वर्ष में पहलीबार नौका चली। इससे मानस सरोवर के पवित्र ब्रह्म जल की थाह लेने का प्रयास किया गया। इस नौका ने एकतीर से अनेक शिकार किए। (पहला) यह सिद्ध करना कि प्रजापति ब्रह्माजी के मानस के विचार से उत्पन्न मानस

सरोवर में कोई दैविक चमत्कारिक शक्ति नहीं है (प्रजापति ब्रह्मा ने प्राचीन ऋषियों के लिए सृजित मानस की पवित्रता बचाने को क्या किया ?)। (दूसरा) देवताओं द्वारा मानस रचना मात्र कथा है। (तीसरा) मानस सरोवर भी दूसरी झीलों की तरह है। (चौथा) मानस की आन्तरिक संरचना (भौगोलिक एवं जैविक) के रहस्य को समझने की वैज्ञानिक शोध का श्रीगणेश हुआ। (पाँचवा) साधक उपासकों की गहरी आस्था की नींव को ध्वस्त् करने का सुनियोजित अभियान प्रारम्भ हुआ।'' यानी पश्चिमवाले चाहते थे एवं हैं कि यदि परब्रह्म है तो कैलास के दिव्य जल की रक्षा के लिए प्रकट क्यों नहीं हुआ ? भले मानुष परब्रह्म अपना अस्ति्त्व क्यों जतायें ?

यह बात अलग है कि भूगर्भ वैज्ञानिक यह पहेली हल करने में असमर्थ रहे हैं कि सरोवर से सिंहगर्जना, बाघों की दहाड़, हाथियों के चिंघाड़ने, पक्षियों के कलरव, मधुर संगीत लहरी आदि क्या है ? मानस में ब्रह्माण्ड से कहाँ से प्रकाश पुंज आते हैं ? मानस के हिमवत होने पर अचानक दस दस फीट की दरारें पड़कर आकाश में हिमचट्टान कैसे उछलती हैं ? मानस सरोवर की पाँचरंगा रेत, पीली मिट्टी, स्वर्णरेख शालग्राम की उत्पत्ति क्यों कर है ? मानस में ज्वार के क्या कारण हैं ? मानस में कैलास की हिम का जल लगभग 150 किमी से किन अन्तर्वाहिनियों से आता है ? कैलास की प्रदक्षिणा 45 किमी और मानस की 80 किमी है। पश्चिम का नवप्रचार है कि मानस में ब्रह्माण्ड के दूसरे ग्रहों के वासी उडनतस्त्री से आकर रहते हैं। इन ग्रहों के प्राणी विज्ञान में पृथ्वी की प्रौद्योगिकी विज्ञान से बहुत आगे हैं।

पश्चिमी प्रचार की माने तो मानस के गहरे जल के नीचे ब्रह्माण्ड के प्रौद्योगिकी में चरम उन्नत प्राणियों दूसरे ग्रह के मानुषों की प्रयोगशाला है और शिवपुरी का मेरु कैलास पिरामिड दूसरे ग्रहों के प्राणियों द्वारा निर्मित पिरामिड आकार का स्त्म्भ है। श्रीकैलास शिखर से दूसरे ब्रह्माण्ड सौरमण्डल में सम्पर्क किया जाता है। पश्चिमी महादेव शिव को अन्य ग्रह का सर्वोच्च वैज्ञानिक कहते हैं। महादेव शिव द्वारा सृष्टि प्रलय की घटना को भी सही कहते हैं। देश विदेश के वैज्ञानिक शोध अनुसंधान से रहस्योद्घाटन हुआ कि देवलोक की नदी गंगामाता एवं पवित्र कैलास के जल में सामान्य से डेढ़ गुना से अधिक

परमाणुधर्मिता, खनिज क्रोमीयम, प्राकृतिक स्टेराइड आदि है। यही इसे ''कालजयी–कभी नहीं सड़नेवाला चमत्कारिक दैविक शक्ति'' देता है। श्रीकैलास और श्रीगंगा में इस असामान्य परमाणुधर्मिता के कारण जानना शेष है। यह भी उल्लेखनीय है कि उन्नतीस (29) लाख वर्ष पहले देववाणी सुननेवाले ऋषियों को मेरु का ज्ञान था। पुराण, रामायण, महाभारत आदि में हिमालय में जम्बूद्वीप की धुरी मेरु का वर्णन मिलता है। यही मूलभूत कारण रहा कि भगवान्बुद्ध, लाओत्से, जैन तीर्थंकर आदिनाथ आदि ने भी पवित्र मेरु को चुना।

यह दुर्भाग्यजनक है कि लगभग 80 वर्ष पहले ब्रिटिशराज में महादेवी के गौरीकुण्ड, लंकेश्वर रावण के रक्षताल आदि में नौका विहार का ''दुस्साहस'' किया गया (लंकेश्वर रावण और श्रीहरिविष्णु अवतार श्रीराम के मध्य विश्वयुद्ध अति उन्नत परमाणु शस्त्रों से लड़ने के प्रमाण मिलते हैं।) (तीर्थयात्रियों को कथित सुविधा के नाम पर कैलास के दोनों तरफ सड़क निर्माण किया गया है। तीर्थ पर्यटन प्रोत्साहन जारी है।)। मानों यह चुनौती दी जा रही है कि महादेवी और लंकेश्वर अपने तालों की रक्षा क्यों नहीं करते ? भलेमानुस, क्यों भूल जाते हो कि यदि वह मानसिक रूप से विकृतों की चुनौती स्वीकारेगा तो परमेश्वर कैसे कहलायेगा ? परमेश्वर साक्षी है, दृष्टा है, सर्वनियामक है, सर्वशक्तिमान है। परमेश्वर निराकार निर्गुण ब्रह्म है। उसे सगुण साकार ब्रह्मरूप में क्यों देखना चाहते हो ? ब्रह्म चित्त की अग्नि है। भारतीय आध्यात्म आन्तरिक अन्तर्मुखी यात्रा है। पश्चिमवाले यह नहीं जानते कि गौतमधर्मसूत्र एवं मनुस्मृति के अनुसार सदमानवीय गुण ही धर्म हैं। अर्थात् धर्म और आध्यात्म में मूलभूत अन्तर है।

आर्षग्रन्थों में श्रीकैलास मानस को महातीर्थ कहा है। ऋषियों के अनुसार तीर्थ कष्टमय यात्रा है (यह मानुस के ईश्वर से मिलने का मार्ग दिखाता है।)। अतः श्रीकैलास मानस सरोवर भूवैज्ञानिक सर्वेक्षण, भौगोलिक सर्वेक्षण, वैज्ञानिक शोध अनुसंधान, कैलास महापर्वत संरचना, मानस सरोवर–गौरीकुण्ड–कुबेरताल–छो कपाला–रक्षसरोवर के जल की जांच पड़ताल, नौका विहार आदि का माध्यम बनाना जनास्था–जनविश्वास–लोकमान्यता की दृष्टि से अनुचित ही है। इतिहासविद् लिखते हैं कि मध्यकाल अथवा मुगलकाल तक में श्रीकैलास

मानस की पवित्रता ज्यों की त्यों बरकरार रही। ईसा पूर्व सम्राट अशोक महान् से ब्रिटिश काल तक श्रीकैलास मानस भारतवर्ष के अधीन रहा। तिब्बत के शासक और बाद में श्रीदलाईलामा के श्रीकैलास मानसवाले पश्चिमी तिब्बत में नाम मात्र के शक्तिहीन प्रतिनिधि रहते थे।

यह लिखना आवश्यक है कि अलक्जेण्डर सिकन्दर के हमले और उसके बाद राजनीतिक अस्थिरता में भारत के चोटी के दार्शनिकों, धर्म शास्त्र अध्येताओं, वेदांगविदों और तंत्रज्ञों ने श्रीकैलास एवं तिब्बत का रूख किया। उन्होंने दुर्लभ आर्षग्रन्थों को बचाने के लिए संस्कृत–काश्मीरी शारदा के मिश्रण से तिब्बती भोट लिपि को जन्म दिया। तिब्बत विशेषकर श्रीकैलास में मंत्र–तंत्र–यंत्र साधना के प्रायोगिक स्वरूप पर शताब्दियों से साधक काम कर रहे हैं। भारतीय आध्यात्म–धर्म–संस्कृति के महातीर्थ पर भौतिक कुप्रयास कहाँ तक उचित है? महादेव शिव इन दुर्बुद्धियों को क्षमा करे ! ऊँ

भारतीय गाय का गोमूत्र
नवसंजीवनी औषधि

''गोमूत्र'' हृदय रोग से कैंसर के प्राथमिक चरण मे एक उपयोगी संजीवनी औषधि प्रमाणित हुई। ''गोमूत्र'' रसायनिक तत्त्वों की शोध से उसके औषधीय गुणों की पुष्टि हुई हैं। देश में वेदीक काल से ही ''गोमूत्र'' को लाईलाज रोगों के उपचार के लिए काम में लाने का प्रचलन है। आयुर्वेद और एलोपैथी में ''सुश्रुत संहिता'' का विशेष स्थान है। सुश्रुत संहिता में गोमूत्र के गुणों के बारे में अलग अध्याय है। चरक संहिता, राजनिघंटु, वृद्धवागभट्ट, अमृतसागर, अष्टांगसंग्रह, भावप्रकाश, आर्यभषक, द्रव्यगुणशास्त्र, अजायबुल्मखलुकात, धनवन्तरीसंहिता, आयुर्वेद आदि में गोमूत्र को सभी तरह के रोगों को जड़ से समाप्त करनेवाला माना गया है। लोक कहावतों के अनुसार ''जा घर, तुलसी अरू गाय/ता घर, वैद्य कबहु ना जाय''। आयुर्वेद के अनुसार गाय विष के प्रभाव को दूर करती है। ''जीवन्तु अवध्न्याः ता में विषस्य दूषणीः।''

वेदीक ऋषियों ने माना कि पाँचगव्य गोमूत्र अचिन्त्य शक्ति है। इसका गुणगान अश्विनी कुमारों एवं धनवन्तरी ने किया। यह रजोगुण, तमोगुण नष्टकर सत्ोगुण लाता है। पाँचगव्य बल–बुद्धि देने वाला, आयु प्रदान करनेवाला, रक्त विकारों को दूर करनेवाला, कफ, वात और पित्त तीनों दोषों को दूर करने में सक्षम है। सुश्रुत संहिता के 45 वें अध्याय में गोमूत्र को कषैला, तीक्षण शीघ्रपाचक, मस्तिष्क के लिए शक्तिवर्धक, शूल–उदर–अनाह–कुण्डु–खुजली–मुख–कुष्ठ, पाण्डु, तिल्ली, कर्णरोग, श्वांस, मलावरोध, कामला आदि रोगों के लिए अचूक दवा लिखी है। भावप्रकाश के 19 वें अध्याय में गोमूत्र को अन्य रोगों के अलावा सफेद दाग, पीलिया, दस्त्, बवासीर भी नष्ट करनेवाला लिखा है। आर्यभषक में गोमूत्र की स्त्री रोगों के लिए भी लाभकारी माना है। द्रव्यगुणशास्त्र में पाँचगव्य को पेट के रोगों के लिए सबसे अच्छा लिखा है। महाराष्ट्र सरकार के रा.आ.पोद्दार आयुर्वेद रूग्णालय ने रसायनिक जांच में गोमूत्र को दमा, मल विष्ठम, स्त्रोतोंरोध, मधुमेह आदि में लाभकारी पाया है। एलबर्ट डेविड लिमिटेड प्रयोगशाला, कोलकाता ने गोमूत्र से बनी डायबिटीज–मधुमेह की गोलियों का प्रयोग सुरक्षित प्रमाणित किया है। उत्तरी भारत में गोमूत्र को असाध्य केंसर के लिए भी प्रयोग में लिया जा रहा है। गोमूत्र के रसायनिक परीक्षण से लगभग 25 प्रमुख तत्त्वों की जानकारी मिली है।

गोमूत्र में नाइट्रोजन, सल्फर, अमोनिया, अमोनिया गैस, ताम्बा, लोहा, यूरिया, यूरिक तेजाब, फास्फेट, सोडियम, पोटेशियम, मैगनीज, कार्बोलिक तेजाब, कैल्शियम, नमक लवण, विटामिन ए,बी,सी,डी,ई खनिज लैक्टोज, दुग्ध, शर्करा, एन्जाइम्स, जल, हिप्युरिक तेजाब, क्रियाटिनिन, हार्मोन्स और स्वर्णक्षार मिलती है। अमेरिकी अनुसंधान के अनुसार गोमाता के पेट में विटामिन बी हमेशा रहता है। गोमाता की विशेषता यह है कि वह विषैली वनस्पति को चरने के बाद उसे दूध में नहीं उतारती है। गोमाता उसे शरीर में सोखकर नष्ट करती है। इस विलक्षणता के कारण ही गोमाता में सभी देवताओं को निवास कहा गया है। कामधेनु गोमाता सभी नक्षत्रों की किरणों को आत्मसात करनेवाली है। गोमाता की रीढ़ की हड्डी में सूर्य–केतु की नाड़ी है। सूर्य केतु नाड़ी के ही कारण स्वर्णक्षार बनती है। यह स्वर्णछार गौरस एवं गोमूत्र में उतरती है।

आयुर्वेद के ग्रन्थों के अनुसार गोमूत्र को चीनी मिट्टी, शीशे अथवा मिट्टी के बर्तन में ही रखना चाहिए। गोमूत्र को ताम्बे, लोहे, एल्यूमिनियम और पीतल के बर्तन में नहीं रखना चाहिए। ढ़का हुआ और स्वच्छ गोमूत्र गंगाजल की तरह कभी भी खराब नहीं होता है। आयुर्वेद में प्रतिदिन निराहार 25 मिली–अढ़ाई तोला गोमूत्र लेने का विधान है। आयुर्वेद ग्रन्थों में लिखा है कि वन में चरनेवाली गाय का गोमूत्र अमृत के समान है। वन में गाय प्राकृतिक वन सम्पदा, जड़ी बूटियों आदि चरती है। विशेषज्ञों के अनुसार गोमाता की बछड़ी और दूध देनेवाली गाय का गोमूत्र सर्वोत्तम है। वैसे किसी भी उम्र की गाय का मूत्र औषधिगत गुणवाला होता है। इसके अलावा सांड और बैल का मूत्र भी उपयोगी है। सांड–बैल का मूत्र सूंघना भी गुणकारी है। बंध्या स्त्री बैल सांड का गोमूत्र सूंघने से गर्भवती हो जाती है। गोमूत्र को काम में लेने से पहले उसे गर्म करना जरूरी है। गोमूत्र का गर्म करने से उसकी तेज गंध खत्म हो जाती है। इसके बाद गर्म गोमूत्र को ठंडा करके मलमल कपड़े से छानकर बर्तनों में रखना होता है।

राजवैद्यों के अनुसार गोमूत्र से उच्च रक्त दबाव (बीपी), स्मृति नाश, ह्रदय रोग, श्वांस रोग–दमा, सूजन, जुकाम, यकृत वृद्धि (लीवर), कुष्ठ रोग, कण्ड रोग, कफ, गुल्म, वातरोग, वातरक्त, हैजा, सुजाक, हलीमक, हारीद्रक, मिर्गी, हिक्का, स्त्री रोग, स्नायु विकृति, स्त्न रोग, सैक्स की कमी, रक्त पित्त, पेशाब रोग, गर्मी (सिफलिश), प्लूरिसी, मनोवसाद, पेट में कीड़े, पीलिया, बालरोग, नेत्ररोग, दंतरोग, बुखार, ज्वारातिसार, किडनी बीमारी, घाव, हाथी पांव, संगृहणी, सन्निपात, भगन्दर, बवासीर, उल्टी, विरचन देना, आफरा, एनिमिया, चक्कर आना, गैस, अजीर्ण, हर्निया, एसिडिटी, एपेंडीसाइटिस, भारतीय मधुमेह, अंतस्त्राव, ग्रंथिविकृति, अरोचक, टर्मर, प्रोस्टेट, आनाह, आमवात, पोस्टिक अल्सर, लू लगने, प्रमेह पीड़िका, एनिमिया, पित्त वृद्धि, प्लीहा बढ़ोत्तरी, कब्ज, बहुमूत्र, भूख की कमी, मजीलस, मूर्छा, मूत्राघात, मूत्रवाहिनी मेव्रण, मेदो वृद्धिध, उतस्त्म्भ, भस्मक, दाद, निंद्रानाश, एक्जिमा, विष विकार, त्वचा रोग, सिरदर्द आदि रोगों से अक्सीर दवा है। राजवैद्यों ने गोमूत्र को महौषधि मानकर गोमूत्र आसव, गोमूत्र अर्क और गोमूत्र घनवटी को तैयार किया है। आयुर्वेद मे गोमूत्र, गोमय और गाय घी तीनों से अनेक

दवाइयां बनाने का ब्योरा है। गोमूत्र अर्क को शहद के साथ लेने से कोलस्ट्रोल कम होता है। गोमूत्र में जायफल, लोंग, जावित्री सेककर आदि डालकर गौतीर्थ निर्माण का विधान है। गोमूत्र में छोटी हरड़, काली मिर्च, हींग, गोघृत, सेंधा नमक, अजवाइन, जवा खार, अरण्ड तेल और काला नमक से गोमूत्र हरड़ चूर्ण बनाया जाता है। गोमूत्र क्षार, गेरू, बाकुची या बावची और आमलासार गंधक से शित्रनाशक योग का उत्पादन होता है। गोमाता के गोबर से दंतमंजन और गोमय तेल भी बनता है। गोबर और तिल्ली के तेल से बना गौमयतेल नेत्ररोगों में लाभदायक है। गोबर, गेरू, नीला थोथा, गोमूत्रक्षार और पैट्रोलियमजेली से गोमय मलहम बनती है। शरीरदर्द के लिए गोबररस से कामधेनु तेल बनता है।

नवजात बछड़े–बछड़ी के गोबर से पेट के कीड़े, बेहोशी, सिरदर्द, मिर्गी आदि को दूर करनेवाला गोपाल नस्य बनाया जाता है। रोचक यह है कि गोबर स्नान का भी विधान है। गोमूत्र को आयुर्वेदाचार्य बहुमूल्य रसायन मानते हैं। उनके अनुसार गोमूत्र एन्जाइमों की आपूर्ति करता है। गोमूत्र में ताम्बा और स्वर्णक्षार गुणों की खान है। स्वर्ण सभी रोगों को दूर करनेवाला और सभी प्रकार के विषों को नष्ट करता है। गोमूत्र मानसिक विषाद से पैदा विषतत्त्व का सफाया करता है। कुछ आयुर्वेद परीक्षणों के अनुसार कैंसर को समूल नष्ट करने में गोमूत्र समर्थ है। गोमूत्र के नियमित प्रयोग से कैंसर के विषाणु स्वयं ही नष्ट होने लगते हैं। गोमूत्र मानव शरीर में विषनाशक शक्ति में बढ़ोत्तरी करता है। गोमूत्र को मधु और हृद्य कहा जाता है। यह मानव मन और हृदय को शक्ति देनेवाला है। गोमूत्र का ताम्बातत्त्व प्रकृति की विद्युत चुम्बकीय तरंगों को आकर्षित करता है। सूक्ष्म से सूक्ष्म तरंगें शरीर को स्वस्थ्य रखने में सहायता करती है।

आयुर्वेद रसायनविदों का दावा है कि गोमूत्र व्याधियों से लड़कर बुढ़ापे को रोकता है। गोमूत्र की विशषता यह है कि आत्म के विरूद्ध होने वाले कार्यों से हृदय और मस्त्ि‍क पर पड़नेवाले कुप्रभावों को रोकता है। आर्षग्रन्थों में गोमूत्र को गंगाजल की तरह पापों का नाश करने वाला बताया है। आर्षग्रंथों में लिखा है कि गोमूत्र का नियमित सेवन से हृदय का रोग नहीं होता है। आयुर्वेद में पौरूष में कमी ''धातु क्षीणता'' के

उपचार में गोमूत्र का प्रयोग बताया है। मधुमेह से पीड़ितों, बच्चों और गर्भवति महिलाओं के लिए गोमूत्र सेवन की विधियां अलग–अलग हैं।

देश में अनेक गौशालाओं में गोमूत्र से खाद भी बनायी जा रही है। यह गोमूत्र की खाद कीटनाशक है। इसका फसलों पर कोई खराब असर नहीं पड़ता है। उल्लेखनीय यह है कि देश के दुधारू पशुओं में केवल 20 प्रतिशत गोमाता हैं। इन गायों में वन में चरनेवाली गाय का ''गोमूत्र अमृत'' का दूसरा नाम है। दूसरे शब्दों में जंगलों के नजदीकी गावों की गौशालाओं और गोपालकों की गायों का गोमूत्र सबसे अधिक गुणकारी है। इस गोमूत्र में जगलों की गुणकारी जड़ी बूटियों के अनमोल खजाने का प्राकृतिक आहार मिलता है। गोमूत्र जहां अमृत है, वहीं पश्चिमी जर्सी गायों में यह विशेषता नहीं के बराबर है। पश्चिमी देश हैरान है कि जर्सी गायों में भारतीयों गायों की तरह गोमूत्र की विशेषता क्यों नहीं है ? जर्सी और देसी गायों के गोमूत्र में यह अलगाव उलझी पहेली है। आर्ष ग्रंथ विद्ववान इस रहस्य को कैलासी गंग देश–जम्बूद्वीप, आर्यावर्त, भारतवर्ष पर ईश्वरीय कृपा से जोड़ते हैं। शास्त्रों में मंद बुद्धि, स्मृति कम पड़ने और पीलिया दूर करने के लिए पाँचगव्य घृत को उपयोगी बताया है। पाँचगव्य बनाने में गोमूत्र, गोदही, दूध, गोबर रस, गोघृत आदि को समान मात्रा में लिया जाता है। उन्हें पकाकर 1/5 रहने पर छानकर काम में लिया जाता है। धार्मिक पत्रिका ''कल्याण'' में 63 वर्षीय श्री विनायक कुलकर्णी, सोलापुर के कैंसर रोग दूर होने की गाथा प्रकाशित की। श्री कुलकर्णी का इलाज राजवैद्य रेवाशंकर शर्मा ने किया।

पशु रोगों में भी गोमूत्र ने चमत्कार दिखाया है। पशु रोगों रिंडरपेस्ट, डंक हवा, ''एथेक्स,'' ब्लैक क्वारटर, नथुने और खुर की बीमारी, पेट फूलना, रूमन, इपेमेराल बुखार, दस्त्, अपच और पेचीस में गोमूत्र और गुड़ मिलाकर पिलाना चाहिए। पशुओं के घाव होने पर गोबर की राख, गोमूत्र लगानी चाहिए। साथ ही नाल से गुड़ में गोमूत्र मिलाकर देना ही उपचार है। इसमें गुड़ इसलिए मिलाया जाता है कि पशु मीठे में गोमूत्र पीने में आनाकानी नहीं करता है। गोमूत्र फसल और वनस्पति के लिए भी कीटनाशक है। स्पष्ट है कि गोमूत्र मानवों, पशुओं और वनस्पति तीनों के लिए लाभकारी है। गोमूत्र की औषधिगत विशेषता

को ध्यान में रखकर ही गोमूत्र के उपयोग का प्रचलन भारत में वेदीक काल से है। वर्तमान में जापान में दुकानों पर गोमूत्र बिकता है। ऊँ

देश में 19 करोड़ गोमाता
रक्षा का धर्मयुद्ध

देश में सोलह प्रतिशत पशुधन विशेषकर गोमाता के संरक्षण से राष्ट्रीय आय एवं स्वास्थ्य में अभूतपूर्व वृद्धि की जा सकती है। साथ ही सम्पूर्ण देश में जैविक खाद रसायनिक खाद का स्थापन्न अर्थात् स्थान ले सकती है। विशेष में जैविक कृषि उत्पाद मुँह मांगे दाम पर मिलते हैं।

यह उल्लेखनीय है कि राष्ट्रीय आय में पशुधन का योगदान 6 से 9 प्रतिशत है। देश की श्वेत क्रान्ति दुग्ध क्रान्ति की 44 प्रतिशत भागीदारी गाय के दूध की है। इक्कीसवीं शती के प्रथम दशक के पूर्वार्द्ध में पशुधन से 8.45 करोड़ टन दूध प्राप्त होता रहा। हमारा लक्ष्य 132 करोड़ जनसंख्या में प्रति व्यक्ति दूध की न्यूनतम उपलब्धि संतुलित पोषाहार की दृष्टि से 0.225 से 0.500 लीटर से एक लीटर होना चाहिए। उसके लिए पशुधन विशेषकर भारतीय उन्नत नस्ल की गायों की संख्या न्यूनतम छह से सात गुना करना समय की मांग है। इसके विपरीत देश में प्रति वर्ग किलोमीटर पशुधन का घनत्व बहुत कम है।

यह समझा जाता है कि देश में 19 से 19.5 करोड़ गौवंश है। गोरक्षा का विषय विगत 1000 वर्षों से ज्वलन्त है। वेदीक काल में अत्याधिक दूध देनेवाली सहस्त्रों प्रकार की गायों का वर्णन मिलता है। ऋग्वेद में लिखा है :''अग्नेर्वर्म परिगोभिर्ग्यस्व सं प्रोर्णुष्व पींवसा मेदसा च। नत्वाधृष्णुर्हसा..।'' अथर्ववेद में गौवध करनेवालों दण्ड का विधान है : ''मुग्धा देवा उत शुना यजन्तोत गौरंगैः पुरूधा यजन्त। य इमं यज्ञं मनसा चिकेत प्रणो वोचस्त्मिहेह व्रजः।।'' यजुर्वेद में पशुवध (उस समय गोपालक संस्कृति थी।) के बारे में निषेध करते हुए लिखा हैः ''अघन्या यजमानस्य पशून घाहि।'' शतपथ ब्राह्मण में गोमाता की महिमा करते

उल्लेख है : ''महौ स्त्वेव गोर्महिमा।'' आर्ष ग्रन्थ कहते हैं : धेनु सदनं रणीयाम।

भारतीय इतिहास – पुराणों में गाय माता की महिमा का बखान करते हुए कहा है : ''गोमये वसते् लक्ष्मीर्गोमूत्रे सर्वमंगला (पद्मपुराण), गायो विश्वस्य मातर (विष्णुधर्मोत्तर पुराण), घृत क्षीरप्रदा गावो घृतयोन्यो घृतोद्भवाः। घृतनद्यो घृतावर्तास्त्ा मे सन्तु सदा गृहे।। घृतं में सर्वगात्रेषु घृतं में मनसि स्थितम्।।'' (पःपुः), सा क्षाद् गंगा च गोमूत्रे गोमये यमुना स्थित। (भविष्य पुराण), गोमूत्रयावकं श्रुत्वा भ्रातरं वल्कलारम्भ (श्रीमदभागवत), उक्त दधामशेषाणां मध्ये गण्यं गुणधिकम् (भावप्रकाश), गवां मूत्रपुरीषस्य नोद्विजेत कथंवचन। न चासां मांसम श्मीयाद गवां पुष्टिं तथाप्नुयात (गवोपनिषद्), गातुम विदाम इतितद् आसां गोत्वम्। (मैत्रायणी संहिता), इमे व लोका गौः। यद्धि किंचन गच्छति इमांल्लोकान् गच्छति। (श.ब्रा. कण्डिका), गवां ग्रास प्रदानेन स्वर्ग लोके महीयतो (विष्णुस्मृति), गां च स्पृशति यो नित्यं सन्नातो नित्यशः अतो मृर्त्यः प्रपुष्टैत सर्व पापैः प्रमुच्यते।। (पःपुः) आदि। द्वापरयुग के इतिहास जयसंहिता – भारतसंहिता – महाभारत में कहा गया : ''गोधनं राष्ट्रवर्धनम्।'' गोपाल चम्पू के अनुसार श्रीकृष्ण के नन्दबाबा के यहाँ 9 लाख गाय रही। बौद्ध धर्म–जैन धर्म–पारसी धर्म–शिन्तों में भी पशुधन वध निषेध है।

यह त्रासदी है कि ब्रिटिश काल में तत्कालीन राजधानी कोलकाता में सन 1760 में बंगाल में गोपालक संस्कृति होते हुए ''पहला पशुवध गृह'' स्थापित हुआ (यूरोप में यूरोपीय बगैर कूबड़ की गाय के मांस खाने का चलन था और है।)। ब्रिटेन की संसद में लार्ड मैकाले ने सन 1838 में अपने भाषण में भारत को सम्पूर्ण विजित करने के लिए भारतीय संस्कृति के मूलाधारों को ही ध्वस्त् करने का प्रस्त्ाव दिया। ब्रिटिश सरकार का वरदस्त्प्राप्त जर्मन वेदीक विद्वान आदि ने यह भ्रम फैलाया कि वेदीक काल में गौमांस का चलन था और वेदीक आर्य उत्तरी ध्रुव से आनेवाले आक्रामक थे।

देश में ब्रितानी गुलामी के दौरान 14 सरकारी पशुवध गृह स्थापित हुए। स्वतंत्रता के बाद सन 1951 में प्रति 1000 व्यक्ति पर 426 पशु (अधिकांश दुधारू) थे। वर्तमान में प्रति एक हजार व्यक्ति 102 पशुधन अर्थात् कम होना गम्भीर संकट की चेतावनी दे रहा है। यद्यपि

भारत कृषि प्रधान राष्ट्र कहलाता है। दूसरे देशों में प्रति एक हजार व्यक्ति पशुधन अर्जेण्टीना 2089, आस्ट्रेलिया 1365, कोलम्बिया 919, ब्राजील 726 आदि है। यूरोप में डेनमार्क, न्यूजीलैण्ड, हालैण्ड की अर्थव्यवस्था गाय और दूध पर आधारित है (किन्तु यूरोपीय गाय और जम्बूद्वीप भरतखण्ड की गायों के दुग्ध – मूत्र के गुणों विशेषताओं में जमीन आसमान का अन्तर है। यूरोपीय गाय के गोमूत्र में स्वर्ण भस्म एवं औषधीय तत्त्व गुण नहीं है।)। यह बहुत दुखद है कि बीस वर्ष पूर्व लगभग 5000 पशुवध गृह थे। जिनमें उस समय 2,50,000 पशुधन का कत्ल वध प्रतिदिन किया जाता रहा।

यह स्मरण रहे कि ब्रिटिश भारत में सन 1857 में प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम का श्रीगणेश कारतूस में गाय की चरबी के संवेदनशील विषय पर मेरठ में श्री मंगल पाण्डे द्वारा हुआ। उन्नीसवीं शती में सन 1866 में स्वामी दयानन्द सरस्वती ने एकबार फिर गौवध रोकने के लिए सिंहगर्जना की। सन 1921 में दिल्ली में गोपाष्टी पर महात्मा गांधी लोकनायक लाला लाजपत राय ने गौहत्या के विषय पर ब्रिटिश सरकार से असहयोग की घोषणा की। वाराणसी में सन 1928 में महामना पण्डित मदनमोहन मालवीय ने सनातन धर्म सम्मेलन में गौसेवा गौरक्षा के लिए जीवन समर्पित करने की घोषणा की। स्वतन्त्रता के बाद सन 1947 से 1970 के बीच गौरक्षा के लिए प्रचण्ड आन्दोलन में सर्वश्री स्वामी करपात्री महाराज, श्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारी, लाला हरदेव सहाय, जगदगुरु शंकराचार्य कृष्णबोधाश्रम, महन्त दिग्विजय नाथ, श्री प्रकाशवीर शास्त्री, स्वामी रामचन्द्रवीर, जगदगुरु शंकराचार्य निरंजनदेव तीर्थ, आनन्दबोध सरस्वती, स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वती, हनुमानप्रसाद पोद्दार, माधवराव सदाशिवराव गोलवलकर, विनायक दामोदर सावरकर, भक्त रामचरणदास, जैनमुनि सुशील कुमार आदि अग्रणी थे। गोभक्तों ने 7 नवम्बर 1966 को गोरक्षा, गोवध गृह बन्द करने, गौमांस निर्यात रोकने आदि को लेकर संसद भवन नई दिल्ली को घेरा। समाजकण्टकों ने तत्कालीन केन्द्रीय सरकार के कथित नेतृत्व के वरदहस्त् से घेराव में उपद्रव किया (जिसका खण्ड़न तत्कालीन सरकार ने किया।)। फलस्वरूप पुलिस ने गोरक्षकों पर अश्रु गैस छोड़ी, लाठी प्रहार किया और अन्त में गोली चलाई। इस गोली वर्षा में अनेक गोरक्षक शहीद हुए।

वर्षों के बाद लोकसभा में 21 अगस्त् 2003 को गोहत्या पर प्रतिबन्ध का विधेयक आया। इस गोवध रोकने के विधेयक का विरोध वामपंथी दलों और समाजवादियों के एक तबके ने किया। विधेयक के विरोधियों ने विधेयक की प्रतियां फाड़कर फेंकी। यह भी रहस्य है कि उस समय तत्कालीन कांग्रेस अध्यक्ष सोनिया गांधी मौन क्यों रही ? यह बात अलग है कि कांग्रेस नेता कथित गोभक्त होने का ढ़िढोरा पीटते रहे। एक समय भारतीय गायों के दूध को कृत्रिम गर्भाधान की मुहिम चली। तत्कालीन सत्ताधारी सम्भवः भूल गए कि यूरोपीय गाय भारत की गायों के पासंग भी खरी नहीं उतरती है। दोनों में मूलभूत अन्तर है। उसे बिना समझे यह मुहिम आत्मघात सिद्ध हुई। तत्कालीन सत्ताधारी भूल गए कि ब्राजील में भारतीय गाय ही यूरोपीय कथित गाय के समान मात्रा में दूध देती है। पर सच कहा है : ''घर का जोगी जोगना, आण गांव का सिद्ध।'' यह सराहनीय है कि देश में लगभग 64.20 हजार सहकारी दुग्ध विकास केन्द्र स्थापित हुए। इन केन्द्रों का सीधा लाभ 0. 79 करोड़ से 1 करोड़ खेतीहरों को मिला। हमें यह भी जानना आवश्यक है कि सामिष अधिकतावाले अमेरिका में गाय अनुसंधान के लिए 5.30 करोड़ डालर का खजाना खर्च हो रहा है और भारत में गोरक्षा के लिए कशमकश जारी है।

गोरक्षा के लिए कारगर कवायद

गोपालक वेदीक संस्कृतिवाले जम्बूद्वीप में गौदूध की नदियां हाने की मूलभूत शर्त गोवध पर तत्काल रोक, कामधेनु (अधिक दूध देनेवाली नस्ल की) गायों की उपलब्धता, गाय–गोबर के उत्पादों को प्रचलन में लाना है।

1. इसके लिए देश में गोधन को 132 करोड़ जनसंख्या के अनुरूप 132 करोड़ अथवा उसका दो गुना करने की नितान्त आवश्यकता है। यानी वर्तमान गोधन 19 से 19.5 करोड़ को न्यूनतम 700 प्रतिशत वृद्धि का पाँचवर्षीय लक्ष्य रखकर उसके लिए दिन रात भागीरथी प्रयास करने जरूरी हैं। यह भारतीय मान्यता है कि उपनिषद स्वरूपिणी गाय माता के रूप में ही भगवद्गीता है : ''सर्वोपनिषदों गावो दुग्धा गोपालनन्दन।।

पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत।।" आर्ष (ऋषिकृत) ग्रन्थों में गोमाता के विभिन्न नामों में : सरस्वती, यशपदी, विश्वायु, कपिला, आतिथेयी, पर्जन्यपत्नी, वशा, चन्द्रा, विश्रुता, धेनु, अघ्न्या, ज्योतिः, अर्च्या, इन्द्राणी, रोहिणी, इज्याइड़ा, कल्याणी, अदिति, भद्रा, बहुला, महेन्द्री, दोग्घ्री, शतौदना, घटोघ्नी आदि मिलते हैं। ग्रन्थों में विभिन्न भौतिक इच्छाओं के अनुसार ऋणधेनु, पापापनोदनधेनु, वैतरणी धेनु और उत्कांतिधेनु के दान का विधान है।

2. गाय माता का वर्गीकरण दूध देनेवाली (बछड़े कृषि उपयोगी नहीं) – एकांगी, दूध कम देकर बलिष्ठ बछड़ेवाली – वत्सप्रधान एकांगी और दूध भरपूर देने के साथ शक्तिवान बछड़े देनेवाली सर्वांगी मिलता है। सर्वांगी गाय नस्ल – थारपरकर, गीर, लोहानी, कृष्णवल्ली, नागौरी आदि प्रमुख हैं। दुग्धवाली गाय एकांगी में लाल सिन्धी, मांटगुमरी एवं वत्स एकांगी में हल्लीकर, बारगुर, पवार, खैरीगढ़, आलमबादी, डांगी, मेवाती, खिल्लारी, बछौर, दज्जल, मालवी, नीमारी, धन्नी, अंगोल, अमृतहाल उल्लेखनीय है। दक्खन की प्रमुख गोमाता नस्लों में मैसूरी गाय, कर्नाटक की अमृतहाल, हल्लीकर, कोयम्बटूर की कंगायम, खिल्लारी, आन्ध्र एवं महाराष्ट्र की कृष्णवेली, बरगूर पर्वत की बरगूर, कन्नड़ आलमबादी (सभी के लम्बे सींग होते हैं।) का नाम सुर्खियों में है। उधर लम्बे कानवाली काठियावाड़ की गीर गोमाता में गीर, देवनी (महाराष्ट्र), डांगी (डांग क्षेत्र, नासिक आदि) मेवाती और नीमाड़ी चर्चित हैं।

उत्तरी भारत की घूमवाले सींग और चौड़े ललाटवाली रास गोमाता में सर्वोतम थारपरकर (थार के रेगिस्तान से कच्छ तक की), बढ़ियार–कांकरेज–काठियावाड़ी, नागौरी, वचौर (सीतामढ़ी सम्भाग), उत्तरप्रदेश की पंवार (पीलीभीत) आदि प्रमुख हैं। उत्तर मध्य भारत की मुख्य गाय नस्ल भागनारी (यह पाकिस्तान में भी मिलती है।), दज्जल (देरागाजीखां), गावलाव (सत्पुड़ा तराई की मध्यप्रदेश महाराष्ट्र), हरियाणी (हरियाणा, पश्चिमी उत्तरप्रदेश, पूर्वी उत्तरी राजस्थान), हांसी हिसार और राठ ने अपना नाम कमाया है।

इनके अलावा मिलीजुली गोमाता नस्लों में केनवारिया (बुन्देलखण्ड रूहेलखण्ड), खेरीगढ़, साहीवाल (यह अफगान गायों का

उन्नत स्वरूप है। इनमें लाल सिंघी गाय भी शामिल हैं।), धन्नी (पंजाब) आदि का विवरण मिलता है। यह गाय छोटे कद की होती है। यह अफगानिस्त्ान, बलूचिस्त्ान से उत्तरांचल, असम और कन्याकुमारी तक मिलती है। पर्वतीय दार्जिलिंग और भूटान, सिक्किम में सीरी नस्ल की गोमाता कामधेनु है। देश में अत्यधिक गर्मी और हिमपात दोनों ही अति जलवायु में प्रसन्न रहनेवाली लोहानी नस्ल की गोमाता है।

(क) इस परिदृश्य में देश में दुग्ध गंगोत्री के लिए थारपरकर, गोर—गीर, साहीवाल, लालसिन्धी, धन्नी, राठ, लोहानी, सीरीकंगायमं, देवनी, कांकरेज, हरियाणी, हांसी हिसार आदि गौवंश के सहयोग से कम दूध देनेवाले गौवंशों को उन्नत करना समय की मांग है। इन गौवशों के बछड़ों के पालन सम्बन्धित प्रदेशों में बड़े पैमाने पर किया जाऐ। देशभर में नाममात्र के अनुदानित मूल्य पर गांवों में खेतीहरों को बछड़े देकर सांड़ बनाने के लिए प्रोत्साहित किया जाऐ। उन्नत नस्ल गोपालन के लिए अनुदान मिले।

(ख) सभी पँाचायत समितियों में अधिकतम दूध देनेवाली नस्ल के भारतीय सांड सरकार उपलब्ध करे। इसके अलावा पँाचायत समिति में इन उन्नत नस्ल के सांड़ों का वीर्य—रेत हिमवत अवस्था में उपलब्ध हो और स्थानीय गोमाता के नस्ल सुधार के लिए कृत्रिम गर्भादान की व्यवस्था हो। दक्षिणी अमेरिका के देश में बहुत दूधदेने वाली भारतीय गायों की उत्तम नस्ल को ले जाया गया। वहाँ ये भारतीय गाय यूरोप की गायों को दूध देने में सीधी टक्कर दे रही हैं।

(ग) गावों में चारे की कमी, गोमारी, संक्रामक रोग, अच्छे नस्ल के सांडों की कमी, गोमाता के बाड़ों में अस्वच्छता गन्दगी, वृद्ध गायों की समस्या, मृत गायों का निस्त्ारण, गोचरभूमि पर अतिक्रमण आदि समस्याओं का हल आवश्यक है। देश में लगभग छह लाख गांवों में पशुधन चरने की गोचर भूमि पर अतिक्रमण हटाने के लिए सख्त कदम उठाने होंगे। कस्बों और शहरों में दूध निकालकर गाय को छोड़नेवालों पर सख्त जुर्माने की व्यवस्था भी आवश्यक है। इसके परिणामस्वरूप राष्ट्रीय राजमार्ग, राज्य राजमार्ग और कस्बाई शहरी सम्पर्क मार्ग एवं शहरों में लावारिस पशुधन से दिक्कत समाप्त होगी। महान्गरों शहरों में

रिहायशी क्षेत्र में गाय रखने का कानूनन प्रावधान हो। गाय पालन को प्रदूषण स्वच्छता के नाम पर नहीं रोका जाए।

(घ) यह अवधारणा मूलतः गलत है कि गाय चरने से वन विनाश हो रहा है। इसके उलट अध्ययन से रहस्योद्घाटन हुआ कि गोमाता वन एवं वन्यजीव विकास में सहायक है। गाय गोबर बहुत ही शीघ्र खाद में परिवर्तित होता है (जबकि महिषी भैंस के गोबर में नहीं, गाय के गोबर में तत्काल केंचुए उत्पन्न होते हैं।)। गोमूत्र कीटनाशक होता है। गोमाता के खुरों से वन की मिट्टी पुनः उर्वरा शक्ति प्राप्त करती है (वेदीक काल से कलियुग तक वन में धेनु गाय चराने का ब्योरा मिलता है।)।

3. देश में खेतीहर लगभग 48 करोड़ एकड़ भूमि के लिए 240 करोड़ टन जैविक खाद की आवश्यकता है। वहीं वर्तमान गोवंश से अधिकतम मात्र 40 करोड़ टन गोबर की पूर्ति सम्भव है। परन्तु प्रश्न यह है कि क्या समूचे गोबर को खाद और गैस के लिए काम में लिया जा रहा है? देश की सभी पाँचायतें प्रत्येक गांव में बिना समय खोये गोबर गैस संयंत्र स्थापना करें। जिससे प्रत्येक गांव बिजली, ईंधन और जैविक खाद की आपूर्ति में स्वावलम्बी बन सकता है। गांवों में 4.67 करोड़ हल और 1.30 लाख बैलगाडियाँ होने के आंकड़े हैं। गांवों में सूक्ष्मलघु किसान को बैलचलित हल के लिए प्रोत्साहन का अभियान चले (वर्तमान में 70 प्रतिशत खेती बैलों होने के समाचार हैं।)। बैलगाड़ी महान्गर – नगर – कस्बे – गांव में रेल – ट्रक से अधिक दुलाई करती हैं। देश में 40 हजार एमडब्लू अश्वशक्ति पशुधन की है।

4. गोबर – गोमूत्र – गोरस – पाँचगव्य की महिमा का ज्ञान प्राथमिक शिक्षा से उच्च्य शिक्षा तक दिया जाना चाहिए। यह भी स्पष्ट किया जाऐ कि गोमूत्र स्वर्णभष्म युक्त और असाध्य रोगनाशक साथ ही कीटनाशक है। जापान में बाजार में गोमूत्र बिकता है (किन्तु केवल कूबड़वाली गाय का)। गाय का गौरस पाचक और स्वास्थ्यवर्धक है।

विश्वास है कि आप यन्त्रीकरण की अंधी दौड़ में राष्ट्र के विकास के लिए गोरक्षा के लिए धर्मयुद्ध छेडेंगे। ऊँ

आचार्यवान पुरूषो वेदः ज्योतिर्मठ ज्योतिष्पीठ पर 165 वर्ष शंकराचार्य पद खाली रहा, तब ज्ञानगंज दीक्षित स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती आये

एकसमय देवभूमी उत्तराखण्ड के श्रीबदरीविशालधाम स्थित जगदगुरु शंकराचार्य के ज्योतिर्मठ (ज्योतिष्पीठ) पर 165 वर्ष तक कोई पीठाधीश शंकराचार्य नहीं था। इसके बाद बीसवीं शती में हिमालय की गुप्त साधनास्थली कैलास के समीप ज्ञानगंज में दीक्षित स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती सन् 1941 में जगदगुरुशंकराचार्य ज्योतिर्मठ बने।

यह रहस्योद्घाटन अध्येता श्री प्रेमानन्द पॉल मासन ने शंकराचार्य ज्योतिर्मठ स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती अष्टोत्तर उपदेश पुस्त्क में किया है। यह अचरज है कि सन् 1776 से 1941 तक आदिशंकराचार्य द्वारा ईसापूर्व स्थापित ज्योतिर्मठ शीर्षविहीन कैसे रहा ? स्मरण रहे कि आदिशंकराचार्य ने चारों मठों में ऋग्वेद का कार्य पुरीके मठ को, सामवेद, यजुर्वेद एवं अथर्ववेद का कार्य श्रृंगेरी के दक्षिणाम्नाय शारदपीठ श्रीबदरीनाथधाम के ज्योतिर्मठ, श्रीद्वारका के मठ को सौंपा। पुराणों के अनुसार द्वापर में नर एवं नारायण ऋषि ने श्रीबदरिवन (उस समय श्रीकेदारनाथ एवं श्रीबदरीविशाल का पर्वत एक था।) में मिट्टीका शिवलिंग बनाकर घनघोर तपस्या की। स्कन्दपुराण के अनुसार हिमालय के पवित्र कलापक्षेत्र में वर्तमान वैवस्वत मनु का निवास है। हिमालय के अदृश्य गुप्त ज्ञानगंज आदि आश्रमों में हजारों वर्ष के दिव्य चमत्कारिक परमहंसों द्वारा वायु विज्ञान, अक्षर विज्ञान, सूर्यविज्ञान, मन्त्र विज्ञान आदि की शिक्षा दीक्षा दी जाती है। ज्ञानगंज आज भी रहस्यों के गर्भ में है।

ज्ञानगंज से चमत्कारिक सूर्य विज्ञान की शक्तियों का सार्वजनिक प्रदर्शन स्वामी विशुद्धानन्द परमहंस ने किया। स्वामी विशुद्धानन्द बाल्यकाल में ही ज्ञानगंज गए। उसी परम्परा में अयोध्या से लगे गाना कस्बे के 9 वर्षीय श्री राजाराम मिश्रा ने घर छोड़कर हिमालय की रहस्यमय चमत्कारिक घाटियों की ओर प्रस्थान किया। सन् 1871 में जन्में श्री राजाराम मिश्रा सन् 1904 तक 33 वर्ष की आयु तक हिमालय

की गुफाओं में या तो साधनारत रहे या अदृश्य आश्रमों में प्रवेश पाने में सफल रहे। इसप्रकार सन् 1880 से 1904 तक श्री राजा राम तपस्या में लीन रहे। समझा जाता है कि उन्होंने ज्ञानगंज में शिक्षा के दौरान दैवीय शक्तियां प्राप्त की। अन्त में 33 वर्ष की आयु में उत्तरकाशी के दण्डी स्वामी कृष्णानन्द सरस्वती ने इलाहबाद प्रयागराज संगम के त्रिवेणीघाट पर बाल ब्रह्मचारी राजाराम मिश्रा को सन्यास में दीक्षित किया। नवसन्यासी का नामकरण स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती रखा गया। लेकिन सन् 1904 से 1930 के 26 वर्षों में स्वामी ब्रह्मानन्द एक बार फिर हिमालय आदि के गहन वनों और पर्वतों की गुफाओं में ब्रह्मकी साधना में लीन रहे। सन् 1930 में अपने गुरु के आदेश पर स्वामी ब्रह्मानन्द भगवान् महादेव की नगरी वाराणसी में आश्रम बनाकर भारत में मानव कल्याण में लगे। उनके प्रवचनों में श्रुति और स्मृति दोनों के आर्ष ग्रन्थों का गूढ़ ज्ञान सीधी सरल भाषा में होता था।

उधर आदिशंकराचार्य द्वारा स्थापित श्रीबदरीनाथधामके शंकराचार्य का पद योग्य विद्वान के नहीं मिलने से सदीयों से रिक्त था। देश के प्रमुख विद्वानों ने ब्रह्मचारी स्वामी ब्रह्मानन्द को ज्योतिर्पीठ के जगदगुरु शंकराचार्य के लिए सबसे योग्य मानकर चुना। यों पहली अप्रेल, 1941 को स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती ने अथर्ववेद को समर्पित ज्योतिर्मठ का संचालन अपने वाराणसी के आश्रम से शुरू किया। समझा जाता है कि उनके प्रमुख शिष्यों में स्वामी करपात्री महाराज (स्वामी हरिहरानन्द), महर्षि महेश योगी, द्वारकापीठ के जगदगुरु शंकराचार्य स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वती एवं अनाम पांडेजी आदी रहे। समझा जाता है कि इस्कान के प्रमुख भी शंकराचार्य एवं श्रीविद्या मनीषी स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती से सम्पर्क में शिष्यवत रहे। जगदगुरु शंकराचार्य ब्रह्मानन्द के वेदान्तज्ञानसे देश के प्रथम राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद एवं प्रथम उपराष्ट्रपति डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन चित्रलिखित रह गए। उन्होंने स्वामी ब्रह्मानन्द को ''वेद का अवतरण'' कहाँ

जगदगुरुशंकराचार्य ब्रह्मानन्द ने देशाटन कर जन जन में अध्यात्मिक पुनर्जागरण की मशाल जलाने का भागीरथी प्रयास शुरू किया। उन्होंने कहा : ''ज्ञानग्नि दग्धकर्माणं तमाहः पंडितं बुधाः।'' इसका अर्थ : जो अपने संचित कर्मों को ज्ञानाग्नि में जलाकर भस्म कर देता है।

उसी को ज्ञानीजन पण्डित कहते हैं। ज्ञान से ही सभी संचित कर्म नष्ट होते हैं। उल्लेखनीय है कि योग वासिष्ठ में संचित कर्म (प्रारब्ध सहित) से मुक्ति के लिए ज्ञान युक्त शुभ कर्मो से नया भाग्य लिखने का उल्लेख है। स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती ने कहा : ''तरति शोकमात्मवित्'' (स्वयं को जाननेवाला ही दुखों के सागर के पार जाता है।)। श्रुति उसे आत्मवित मानती है। इसीकारण श्रुति में स्पष्ट रूप से शंखनाद किया गयाः ''आचार्यवान् पुरूषो वेद'' (जिनके पास आचार्य उपलब्ध है, उसे ही ज्ञान वेद प्राप्त होता है।)।

भगवान् को आप जैसे भजोगे, वैसे ही प्राप्त करोगे। भगवदगीता में सिंह गर्जना की गईः ''ये यथा मां प्रपद्यन्ते तां स्त्थैव भजाम्हम्।'' योगीराज श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहाः ''न तु मां शक्यसे द्रुष्टुमनेनैव स्वचक्षुषा। दिव्यं ददामि ते चक्षः पश्य में योगमैश्वरम्।।'' (दिव्य दृष्टि प्राप्त करने का प्रयास ही पुरूषार्थ है। इससे ही मनुष्य जन्म सफल होता है।)। आदिशंकराचार्य ने चर्पट मंजरी (भजगोविन्दम्) में सत्संग से जीवन मुक्ति का संदेश दिया। इसी परम्परा में स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती ने प्रवचनों में उपनिषदों का सार बताते हुए कहाः ''धर्मेण पापमनुदति'' (धर्म से सभी प्रकार के पापों का नाश होता है।)। सत्संग से ज्ञान, विवके, सम्यक ज्ञान, अभेद्य बुद्धि उत्पन्न होकर पापों का समापन करती है। आत्माका ज्ञान होने से सभी दुःख हमेशा के लिए समाप्त हो जाते हैं।

अध्यात्मिक ज्ञान के लिए परमेश्वर साकार अथवा निराकार है, उसके लिए ज्ञान, साधना तप, भक्ति कौन सा मार्ग उचित है, इसके विवाद में नहीं पड़ें। वेद के अनुसार ''सोऽक्षरः परम स्वराट्'' (अक्षर अविनाशी है।) दूसरे शब्दों में परमात्मा परम स्वतन्त्र है। परमात्म निराकार से साकार रूप धर्म घटने और अधर्म बढ़ने पर लेता है : ''यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत। अभ्युत्थानमधर्मस्य तक्षत्मानं सृजाम्यऽहम्।'' स्वयं परमात्मा ने कहाः ''परित्राणाय साधूनां, विनाशाय च दुष्कृताम। धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे।'' वेद के अनुसारः ''मन एवं मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयो।'' मोक्षका सम्बन्ध मन से हैं। अच्छे संस्कारों की दृढ़ता से जीव की बन्धन मुक्ति निर्भर है। परमात्मा ने स्वयं कहाः ''ज्ञानं गणेशो मम चक्षुरर्कअः। शिवो ममात्मा मम शक्तिराद्य। विभेद बुद्धया मयि ये भजन्ति। ममांगहीनं कलयन्ति मन्दाः।'' वे मानते थे कि

आन्तरिक रूप से प्रसन्न ही दूसरों को दुखों से छुटकारा दिला सकता है। स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती ने 20 मई, 1953 को अनन्त लोक के लिए प्रस्थान किया। उनके समान श्रीविद्या कृपावान वेदभाष्यकार श्री टी.वी. कपाली शास्त्री ने भी सन 1954 में महाप्रयाण किया। सच ही कहा है : ''हरिर्हरति पापानि दुष्टचित्तैरपि स्मृतः''।।ऊँ।।

श्रीआदिशंकराचार्य की 2517 वर्षीय गाथा
श्रीशंकराचार्य का जीवन दर्शन काल : वितण्डा और सत्य सविता

अद्वैत दर्शन के पुनर्व्याख्याकार श्री शंकर आचार्य यानी श्रीआदिशंकराचार्य के काल को लेकर भारत में ब्रितानी उपनिवेशकाल से वितण्डा मचा है। पश्चिमी वेदीक विद्वान श्रीशंकर आचार्य को ईसा पूर्व 509 वर्ष के स्थान पर सातवीं–आठवीं–नवीं शती का सिद्ध करने का कथित प्रमाणों का इन्द्रजाल रचे हैं। ब्रितानी–जर्मन विद्वानों में से कुछ नामचीन श्रीशंकर आचार्य को सन 788 काल का प्रचारित करते रहे। पश्चिमी नामचीन धार्मिक अध्येता सर्वश्री मैक्स मूलर, कर्नल मैकेन्जी, डॉ. बुचनान, कोलब्रुक, सिनेट, बर्थ, डनकान, वेबर आदि ने श्रीशंकराचार्य परम्परा को ईसा के बाद मात्र ग्यारह सौ वर्ष पुरानी मानने के आधे अधूरे साक्ष्य प्रस्तुत किए हैं। मोनियर विल्सन के विचार कुछ इतर लगते हैं। आखिर पश्चिमी विद्वान सत्य क्यों नहीं स्वीकार रहे हैं?

भारतीय आर्ष ग्रन्थ श्रीशंकर आचार्य का काल 2600 वर्ष प्राचीन यानी ईसा पूर्व पाँचवी शती को मानते हैं। श्रीशंकर आचार्य के काल के बारे में ब्रह्मविद्याविद टी. सुब्बाराव ने 132 वर्ष पहले शोधपूर्ण तथ्यपरक प्रमाण दिए। यहाँ पश्चिमी वेदीक विद्वानों के श्रीशंकर आचार्य के ईसा पूर्व जन्म के बारे में ''पूर्वाग्रहों को जानना'' आवश्यक है। पश्चिमी प्राच्य विद्याविद प्राचीन आध्यात्म – धर्म – दर्शन में किसी को भी जीसस क्राइस्ट अथवा ओल्ड टेस्टामेन्टस से पहले रखने को तैय्यार नहीं हैं। पश्चिमी वेदीक विद्वान सभ्यता संस्कृति की महायात्रा को 5000 वर्ष के वर्तुल में सिमट कर रखना चाहते हैं। तीसरे, लार्ड मैकाले ने सन् 1838

में ब्रितानी संसद में भारतीयों के मूलाधार – सांस्कृतिक – धार्मिक स्वाभिमान को नष्ट करके ही पराधीन (गुलाम) रखपाने की महायोजना (महाषड़यंत्र) प्रस्तुत की।

चौथे, पश्चिमी वेदीक विद्वान यह मानने की स्थिति में नहीं कि वेद पाँच हजार वर्षों से अधिक प्राचीन हैं। उन्होने वेद को "प्रलाप" तक कहाँ चारों वेद; ब्राह्मण ग्रन्थ; आरण्यक; संहिता – स्मृति – सूत्र – नीति; मंत्र; तंत्र; उपनिषद; पुराण; इतिहास – रामायण, जय संहिता, भारत संहिता, महाभारत; योग वासिष्ठ, गीता आदि स्वयं अपने प्राचीनतम होने के आंतरिक प्रमाण हैं। वेद में पराभौतिकी प्रवृत्ति से निवृत्ति का विचार बुद्ध, ईसा आदि से बहुत ही पुराना है। विश्व में उपनिषद का दार्शनिक पक्ष सर्वोच्च है। क्षमा करें! गौतम बुद्ध और महावीर से पहले बौद्ध एवं जैन दर्शन प्राचीन भारत में विद्यमान था। श्रीमहावीर स्वामी जैनधर्म के 24वें तीर्थंकर और गौतम बुद्ध 14वें बुद्ध थे। स्वाभाविक रूप से जैन बौद्ध दर्शन पहले से प्रचलन में रहा।

पश्चिमी धर्मविदों के लिए भारतीय आर्ष ग्रन्थों – निगम आगम अथवा श्रुति स्मृति की की "कूट – सांकेतिक – प्रतिकात्मक – चित्रमय" भाषा के रहस्य की कुंजी खोजना लगभग असम्भव रहा। ऋग्वेद के भाष्यकार श्रीपाद दामोदर सतवलेकर, डॉ. रामविलास शर्मा, श्री टी.वी. कपाली शास्त्री, श्री स्वामी दयानन्द, श्री भगवद्दत्त, श्री कपिलदेव द्विवेदी, श्री अरविन्द, वेदीक विद्वान टी. सुब्बाराव, वेदीक विद्वान पण्डित मधुसूदन ओझा, जगदगुरु शंकराचार्य ब्रह्मानन्द सरस्वती आदि का अध्ययन आवश्यक है। पण्डित भगवद्दत्त ने वेद से सविता देवता (आदिसूर्य) के सूक्त का भाष्य लिखा। वेद में कहा गया कि सूर्य का जबड़ा लोहे के समान भारी होने से कम खुलने से वह (सूर्य) प्रणब (ओउम्) का पाठ मुँह भींचकर करता है। जिसे कल्पना गल्प माना गया। वर्तमान में अमेरिकी संस्था "नासा" ने सूर्य की ध्वनि का विडियो जारी किया। इस विडियो में सूर्य का प्रणब पाठ वेद अनुसार है। अध्येता गुरुदत्त ने वेद का रचनाकाल 29 लाख वर्ष पूर्व होने के वैज्ञानिक साक्ष्य दिए हैं।

श्री कपालेश्वर शास्त्री ने ऋग्वेद के भाष्य की भूमिका में लिखा कि ऋग्वेद में एक शब्द एक स्थान पर "भोजन और दूसरे स्थान पर प्रसिद्धि" के लिए इस्त्ेमाल किया गया है। अग्नि शब्द के ही 60 अर्थ

हैं। वेदीक शब्दों का भाष्य निरूक्त एवं निघण्टु में है। यह स्मरणीय है कि निरूक्त के रचनाकार ने स्पष्ट लिखा है कि वेद के अनेक शब्दों का अर्थ नहीं समझ पाये। सुविख्यात आलोचक डॉ. रामविलास शर्मा ने ऋग्वेद और एशिया में नये रहस्यों का उद्घाटन किया। वेदविद डॉ. सम्पूर्णानन्द ने सन 1941 में ऋग्वेद की ऋचाओं के आधार पर आर्यों का आदिदेश ब्रह्मवर्त पुस्त्क लिखी। यद्यपि ब्रह्मविद बिशप चार्ल्स डब्लू. लीडबीटर ने सन 1926 में दा हिडन लाईफ ऑफ फ्रीमेशनरी में 15500 वर्ष पहले भारत में आर्य होने और मिश्र के सम्राट की युवराज्ञी से वहाँ जाकर विवाह करने और रहने का इतिहास लिखा है। प्रकारान्तर में भारतीय आर्य मिश्र का फरोह सम्राट बना।

श्री लीडबीटर के अनुसार ऊपरी भारत, निचले भारत एवं पश्चिमी भारत में पारस (फारस) से तिब्बत, मंगोलिया, महान् तातार आदि सम्मिलित थे। "मिश्र, बेबीलोन आदि की प्राचीन सभ्यताओं की पाठशाला भारत रहा। रोमन साम्राज्य के एलक्जेण्डर – सिकन्दर के समय तक्षशिला विश्वविद्यालय विश्वभर में प्रसिद्ध रहा।" यह भी ऐतिहासिक तथ्य है कि यूनान के सम्राट सिकन्दर के भारत से हमले से पहले यूनानी भारतीय आर्यों को जानते रहे। भारतीय सिद्धों के अनुसार पाइथोगोरस भारत आया और यवनाचार्य के नाम से ज्योतिष का अध्ययन किया। "वास्त्व में प्राचीन भारत में यवन सम्बोधन–मिश्र, पारस, अरब, इथोपिया, यूनान आदि निवासियों के लिए किया गया।" हरिवंश में "काल यवनों द्वारा श्रीकृष्ण के काल में आक्रमण का उल्लेख है।" इसी पृष्ठभूमि में तक्षशिला के आचार्य विष्णु गुप्त कौटल्य चाणक्य काल में यूनानी सिकन्दर को यवन कहा गया।

पश्चिम के वेदीक विद्वानों से विनम्रतापूर्वक प्रश्न है कि क्या सन 788 में तत्कालीन भारत में बौद्धधर्म का स्वर्णकाल रहा? बौद्ध धर्म के नवम शती के स्वर्णयुग में श्रीशंकर आचार्य ने अद्वैत की अलख जगाई? प्राचीन भारत के इतिहासकारों के अनुसार बौद्ध धर्म के अनुयायी सम्राट अशोक महान् की मृत्यु के लगभग 40 वर्ष बाद भारद्वाज गोत्र ब्राह्मण सेनानी पुष्यमित्र देश के सम्राट बने। सम्राट पुष्यमित्र काल में अधिकांश बौद्धाचार्यों ने देश से पलायन किया। आचार्य नागार्जुन तक यवन राजा मिलन्दर को बौद्ध धर्म का रहस्य समझाने कंधार (गंधार) रहे (मिलिन्द

पनाह पुस्त्क)। यह स्पष्ट है कि ''ईसा से 200 वर्ष पूर्व ही भारत में बौद्ध धर्म का सूर्यास्त् हुआ। इस सूर्यास्त् में सेनानी सम्राट पुष्यमित्र की केन्द्रीय भूमिका रही।''

काशी, कांचीपुरम (श्रीशंकर आचार्य द्वारा स्थापित), काश्मीर, जगन्नाथपुरी, श्रृंगेरी, कालड़ी आदि के ऐतिहासक साक्ष्य इसकी पुष्टि करते हैं। इसके अलावा श्रीनीलकण्ठ क्षेत्र (वर्तमान नेपाल) के काष्ठमण्डप (काठमाण्डू) में श्रीपशुपतिनाथ मन्दिर में पुनः पूजा अर्चना का इतिहास श्रीशंकर आचार्य को ईसा पूर्व के कालखण्ड में ले जाता है।

श्रीशंकर आचार्य द्वारा स्थापित श्रृंगेरी मठ, कांचीकाम कोटि मठ में 2500 वर्षों से मठाधिपतियों (शंकराचार्यों) की सूची और कार्यकाल का चित्रलिखित इतिहास उपलब्ध है। कांची कामकोटि ने श्रीशंकर आचार्य से वर्तमान जगदगुरु शंकराचार्य के चित्र प्रकाशित किए हैं। अथर्ववेद को समर्पित ज्योतिर्पीठ में प्रथम पीठाधीपति जगदगुरु शंकराचार्य तोतकाचार्थ से वर्तमान जगदगुरु शंकराचार्य स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वती का विवरण मिलता है। आचार्य मण्डन मिश्र से श्रृंगेरीपीठ के प्रथम महापीठाधीश्वर जगदगुरु शंकराचार्य सुरेश्वराचार्य से वर्तमान जगदगुरु शंकराचार्य भारतीतीर्थ महाराज का ब्योरा चकित करता है। श्रीशंकर आचार्य ने देश में सबसे पहले श्रृंगेरी में मठ स्थापित किया। श्रीशंकर आचार्य ने जगन्नाथ पुरी का गोवर्धन मठ ''ऋग्वेद'' अध्ययन को समर्पित किया।

इन सभी तथ्य एवं प्राचीन ऐतिहासिक घटनाक्रमों की उपेक्षा कर लंदन की 'थियोसोफिस्ट' ने श्रीशंकर आचार्य के जन्म के बारे में श्री बार्थ की राय प्रकाशित की। 'रिलीजन्स ऑफ इण्डिया' में पृष्ठ 89 पर लिखा गया कि सामान्यतः शंकराचार्य को 8वीं शती का माना जाता है। हम शंकराचार्य का काल नवम् शती मान सकते हैं। पश्चिमी परम्पराओं के अनुसार ''शंकराचार्य का जन्म माधव मास के दसवें दिन सन 788 को हुआ। कुछ अन्य परम्पराओं की मान्यता है कि शंकराचार्य दूसरी शती अथवा पाँचवीं शती के हैं। 'दाबिस्त्ान' के रचनाकार ने शंकराचार्य को 14वीं शती का स्वीकारा है। श्री बार्थ की शंकराचार्य के सन 788 में जन्म की परिकल्पना ने भ्रान्तियों दुष्प्रचार की काली आंधी का बवन्डर उठाया। पश्चिम के प्राच्यविद्याविद मोनियर विल्सन बार्थ के विचारों से असहमत थे। यह इतिहास की भयानक भूल रही कि श्री बार्थ ने अतिरंजित टिप्पणी

की : "सातवीं एवं आठवीं शताब्दी में दक्कन में बौद्ध धर्म के विरूद्ध श्रीशंकर आचार्य और कुमारिल भट्ट ने धर्मयुद्ध छेड़ा।" पृष्ठ 135 पर बार्थ ने लिखा कि श्रीशंकर एवं कुमारिल के सशस्त्र शिष्यों ने रूढ़ीवादी धर्म की रक्षा के लिए कार्रवाई की। इसके ही फलस्वरूप बौद्ध पलायन कर हिमालय से लेकर अमेरिका तक फैले।

श्रीशंकर आचार्य और कुमारिल का साथ ही ऐतिहासिक रूप से सरासर "सफेद झूंठ" है। कुमारिल की सूत्रों पर "पूर्व मीमांशा" सर्वोत्तम होते हुए भी शंकराचार्य की कटुतम आलोचना है। सम्भवतः बार्थ कुमारिल की पूर्व मीमांशा और श्रीशंकर आचार्य की अद्वैत की अवधारणा से अनभिज्ञ रहे। पश्चिमी विद्वानों का कथन कि श्रीशंकर आचार्य सातवीं आठवीं शती में बौद्धधर्म की आंधी के विरूद्ध स्वाभाविक प्रतिक्रिया रही, स्वयं में आधारहीन है। बार्थ पृष्ठ 153 पर स्वीकारते हैं कि सम्राट अशोक के समय बौद्ध धर्म द्वारा उत्पीडन आरम्भ हो चुका था। बौद्ध धर्म का स्वर्णकाल अशोक के समय रहा, लेकिन सम्राट अशोक का काल अधिक नहीं रहा।

ईसा पूर्व सनातन हिन्दुओं के शक्तिशाली शुंग एवं सातवाहन (दोनों ब्राह्मणों) राजवंशों ने साम्राज्य खड़े किए। शुंग वंश के साम्राज्य में बौद्ध प्रभुत्व के ऐतिहासिक घटनाक्रम का कोई स्थान नहीं था। इस पृष्ठभूमिं में सातवीं, आठवीं शती में एक हजार वर्ष के बाद कोई अद्वैत का विचारक खण्डहर हुए बौद्ध धर्म के विरूद्ध धर्मयुद्ध क्यों छेड़कर समय ऊर्जा बेकार करता? श्रीशंकर आचार्य के ब्रह्मसूत्र (वेदान्त) के भाष्य में बौद्ध धर्म का कहीं उल्लेख तक नहीं है। श्री वेबर महाशय की अतिरंजित टिप्पणी है कि ब्रह्मसूत्र के रचयिता व्यास 5वीं शती के थे। श्री मोनियर विल्सन ने संस्कृत शब्दकोश में लिखा कि बौद्धधर्म के अत्याचार का सशक्त विरोध श्रीशंकर आचार्य ने किया।

यह उपहासजनक है कि श्री बार्थ ने शंकराचार्य, आनन्द तीर्थ और रामानुज में कथित सम्बन्ध ढूंढ निकाला। श्री बार्थ की कल्पनाशीलता की सराहना करनी होगी, क्योंकि उन्होंने अद्वैत दर्शन का अरब के दर्शन से अन्तर्संबंध की दलील दी। उनकी महादेव शिव को लेकर टिप्पणी भी कल्पना की उडान ही कहेंगे। श्री विल्सन अमरकोश के रचयिता अमर सिंह के काल को लेकर शोध भी किसी ठोस परिणाम पर नहीं पहुँचे।

अंत में शंकराचार्य और अमर सिंह का समय एक ही स्वीकारा गया। श्री विल्सन लिखते हैं कि श्रीशंकर (कालडी) काडाली के रहनेवाले ब्राह्मण थे। उन्होने अद्वैत दर्शन को प्रस्तुत किया। यह समझा जाता है कि उनका काल 2000 वर्ष पहले रहा। यह ईस्वी के प्रारम्भ होने के आसपास रहा। कर्नल मेकेन्जी द्वारा कोंगा के राज के इतिहास अनुसार सन 172 में स्कन्दपुर, दक्कन के राजा त्रिविक्रम देव चक्रवर्त्ती के समकालीन शंकराचार्य रहे। डॉ. टेलर, कालब्रुक दोनों भी शंकराचार्य को 1000 वर्ष प्राचीन ही कहते रहे। डॉ. बुचनान ने शंकराचार्य के जीवनकाल निर्धारण के केरल में मालाबार का दौरा किया। श्रीशंकर आचार्य की जन्मस्थली केरल रही। डॉ. डुनकान ने केरल उत्पत्ति के संदर्भ से 1798 में शंकराचार्य को 1000 वर्ष प्राचीन स्वीकारा।

यह सबसे रोचक है कि भोज प्रबन्ध शंकर कवि की रचना होने के नाम पर श्री विल्सन ने अद्वैत के नवव्याख्याकार के जीवनकाल को नया मोड़ दिया। यूरोपीय प्राच्यविद्या शोधक भोजप्रबन्ध, कथासरित्सागर, राज तरंगिणी एवं पाँचतंत्र के रचनाकाल को श्रीशंकर आचार्य से जोड़कर समकालीन प्रचारित करते रहे। श्रीशंकर आचार्य के इतिहास और अद्वैत दर्शन को माधव परम्परा के समकालीन सिद्ध करना भी एक बड़ा झूंठ है। पश्चिमी प्राच्यविद यह जान लें कि पुराणों के अनुसार केरल श्रीहरिविष्णु के अवतार परशुराम का क्षेत्र है। परशुराम ने समुद्र में डूबे केरल आदि को निकाला। परशुराम की कृतियों का अपना विशाल आगम साहित्य है। परशुराम के शिष्य महाप्रतापी लंकेश्वर दशानन रहे।

ऐतिहासिक साक्ष्यों से पच्चीस सौ वर्ष प्राचीन हैं, शंकराचार्य मठ विद्यारण्य का शंकर विजयम, चित्सुखाचार्य के शंकर विजय विलासम्, बृहत शंकर विजयम् आदि आदिशंकराचार्य के जीवन एवं काल पर नया प्रकाश डालते हैं। आदिशंकराचार्य के जीवन एवं रचनाकाल के बारे में महत्वपूर्ण पुस्त्कें ": शंकराचार्य, हीज लाईफ एण्ड टाईम (सी.एन. कृष्णास्वामी अय्यर), शंकराचार्य : फिलोसफर एण्ड मिस्टिक (के.टी. तेलंग, 1911), शंकराचार्य एण्ड हीज कामकोटिपीठम्, कुम्भकोलन (एन.के. वेंकटेशन, 1915), स्वामी शंकराचार्य (रमाकान्त त्रिपाठी, सन 1900), शंकर अंक–गीता धर्म (वाराणसी, 1936), शंकर दिग्विजय (आनन्दगिरी), शंकर दिग्विजय (व्यासगिरि), प्राचीन शंकरविजय (मूलशंकर – कांची पीठ),

शंकरविलास (विद्यारण्य), शंकराचार्य अवतार कथा (आनन्दतीर्थ), शंकरचम्पू (जगन्नाथ), एस्टोरिक राईटिंग्स (टी. सुब्बाराव), शंकरःदा रिवोलूशनरी (एम. एन. कृष्णास्वामी), डेट ऑफ श्रीशंकर (वाणी विलास प्रेस, श्रीरंगम्), कांची आचार्याज : लाईफ स्टोरिज, दा बायोग्राफिकल स्केचेज ऑफ ऐमिनेन्ट आर्थस् (जनार्दन रामचन्द्रजी, मुम्बई, 1860), कुम्भकोनम् मठ महापीठाधीपति सूची, मार्कण्डेय पुराण, स्कन्द पुराण, कूर्मपुराण, सौर पुराण, शिवरहस्य, शंकरविजय विलास (चिदविलास यति), शंकर विजय (अनन्तान्दगिरि), शंकर दिग्विजय (माधवाचार्य), गुरुवंश काव्य (लक्ष्मणाचार्य), शंकराचार्योत्पत्ति, शंकराभ्युदय (राजचूणामणि दीक्षित), शंकर दिग्विजयसार (सदानन्द व्यास), शंकराचार्य चरित (गोविन्दनाथ यति), कांची कामकोटिपीठम्, आचार्य दिग्विजय (वल्ली सहाय कवि) चारों शंकराचार्य मठों के गुरु परम्परा स्त्ोत्र आदि हैं।"

श्रीआदिशंकराचार्य मठों की आम्नाय पीठों की स्थापना के बारे में चकित करनेवाली जानकारी देती है। प्राचीन गुजरात के इतिहास के अनुसार श्रीशंकर आचार्य का जन्म 263 संवत् में हुआ। केरलोत्पत्ति लिखती है कि श्रीशंकर आचार्य का समय 400 ईस्वी रहा। कांची कामकोटि परम्परा के अनुसार श्रीशंकर आचार्य का जन्म 509 ईस्वी पूर्व हुआ। कथित श्रृंगेरी साहित्य के अनुसार श्रीशंकर आचार्य का जन्म 14 विक्रमाब्द में हुआ। विक्रम संवत का प्रारम्भ महान् नाथ योगी भर्तृहरि के छोटे भाई सम्राट विक्रमादित्य ने ईसा पूर्व (57 वर्ष पहले किया।)। यह भारतीय इतिहास की भयानक भूल है कि पश्चिमी विद्वान भर्तृहरि को सातवीं शती का ही मानते हैं। प्राचीन भारतीय सभ्यता संस्कृति के विद्वान डॉ. डी.डी. कौशम्बी ने इसे तथ्य प्रमाणों से गलत ठहराया है।

लास्ट डेज ऑफ शंकराचार्य (प्रो. वेंकटेशन) में आदिशंकराचार्य के त्रिविष्टप – तिब्बत जाने का रोचक विवरण लिखा है। तिब्बत में शंकर कटाह नामक स्थान भी है। आदिशंकराचार्य शिवपुरी श्रीकैलास महापर्वत से दिव्य चमत्कारिक शक्ति सम्पन्न 5 स्फटिक आत्मशिवलिंग लाऐ। नवनाथों में प्रमुख त्रिदेवी के अवतार दत्रातेय महाराज से भी आदिशंकराचार्य कैलास मिले। कैलास में महादेव ने आदिशंकर को दुर्लभ शिव रहस्य प्रदान किया (पुस्त्क अनुपलब्ध)। यूरोपीय प्राच्यविद्याविद आदिशंकराचार्य ही नहीं संस्कृत की व्याकरण को रूपाकार देने वाले

पाणिनी, योगसूत्र के भाष्यकार पतंजलि ऋषि, वृत्तिका के रचनाकार कात्यायन, गुरु गोरक्षनाथ, गुरु गोविन्दपाद, गुरु गौडपाद आदि के रचनाकाल को लेकर "भ्रमित" रहे हैं। पश्चिमी प्राच्यविदों की मानें तो गुरु गोरक्षनाथ का जीवन समय योगी भर्तृहरि के सैंकड़ों वर्ष बाद है। यह उलटी गंगा बह रही है कि शिष्य सैंकड़ों वर्ष गुरु से पहले पैदा हो। यह दुखद है कि मौर्य साम्राज्य के संस्थापक सम्राट चन्द्रगुप्त के गुरु, मार्गदर्शक, निर्माता, दार्शनिक, कूटनीतिज्ञ, दार्शनिक आचार्य विष्णुगुप्त कौटल्य चाणक्य का जीवनकाल – रचनायें 2300 वर्षों से "रहस्यमय तिलिस्म" में है। यह सर्वमान्य है कि संस्कृत के व्याकरणकार आचार्य पाणिनी का काल गौतम बुद्ध से पहले का है (भर्तृहरि ने पाणिनी के बाद संस्कृत भाषा की सर्वोत्तम कृति वाक्यपदीय की रचना की।)। अतः आचार्य पाणिनी का काल 2600 वर्ष पूर्व का है।

उधर योग सूत्र के भाष्यकार पतंजलि ऋषि का काल मैक्समूलर ईसा पूर्व 500 से 600 वर्ष स्वीकारते है। पर "वेबर मानते हैं कि योगसूत्र और भाष्यकार दो अलग अलग हैं।" यह भी प्रश्नचिन्ह है कि क्या पश्चिमी प्राच्यविद योगसूत्र की हठ योग पर आधारित प्रथम अहनिका को समझ पाये ? प्राचीन रहस्य आध्यात्म विद्या के हठ योग पर ही नाथ साधु साधना करते हैं। भारतीय मनीषियों का कहना है कि योगसूत्र, महाभाष्य एवं औषधीय ग्रन्थों के रचनाकार पतंजलि एक ही थे। विद्यारण्य के शंकर विजयम् के 94 वें से 97 श्लोक (पाँचम अध्याय) गोविन्दपाद (गोविन्द योगी) के दर्शन और पतंजलि के योगसूत्र महाभाष्य में समानता प्रदर्शित करते हैं।

श्री टी.सुब्बाराव एस्टोरिक राईटिंग्स (प्रकाशन : दा थियोसोफिकल सोसायटी, सन 1910) में तथ्य एवं प्रमाणों से सिद्ध करते हैं कि पतंजलि ने श्रीशंकर आचार्य को शक्तिपात (दीक्षा) के लिए गोविन्दयोगी का रूपाकार लिया। गोविन्दयोगी (पतंजलि) को गौड़पाद ने दीक्षा दी। विद्यारण्य के अनुसार पतंजलि श्रीशंकर आचार्य के गुरु थे। पतंजलि के चेले के रूप में आध्यात्म का महान्तम अद्वैत दर्शन समाहित हुआ। पश्चिमी प्राच्यविद एस्टोरिक बौद्धिज्म में गौड़पाद को आदिशंकराचार्य का गुरु लिखते हैं (सिनेट)। डब्लू. वेबर महाभाष्य को ईसापूर्व 140 वर्ष से ईसा पश्चात 60 वर्ष का सिद्ध करने पर तुले रहे।

यूरोपीय इतिहासकार पाणिनी को यूनान के सिकन्दर के भारत पर हमले के काल का कहते हैं। श्री वेबर की पाणिनी के रचनाकाल के बारे में अवधारणा अतिरंजित दिखाई देती है। सूर्य सिद्धान्तविद श्री ए. नटराजन अय्यर – एल.एन. शास्त्री आदिशंकराचार्य की कुण्डली के अनुसार ईसा पूर्व 509 वर्ष, प्रो.के. श्रीनिवास राघवन की ग्रह नक्षत्र गणना में जन्म ईसा पूर्व 18 अप्रेल, 608 घोषित किया है।

ऐतिहासिक साक्ष्यों के अनुसार श्रीशंकर आचार्य ने पीठों की स्थापना : द्वारका मठ ईसा पूर्व 490 वर्ष, ज्योतिर्मठ ईसा पूर्व 485 वर्ष, गोवर्धन मठ ईसा पूर्व 484 वर्ष एवं श्रृंगेरी मठ ईसा पूर्व 483 वर्ष में की। उन्होंने 32 वर्ष की आयु में मृत्यु से पूर्व ईसा से 477 वर्ष पहले कांची कामकोटि मठ स्थापित किया। राजा सुधन्वा काल के ताम्रपत्र में लिखा है कि श्रीशंकर आचार्य का जन्म ईसा पूर्व सन 509 में हुआ। आनन्दगिरि ने प्राचीन शंकर विजय में श्रीशंकर आचार्य का जन्म ईसा पूर्व 509 में होने का उल्लेख किया है। इतिहासकारों का कहना है कि नीलकण्ठ नेपाल के सूर्यवंशी राजा विष्णुदेव वर्मन (ईसा पूर्व 487 वर्ष) के समय श्रीशंकर आचार्य ने यात्रा की। उन्होंने बौद्धधर्म के कारण उपेक्षित श्रीपशुपतिनाथ मंदिर देखा। पशुपतिनाथ मंदिर में पुनः पूजा अर्चना प्रारम्भ करवाई एवं संस्कृतज्ञाता पण्डित नियुक्त किए। काश्मीर में शंकराचार्य शिखर एवं शारदा मठ है। ईसा पूर्व 417 से 357 वर्ष के काश्मीर के राजा ने दो मन्दिर – शंकराचार्य एवं ज्यस्थितेश्वर का निर्माण करवाया। यह स्वयं में प्रमाण है कि श्रीशंकर आचार्य का काल इससे पहले रहा। विष्णुधर्मोत्तर पुराण में श्रीशंकर आचार्य के जन्म की भविष्यवाणी हजारों वर्ष पहले की गई। यह भविष्यवाणी सत्य निकली। विद्वान पराशर संहिता, शिव रहस्य का भी अध्ययन कर लें। वाणी विलास प्रेस, श्रीरंगम ने सन 1911 में 20 खण्डों में शंकराचार्य समग्र प्रकाशित किया। श्रीशंकर आचार्य की ईसा पूर्व 509 वें वर्ष में वैशाख शुक्ल पाँचमी की जन्मपत्री भी मिलती है।

श्री टी.सुब्बाराव श्रीशंकर आचार्य को योगसूत्र काल का स्वीकारते हैं। श्री सुब्बाराव प्राचीन इतिहास के साक्ष्यों से श्रीशंकर आचार्य का जन्म गौतम बुद्ध के महानिवार्ण के (ईसा पूर्व 510 वर्ष में) 51 वर्ष एवं 2 माह बाद सिद्ध करते हैं। उनके पितामह गुरु गौडपाद का काल भी उनके

(शंकराचार्य) जीवन एवं काल से ही नत्थी है। आदिशंकर का अद्वैत ढाई हजार वर्षों में सर्वोत्तम दर्शन है।।ऊँ।।

श्रीआदिशंकराचार्य : राष्ट्रीय दार्शनिक

पिछले ढ़ाई हजार वर्षों में ''अद्वैत'' का सिंहनाद श्रीआदिशंकराचार्य ने किया। श्रीआदिशंकराचार्य ने आर्यावर्त–आर्यवर्त भारतवर्ष के चारों छोरों पूरब, पश्चिम, उत्तर एवं दक्षिण में अद्वैत के दर्शन की पुनः प्रतिस्थापना की।

श्रीआदिशंकराचार्य ने उनचालीस लाख पुरानी वेदीक परम्परा का पुनर्जागरण किया। यह दुर्भाग्यजनक है कि ब्रिटिश गुलामी के दौरान ''कथित वेद (निगम) और आगम के पश्चिमी विद्वानों ने आर्य उत्तरी ध्रुव से आये के गलत, भ्रमपूर्ण, शरारतपूर्ण अवधारणा को जन्म दिया।'' सम्भवतः पश्चिमी विद्वानों ने प्रथम वेद ऋग्वेद के मूलार्थ को नहीं जाना। क्या ऋग्वेद में वर्णित पर्वत, गुफायें, नदियां, वृक्ष आदि बर्फ से ढ़के उत्तरी ध्रुव पर हैं ? यह भी सच है कि भारत और पश्चिम में धर्म, दर्शन और आध्यात्म के अर्थों में रात दिन का अन्तर है। धर्म की परिभाषा हैः ''यतोऽभ्युदयनिः श्रेयसः सिद्धि स धर्मः'' (जिससे निःश्रेयस–कल्याण एवं अभ्युदय उन्नति की सिद्धि हो।)।

''धृतिः क्षमादमोऽस्त्येयं शौचमिन्द्रिय निग्रह :।
धीर्विद्या सत्यमक्रोघो दशकं धर्मलक्षणम् ।।मनुस्मृति।।''

यह स्वतः ही सिद्ध होता है कि धर्म के दस लक्षण माने गए हैं। भारतीय सनातन् भागवत दर्शन में 'सर्व खलविदं ब्रह्म और ब्रह्म सत्य जगत मिथ्या' का संदेश है। चर्पट मंजरी में श्रीआदिशंकराचार्य महाराज ने लिखाः ''विश्वंत्यक्त्वा स्वप्न विचारम्।।'' श्रीआदिशंकाराचार्य ने सत्संग (अच्छे विचारवान चैतन्य व्यक्तियों के साथ संगत की महिमा) पर प्रकाश डालते हुए द्वादशमंजरिका स्तोत्र में संदेश दियाः

सत्संगत्वे निस्संगत्वं, निस्संगत्वे निर्मोहत्वम्।
निर्मोहत्वे निश्चलतत्त्वं, निश्चलतत्त्वे जीवनमुक्ति।।

वर्तमान में भौतिकवाद के दानव से उत्पन्न अशान्ति से छुटकारे का एकमात्र रास्ता श्रीआदिशंकराचार्य का अद्वैत ही है। यह सबसे दुखद है कि ईसा पूर्व और ईसा पश्चात् के विश्व में विख्यात शिक्षा केन्द्र ''तक्षशिला और नालन्दा विश्वविद्यालयों'' के दुर्लभ ग्रन्थ एक दो नहीं छह महिने तक जलाये गए।'' भारतीय श्रुति स्मृति परम्परा के सौजन्य से मनीषियों के आर्ष ग्रन्थों में प्रमुख सुरक्षित रहे। श्रीआदिशंकराचार्य द्वारा रचित ग्रन्थों में से प्रमुख उपलब्ध गन्थों में : ''ब्रह्मसूत्रभाष्य, सर्ववेदान्त सार संग्रह, प्रबोध सुधाकर, विवेक चूड़ामणि, विभ्रम विवेक, प्रपाँचसार, अपरोक्षानुभुति, वाक्यवृति, स्वात्मनिरूपण, आत्मबोध, उपदेश सहस्त्री, शतश्लोकी, मुण्डकोपनिषद भाष्य, तैतिरीयोपनिषद भाष्य, ईशावास्योपनिषद भाष्य, केनोपोनिषद भाष्य, कठोपनिषद भाष्य, प्रश्नोपनिषद भाष्य, बृहदारण्यकोपनिषद भाष्य, नृसिंहपूर्वतापनीयोपनिषद भाष्य, विष्णु सहस्त्रनाम भाष्य, सनत्सुजातीय भाष्य एवं भगवद गीता भाष्य।''

इनके अलावा श्रीआदिशंकराचार्य ने अनगिनत स्त्ोत्र, स्त्व आदि की 'कालजयी रचना' की। उनमें प्रमुख हैंः ''शिवानन्दलहरी, आनन्द लहरी, सौन्दर्यलहरी, वेदसार शिवस्त्ोत्र, शिव अपराधक्षमास्त्ोत्र, शिव भुजंग, शिवनामावल्यष्टकम, मृत्युंजय मानसिक पूजा, दक्षिणामूर्ति स्त्ोत्र, दक्षिणामूर्तिवर्णमाला स्त्ोत्र, दक्षिणामूर्ति अष्टकम्, शिव पाँचाक्षर स्त्ोत्र, सुवर्णमाला स्त्ोत्र, उमामहेश्वर स्त्ोत्र, त्रिपुरसुन्दरी मानसपूजा, त्रिपुरसुन्दरी अष्टक, देवी चतुषष्ट उपचार पूजा, ललिता पाँचरत्न, गणेश पाँचरत्न, गणेश भुजगं, गणपति स्त्ोत्राणि, सुब्रह्मण्यम स्त्ोत्राणि, सुब्रह्मण्यम भुजंग, विष्णुस्त्ोत्राणि, ललिता त्रिशती भाष्य, काशीपाँचकम्, कल्याणवृष्टि स्त्व, नवरत्नमालिका, मन्त्रमातृका पुष्पमाला, हनुमत पाँचरत्न, रामभुजंग प्रयात, लक्ष्मीनृसिंह पाँचरत्न, विष्णु भुजंगप्रयात, विष्णुपादादिकेशान्त, पाण्डुरंग अष्टकम्, अच्युताष्टक, कृष्णाष्टक, श्रीहरि स्तुति, गोविन्द अष्टक, भगवन्मानसपूजा, मोहमुदगर, कनकधारा स्त्ोत्र, अन्नपूर्णा स्त्ोत्र, मीनाक्षी पाँचरत्न, मीनाक्षी स्त्ोत्र, कालभैरव अष्टक, नर्बदाष्टक, यमुनाष्टक, गंगाष्टक, मणिकर्णिकाष्टक, निर्गुण मानसपूजा, प्रातःस्मरण स्त्ोत्र, जगन्नाथाष्टक, भ्रमराम्बाष्टक, षटपदी स्त्ोत्र,

शिवपाँचाक्षरनाममाला, द्वादशलिंग स्त्ोत्र, अर्धनारीश्वर स्त्ोत्र, शारदा भुजंग प्रयात एवं गुर्वष्टक।'' श्रीआदिशंकराचार्य की इन प्रमुख कालजयी रचनाओं का पाठ असम से गुजरात और काश्मीर से केरल तक एवं विश्वभर में किया जाता है।

प्राचीन काल में तत्कालीन भारत को अध्यात्मिक–धार्मिक–सांस्कृतिक रूप से जोड़ने के उद्देश्य से ही श्रीआदिशंकराचार्य द्वारा चार पीठ–पुरी (पूरब), द्वारका (पश्चिम), श्रृंगेरी (दक्षिण) और बदरीनाथ (उत्तर) की स्थापना की गई। जगदगुरु शंकराचार्य की चारों पीठ श्रीआदिशंकराचार्य के अद्वैत को जन–जन तक पहुंचाने में लगभग 2500 वर्षों से निरन्तर लगी हैं। भारतीय आगम योगवासिष्ठ, गीता अद्धैत दर्शन की सुन्दर व्याख्या करते हैं। भारतीय आध्यात्म में अक्षर को ब्रह्म और स्व के भाव में जाने को आध्यात्म कहा गया है। श्रीआदिशंकराचार्य का अद्धैत वेद के दर्शन का सारतत्त्व है। यह अलग है कि वेद का ज्ञान सामान्यजन और कुछ बौद्धिकों के लिए बोधगम्य नहीं है। जैसे अश्व और गौ का रूढ़ अर्थ घोड़ा और गाय लिया गया। अश्वमेध में अश्व बलि कही गई। वेदीक परम्परा में एक ही शब्द के अनेक अर्थ हैं। वेद में वायु देवता में अश्व शक्ति एवं अन्य का पर्याय है। अश्व ''कामना'' का भी एक अर्थ है। गौशब्द ज्ञान की किरण के लिए उपयोग किया गया है। वेद में एक शब्द एक सूक्त में भोजन के लिए और दूसरे सूक्त में प्रसिद्धि के लिए लिखा गया है। यहाँ कारण है कि पश्चिमी विद्वानों में से अधिकांश वेद के मूल में नहीं पहुंच सके। इस क्रम में सामान्यजन के लिए उपनिषद आये (उपनिषद के मूल में वेद हैं।)। श्रीआदिशंकराचार्य ने 9 प्रमुख उपनिष्दों का भाष्य लिखा। श्री आदिशंकराचार्य के सन्दर्भ में डोमराजा चाण्डाल एवं मणिकर्णिका प्रसंग क्रान्तिकार रहे।

भारतीय परिदृश्य में श्रीआदिशंकराचार्य के अद्वैत के सामने सांख्य, न्याय, मीमांशा, चार्वाक आदि विविधता की अभिव्यक्ति है। श्रीआदिशंकराचार्य परमार्थिक सत्ता और व्यवहारिक सत्ता को मूलतः एक ही मानते हैं। श्रीआदिशंकराचार्य सामाजिक क्रान्ति के भी महान्ायक (चाण्डाल प्रकरण) रहे। अतः अद्वैत दर्शन के महान्ायक श्रीआदिशंकराचार्य को राष्ट्रीय दार्शनिक घोषित करना समय की मांग है।

तैत्तरीयोपनिषत में सन्देश हैः ''औमति ब्रह्म। औमितीदं सर्वम् ।।1.81।।'' आदिशंकराचार्य अध्यात्मिक ज्ञानाग्नि के पुरोधा थे।

''ज्ञानानिः सर्वकर्माणि भष्मसात'' ।।ऊँ।।

आचार्य चाणक्य की मृत्यु का मिथकीय तिलिस्मी रहस्य रचने की महायोजना

ईसा पूर्व चौथी शताब्दि के आचार्य विष्णुगुप्त कौटल्य चाणक्य की मृत्यु मिथकीय तिलिस्मी रहस्य बनी है। आचार्य चाणक्य की जन्मभूमि को लेकर भी प्राचीन भारत के इतिहासकारों में मतभेद है। क्या भारत के महान्।यकों की छवि ध्वस्त् करने का कोई षड़यन्त्र चल रहा है।

यह अनुत्तरित प्रश्न है कि महान् मगध साम्राज्य के संस्थापक आचार्य चाणक्य वृद्धावस्था में कहाँ गए, क्यों गए? दन्तकथाओं, प्राचीन आख्यानोंमें आचार्य चाणक्यके बारेमें अनेक ब्योरे मिलते हैं। उनमें तीन प्रमुख हैं। पहला, क्या सम्राट चन्द्रगुप्त ने महामात्य चाणक्य की हत्या का आदेश दिया ? आचार्य चाणक्य बौद्ध लामा के रूप में अज्ञात स्थान पर चले गए। दूसरा, क्या सम्राट बिम्बसार ने आचार्य चाणक्य की हत्या का निर्देश दिया ? फलस्वरूप आचार्य चाणक्य ने अन्न जल त्यागकर अग्निदाह किया। तीसरा, आचार्य चाणक्य ने राक्षस को महामात्य बनाकर सदाशिव की नगरी काशी में अज्ञात जीवन व्यतीत किया। क्या आचार्य चाणक्य ने सम्राट चन्द्रगुप्त की तरह सनातन भागवत धर्म छोड़ा? यह समझा जाता है कि चन्द्रगुप्त ने जैन अथवा बौध धर्म स्वीकारा। कामन्दक के चाणक्यवृत के अनुसार चाणक्य कभी दान नहीं लेते थेः

वंशे विशालवेश्यानामृपीणामिव भूयसां।
अप्रतिग्राहकाणां योबभूव भुवि विश्रुतः।।

चाणक्य आदिशंकराचार्य के शिवापराध क्षमा स्त्ोत्रम् अनुरूप पौरोहत्वं रजनीचरितम् मानते थे। ऐसे में सम्राट महान्न्द के श्राद्ध में चाणक्यके जाने का प्रसंग कपोल कल्पनाभर है।

हेमचन्द्र कोश में चाणक के पुत्र को चाणक्य बताया है। कौटिल्य–कौटल्य के अर्थशास्त्र में गौरव सहित चाणक्य ने कौटल्य की व्याख्या दी है। कूट घट (घड़े) का नाम है। जो लोग एक घट से अधिक अन्य संग्रह नहीं करते थे, उन कुम्भी धान्य नामक अत्यन्त त्यागी श्रेष्ठ ब्राह्मणों का गोत्रापत्य कौटल्य कहाता है। कौटल्य का मुख्य नाम विष्णुगुप्त है।

कूटो घटः तं धान्यपूर्णं लान्ति संग्रहणन्ति इति कुटलाः
कुम्भीधान्या त्यागपरा ब्राह्मणश्रेष्ठाः
तेषां गोत्रापत्यं कौटल्यो विष्णुगुप्तो नाम।।

कवि विशाखादत्त के मुद्राराक्षस में मगध साम्राज्य के प्रधान प्रशासक आचार्य चाणक्य की कुटिया का वर्णन है।

उपलशकलमेतद भेदकं गोमयानां।
बुटुर्भिरूपहृतानां बर्हिषां स्त्ोम एषः।
शरणमपि समिदिभः शुष्यमाणाभिरामि।
र्विनमितपटलान्तं दृश्यतेजीर्णडयम।।

कुटि में एक तरफ कण्ड़े तोड़ने का पत्थर पड़ा था। दूसरी तरफ चाणक्य से शिक्षा पानेवाले बाल छात्रों द्वारा लाई गई कुशायें बिछी थी। इसके जीर्ण शीर्ण भीतोंवाले झुके हुए छप्पर पर होम की अग्नि की समिधायें सूख रही थी। प्राचीन भारत के सभी प्रमाणों के अनुसार चाणक्य पाटलीपुत्र के महलों से दूर वन में नदी के समीप कुटि में रहते थे। उन्होने नन्द साम्राज्य के पूर्व प्रधान अमात्य राक्षस सुबुद्धि शर्मा को ही चन्द्रगुप्त के साम्राज्य का मुख्य प्रशासक नियुक्त किया। प्रथम आख्यान के अनुसार एक समय चन्द्रगुप्त ने रात्रि में आचार्य चाणक्य को रास्ते् से हटाने का गोपनीय आदेश दिया। आचार्य चाणक्य के गुप्तचरों ने तत्काल इसकी सूचना उन्हे दी। रात्रि होते ही तिब्बति बौद्ध लामों का दल बुद्धम् शरणम् गच्छामी, धर्मम् शरणम् गच्छामी, संघ शरणम् गच्छामी और ॐ मणिपद्मे हुम्, ऊँ मणिपद्मे ह्री मन्त्र पाठ करता हुआ नदी किनारे पहुंचा। मल्लाह ने गहन रात में नदी पार करवाने में आना कानी की। उस समय प्रमुख लामा ने टूटी फूटी हिन्दी में करोड़ों सोने की मुद्रा दाम की हिमालय की चमत्कारी विशाल मणि देने का प्रलोभन दिया। यह भी कहा कि इसे मगध की राजधानी के प्रधान श्रेष्ठि (नगर सेठ) को इसी दाम में बेचे।

अन्त में बौद्ध मन्त्र पाठों की गूंज में लामा नदी पार गए और अज्ञात स्थान की ओर बढ़े। सम्राट की गारद को वन में आचार्य चाणक्य की खाली कुटिया मिली। सम्राट का गुस्सा अमात्यों पर उतरा।

कथानुसार मल्लाह एक दिन प्रधान श्रेष्ठि की अट्टालिका गया और कोथली की मणि बेचने की मंशा और दाम बताये। कारिन्दे श्रेष्ठि के पास ले गए। श्रेष्ठि ने कहा कि दुलर्भ मणि केवल सम्राट चन्द्रगुप्त खरीद सकते हैं। मल्लाह एवं श्रेष्ठि सम्राट चन्द्रगुप्त के दरबार में गए। सम्राट चन्द्रगुप्त मणि को देखकर सन्न रह गए। सम्राट ने यह मणि राज्यभिषेक के समय आचार्य चाणक्य को भेट दी थी । सम्राट आश्चर्य में थे कि बौद्ध लामा को मणि कहाँ से मिली ? इस प्रकार चाणक्य रहस्य बने।

दूसरे आख्यान के अनुसार आचार्य चाणक्य की मृत्यु ईसा पूर्व 283 वर्ष (कुल 2298 वर्ष) पहले हुई। उनका शवदाह भगवान् बुद्ध के समकालीन निवार्णप्राप्त प्रबुद्ध कात्यायन के प्रपौत्र राधागुप्त ने किया। राधागुप्त राक्षस कात्यायन के उत्तराधिकारी बने। इतिहासकारों के एक वर्ग की मान्यता है कि मगध साम्राज्य के प्रधान आमाज्य आचार्य चाणक्य को आन्तरिक शत्रुओं द्वारा सम्राट चन्द्रगुप्त को विष देने की आशंका रहती थी। कथित जैन कथा में उल्लेख है कि आचार्य चाणक्य ने सावधानी के लिए सम्राट को भोजन में बहुत ही नगण्य मात्रा में विष देना शुरू किया। रानी ध्रुवा गर्भवती थी। सम्राट को रानी ध्रुवा ने गर्भ के अन्तिम माह में एक दिन चन्दगुप्त का भोजन खा लिया और उसकी मृत्यु हुई। चाणक्य ने चन्द्रगुप्त के पुत्र को बचाने के लिए उसी क्षण गर्भाशय चीरने का आदेश चिकित्सकों को दिया। गर्भ से शिशु को निकालते हुए विषैले रक्त का एक बिन्दु सिर पर गिरा। चाणक्य ने शिशु का नाम बिन्दुसार रखा। बिन्दुसार (बिम्बसार) का काल ईसा से 330 वर्ष पूर्व माना जाता है।

चन्द्रगुप्त के वन गमन वानप्रस्थ के बाद बिन्दुसार सम्राट और चाणक्य प्रधान अमात्य रहे। एक अमात्य सुबन्धु ने सम्राट बिम्बसार को उकसाया कि उसकी माता ध्रुवा की मृत्यु के जिम्मेवार अचार्य चाणक्य हैं। सम्राट बिम्बसार ने राजमहल में प्रसव करवानेवाली दाई से मृत्यु घटना की पुष्टि की। बिम्बसार चाणक्य से क्रोधित हुए। इसकी जानकारी मिलते ही चाणक्य ने जीवन को निस्सार पाकर सभी सम्पत्ति गरीबों, विधवाओं में

बांट दी। आचार्य चाणक्य गोबर के उपलों की आग जलाकर जीवन पवित्र अग्नि को सौंपने लगे। तभी बिन्दुसार को चाणक्य द्वारा जीवनरक्षा और राजमहल षड़यन्त्रों का पता चला। वे आचार्य चाणक्य से क्षमा मांगने गए। लेकिन आचार्य चाणक्य ने बिन्दुसार को खाली हाथ लौटाया। सम्राट बिन्दुसार ने सुबन्धु की जीवन लीला समाप्त की।

मुद्राराक्षस के अनुसार चाणक्य सुबुद्धि राक्षस को प्रधान अमात्य का पद सौपकर ब्रह्म तपस्या के लिए वन गए। तपोवनं यामि विहाय मौर्य त्वां चाधिकरिष्यधिकृत्य मुख्यम्। त्वायि स्थिते वाक्पतिवत्सुबुद्धौ भुनक्तु गामिन्द्र इवैष चन्द्रः।। यह अवश्य है कि कुछ आख्यानों में आचार्य चाणक्य द्वारा महादेव साम्ब सदा शिव की नगरी काशी की प्रशंसा को उनके काशी (बनारस) गमन का प्रमाण माना। इतिहास लेखकों ने शरारतपूर्वक यह भी कपोल कल्पना कर डाली कि चन्द्रगुप्त के सम्राट बनने के बाद आचार्य चाणक्य विवाह कर वाराणसी चले गए। ऐसे अल्पज्ञानी इतिहासकार इसका कोई ऐतिहासिक साक्ष्य को पेश नहीं कर पाये। बल्कि यह भी भ्रम फैलाना चाहा कि कौटल्य और चाणक्य अलग अलग हैं। आचार्य चाणक्य कालजयी नौ रचनाओं से सदा अमर हैं। मुद्राराक्षस कृति चाणक्य के तपोवन गमन का सिंहनाद कर रही है। अतः लगता है कि भारत के महान्‌यकों की छवि घ्वस्त् करने का कोई षड़यन्त्र चल रहा है।।ऊँ।।

कौटल्य चाणक्य के नीति की
पाण्डुलिपियों ग्रन्थों का खजाना कहाँ कहाँ

प्राचीन तक्षशिला विश्वविद्यालय के आचार्य विष्णुगुप्त कौटल्य चाणक्य का राजनीति शास्त्र, नीति शास्त्र, नीतिदर्पण, अष्टोत्तरश्लोक, अर्थशास्त्र एवं अन्य पाण्डुलिपियाँ शताब्दियों से विश्व में सर्वाधिक लोकप्रिय हैं।

यह चकित करनेवाला है कि आचार्य चाणक्य की कालजयी रचनाओं का अनुवाद प्राचीन सभ्यता संस्कृति के केन्द्र यूनान, पारस, मिश्र, मय, चीन आदि में हुआ। तक्षशिला के प्रकाण्ड विद्वान चाणक्य की अधिकांश पोथियों को यूनानी (ग्रीक), लैटिन, फ्रेन्च, जर्मन, रूसी, चीनी, तिब्बती, नेपाली, बांगला, सिंहली, फारसी आदि विदेशी भाषाओं में अनुदित किया गया। देश में मलयालम, कन्नड़, तेलुगु, तमिल, उडिया, बांगला, मराठी, गुजराती, असमी, मैथली आदि भारतीय भाषाओं में अनुवाद एवं व्याख्या प्रकाशित हुई। यह सबसे महत्वपूर्ण है कि आचार्य चाणक्य की रचनाओं के मूल संस्कृत को भी देवनागरी में अनुवाद के साथ दिया गया। इसप्रकार यह पता चलता है कि अंग्रेजी के चलन से पहले चाणक्य के सूत्रों की धूम प्राचीन विश्व में फैल चुकी थी।

आचार्य चाणक्य की रचनाओं में चाणक्य नीति के नीतिदर्पण (348 श्लोक), अष्टोत्तरसूत्र (108 श्लोक), चाणक्य सूत्र (571 श्लोक), वृद्धचाणक्य (250 श्लोक), लघुचाणक्य (100 श्लोक), कौटल्य अर्थशास्त्र (6000 श्लोक) प्रमुख हैं। इनके अलावा चाणक्य राजनीतिशास्त्र (लगभग 1000 श्लोक, उपलब्ध 760 श्लोक), चाणक्य समग्र, वृद्ध चाणक्य आदि भी कालजयी रचनाओं में सम्मिलित हैं। तंजोर राजमहल पुस्त्कालय में चाणक्य से सम्बन्धित आठ पाण्डुलिपियाँ उपलब्ध हैं। विद्वानों के अनुसार चाणक्य दण्डनीति सम्बन्धित 6000 श्लोक मिलते हैं। तिब्बती में चाणक्य की पाण्डुलिपि तंजूर में मिलती है। चीनी भाषा के त्रिपटक में आचार्य चाणक्य की नीति के श्लोकों को संजोया गया है। रूसी विद्वान श्री ओट्टो बोटालिंक्स या वेबर ने फारसी में चाणक्य नीति के अष्टोत्तरशतनाम का अनुवाद किया। यह बहुत ही दुर्भाग्यजनक है कि विदेशी प्राच्यविद्या शोधकों ने आचार्य चाणक्य के शास्त्र और पुराणों में नवीनतम पुराण गरूड़पुराण के नीतिसार में समानता दर्शित कर चाणक्य की रचना के महत्व को कम करने का महाजाल महाषडयन्त्र रचा। इसे क्या कहा जाए कि विदेश प्राच्यविद्या विद्वानों ने चाणक्य की रचनाओं को नकल कहने के लिए वेदीक ऋषि शौनक का चिन्तन सिद्ध करने का तानाबाना रचा। विदेशी प्राच्य विद्या के विद्वान यह भूल जाते हैं कि तक्षशिला के आचार्य विष्णुगुप्त चाणक्य ने अपनी नीति, अर्थशास्त्र, राजनीति शास्त्र, दण्डनीति आदि में देवताओं के गुरु आचार्य बृहस्पति, दानवों के गुरु

शुक्राचार्य, वेदीक ऋषिगण–वशिष्ठ भरद्वाज आदि की नीतियों का सारसंक्षेप प्रस्तुत करने का विनम्रता से उल्लेख किया। स्वाभाविक रूप से चाणक्य की रचनाओं में वेदीक राजनीति शास्त्र, वेदीक अर्थशास्त्र, बृहदारण्य, उपनिषद, रामायण, महाभारत, गरूड़पुराण, विभिन्न संहिताओं–स्मृतियों, भामति, भागवद् गीता आदि का सार समेटा गया है।

पिछले ढ़ाई हजारों वर्षों पहले तक्षशिला विश्वविद्यालय में यूनान, मध्य एशिया (अरबदेश), यूरेशिया (काकशस से रूस), अफ्रीका, चीन, बर्मा, श्रीलंका से आनेवाले छात्रों के चुम्बकीय वशीकरण का केन्द्र आचार्य चाणक्य की नीतियाँ रही। इतिहासकारों के अनुसार आचार्य चाणक्य ने कौटल्य का अर्थशास्त्र तक्षशिला में लिपिबद्ध किया। विगत 300 वर्षों में चाणक्य के राजनीति शास्त्र, अर्थशास्त्र को पुनः उपनिवेशवादियों ने नये सिरे से अध्ययन शुरू किया। सन् 1817 में बंगाली एवं संस्कृत में चाणक्य समग्र ग्रन्थ धमाके से सामने आया। वेटीकन (ईसाई रोमन कैथोलिक धर्म केन्द्र), रोम से संस्कृत अध्ययन हेतु यूनानी श्री डिमिट्रोइस गलानोस बनारस आया और साथ में चाणक्य की एक दुर्लभ पाण्डुलिपि ले गया। सन् 1823 मे श्री गलानोस की चाणक्य सूत्र पुस्त्क ने यूरोप में हलचल मचा दी। जिसका अनुवाद इतावली में भी हुआ। सन् 1825 में रोम के श्री एन चीफला (या एन केफलास) ने लघु चाणक्य का सम्पादन किया (पर इसमें गलानोस ने स्त्रोत का जिक्र तक नहीं था। सन 1826 में इतावली में सन्टेन्सेज मोराल्स डू फिलोसफी इण्डियन चाणक्य का प्रकाशन ने किया।)। सन 1863–65 में सेन्ट पीटसबर्ग में रूसी श्री ओट्टो बोटालिंक्स ने चाणक्य की संस्कृत की नीति रचना और दूसरी नीतियों का प्रकाशन तीन खण्डों में किया। इसकी सूक्तियां सन् 1870–73 तक बढ़कर 8000 हुई। सन् 1864 में वेबर (बोटालिंक्स) ने चाणक्य के 108 श्लोकों के अनुवाद को प्रकाशित किया। सन् 1878 में यूरोप में प्रसिद्ध पीसा के प्रोफेसर इतीलो तेजा ने लघु चाणक्य ग्रन्थ को सानुवाद पेश किया। बर्मी और पॉली में चाणक्य के लोकनीतिकोश को सन् 1878 में लेफ्टी. आर.सी. टेम्पले अंग्रेजी अनुवाद के सहित सामने लाए। शोधक जेम्स ग्रे के अनुसार वे युद्ध के दौरान मणिपुर से बर्मा गए। मणिपुर पणों में संग्रहित चाणक्य नीति बर्मा ले गए। उसी समय श्रीलंका में सिंहली में

चाणक्य नीति मिली। बर्मीज सोर्सज एण्ड नीति लिटरेचर ऑफ बर्मा इसका प्रमाण है।

सांस्कृतिक नगरी पेरिस में सन् 1887 में श्री इगने मोशयो ने 208 श्लोक (संस्कृत–फ्रेंच) चाणक्य प्रकाशन से फ्रांस में बौद्धिकों को झकझोरा। इसके बाद जर्मन में प्राचीन गौरव की स्थापना के स्त्म्भों में आचार्य चाणक्य की नीतियों का अनुवाद दबे पांव शामिल हुआ। सन् 1873 में डॉ. काल्ट का 300 संस्कृत श्लोकोंवाला चाणक्य रातों रात सर्वाधिक लोकप्रिय बना। सन् 1888 में श्री भुवनचन्द दत्त ने 300 श्लोकवाला बंगाली अंग्रेजी बोधी चाणक्य पुस्त्क प्रकाशित की। तभी वृद्धचाणक्य ग्रन्थ में 500 संस्कृत श्लोक होने का रहस्योद्घाटन हुआ। सन् 1831 में महाराज बहादुर कृष्णदेव की बांगला अंग्रेजी में चाणक्य के अष्टोत्तरश्लोक की पुस्त्क चर्चित हो चुकी थी। यह रहस्य बना था कि लघुचाणक्य, वृद्धचाणक्य, चाणक्य राजनीतिशास्त्र, चाणक्य सूत्र आदि में मूलरूप से कितने श्लोक तक्षशिला के महापण्डित चाणक्य ने लिखे ? सन् 1888 में ही गुजराती में संस्कृत के श्लोकों के साथ वृद्ध चाणक्य की कृति सुर्खियां बनी। अट्ठारहवीं, उन्नीसवी शती में चाणक्य की पुस्त्कों का हिन्दी, मराठी, तेलुगु, तमिल, उडिया, कन्नड़, मलयाली, बांगला आदि में प्रकाशन एवं शिक्षण चरम पर था। बंगाल में बीसवीं शती के प्रारम्भ तक चाणक्य के 108 श्लोकवाली पुस्त्क प्रचलन में थी। जबकि शेष भारत में 17 अध्याय और 340 श्लोक वाला वृद्ध चाणक्य, 1000 श्लोकवाला चाणक्य राजनीति शास्त्र एवं कौटल्य का अर्थशास्त्र अधिक चलन में था। सन् 1914 में बर्दवान के पण्डित प्रियनाथ तर्कशास्त्र ने चाणक्य के मूल प्रमाणिक श्लोक एवं अनुवाद प्रकाशित किया।

इसके ठीक विपरीत भोजराज के वृद्ध चाणक्य में छह सौ श्लोक के स्थान पर 576 श्लोक मिले। सन् 1919 में कलकत्ता प्राच्य श्रृंखला की दूसरी कड़ी में चाणक्य राजनीतिशास्त्र का प्रकाशन हुआ। लेकिन इसमें 1000 श्लोक के स्थान पर 760 संस्कृत श्लोक थे। इसकी भूमिका श्री जोहन वान मनेन एवं सम्पादन श्री ईश्वरचन्द्र शास्त्री विद्यासागर ने किया। सन् 1921 में चाणक्य राजनीतिशास्त्र ने राजनीति की जटिलताओं से पर्दा उठाया। श्री जोहन वान मनेन ने वररूचि के ग्रन्थ, गरूड़पुराण, ऋषि शौनक की रचनाओं, महाभारत, रामायण,

हितोपदेश, पाँचतन्त्र, भामति, महान्‌ाटक आदि के नीति सुभाषितों के कथित नये कलेवर में चाणक्य की रचनाओं में होने को लेकर आलोचना की। उल्लेखनीय यह है कि विश्व प्रसिद्ध दण्डनीति के आचार्य चाणक्य अपनी रचनाओं में देव गुरु बृहस्पति, दानव गुरु शुक्र आदि को नमन कर सभी नीतियों के सारतत्त्व को पेश किया है। यानी चाणक्य स्वयं मानते हैं कि प्राचीन सत्य की नवरूप में प्रस्तुति है। उसकी आलोचना व्यर्थ है। आचार्य चाणक्य ने वेदीक युग से वर्तमान तक, नीतियों के सागर को गागर में प्रस्तुत कर नव अगस्त्य मुनि की भूमिका का निर्वहन किया।

।।ऊँ।।

चाणक्य सरीखे बनने का
चाणक्यमंत्र

भारतीय ऋषि परम्परा के महान्‌ायक चाणक्य ने बिना अस्त्र शस्त्र, बिना सेना, बिना धन राशि के मगध के महासाम्राज्य को जड़ से उखाड़ फैंकने का चमत्कार दिखाया। विश्वभर में विगत 2300 वर्षों में ऐसा चमत्कार पुनः नहीं हुआ।

आचार्य चाणक्य के जीवन और दर्शन ने चीन के तत्कालीन प्रधान सेनापति सुंग त्जू की युद्ध कला, यूनानी दार्शनिक अरस्तु, प्लेटो आदि को कोसों पीछे छोड़ दिया। यूरोप के श्री मैकायवली की कूटनीतियां भी आचार्य चाणक्य के पासंग भी खरे नहीं उतरती हैं। भारतवर्ष जम्बूद्वीप में चाणक्य का जीवन लगभग 2400 वर्षों से मिथकीय रहस्य बना है। आचार्य चाणक्य की नीति, कौटल्य का अर्थशास्त्र आदि कालजयी रचनायें अवश्य मिलती हैं। लेकिन गुप्त साम्राज्य के गंधार (कंधार) से बर्मा तक के साम्राज्य के संस्थापक आचार्य चाणक्य की कार्यशैली का ब्योरा बहुत ही कम मिलता है। यह रहस्यों का तिलिस्म है

कि प्राचीन भारत के तक्षशिला विश्वविद्यालय के विश्वविख्यात तीनों वेदों, दर्शन, दण्डनीति, कूटनीति, राजसत्ता, समर, आयुर्वेद, मन्त्र तन्त्र आदि के आचार्य चाणक्य का निजी जीवन और सफलता का गुरु मन्त्र क्या रहा?

कौटल्य के अर्थशास्त्र, नीति के महाग्रन्थकार आचार्य विष्णु गुप्त चाणक्य का यह बड़प्पन, ऋषिवत विनम्रता रही है कि उन्होंने इसका श्रेय स्वयं नहीं लिया। आचार्य चाणक्य इसका श्रेय देवताओं के गुरु बृहस्पति, असुरों के गुरु शुक्राचार्य (उषणा) आदि को देते हैं। देवगुरु बृहस्पति और गुरु शुक्राचार्य की नीतियों को परस्पर विरोधी माना जाता है। आर्ष (ऋषियों के) ग्रन्थों के अनुसार वर्तमान सातवें मनवन्तर में असुरों के आचार्य शुक्राचार्य की नीतियों का उपयोग रक्ष संस्कृति में किया जाता रहा। प्राचीन भारत की समरनीतियों और जीवन के संग्राम में युद्धकला में चाणक्य के सूत्र आज भी सफलता के हिमालयी चोटी पर पहुंचाने में सक्षम साबित हो रहे हैं।

इतिहास के अतीत के पन्नों में आचार्य चाणक्य की विलक्षण बुद्धि के बारे में धुंधला, अस्पष्ट, संकेतात्मक, गूढ़, कूट, प्रतीकात्मक विन्दु मिलते हैं। आचार्य चाणक्य सीताफल (जिसे काशीफल, कोला, कद्दू आदि भी कहा जाता है।) को भरपूर खाते थे। चौकें नहीं ! काशीफल कुशाग्र, विलक्षण मेधा देनेवाला है। वैज्ञानिकों के अनुसार पीले काशीफल में सबसे अधिक प्राकृतिक स्वर्ण (सोना) होता है। सोना मानवीय मस्त्ष्कि की मेधा बुद्धि को अनन्त गुना बढ़ाता है। दूसरे शब्दों में प्राचीन भारत की ऋषि परम्परा से आचार्य चाणक्य को यह गोपनीय रहस्य मिला कि वनस्पतियों में एकमात्र काशीफल आचार्य बृहस्पति, गुरु शुक्राचार्य और श्रुति, स्मृति, पुराण, इतिहास के अमर रचनाकार ऋषियों के विलक्षण सरस्वती पुत्र बनने की पहली सीढ़ि है। क्या आचार्य चाणक्य बहुत कम आहार से शरीरगत जीवन दायिनी शक्ति एवं ऊर्जा लेते थे? आचार्य चाणक्य की ग्रन्थों को केवल मात्र देखकर स्मरण करने फोटोजनिक मेमोरी की स्मरण शक्ति कैसे थी ? उनकी चित्रात्मक स्मरण क्षमता का रहस्य क्या था ? इसे कैसे विकसित् किया ?

सरस्वती पुत्र चाणक्य ने मगध साम्राज्य से या फिर अलकजेण्डरिया, यूनान के सिकन्दर के सेनापति सेल्यूकस से लड़ने के लिए अपरम्परागत युद्ध नीति को अपनाया। इस नीति में सैन्यबल,

राजकीय खजाना आदि कोई महत्व नहीं रखते। जबकि चीनी महासेनापति सुंग त्जू शत्रु की सेना के अनुरूप सेना होने पर युद्ध में विजय के सूत्र उद्घाटित करते हैं। यह उल्लेखनीय है कि जीवन के समरांगन में व्यक्ति नितान्त अकेला एकान्तक होता है। चाणक्य महर्षि वेदव्यास के महाभारत के चक्रव्यूह को तिनके की तरह उड़ाने और अभिमन्यु की तरह मरने के स्थान पर सुरक्षित निकलने का गुप्त मन्त्र भी सीखाते हैं। सो यहाँ अर्जुन की तरह चाणक्य चक्रव्यूह ध्वस्त् करने और बाहर आने का शंखनाद करते हैं। यह अवश्य है कि चाणक्य के गोपन सूत्र मगध प्रधानमंत्री राक्षस, आचार्य शकटार, आचार्य इन्द्रदत्त, आचार्य सुबन्धु आदि की भी समझ से बाहर रहे। आचार्य चाणक्य देश की अस्मिता पर संकट के समय आचार्यों–शिक्षकों को बौद्धिक–शैक्षिक कार्य छोड़कर समर में कूदने को पहला धर्म कहते हैं। क्योंकि जब देश ही नहीं बचेगा तब बौद्धिक आचार्य कहा रहेंगे, शिक्षा के गुरुकुल तक्षशिला आदि कहाँ होंगे ? वे राज्याश्रयी बौद्धिकों को सबसे बड़ा शत्रु कहते हैं। वे भारी बदलाव के लिए लोकसंग्रह, जन आन्दोलन के समर्थक रहे।

आदिशंकराचार्य के यथादृष्टिः तथा सृष्टि अर्थात् आपकी दृष्टि के अनुसार ही विश्व दिखाई देने को चाणक्य ने समरांगन में सफलता की कुंजी सिद्ध किया। चाणक्य जीवन संग्राम में सकारात्मक दृष्टि विचार को सफलता का मूलभूत सिद्धान्त मानते रहे। आचार्य विष्णुगुप्त ने उच्च्य लक्ष्य के लिए दूरदृष्टि, निश्चय नैतिक बल, इन्द्रियों पर संयम, सर्वोच्च्य पद पर भी सादगीपूर्ण जीवन को अनिवार्य शर्त माना। उस समय आये चीनी यात्री ने लिखा कि मगध राजधानी से दूर जंगल में पर्णकुटी में आचार्य चाणक्य मिले। उनकी कुटिया में सूखी लकड़ियां, एक वस्त्र और दो दीपक थे। राजधानी से महामात्य चाणक्य की कुटिया तक रास्त्े में कहीं कोई सैनिक गारद गुप्तचर नहीं दिखे। आचार्य ने चीनी यात्री से मिलने का प्रायोजन राजकीय या निजी पूछा। यात्री के निजी कहने पर जलता दीपक बुझाकर दूसरा दीपक जलाया। उन्होंने पूछने पर कहा कि वे राजकार्य कर रहे थे और सरकारी खर्चे का दीपक जल रहा था। अब निजी कार्य के लिए व्यक्तिगत खर्चे का दीपक है। यह उनके अनन्त नैतिक बल और पारदर्शी व्यक्तित्त्व की प्रेरणा देता है। आचार्य ने चीनी यात्री को तक्षशिला से पाटलीपुत्र यात्रा एवं राजधानी से कुटिया तक

मिलनेवालों का ब्योरा देकर हतप्रभ किया। भारतवर्ष के महामात्य चाणक्य की तीसरी अदृश्य आंख सजग, सत्र्क, सावधानी से सम्पूर्ण साम्राज्य की सूक्ष्मतम घटना पर थी। यही सजगता, सत्र्कता, सावधानी जीवन के महासफर में सभी संकटों को हराती है। इसके कारण अप्रत्याशित घटनाक्रम के लिए हमेशा तैयार रहना सम्भव है। एक कथानुसार अन्त में सम्राट चन्द्रगुप्त के गुप्त आदेश की तत्क्षण सूचना पाकर आचार्य चाणक्य बौद्ध लामा वेश में विलुप्त हुए। सम्राट को उसकी सूचना या भनक तक नहीं मिली।

देवगुरु बृहस्पति, आचार्य शुक्राचार्य की नीतियों के समन्वय से आचार्य चाणक्य ने सफलता के शिखर प्राप्ति और शर्मनाक हार के समय समान भाव रखने का गुप्त मन्त्र दिया। लाओत्से के ताओ सूत्र, शिवगीता, योगवासिष्ठ के सार के रूप में चाणक्य समभाव को सबसे ऊपर मानते थे। क्योंकि सफलता और असफलता दोनों ही अस्थाई हैं। इसलिए हार को जीत में बदलने का मानस आवश्यक है। आचार्य चाणक्य विजयश्री के लिए व्यक्तिगत कामनाओं की बलि को भी आवश्यक मानते थे। चाणक्य लम्बे संघर्ष के लिए न्यूनतम व्यक्तिगत आवश्यकता, सादगी को अभेद्य कवच बनाने की प्रेरणा देते हैं। चाणक्य की नीति में मूंजी को धन से जीतने, ज्ञानी को ज्ञान से और शत्रु को सैन्यबल एवं शुक्राचार्य नीति से विजित करने का निर्देश है।।ऊँ।।

क्या असाध्य रोग की आशंका मात्र से अंग कटवाना भयानक पाप : कैलास का थूनेर

विश्व के आयुर्विज्ञानविदों में केंसर की मात्र आशंका अथवा सम्भावना से शरीर के अंग निकलवाने पर बहस छिड़ी है। आयुर्विज्ञानविदों के एक वर्ग के अनुसार मात्र सम्भावना पर अंग शल्य चिकित्सा से काटना कोई विकल्प नहीं है।

वर्तमान में देश विदेश में महिलाओं के स्त्न कैंसर होने पर उन्हें शल्य चिकित्सा से हटाने का आम प्रचलन है। इसके अलावा महिलाओं के पेट में गांठ होने पर अण्डाशय गर्भाशय सहित गांठ चीरकर निकालना आम है। हाल ही हॉलीवुड की शीर्ष महान्ायिका सुश्री एंजलिना जॉली द्वारा भविष्य में कभी कैंसर की फकत 50 प्रतिशत सम्भावना से अण्डाशय गर्भाशय शल्य चिकित्सा से हटवाना विवादों का केन्द्र बना है। इससे पहले सुश्री ऐंजलिना जॉली स्त्न कैंसर के उपचार में स्त्न हटवा चुकी हैं। यद्यपि होमियोपैथी और आयुर्वेदविद् केवल दवाओं से पेट की गांठ को विलीन करने का दावा करते हैं। कुछ तिब्बती एवं भारतीय वैद्य कैंसर के उपचार के लिए जड़ी बूटी देते हैं। तिब्बती वैद्य हिमालय की ऊँचाईयों में मिलनेवाली प्राकृतिक स्टेराइड–प्राकृतिक अधिक विकिरणवाली जड़ी बूटी एवं खनिजों को संजीवनी के रूप में उपयोग में लेते हैं। स्वामी विशुद्धानन्द परमहंस सूर्य किरणों से हर रोग का उपाचार करते थे। स्वामी विशुद्धानन्द परमहंस ने महामहोपाध्याय प्रोफेसर गोपीनाथ कविराज के हृदय रोग का उपचार किया। विज्ञान एवं आयुर्विज्ञानविद् ज्ञानगंज में दीक्षित स्वामी विशुद्धानन्द परमहंस के सूर्यविज्ञान के रहस्य को नहीं समझ पाये। अफ्रीका के कबीलों में घायल के आधे शरीर को मिट्टी में आधा गाड़कर ठीक करते हैं। घायल के घाव भरना पहेली बना है। होमियोपैथी एवं आयुर्वेद में हृदय की रक्तवाहिनी में अवरोध होने पर देवराज इन्द्ररूपी वृक्ष अर्जुन के सत् से बिना शल्य चिकित्सा इलाज करते हैं। इसीतरह वृद्धावस्था में मूत्र सम्बन्धित प्रोस्टेट का अचूक इलाज बगैर शल्य चिकित्सा आयुर्वेद–होमियापैथी में है।

यह विडम्बना है कि नई ऐलोपैथी पद्धति में किसी भी शरीर अंग में संक्रमण होने पर उसे काट कर हटाने का नया सिलसिला तेजी से शुरू हुआ है। इसका दूसरा अर्थ यह है कि रूपए खर्च करो और संक्रमित अंग निकलवा दो अथवा दूसरा अंग प्रत्यारोपण करवा लो। एक समय बच्चों के गले में टांसिल होने और अधिक जुकाम होने पर शल्य चिकित्सा करवाना आम था। वर्तमान में ऐसा नहीं है।

यह समझना जरूरी है कि मानवीय शरीर 1290 अरब कोषाणुओं का निवास है। ऐलोपेथी के चिकित्सों ने स्वीकारा है कि कृत्रिम रूप से मानवशरीर की संरचना में विश्व की समूची सम्पदा से अरबों गुना धन

चाहिए। चिकित्साविदों का कयास ही है कि आमतौर पर मानवीय मस्त्ष्कि की 2 से 4 प्रतिशत मेधा उपयोग में ली जा रही हैं। प्राचीन मनीषा में प्रत्येक व्यक्ति के आभा मण्डल का विवरण मिलता है। साइन्सदाओं ने अब माना कि आभा मण्डल (औरा) होता है। प्राचीन मनीषा में शरीर को स्वतन्त्र अस्त्ित्ववाले अणु परमाणुओं का ढ़ेर कहा गया। आयुर्विज्ञानविदों ने वर्षों की शोध से माना कि 1290 अरब कोषाणु स्वतन्त्र रूप से कार्य करते हैं। मानवीय शरीर के अलग–अलग के स्थान पर सामूहिक समन्वय में काम करते हैं। सभी मस्त्ष्कि की कमान में चलते हैं। शरीर में जीवाणु कोषिकाऐं अनुपात 10 में हैं।

इसीलिए उपचार का बुनियादी सिद्धान्त समूचे शरीर की पीड़ाहरण का है। इसे अमेरिका के आयुर्विज्ञानविदों ने प्रोफेसर रूस्त्म राय के निरन्तर अभियान के कारण स्वीकारा। इस सिद्धान्त में शरीर के किसी भी एक अंग को एकाकी कर विचार नहीं किया जा सकता है। सम्पूर्ण शरीर की गत्यात्मका को जाने बिना किसी भी एक अंग के बारे में निर्णय नहीं लिया जा सकता है। इसलिए आयुर्विज्ञान में भविष्यवाणी के लिए कोई जगह नहीं होनी चाहिए। क्या यह ज्योतिष, हस्त्रेखा, मस्त्करेखा विज्ञान, अंकशास्त्र आदि की भविष्यवाणी की तरह नहीं है ? सूर्यविज्ञान में भी जन्मकुण्डली में ग्रह नक्षत्र चाल की गणना से जातक के बारे में भविष्यवाणी की जाती है। ऐसे में आयुर्विज्ञान के डाक्टरों द्वारा शीर्ष महान्ायिका को भविष्य में कैंसर की 50 प्रतिशत सम्भावना की भविष्यवाणी के आधार पर अण्डाशय काटना क्या है ? यह कैंसर की आधी–आधी सम्भावना का सच क्या है ?

यह प्रश्न उठता है कि आयुर्विज्ञान के डॉक्टर किन–किन अंगों में भविष्य में कैंसर की सम्भावना की भविष्यवाणी करेंगे और सुश्री ऐंजलिना जॉली या अन्य कितने अंग काटकर बाहर फिकवायेंगी ? इसका क्या अन्त है ? यहाँ हम जान लें कि विश्व में कैंसर की महामंहगी दवाइयों का कुल कारोबार कितना है ? विश्व में कैंसर दवाओं का 1.72 लाख करोड़ डालर का कारोबार है। सभी रोगों में कैंसर का उपचार सबसे खर्चीला और शल्य चिकित्सा, किमोथैरेपी देश के चुनिन्दा शहरों तक सीमित है। किमोथैरेपी में भारतीय हिमालय कैलास क्षेत्र थूनेर वृक्ष का रस काम आता है। देश और दुनिया में कैंसर दवाओं का

व्यवसाय सुरसा के दानवी मुँह की तरह महाविशाल फैलता जा रहा है। चिकित्सा सेवा के बाजारीकरण ने केंसर एवं हृदय रोग के खर्चे को नये पंख लगाए हैं। यह बाजारीकरण का ही मायालोक है कि गर्भवति महिलाओं के शल्य चिकित्सा से शुभ मूहर्त पर बच्चा जन्मने का चलन शुरू हुआ है। यानी बाजारीकरण ने गर्भवान नारी की प्रसव पीड़ा को शुभ समय के आगे समर्पित कर दिया ?

यह कहा जाता है कि कैंसर लाइलाज नही ंतो उपचार बहुत ही असम्भव है। कैंसर की मंहगी दवाओं उपचार का क्या सही परीक्षण हो रहा है ? क्या बाजारीकरण के कारण कैंसर के प्राथमिक लक्षणों अथवा सम्भावनाओं के महाभय में मंहगीदवाओं की बिक्री में धन कमाना केन्द्रीय शक्ति बना है ? क्या मानवीय मन के भय को भुनवाना कारोबारियों को भली भांति आता है। पद्मभूषण हृदयरोगविद् प्रो.बी.एम. हेगड़े के अनुसार एमआईटी, अमेरिका से डाक्टरेट करनेवाले ऐरिक ड्रेक्सलर ने फ्यूचरिस्टिक इनकॉरपोरेशन शुरू की। जिसमें बिना माता पिता मानव रचने का शगूफा छोड़ा। इस कम्पनी में अरबों डॉलर का निवेश हुआ। प्रो. हेगड़े के अनुसार उस समय नोबल पुरूस्कार विजेता डॉ. रिचर्ड रूमाले ने चेतावनी दी कि श्री ड्रेक्सलर का दावा असम्भव है। परिणामतः एक दिन कम्पनी बंद हुई और अरबों रूपए डूब गए। इससे सिद्ध होता है कि विश्वभर में चिरयौवन, चिरजीवन दायिनी संजीवनी के लिए सभी लालायित हैं। यह हमें समझ लेना चाहिए कि कोई भी डॉक्टर आयुर्विज्ञानविद् द्वारा वर्तमान जांच पड़ताल से भविष्य में होनेवाले रोग की सटीक भविष्यवाणी पर अंग कटवाने की अंधी दौड़ भयानक विनाशकारी सिद्ध हो सकती है? ।।ऊँ।।

हजारों साल से भारत में
स्वादिष्ट खाने का रिवाज : कैलासी पकवान

प्राचीन काल से भारत में स्वादिष्ट खाने–पकवान बनाने की परम्परा है। लगभग वेदीक काल से भारतीय खाने की हजारों बेहतरीन किस्मों का विवरण मिलता है।

प्राचीन भारत की सभ्यता संस्कृति के अध्ययन के अनुसार वेदीक काल में ही भारतीयों ने पकवान, व्यंजन, सब्जी और खाने की पाक विधियां विकसित् कर ली थी। प्राचीन भारत की सभ्यता संस्कृति के प्रकांड़ विद्वान दामोदर धर्मानंद कौशम्बी ने महर्षि याज्ञवल्कय, वसिष्ठ, विश्वमित्र, अपस्त्म्भ, बृहस्पति, अगस्त्य, बौद्धायन आदि द्वारा पाक विधियों का उल्लेख किया है। वेदीक देवशास्त्र पाक विधियों के कुबेरी खजाने से साक्षात्कार करवाता है। मोलेला की आहड़ संस्कृति और मैक्सिकों की समकालीन माया मय संस्कृति में भोजनशालाओं का चौंकानेवाला ब्योरा मिलता है। सिंधु घाटी की हड़प्पा–मोहन जोदड़ो–कालीबंगा सभ्यता में खाद्यान्नों और सामिष के विभिन्न खाद्य सामग्री के साक्ष्य मिले हैं। विश्व में शल्य चिकित्सा के पितामह सुश्रुत और आयुर्वेद के जनक धन्वन्तरी ने खाने के बारे में प्रकाश हाला है।

प्रागवेदीक और वेदीककाल में गण और कबीलों में नाना प्रकार के खाने बनाने का रिवाज था। प्राचीन भारत के गणों और कबीलों के विद्वानों ने वनस्पति के विषदज्ञान के आधार पर वृक्षों, पौधों, घासों आदि के फलों, पत्तों, तनों और जड़ों के रसायनिक तत्त्वों के प्रयोग की विधि तलाश ली थी। गोपालक संस्कृति में वसिष्ठ, गौतम, विश्वमित्र, बौद्धायन और अगस्त्य ने अपने सूत्रों में गाय और सांड़ को मारने और उनका मांस खाने को प्रतिबंधित किया। शैव, वैष्णव और दूसरे मतावलम्बियों ने गौमांस को अस्वास्थकर और अहितकर मानकर इसका त्याग किया। अल बरूनी ने लिखा है कि 11 वीं शती तक शैव और वैष्णवों में सख्ती से इसकी पालना होती रही। मुगलकाल में बादशाह अकबर ने भी इसकी पालना की। आइने अकबरी में इसका उल्लेख मिलता है। बादशाह जाहंगीर ने साफ–साफ फरमान जारी किया कि गौमांस नहीं खाना चाहिए। सनातन धर्मियों और नास्त्किों दोनों में ही यह निषेध रहा। प्राचीन काल से चली आ रही मान्यताओं के ही कारण देश की जनसंख्या में गुजरात में 69 प्रतिशत, राजस्थान में 60 प्रतिशत, पंजाब में 54 प्रतिशत, उत्तरप्रदेश में 50 प्रतिशत, मध्यप्रदेश में 45 प्रतिशत,

कर्नाटक में 34 प्रतिशत, महाराष्ट्र में 30 प्रतिशत, तमिलनाडु में 21 प्रतिशत, आंध्रप्रदेश में 10 प्रतिशत शाकाहारी हैं। उल्लेखनीय है कि देश में बौद्धों का बड़ा वर्ग निरामिष है। साथ ही जैन समुदाय में 99.5 प्रतिशत शाकाहारी हैं। यह बात दीगर है कि समुद्रतटीय और महान्दी तटीय इलाकों में मछली को जल तरकारी जलतोरी कहकर पुकारते हैं।

''मनुस्मृति'' और ''धर्मसूत्रों'' में तीन तरह के भोजन–नैवेद्य का चित्र लिखित वर्णन मिलता है। भोजन को सात्त्विक (सादा और सुविचार देने वाला), राजसी (पकवान और व्यंजन युक्त गरिष्ठ खाना–''जिसका प्रभाव दोनों तरह का हो सकता है'') और तामसिक (यह दुष्प्रवृत्तियों को उभारनेवाला माना गया है।) भागों में बांटा गया। धर्म सूत्र और मनुस्मृति में रसोई में 54 प्रकार के मांस का प्रयोग नहीं करने का निर्देश है। उनका शरीर और मन दोनों पर खराब प्रभाव पड़ता है। ''ऋग्वेद'' में धान (चावल), उड़द, मूंग, मसूर, ककड़ी, अवका, अंदिका सहित बहुत ही सब्जियों का जिक्र मिलता है। ऋग्वेद में आम्र (आम), अंगूर आदि सहित दूसरे फलों की सूची दी गई हैं। इसके अलावा काली मिर्च, इलायची, लौंग, सरसों, राई आदि का इस्त्ेमाल हो रहा था।

वेदीक ऋचाओं के अनुसार देवताओं को स्वादिष्ट खाने और पकवान बहुत पसंद रहे। देवताओं में ऊर्जा दायक शीतल पेयों और मधु (शहद) पीने का प्रचलन रहा। इन पेयों में सोम की सबसे अधिक मांग थी। वेदीक संस्कृति में शाकाहार के साथ मांसहार का भी चलन था। ''रामायण'' में दण्ड़कारण्य खण्ड़ में भगवान् श्रीराम को शबरी द्वारा बेर खिलाने का प्रसंग आता है। वास्त्व में श्रीराम को बेर बेहद पसंद थे। वन में श्रीराम, देवी सीता और लक्ष्मण के भोजन में रूचिकर फलों, सब्जियों, चावल आदि का उल्लेख मिलता है। हनुमानजी की लंका यात्रा के समय दुनियाभर के फूलों और फलों के वृक्षोंवाली अशोकवाटिका चमत्कृत करती है। श्रीलंकाधिपति दशानन रावण की पाकशाला की सुगंध भी भूख जगानेवाली थी। श्रीलंका में आसवों शीतल उत्तेजक पेयों की नायाब किस्में उपलब्ध थी। धर्मराज युधिष्ठिर जायकेदार खाने के शौकीन थे। उन्होंने 10000 पाक विशेषज्ञों की सेवायें ली। महाबली भीम लाजवाब रसोईये थे। इस हुनर के कारण अज्ञातवास में महाराजा विराट के यहाँ भीम रसोइये बने।

राजसी खाने में मधुरम (मिठाई), अमल, लवण, खट्टा, तीखा और कसाया होने आवश्यक माने गए। सश्रुत ने इसकी पुष्टि की है। ''भविष्यकथा'' में राजा श्रोणिक के भोजन के बारे में लिखा है कि सबसे पहले उदर की क्षुधा वृद्धि (पेट की भूख को जगाने वाले) फल परोसे जाते थे। इनमें आम, अंगूर, मौसमी, नारंगी, पपीता आदि सबसे पहले आते थे। राजा के भोजन मे फल से लेकर सभी बारी–बारी चीजें से एक बार आती थी। राजा और उनके परिजन एकबार में ही खाद्य सामग्री लेते थे। वर्तमान ''वन कोर्स मील'' इसकी ही देन है। आमतौर पर चौथे चरण में मिठाई–मधुरम आता था। प्राचीन काल से बीसवींशती तक अधिकांश भारत में भोजन में सर्वप्रथम भर पेट मिठाई खाने का रिवाज रहा। उत्तर से दक्षिण तक ''खीर'', तस्मई, पायसम् खाने का चलन था। खीर में सूखे मेवे, इलायची और केसर उसका स्वरूप निखारते थे। खीर ठंड़ी करके परोसत् थे।

प्राचीन काल से ही मोदक (लड्डू) फेनका आदि बनाये जाते रहे। राजभोज के अंतिम दौर से पहले दही के पेय और अंत में पापड़ आते थे। आयुर्वेदाचार्यों के अनुसार सूखा पापड़ मुँह में स्याहीचोस की तरह तैलीय तत्त्वों की सफाई करता था। रात्रि में दही का प्रयोग वर्जित था। एलोपैथी के भोजन विशेषज्ञों ने शोध अनुसंधान में पाया कि रात में दही नहीं पचता है। भोजन के बाद पान, सुपारी, इलायची, लौंग, जर्दा, आदि मुख शुद्धि के लिए पेश होते थे। ईसा से 1700 वर्ष पूर्व प्राचीन भारत के खाने के सुगंध देश–दुनिया को ललचाती रही। भगवान् के छप्पन भोग की परम्परा निराली थी।

ईसा से 300 वर्ष पूर्व चाणक्य के ''कौटल्य के अर्थशास्त्र'' और दूसरे आर्ष ग्रंथों में भारतीय भोजनों का तिलिस्म छिपा है। तमिल साहित्य में ईसा से 300 से 100 वर्ष पहले के भोजन और खानपान की आदतों का रोचक विवरण मिलता है। भगवान् बुद्ध और भगवान् महावीर ने ईसा से 300 वर्ष पहले भारत और दुनिया को शाकाहार का संदेश दिया। जैन शौधकों के अनुसार सूर्यास्त् तक खाना सर्वोत्तम है। वर्तमान में आयुर्वैज्ञानिक भी कहते हैं कि सुबह फल खाने सोने के समान है। दोपहर में यह चांदी, सांझ को ताम्बे और रात को लौहे के समान

फायेदमंद है। वास्त्व में सूर्य की अंतिम किरण तक भोजन करना वैज्ञानिक दृष्टि से पाचक है।

प्राचीन भारत में रात में हरी पत्तेदार सब्जी खाना निषेध रहा। तेज मिर्च मसालों और अधिक घी को बदहजमी करनेवाला माना गया। यह भी परम्परा थी कि बेमौसम की सब्जी नहीं बनायी जाए। दसवीं शती तक भारतीय समाज में श्रुति–स्मृति से क्या खाना, क्या नहीं खाना चलता रहा ? शक, हूण, यूनानी, मंगोल और दूसरों के हमले भारतीय खान पान को ड़िगा नहीं पाये। बल्कि महाराजा भर्तृहरि, महाराज विक्रमादित्य आदि के काल तक भारतीय पकवानों का स्वर्णकाल चला। कन्नड़ शिवाकोत्याचर्य (920 ईस्वी) और मानसोल्लसा (1130 ईसवी) में दक्षिण की इड़ली का उल्लेख मिलता है। यह इड़ली चावल और उड़द मूंग की दाल को भाप में बनाकर परोसत् थे। आश्चर्यजनक यह है कि तेलगू और कन्नड़ दोनों के शाकाहारी खानपान उत्तर भारत में मेल खाते हैं। यह बात अलग है कि चीनी यात्री जुवान झंग (सातवीं शतीं) लिखते हैं कि इण्डोनेशिया के हिन्दू राजा (800–1200 ईस्वी) में भाप से पकाकर बननेवाली इड़ली के जन्मदाता हैं। तमिल साहित्य की मान्यता है कि ईसा पूर्व 300 वर्ष और तीसरी ईसवी के बीच डोसाई और बड़ा खाने का चलन था। पेयों में तमारिंड और नेल्लीकाड़ लोकप्रिय थे।

भारतीय खाने में जेली चीन की देन रही। पुर्तगाल और दक्षिणीय अफ्रीका ने भारतीय रसोई को नया रूप दिया। पुर्तगाली आलू, टमाटर, मूंगफली, मक्का, पपीता, राजमा, चिकू, काजू आदि साथ लाए। अरब देशों से ज्वार, बाजरा आदि लाये। माने या नहीं माने छैना और पनीर भी विदेशों से भारत आया। छैने के रसगुल्ले, खीर मोहन, राजभोग, मोदक, सीता भागे, पंतुआ, छैना, पूहा (डॉ. के.टी. आचार्यः इण्डियन फूड) आदि की मिठाई बनने लगी। आईने अकबरी (सोलहवी शती) के अनुसार मुगलों ने खिचड़ी, पालक साग, बिरयानी, समौसा मुगलकाल में ही खाया। मुगल बादशाह जहांगीर ने खोया एवं पिस्त्ा, काजू, बादाम, केसर आदि की कुल्फी ''फलूदा'' भारतीय खाने में जोड़ा। चीनी यात्रियों ने लीची फल भारत को दिया। वे ही सोयाबीन साथ लाए। ब्रिटिश, पुर्तगाली, डच, फ्रांसीसी आदि ने भारतीय खाने का पश्चिमीकरण करने की आधारशिला रखी। परन्तु भारतीय समाज ने यूरोपीय खाने को अधिक

स्वीकार नहीं किया। ब्रिटिश राज का एक मात्र अभूतपूर्व देन ''सेब'' फल है। भारत में 100 ईस्वी में स्थानीय किस्म के सेब काश्मीर में उपलब्ध (आमरी, तरहली और महाराजा किस्म) थे। अंग्रेजों ने उन्हें नया स्वरूप दिया।।ऊँ।।

कूटनीति के पुरोधा : कैलास पक्षधर नवचाणक्य राजा बीरबर ने भारत को एक सूत्र में पिरोया

मध्यकाल में आचार्य कौटल्य विष्णुगुप्त चाणक्य के नव अवतार ब्राह्मण राजा महेषदास वीरवर–वीरों के वीर बीरबल बने। राजा बीरबल ने कूटनीति एवं राजनयन के कौशल से मुगल बादशाह अकबर के साम्राज्य को बिना रक्तपात फैलाया।

बादशाह अकबर के नवरत्नों में प्रमुख राजा बीरबल उद्भट विद्वान एवं कवि, कूटनीतिज्ञ, अद्वितीय योद्धा, धर्म आध्यात्म के महापण्डित और कुशल प्रशासक थे। यद्यपि आमतौर पर राजा बीरबल की हाजिर जवाबी और चतुर सुजानी के किस्से मशहूर हैं। मुन्तखाब उल तवारीख के रचयिता शाह अब्दुल कादिर बदौनी के अनुसार राजा बीरबल की कूटनीति के कारण हिन्दू राजा बादशाह अकबर का खुला विरोध करके भी न केवल जीवित रहे बल्कि साम्राज्याधीन राजा रहे। सुदूर केरल मे मालाबार पर्वतमाला के काजली (वर्तमान कोच्ची, कोचिन) के राजा के राजदूत को बादशाह से भेंट करवाने में राजा बीरबल की अहम् भूमिका का वर्णन मिलता हैं। काजली का राजदूत लम्बे समय तक बादशाह से साक्षात्कार करने में असफल रहा था।

इतिहासकारों के अनुसार राजा बीरबल के राजनयन कौशल की जानकारी विरलों को ही है। सन 1576 में राजा बीरबल की अग्नि परीक्षा डूंगरपुर मुहिम थी। डूंगरपुर के राजा की राजकुमारी तिलोत्तमा सुन्दरी थी। डूंगरपुर नरेश राजकुमारी के बादशाह अकबर से विवाह प्रस्ताव को लेकर अनमने थे। डूंगरगढ़ उस समय महत्वपूर्ण राजपूत शासित् रियासत् थी। बादशाह विवाह कूटनीति के तहत डूंगरपुर से सम्बन्ध जोड़कर

साम्राज्य की नींव मजबूत करने के इच्छुक थे। अबुल फजल के अनुसार आमतौर पर राजपूत राजा भी बादशाह से रिश्तेदारी के इच्छुक रहते थे। ऐसे में राजा बीरबल और राजा लूणकरण को डूंगरपुर राजनयिक अभियान पर भेजा गया। प्रकारान्तर में डूंगरपुर की अनिद्य सुन्दरी सलतनत की रानी बनी। स्मरण रहे कि बादशाह अकबर की प्रमुख रानी आमेर राजा मानसिंह की बहिन जोधाबाई थी।

राजा बीरबल के सामने जटिल समस्या मध्य भारत में रीवा के दबदबेदार राजा रामचन्द्र को लेकर पैदा हुई। रीवा राजा के दरबार में राजा बीरबल रह चुके थे। रीवा राजा रामचन्द ने बादशाह अकबर की अधीनता स्वीकार करने से साफ मना किया। अकबरनामे में लिखा है कि बादशाह की सेना ने ख्वाज अब्दुल मजीद आसफखान के नेतृत्व में मार्च 1563 को रीवा में लड़ाई की। युद्ध में हार के बाद राजा रामचन्द ने अभेद्य किले बान्धू को ठिकाना बनाया। बान्धू का किला उस समय देश का सबसे अजेय और शक्तिशाली माना जाता था। अकबर की सेना किले को घेरे थी। आसफखान राजा रामचन्द को दण्ड देने और सबक सीखाने को तुला था। राजा बीरबल का तर्क था कि यदि रीवा नरेश रामचन्द अकबर को बादशाह के रूप में स्वीकारें तो दूसरे राजपूत राजाओं पर अच्छा प्रभाव होगा। अकबर की छवि हिन्दू विरोधी नहीं बनेगी।

दरअसल राजा रामचन्द और आसफखान में झगड़े की शुरूआत गाजीखान तन्नुरी को लेकर हुई। रीवा राजाने तन्नुरी को शरण देकर अकबरी सेना को ललकारा। राजा बीरबल अपने पुराने आश्रयदाता राजा रामचन्द को भी जीवित रखना चाहते थे और यथावत राजापद भी रखवाने के पक्षधर थे। दूसरी तरफ, अपने मित्र बादशाह अकबर का सम्मान एवं साम्राज्य भी सर्वोपरि मानते थे। अन्त में शाही आदेश जारी हुआ कि राजा रामचन्द्र बादशाह के सम्मान में कान में बाली धारण करेंगे और वे अकबर के साम्राज्य का भाग मानकर शासन करेंगे। परिणामतः आसफखान गुस्से में खाली हाथ मनसबदारी में लौटा। बीरबल की कूटनीति से राजा रामचन्द बचे रहे।

सन् 1579 में इटावा के योद्धा भूपत चौहान को लेकर बवाल उठा। कोकालटाश के जागीरदार ने भूपत चौहान को बादशाह के विरूद्ध

विद्रोह छोड़कर पुनः बंगाल लौटने को समझाया। अकबरनामें में लिखा है कि भूपत चौहान राजा बीरबल और राजा टोडरमल की कथित शरण में आया। चौहान ने दोनों से बादशाह अकबर से उसे माफी दिलवाने की गुहार की। चौहान का मामला न्यायालय तक गया और उसे पेश होने को कहा गया। राजा बीरबल ने विद्रोही चौहान को न्यायालय में हाजिर होने को रजामंद किया। दिसम्बर, 1579 में स्थिति बिगड़ने से भूपत चौहान मारा गया। यह स्पष्ट नहीं है कि इस प्रकरण में राजा बीरबल की कूटनीतिक भूमिका क्या थी ?

सन् 1584 में बादशाह के इलाहबाद दौरे के समय पन्ना के राजा ने शाही दरबार में शामिल होना गंवारा नहीं समझा। सो शाही सेना को कूंचकर पन्ना को कब्जे में लेने का आदेश मिला। पन्ना के राजकुमार ने स्वयं पेश होकर सफाई दी कि राजा साहब की बादशाह के अपमान की कोई मंशा नहीं है। वे बीमार हैं। बादशाह ने राजा बीरबल और चौबीसवें कोकालतास को पन्ना राजा लाने के लिए रवाना किया और बादशाह सीकरी लौट गए। फरवरी 1584 में पन्ना राजा ने बादशाह को 120 हाथी, कुछ मूल्यवान लाल रत्न, 50000 चांदी के कलदार रूपए भेंट किए। बादशाह ने प्रसन्न होकर राजा की सीमाओं को मुक्त कर राज वापस लौटाया। इसी प्रकार बीरबल ने ओरछा के राजा इन्द्रजीत सिंह पर एक करोड़ रूपए जुर्माना और राजनर्तकी राजकोकिला राय परवीन को भेजने को कहाँ राजा बीरबल के शिष्य एवं प्रिय कवि केशवदास ओरछा दरबार में थे। राजा बीरबल ने कवि केशवदास के अनुरोध पर बादशाह को एक करोड़ रूपए का जुर्माना माफ करने को मनायें। ओरछा की नगरवधु राय परवीन शाही दरबार में आई। इतिहासकारों ने राय परवीन प्रकरण को अधिकारिक नहीं माना।

चतुर सुजान बीरबल की कूटनीति के लिए विलक्षण योद्धा मसूम खान को समझाने की मुहिम भी खतरों से खाली नहीं रही। एक समय मसूम खान राजा टोडरमल के अधीन काम करता था। बाद में मसूम खान ने जौनपुर में विद्रोह का बिगुल बजाया। इसी समय पंजाब पर मुहम्मद खान ने कब्जा किया। अकबर ने उसे समझाने को पेशराउ खान को भेजा। मसूम खान फरनखुदी को मनाने की खातिर अवध के सूबेदार का ओहदा दिया गया। राजा बीरबल और कुली खान महराम दोनों को

मसूम ने टका सा जवाब दिया। तब बादशाह अकबर ने मसूम का हृदय परिवर्तन करना चाहा। सन् 1581 में मसूम अयोध्या भाग गया। बादशाह की माताश्री बेगम हमीदा बानू की दया से मसूम को माफी मिली। यह माना जाता है कि अकबर ने रंग बदलनेवाले मसूम को सिकन्दर कलमज के हाथों मौत के घाट उतरवाया। इसी वर्ष शाह मंसूर की फांसी भी कूटनीतिक दावपेंचों भरी रही। शाह मंसूर दरबारी षड़यन्त्रों का शिकार रहा। कुछ मुगल सरदारों ने बीरबल, टोडरमल का नाम इस कांड में घसीटने की नाकाम कोशिश की। बादशाह अकबर ने प्रत्येक कूटनीतिक अभियान पर केवल राजा बीरबल को ही भेजा। राजा बीरबल अधिकांश में सफल रहे। उनका प्रयास बिना लड़ाई समझौते का रहता था। परिणामतः मौर्यकालीन साम्राज्य के अनुरूप अकबर का भारतीय साम्राज्य फैला। राजा बीरबल ने बादशाह से कैलासपति के कैलास का अभियान भी चलवाया।।ऊँ।।

सूर्य विज्ञान की दैविक शक्ति से शव में प्राण फूंकनेवाले कैलास क्षेत्र में दीक्षित विशुद्धानन्द परमहंस

पश्चिमी तिब्बत (कैलास क्षेत्र वाले) की बर्फ की घाटी में गोपनीय योगिक मठ ''ज्ञानगंज'' में दीक्षित महायोगी विशुद्धानन्द परमहंस ने विदेशी शोधक श्री पॉल ब्रिण्टन (सर्च ऑफ सीक्रेट इण्डिया के लेखक) के सामने इतिहास रचा। स्वामी विशुद्धानन्द परमहंस ने स्फटिक के लैंस से सूर्य की किरणें मृत गौरय्या के शव पर डाली और मंत्र का उच्चारण किया। अप्रत्याशित रूप से मृत गौरय्या ने पर फड़फड़ाये और उड़ गई। विदेशी शोधक की आंखे फटी रह गई।

वैसे बाबा विश्वनाथ की नगरी वाराणसी में स्वामी विशुद्धानन्द परमहंस ''गन्धी बाबा'' के नाम से मशहूर थे। स्वामी विशुद्धानन्द स्फटिक से सूर्य की किरणें प्रवाहित कर मनचाही गन्धवाला फूल हवा में पैदाकर चमत्कृत करते थे। स्वामी विशुद्धानन्द के अनुसार सूर्य की किरणों का

विश्लेषण सीखना पहली सीढ़ि है। किरणों–रश्मियों को पहचानकर प्रयोजन के अनुसार उन्हें बाहर लाना होता है। सूर्य प्रकाश किरण विभाजन किया जाता है। सूर्य की सप्त रश्मियों का परस्पर मिलन पद्धति का ज्ञान अर्जन करना होता है। रश्मियों को आतशी–मैग्निफाईंग शीशे से उसमें विद्यमान पदार्थो का संयोजन वांछित मात्रा में करने से इच्छित वस्तु उत्पन्न होती है। परमहंस के अनुसार सूर्य विज्ञान पूरी तरह वैज्ञानिक सिद्धान्त पर आधारित है। इसके अलावा वे योगिक क्रिया से असाधारण आकर्षण क्षमता से वायु से बेशकीमती रत्न, मणियाँ, सोने के जेवरात, मोती की माला, सभी तरह की मिठाई, पारिजात, केवड़ा, गुलाब आदि फूल, दुर्लभ दवायें आदि मंगवाने में समर्थ थे। उनके शरीर से दैविक सुगन्ध आती थी।

स्वामी विशुद्धानन्द परमहंस की मान्यता थी कि सूर्य की किरणों में सभी तत्त्वों के उपादान मौजूद रहते हैं। सूर्य विज्ञानज्ञाता किरणों में सभी पदार्थो के कणों को देखने में समर्थ होता है। सूर्यविज्ञानविद अपने कौशल से एक पदार्थ को दूसरे पदार्थ में परिवर्तित कर सकता है। इसमें विश्व की कोई भी जिन्स दूसरी वस्तु में अथवा मनवांछित वस्तु में परिवर्तन का महाद्वार हमेशा खुला रहता है। स्मरण रहे कि वाल्मीकि रामायण के युद्ध कांड में महामुनि अगस्त्य ने रणभूमि में मर्यादा पुरूषोत्तम राम को सूर्य की शक्तियों से साक्षात्कार करवाया। अगस्त्य मुनि ने ''आदित्यहृदय द्वारा सूर्य की रश्मियों में छिपी हुई शक्तियों और मंथन का रहस्य समझाया।'' गोपनीय योगिक मठ ज्ञानगंज में चन्द्र विज्ञान, नक्षत्र विज्ञान, वायु विज्ञान, क्षण विज्ञान, स्वर विज्ञान, शब्द विज्ञान आदि प्राचीन विद्याओं की शिक्षा दी जाती रही। ज्ञानगंज में परमहंस भृगुरामजी, परमहंस श्यामानन्दजी परमहंस, श्री नीमानन्द परमहंस से योग और विज्ञान की शिक्षा श्री भोलानाथ (विशुद्धानन्द) को मिली। ज्ञानगंज में हरिहर बाणलिंग के सामने बैठकर विद्यार्थियों को साधना करनी होती थी। ज्ञानगंज सहित दूसरे अदृश्य मठों के प्रमुख योगिराजाधिराज महातपा कभी कभी आश्रम में आते थे। श्री श्यामानन्द परमहंस ने श्री भोलानन्द (विशुद्धानन्द) को स्वर विज्ञान, चन्द विज्ञान, सूर्य विज्ञान, नक्षत्र विज्ञान, वायु विज्ञान आदि में दीक्षित किया।

वैसे श्री भोलानाथ का जन्म 11 मार्च, सन 1856 में पश्चिम बंगाल के बर्दवान के बण्डूल गांव में श्री अखिलचन्द्र चट्टोपाध्याय के यहाँ हुआ। बचपन से श्री भोलानाथ चट्टोपाध्याय शिवभक्त थे। चौदह पन्द्रह वर्ष की आयु में पागल कुत्ते के काटने से श्री भोलानाथ के शरीर में विष फैल गया। वे एक दिन सांझ को गंगा में प्राण त्यागने गए। गंगा में त्रिकालज्ञ सन्यासी तिब्बती महायोगी निमानन्द परमहंस ने असाधारण किशोर श्री भोलानाथ को बचाया। प्रकारान्तर में निमानन्द परमहंस के साथ श्री भोलानाथ तिब्बत के मध्य पथ स्थित ज्ञानगंज में ''आकाश मार्ग'' से हवा में तैरते हुए गए। गुरुदेव महातपा योगिराजाधिराज की अनुमति से श्री भोलानाथ का नाम श्री विशुद्धानन्द रखा गया और योग–सूर्य विज्ञान प्रचार के लिए हरिहर बाणलिंग भी मिला।

आश्चर्यजनक यह है कि स्वामी विशुद्धानन्द अपने शरीर के किसी भाग से स्फटिक शिव लिंग निकाल कर दिखाते थे। उनके शरीर में 100 से अधिक स्फटिक एवं मस्त्क तक में स्फटिक शिवलिंग थे। योग की शिक्षा के समय अपने शरीर से हृदय बाहर लाकर उसकी क्रिया समझाते थे। वे कहते थे कि कोई भी वस्तु नष्ट नहीं होती है। जैसे उन्होंने कागज को जलाकर राख बनायी। फिर राख से कागज बनाया। पन्द्रह फरवरी, 1933 को वाराणसी में साधना के लिए उन्होंने ''श्रीनवमुण्डी सिद्धासन'' की स्थापना की। स्वामी विशुद्धानन्द के अनुसार आसन पर बैठकर शुद्ध मन से मंत्र, स्तोत्र पाठ से आत्मकल्याण, सर्वकल्याण होना निश्चित है। महामहोपाध्याय पं. गोपीनाथ कविराज के अनुसार वाराणसी के क्वीन्स महाविद्यालय के भौतिकी के प्रोफेसर रायबहादुर अभयचरण सान्याल ने प्रयोगशाला में काष्ठ को ग्रेनाइट में बदलने का अनुरोध गन्धी बाबा से किया। स्वामी विशुद्धानन्द स्फटिक शीशे को लेकर प्रयोगशाला पहुंचे। सूर्य की रश्मियों से लकड़ी लाल होकर जलने लगी और ग्रेनाइट में परिवर्तित हुई। वाराणसी के अपने निवास से वे ज्ञानगंज की माताओं के लिए सामग्री आकाश मार्ग से भेजते रहते थे। शक्ति पीठ कामख्या देवी में पूजा अर्चना के बाद स्वामी विशुद्धानन्द ने कुमारी को भोजन करवाने की इच्छा की। भोजन बनने के बाद कोसों तक कुमारी उपलब्ध नहीं थी। इस पर कामख्या के वरिष्ठों ने हंसी उड़ाना शुरू किया। गन्धी बाबा द्वारा दिये समय पर अचानक

कुमारी भोजन के लिए प्रकट हुई। अक्सर स्वामी विशुद्धानन्द सूर्य विज्ञान, योग की अद्‌भुत शक्तियों के प्रदर्शन के बाद महाशक्ति की प्रतिनिधि कुमारियों को भोजन करवाना नहीं चूकते थे। वे इसे अनाधिकारियों को विभूति प्रदर्शन का गुप्त प्रायश्चित मानते थे।

स्वामी विशुद्धानन्द के अनुसार ज्ञानगंज योगाश्रम का प्राचीन नाम इन्द्रभवन था। ज्ञानगंज में परमहंस, योगी, भैरवी, त्रिकालदर्शी सिद्ध आदि रहते थे एवं हैं। ज्ञानगंज प्रमुख योगिराजाधिराज महर्षि महातपा हिमालय की गुफा के राजराजेश्वरी देवी की प्रतिमा के साथ साधना में लीन रहते थे और हैं। उनकी आयु उस समय लगभग 1500 वर्ष से अधिक थी। महातपा के प्रमुख शिष्य ज्ञानानन्द परमहंस रहे। उनकी उम्र भी लगभग 900 वर्ष रही। मूलतः संस्कृत में गंज शब्द का अर्थ रत्नों का भण्डार है। अतः ज्ञानगंज ज्ञानरूपी रत्नों का भण्डार रहा। काश्मीर परम्परा के कारण उनकी देह में नीलोत्पल, चन्दन, अगरू, तुलसीमंजरी, कपूर, कस्तूरी, पद्मम की दिव्य गंध आती रही। यही सुगंध उनके शूक्ष्म शरीर के आने का आभास करवाती थी।

गन्धी बाबा के अनुसार योगबल से सृष्टि और विज्ञान बल से सृष्टि में मूलभूत अन्तर है। योग इच्छाशक्ति का पूर्ण विकास है। यह ज्ञान के बिना सम्भव नहीं है। ईश्वर उपासक है और महाशक्ति उपास्य है। महामहोपाध्याय पं. गोपीनाथ कविराज को मुंबई के अस्पताल ने असाध्य रोग बताया। चिन्ताग्रस्त् कविराज स्वामी विशुद्धानन्द से मिले। गन्धी बाबा ने बिना कुछ पूछे कविराज के सीने पर हाथ फेरा। कविराज असाध्य रोग से मुक्त पाया। रामनगर के मुख्य न्यायधीश श्री सूरज प्रकाश मुशरानी ने ज्ञानगंज की कुमारियों के लिए सौ सौ रूपए के पाँच नोट गन्धी बाबा को दिये। गन्धी बाबा ने उन्हे लिफाफे में रखकर कहा भेज देता हूँ। उन्होंने लिफाफे को दबाया और लिफाफा गायब हुआ। लगभग पाँच मिनट बाद लिफाफा आकाशी छत से गिरा। गन्धी बाबा ने कहा कि अपना लिफाफा घर ले जाओ। श्री गौरीचरण राय ने गन्धी बाबा से कांचन पुष्प की चर्चा की। लेकिन यह कांचन फूल सुगन्ध रहित था। गन्धी बाबा ने फूल हाथ में लिया और दुर्लभ सुगन्ध महकने लगी। स्वामी विशुद्धानन्द के अनुसार प्रारब्ध में निश्चित उम्र को कुछ समय के लिए ही बढ़ाया जा सकता है। उन्होंने राजा उद्धवनारायण सिंह के आग्रह पर

रामायण, महाभारत पौराणिक ग्रन्थों में वर्णित अग्निबाण प्रचण्ड़ वर्षा का साक्षात प्रदर्शन दिखाया। भक्तों के संशय पर स्वामी विशुद्धानन्द ने अपनी नाभि से कमल प्रकट कर पौराणिक कहानियों के वर्णन की सच्चाई प्रदर्शित की। उनके अनुसार सदाशिव की नाभि से निकले कमल पर विराजमान महादेवी त्रिपुरसुंदरी कथा सत्य है, स्वयं नाभि से दिव्य सुगंधित कमल पुष्प निकालकर दिखाया। आज भी वाराणसी में स्वामी विशुद्धानन्द की समाधि को छूने मात्र से बिजली के करंट की अनुभूति होती है। ऊँ

हिमालय में दीक्षित राजगुरु श्रीविद्यानाथ ओझा को ब्रिटेन की महारानी ने कोर्निश अदा की

देश में राजगुरुओं–संत महन्तों की संस्था के प्रमुख राजगुरु एवं हिमालय में दीक्षित श्री विद्यानाथ ओझा को ब्रिटेन की महारानी ऐलिजाबेथ ने कोर्निश अदा की। राजगुरु ओझा के सम्पर्क में महान् तांत्रिक महोमहोपाध्याय गोपीनाथ कविराज, पुरी पीठ्म के पूर्व शंकराचार्य जगदगुरु नींरजनदेव तीर्थ, संस्कृत एवं वेद के प्रकाण्ड़ विद्वान डॉ. मधुसूदन ओझा, श्री मोतीचन्द्र शास्त्री आदि सहित प्रमुख अध्यात्मिक हस्त्यिँ रही।

यह बात पचास वर्ष पहले सन् 1961 की है। राजस्थान के पूर्व राजप्रमुख एवं जयपुर के महाराजा मानसिंह ने ब्रिटेन की महारानी ऐलिजाबेथ के सम्मान में शाही दरबार लगाया। राजपूताना, मध्यभारत, पश्चिमी भारत और उत्तर के राजाओं को न्यौता भेजा गया। ब्रिटेन की महारानी ऐलिजाबेथ का महाराजा मानसिंह ने ढूंढ़ाड़ के राजगुरु श्रीविद्यानाथ ओझा का परिचय अंग्रेजी में करवाया। अंग्रेजीदां महारानी ऐलिजाबेथ को राजगुरु शब्द समझ में नहीं आया। महाराजा मानसिंह

बार बार राजगुरु दोहराते रहे। अन्त में अंग्रेजी में राजगुरु को रोम के पोप (सर्वोच्च धर्मगुरु) के बराबर कहाँ इतना सुनते ही महारानी तीन कदम पीछे लौटी। नीचे झुककर राजगुरु श्रीविद्यानाथ ओझा को तीन बार कोर्निश अदा की। महारानी ऐलिजाबेथ ने फिर झुककर राजगुरु के हाथ को सम्मानपूर्वक चूमा। राजगुरु श्रीविद्यानाथ ओझा के अनुसार जिसके राज में कभी सूरज नहीं छिपता था, वह ब्रिटेन की महारानी ऐलिजाबेथ उनके कदमों में झुकी। यह किसी भी जम्बूदीप आर्यावर्त भारतखण्ड के धर्माचार्य के लिए सर्वोच्च सम्मान था। इसके ठीक विपरीत क्रिस्त्ान महारानी द्वारा हाथ चूमने के कारण राजगुरु ओझा को अपनी पुस्त्ैनी हवेली जाकर गंगाजल से शुद्धि के लिए स्नान करना पड़ा।

राजगुरु श्रीविद्यानाथ ओझा ने अत्यन्त गुप्त श्रीवीरशरभसालुव तंत्र के अनुष्ठान से जयपुर राजपरिवार का 800 मन सोना केन्द्रीय सरकार से वापस करवाकर मंत्रो–स्त्ोत्रों की चमत्कारी शक्ति का परिचय दिया। श्रीवीरशरभसालुवपक्षीराज आकाशभैरव का लिंगपुराण–शिवपुराण वर्णित महाविकराल चित्र बनाकर चन्द्रमहल के राजराजेश्वर शिव मंदिर में गोपनीय अनुष्ठान चला। श्रीवीरशरभसालुव का यह चित्र राजमहल के निज मंदिर में आज भी लगा है। जयपुर राजघराने के राजगुरु ओझा के अनुसार मंत्र, तंत्र, स्त्ोत्र, अनुष्ठान सर्वकल्याण–आत्मकल्याण के लिए ही किये जाने चाहिए। किसी भी यजमान के लिए ग्रह शांति, दशा शांति और मारण, मोहन, उच्चाटन आदि प्रयोग अनुष्ठानकर्ता और उसके परिवार के लिए हमेशा घातक रहती है। उनके बिहार में जगत जननी शक्ति स्वरूपा वैदेही सीता के मैथिल क्षेत्र से राजसिंहासन पर राजतिलक की आश्चर्यजनक मीठी कथा है। जयपुर के तत्कालीन राजगुरु का देहान्त तरूण अवस्था में हुआ। राजगुरु परिवार में दूर–दूर तक लड़के नहीं थे। ''अन्त में मिथिला में राजगुरु परिवार में भोजन बनानेवाले महाराज के नन्हे पुत्र श्रीविद्यानाथ को गोद लिया गया।'' लगभग पाँच वर्षीय श्रीविद्यानाथ ने अपने माता–पिता के साथ राजपूताना की राह पकड़ी। उस समय राजमहल में लम्बे चौड़े डील–डोल के स्वामी महाराजा माधोसिंह को श्रीविद्यानाथ का राजगुरु के रूप में तिलक करना था। राजसी पोशाक पहने नन्हा बालक राजसिंहासन पर सहमा बैठा। किन्तु विशाल शरीरवाले महाराजा माधोसिंह ने श्रीविद्यानाथ का पैर

खींचकर मस्त्क पर लगाया। महाराज बोले : छोटे सालिगरामजी ! अच्छा लाग्गे छै। उनके दादा प्रकाण्ड शिवभक्त थे। वो प्रतिदिन असंख्य मिट्टी के शिवलिंग बनाकर अभिषेक करते। गरीबी में उनके पुत्र रसोईये बने। पर भाग्यचक्र बदला। यों अपने दादा की शिवभक्ति से श्रीविद्यानाथ महाराज पुत्र से राजगुरु बने।

जयपुर में मैथिल राजगुरु का इतिहास चौंकानेवाला है। मिथिला से ओझा परिवार के प्रथम पुरूष के पुष्कर क्षेत्र में अर्चना के लिए जयपुर से गुजरते हुए सांगानेरी दरवाजे के बाहर तिबारे पर रूककर श्रीछिन्नमस्त्ा देवी की पूजा करने लगे। राजा के गुप्तचरों ने देखा कि साधक का सिर कटा हुआ था और पूजा चल रही थी। उस समय जयपुर द्वारा रणथम्भौर किले को अधीन करने का अभियान असफल हुआ था। जयपुर के महाराजा ने साधकजी से किले को विजित करवाने के लिए अध्यात्मिक अनुष्ठान की प्रार्थना की। इस चमत्कारी अनुष्ठान से अपने आप रणथम्भौर किले के किलेदार जयपुर के अधीन हुए। पुष्कर से लौटने पर जयपुर के महाराज ने ओझाजी से राजगुरु बनने की प्रार्थना की। किन्तु वे मिथिला से वापस लौटने की बात कहकर चले गए और वहाँ से हिमालय में चले गए। बाद में राजा ने उनके भाई को जयपुर का अध्यात्मिक राजगुरु बनाया।

आश्चर्यजनक यह है कि छोटी काशी जयपुर में कटा हुआ सिर हाथ में लिए महादेवी छिन्नमस्त्ा की भव्य प्रतिमा है। राजगुरु श्रीविद्यानाथ ओझा साम्बसदाशिव, श्रीछिन्नमस्त्ा और श्रीहनुमत उपासक थे। जयपुर के महाराजा मानसिंह छुटपन से श्रीविद्यानाथ के मित्र थे। वेद के विद्वान डॉ. मधुसूदन ओझा राजगुरु श्रीविद्यानाथ ओझा को आर्ष ग्रन्थों का ज्ञान देते थे। डॉ. मधुसूदन ओझा उम्र में बाल्य समान राजगुरु को लेने स्वयं आते। श्रीविद्यानाथ ओझा का सामना चांदी की टकसाल की हवेली में भैरू की सवारी से हुआ। एक दिन हवेली के रंगमहल में वाद्ययंत्रों से एक चुहिया और उसके तीन नवजात बच्चे निकले। चुहिया भाग गई और बच्चे निर्जीव पड़े रह गए। किशोर श्रीविद्यानाथ ने ब्राह्मण भोज करवाकर प्रण किया कि चुहिया के बच्चों के जीवित होने तक उपवास करेंगे। उन्होंने देवी भगवति की आराधना शुरू की। आधी रात को श्रीविद्यानाथ को नींद के झोंके में लगा कि देवी श्रीछिन्नमस्त्ा कह रही है

कि चुहिया के बच्चे जीवित हैं। श्रीविद्यानाथ ने देखा कि चुहिया आकार हिलते डुलते बच्चे ले जा रही है। यह देख श्रीविद्यानाथ रोने लगे कि देवी आई और अच्छी तरह दर्शन तक नहीं किया। बीसवीं सदी के अन्त में राजगुरु श्रीविद्यानाथ ओझा घुटनों में गठिया और बैडसोर के कारण दीवान पर ही लघुशंका करते। कान पर यज्ञोपवीत धारण किये राजगुरु ओझा संस्कृत के मंत्रपाठ से देश की पवित्र नदियों का आह्वान करते। तत्क्षण उनका रंगमहल महकने लगता। यह अवश्य है कि बयासी वर्षीय ओझा आगंतुकों की मेहमानवाजी के लिए कागज फाड़कर सौ रूपए का नोट बनाते थे। जिससे प्रियतमों को मावे की सर्वश्रेष्ठ मिठाई खिलवाते थे।

सबसे महत्वपूर्ण यह है कि राजगुरु ओझा तंत्र–मंत्र स्त्‌ोत्र की जानकारी लेनेवालों को ''वशीकृत'' करके बगैर कुछ बताये बैरंग लौटाते थे। उन्होंने तंत्र–मंत्र की सिद्धि की दीक्षा लेनेवालों को निराश ही किया। राजगुरु ओझा अक्सर कहते कि स्वार्थ के वशीभूतों को शक्ति रहस्य बताना भष्मासुर बनाना है। एकबार भारत पाकिस्त्‌ान युद्ध के समय राजस्थान के तत्कालीन राज्यपाल एवं संस्कृत के विद्वान डॉ. सम्पूर्णानंद ने मंत्र यज्ञ से पाक सेना को लौटाने के लिए राजगुरु ओझा को बुलवाया। राजगुरु ओझा ने इसकी एकमात्र शर्त सामवेद का शुद्ध पाठ करनेवाले वेदीक ब्राह्मणों को अनुष्ठान के लिए उपलब्ध करवाने की रखी। राजगुरु ओझा ने मुंबई प्रवास से प्रेरणा देकर संस्कृत से अनभिज्ञ लेखक से अन्तर्राष्ट्रीय वेद सम्मेलन के लिए अक्षर की शक्ति पर संस्कृत श्लोकों के साथ लम्बा लेख लिखवाया। राजगुरु ओझा के नब्बे के दशक में पन्द्रह दिन मल मूत्र बंद होने पर डाक्टरों ने कहा कि उनकी मृत्यु एक दिन में तय है। उस समय राजगुरु ओझा ने कहा कि वे डेढ़ वर्ष बाद ही देहत्याग देंगे। ठीक डेढ़ वर्ष बाद ही उनका देहान्त हुआ।

राजगरू श्रीविद्यानाथ ओझा अक्षर के रूपाकार, देवता, दैविक शक्तियों, वर्ण आदि के विलक्षण ज्ञाता थे। उनके अनुसार अक्षर ही परम ब्रह्म है। उनकी साधना का चमत्कार था कि उनके मुँह के दांत टूट चुके थे, पर आवाज यथावत प्रभावशाली रही। वे स्वयं को शंहशाह फकीर बताकर भौतिक भेंट–उपहार रूपये नहीं लेते थे। वे मानते थे कि ईश्वरीय प्रारब्ध में हस्त्‌क्षेप का उन्हें कोई अधिकार नहीं है। राजगुरु

श्रीविद्यानाथ ओझा ने संस्कृत और वेद, उपनिषद, ब्राह्मण, आरण्यक, पुराण से अनभिज्ञ लेखक से संस्कृत के गुप्त स्तोत्रों की गहन चर्चा की। पर देशभर में शिष्य बननेवालों को मुँह नहीं लगाया। दैविक शक्ति के नायक राजगुरु श्रीविद्यानाथ ओझा ने पच्चीस वर्ष पहले चिरनिंद्रा ली।।ऊँ।।

देश के क्रान्तिकारियों का
पहला अंतिम सम्मेलन दिल्ली की पुरानी जेल में

चौकें नहीं! देश में ब्रिटिश सरकार से बीसवीं शती के पॉच दशकों में छलावा बने शिखरीय क्रांतिकारियों का पहला, अंतिम सम्मेलन दिल्ली की पुरानी जेल में हुआ। विडम्बना यह है कि देश की स्वतंत्रता के बाद कांग्रेस एवं दूसरे दलों आदि ने क्रांतिकारियों को विधानसभा, लोकसभा, राज्यसभा का सदस्य तक का उम्मीदवार नहीं बनाया।

अखिल भारतीय क्रांतिकारी सम्मेलन से सन् 1954 में पहली बार दशकों सुर्खियों में रहे सेनानियों के चेहरे सार्वजनिक हुए। इस सम्मेलन के दो सचिव—अखिल भारतीय विद्यार्थी कांग्रेस के तत्कालीन राष्ट्रीय अध्यक्ष श्री दलजीत सेन महाजन अदल एवं श्री शैलेन्द्र पाठक थे। विद्यार्थी कांग्रेस राष्ट्रीय मुख्यालय शहादत के नामचीन गुरुद्वारा शीशगंज, फौव्वारा, चादंनी चौक, दिल्ली में एच.सी.सेन मार्ग पर था। वहीं सम्मेलन का शिविर दफ्तर चला। ब्रिटिश गुलामी में निर्वासित् सरकार गठन करनेवाले राजा महेन्द्र प्रताप अक्सर इस दफ्तर में आते थे। क्रांतिकारियों

ने अखिल भारतीय सम्मेलन के लिए ब्रिटिश सरकार की पुरानी जेल को स्थल चुना।

इसके पीछे क्रांतिकारियों का तर्क यह था कि पुरानी जेल के सामने फिरोजशाह कोटला में हिन्दुस्त्ान क्रांतिकारी सोशलिस्ट पार्टी के सर्वाच्च सेनापति अमर शहीद श्री चन्द्रशेखर आजाद ने क्रांतिकारियों की खुफिया बैठक की। इस बैठक में ब्रिटिश सरकार तक स्वतंत्रता की आवाज सुनाने के लिए केन्द्रीय संसद में बम फैंकने की रूपरेखा तैयार की गई। महान् शहीद भगत सिंह, श्री बटुकेश्वर दत्त, श्री सुखदेव ने संसद में बम फैंकने का बीड़ा उठाया। क्रांतिकारियों के अनुसार पुरानी जेल में ही चांदनी चौक में वायसराय लार्ड हार्ड़िग पर बम फैंकनेवालों को फांसी दी गई। इसका तीसरा कोण यह था कि पुरानी जेल के समीप खूनी दरवाजा है। सन् 1857 में प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के महान्ायक बादशाह बहादुर शाह जफर के दोनों शहजादों के सिर बर्बर ब्रिटिश सेना ने यहीं काटे और हुमायुं के मकबरे में गिरफ्तार बादशाह जफर को पेश किये।

इस प्रकार पुरानी जेल क्रांति का प्रतीक थी। पुरानी जेल में सन् 1857 से 1947 तक क्रांतिकारियों को कैद रखा गया। स्वतंत्रता के तत्काल बाद पुरानी जेल को स्थानान्तरित करने की ताबड़तोड़ कार्रवाही चल रही थी। तत्कालीन कांग्रेस सरकार द्वारा जेल तोड़कर ब्रिटिश अत्याचार के प्रमाण नष्ट किये जा रहे थे। केन्द्रीय सरकार ने पुरानी जेल परिसर में क्रांतिकारी सम्मेलन की अनुमति दी। प्रकारान्तर में पुरानी जेल को मटियामेट कर 'मौलाना आजाद आयुर्विज्ञान महाविद्यालय' निर्मित हुआ। अखिल भारतीय क्रांतिकारी सम्मेलन ने क्रांतिदूत सेनानियों के गुप्त संगठनों और 90 वर्षों में चर्चित क्रांतिकारी कांड़ों के महायोद्धओं को विशेष दूतों के साथ न्योता भेजा।

उनमें झांसी बम कांड, लाहौर षड़यंत्र द्वितीय, काकोरी ट्रेन खजाना लूट कांड़, कामा गाटा मारू जहाज प्रकरण, मेरठ षड़यंत्र, मानगढ़ पहाड़ी सेनानियों, निर्वासित् सरकार के गठनकर्ताओं, हिन्दुस्त्ान क्रांतिकारी सोशलिस्ट पार्टी, अनुशीलन पार्टी और बिहार, बंगाल, महाराष्ट्र के महायोद्धओं के छोटे समूहों को मनुवार के साथ बुलाया गया। सरदार भगत सिंह के प्रेरक और अनुशीलन पार्टी के पूर्व नेता श्री जोगेश चटर्जी

ने सम्मेलन में नाभकीय भूमिका निर्वहन किया। क्रांतिकारी श्री जोगेश चटर्जी ने पुदूच्चेरी में महर्षि अरविन्द के भाई श्री वारिन्द्र कुमार घोष और उन्नीसवीं शती के महान् संत स्वामी विवेकानन्द के भाई डॉ. भूपेन्द्र नाथ दत्त को सम्मेलन के लिए राजी किया। श्री दलजीत सेन महाजन अदल के अनुसार नेताजी सुभाष चन्द्र बोस के भतीजे आजाद हिन्द फौज की वर्दी में आये। उनका रंगरूप, चेहरा मोहरा नेताजी सुभाष चन्द्र बोस से हूबहूं मिलता था। उन्हें देखने भीड़ उमड़ी।

सम्मेलन में हार्डिग बम कांड़ के सूत्रधार लाला हनुवन्त सहाय, गदर पार्टी के मिथकीय नायक बाबा सोहन सिंह भकना, बाबा श्री परमानंद झांसी, श्री भवानी सहाय शर्मा अलवर (काकोरी कांड), श्री विजय कुमार सिंहा (लाहौर कांड), प्रो.के.सी.पांडे, राजा महेन्द्र प्रताप, सुश्री कल्पना दत्ता (चिटगांव कांड की नायिका), डॉ. भूपेन्द्र नाथ दत्त, श्री शीलभद्र याजी, श्री किरण चन्द्र दास (अमर शहीद जितेन्द्र दास के भाई), श्री वारिन्द्र कुमार घोष, सुश्री दुर्गा बोहरा (दुर्गा भाभी), अमर शहीद भगत सिंह के भाई, बाबा गुज्जर सिंह आदि सहित लगभग 400 सेनानियों ने भाग लिया। श्री अदल के अनुसार क्रांतिकारी जोगेश चटर्जी ने सन् 1942 में करो या मरो आह्वान का समर्थन करनेवालों को ही सम्मेलन में शामिल होने की अनुमति दी।

स्मरण रहे कि दिल्ली के लाला हनुवन्त सहाय के क्रांतिकारी समूह ने दिल्ली में 23 दिसम्बर, 1912 में ब्रिटिश वायसराय लार्ड हार्ड़िग की हाथी पर सवारी को चांदनी चौक में बम से उड़ाने की योजना बनायी। एक नवयुवति ने लार्ड हार्ड़िग पर बम फेंका। संयोग से ब्रिटिश राजचिन्ह लेकर बैठा ब्रितानी मारा गया एवं श्री हार्डिग घायल हुए। लाला हनुवन्त सहाय सन् 1914 में पकड़े गये। उन्हें काले पानी की सजा हुई। हार्ड़िग बम कांड में सर्वश्री मास्टर अमीर चन्द, भाई बाल मुकुन्द, श्री अवध बिहारी विश्वास आदि को पुरानी जेल में फांसी हुई। सम्मेलन में सेनानियों ने फांसीघर को फूलों से सजा कर पूजा।

उल्लेखनीय है कि निर्वासित् सरकार का गठन करनेवाले राजा महेन्द्र प्रताप ने देश की आम जनता द्वारा राष्ट्रपति भवन पर कब्जे के लिए देशव्यापी दौरा किया। इस दौरे के अंत में तीस हजारी मैदान में (वर्तमान तीस हजारी न्यायालय) राष्ट्रीय रैली की। जिसमें राष्ट्रपति भवन

आम जनता के सौंपने का मार्च होनी थी। यह त्रासदी रही कि अकेले राजा महेन्द्र प्रताप राष्ट्रपति भवन पहुंचे। राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने राजा महेन्द्र प्रताप का स्वागत किया। पर राजा महेन्द्र प्रताप ने कहाः तुम जीते, हम हारे। सम्मेलन में डॉ. भूपेन्द्र नाथ दत्त ने सिंह गर्जना कीः ''हमने वीर अर्जुन की तरह अपने गांड़ीव बरगद के वृक्ष पर रखे हैं। हमें उम्मीद है कि आगे इनकी आवश्यकता नहीं होगी। हमने अपने अस्त्र शस्त्र समुद्र में नहीं फैंके हैं। यदि फिर कभी देश पर संकट पड़ा तो उठायेंगे।'' गदर पार्टी के बाबा सोहन सिंह भकना ने भी सरकार को स्वतंत्रता बनाये रखने की चेतावनी दी। क्रांतिकारी समाज महिला महान्ायिका दुर्गा भाभी, कल्पना दत्ता के त्याग से भाव विभोर था। इस सम्मेलन की विशेषता यह थी कि सेनानियों का खाना जेल की रसोई में बना। क्रांतिकारी नंगी फर्श पर या पुआल दरी बिछाकर ही सोये। क्रांतिकारी समाज ने कम्युनिस्टों को नेताजी सुभाष चन्द्र बोस को जनरल तोजो का श्वान दिखाने के कार्टून के कारण नहीं बुलाया था।

इस पहले, अंतिम क्रांतिकारी सम्मेलन में तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री जवाहर लाल नेहरू, राष्टपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद को भी नहीं बुलाया गया। दिल्ली के क्रांतिकारियों ने सर शोभा सिंह की सर्वश्री भगत सिंह, बटुकेश्वर दत्त मुकदमे में भूमिका की आलोचना की। श्री अदल के अनुसार श्री जे.मिडिलटन के न्यायालय में श्री सिंह की गवाही क्रांतिकारियों के लिए काल बनी। क्रांतिकारी श्री जोगेश चटर्जी ने काकोरी खजाना लूट कांड़ में अमर सेनानी सर्वश्री रामप्रसाद बिस्मिल, ठाकुर रोशन सिंह, अशफाक उल्लाह एवं राजेन्द्र लाहिड़ी को फांसी के प्रकरण के गुप्त पहलुओं का रस्योद्घाटन किया। क्रांतिकारी सम्मेलन में प्रत्येक सेनानी के अनुभव रोमांचित करेनवाले थे। सम्मेलन के अंत में लाल किले मैदान में क्रांतिकारियों ने आमसभा की। आमसभा में अधिकांश सेनानियों ने तत्कालीन सरकार से अपील की कि वह आंदोलनों पर ब्रिटिश शासकों की भांति जुल्म–अत्याचार नहीं करे।

सम्मेलन के बाद तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री नेहरू ने तीन मूर्ति निवास में क्रांतिकारियों को ससम्मान बुलाया। एक ही दरी पर प्रधानमंत्री और क्रांतिकारी बैठे। क्रांतिकारियों के दुर्वासा शॉप से बचने के लिए वहाँ रखी कुर्सी हटायी गई। गदर पार्टी के वयोवृद्ध सेनानी बाबा सोहन सिंह

भकना ने नेहरू की अचकन के गुलाब को इंगित करते हुए कहा: ''हम स्वतंत्र भारत को गुलाब की तरह महकता देखना चाहते है।'' क्रांतिकारी श्री जोगेश चटर्जी, श्री दलजीत सेन महाजन अदल ने इस सम्मेलन की पुस्त्का प्रकाशित की। इस क्रांतिकारी सम्मेलन की अंतिम कड़ी सर्वश्री राधाकृष्ण तिवारी, दलजीत सेन अदल भी नहीं रहे हैं। दिल्ली में जीवन के 50 वर्ष बीतानेवाले क्रांतिकारियों को सरकारी स्वतंत्रता सेनानी समिति का अध्यक्ष तक नहीं बनाया गया और गुमनाम मौत हुई। सम्मेलन में पुरानी जेल को स्मृति स्थल बनाने की अपील की गई, जो नहीं मानी गई। ऊँ

देश में अंतिम हिन्दू सम्राट पृथ्वीराज चौहान के शेष होते मिथकीय अवशेष

देश में भारतीय इतिहास के मिथकीय महान्ायक अंतिम हिन्दु सम्राट पृथ्वीराज चौहान के 900 वर्ष पुराने गौरवमय पुरातात्विक अवशेष विस्मृति के गर्भ में खो रहे हैं। सम्राट पृथ्वीराज चौहान के मुख्यालय अजमेर, सांभर, नीमराणा, दिल्ली में ऐतिहासिक स्मृति स्थल लगभग भुलाये जा रहे हैं।

उल्लेखनीय है कि अफगानिस्त्ान में कंधार के समीप अंतिम हिन्दु सम्राट पृथ्वीराज चौहान और वीररस के महाकवि चन्द बरदाई की समाधि हैं। दिल्ली जयपुर राष्ट्रीय राजमार्ग संख्या 8 पर राजस्थान की सीमा में नीमराणा में सम्राट पृथ्वीराज चौहान के वंशजों का अंतिम किला, मंत्रमुग्ध करती बावड़ी, शतकों पुराने भित्ति चित्र आदि हैं। मेवाड़ के महाराणा द्वारा राजपूतों के इतिहास से परिचय करानेवाले कविवर श्यामलदास के वीरविनोद में पृथ्वीराज चौहान का गौरवमय विवरण

मिलता है। नीमराणा के पूर्व शासक (स्वर्गीय) राजेन्द्र सिंह चौहान ने रहस्योदघाटन किया कि वे सम्राट पृथ्वीराज चौहान के 36वें वंशज हैं। नीमराणा के महाराजा चन्द्रभान ने ब्रिटिश शासकों के विरूद्ध स्वतंत्रता संग्राम के योद्धा राजा नारायण पेशवा को शरण दी।

राजपूताना के इतिहासकार कर्नल जेम्स टॉड ने महाराजा चन्द्रभान के इस कृत्य को पागलपन की संज्ञा दी। मत्स्य में लासवाड़ी (अलवर) में ब्रिटिश सेना एवं राजाओं की सेनाओं और नीमराणा की महाराजा चन्द्रभान की सेना के बीच भीषण युद्ध हुआ। अंत में सेना की हार के समय महाराजा चन्द्रभान और राजा नारायण पेशवा भूमिगत हुए। प्रकारान्तर में श्री राजेन्द्र सिंह चौहान शासक बने। श्री राजेन्द्र सिंह चौहान ने ब्रिटिश राज के खिलाफ प्रजामंड़ल आन्दोलन में भाग लिया। श्री राजेन्द्र सिंह चौहान ने शासन पाँचायत परिषद को सौंप दिया। नीमराणा के महल में ब्रिटिश गुलामी के समय क्रांतिकारी, समाजवादी गुप्त प्रवास करते रहे। समझा जाता है कि महान् क्रांतिकारी श्री चन्द्रशेखर आजाद भी नीमराणा के गुप्त रूप से रहे। देश में समाजवादी आन्दोलन के जनक डॉ. राममनोहर लोहिया भी नीमराणा ठहरे। इस प्रकार अंत में नीमराणा के अंतिम गांधीवादी, समाजवादी महाराजा राजेन्द्र सिंह चौहान मत्स्य की राजधानी में विकास पथ पर घोर मुफलसी में छोटे से दो कमरों में रहे। श्री चौहान को केन्द्र सरकार की और राज्य सरकार की स्वतंत्रता सेनानी पेंशन तक नहीं दी गई। उन्होंने अपनी राजकुमारी के विवाह से पहले कौड़ियों के मोल 3 लाख रूपए में नीमराणा महल, किला बेचा। त्रासदी यह है कि स्वतंत्रता के महान् महान्‌ायक श्री राजेन्द्र सिंह चौहान की मृत्यु गुमनामी में हुई। समाचारों में कहीं समाजवादी महाराजा राजेन्द्र सिंह चौहान सुर्खियां नहीं बने। इतिहासकारों के अनुसार नीमराणा सम्राट पृथ्वीराज चौहान वंशजों की तीसरी राजधानी रही।

सम्राट पृथ्वीराज चौहान अजमेर, सांभर के राजा रहे। दिल्ली राजा अनंगपाल ने श्री पृथ्वीराज (तृतीय) को अपना उत्तराधिकारी चुना। सांभर में मिथकीय शाकम्भरी देवी का मंदिर और खारे पानी की विश्वविख्यात झील है। पौराणिक असुरों के गुरु की पुत्री देवयानी और असुराज की सुपुत्री शर्मिष्ठा की कथा भी सांभर से संबंध रखती है।

भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण ने सांभर के रेत के टीलों के उत्खनन खुदाई में 2600 वर्ष प्राचीन महात्मा बुद्ध, महावीर स्वामी काल की धातुनगरी के अवशेष ढूंढ़ निकाले हैं। यह अवश्य है कि श्री पृथ्वीराज चौहान (तृतीय) की ग्यारहवीं–बारहवीं शती की राजधानी के किलों, राजमहलों, गढ़ों के कोई प्रमाणिक पुरातात्विक अवशेष उपलब्ध नहीं है। भारतीय इतिहास में सम्राट पृथ्वीराज चौहान (तृतीय) और सुलतान मोहम्मद गौरी के बीच सन 1192 का युद्ध राष्ट्र का भाग्यचक्र बदलनेवाला रहा। सम्राट पृथ्वीराज चौहान ने इससे पहले अनेक बार गौरी को हराया था। लेकिन कन्नौज के राजा जयचन्द के सहयोग ने मोहम्मद गौरी को विजित करवाया। दिल्ली के राजसिंहासन पर गुलाम सेनापति सालार कुतुबुद्दीन ऐबक बैठा। पर 13 मार्च 1206 को माउजुद्दीन बिन साम की उनके शिविर में हत्या कर दी गई। साम के कोई उत्तराधिकारी नहीं होने से दिल्ली सलतनत के राजसिंहासन के लिए राजनीतिक महासंकट पैदा हुआ।

पृथ्वीराज रासो महाकाव्य में महाकवि चन्द बरदाई ने सम्राट पृथ्वीराज चौहान के अदभुत तीरंदाजी कौशल का रोमांचक ब्योरा दिया है। वैसे लोक साहित्यकार महाकवि चन्द को बरद का रहनेवाला कहते हैं। इतिहासकारों में महाकवि चन्द बरदाई के ग्यारहवीं, बारहवीं शती में पृथ्वीराज तृतीय के समकालीन होने पर विवाद है। कुछ इतिहासकारों ने चन्द बरदाई को सम्राट चौहान के समकालीन नहीं माना है। कुछ इतिहासकारों ने चन्द बरदाई को एक शती बाद अर्थात् तेरहवीं शती का माना है। पृथ्वीराज रासो के अनुसार स्वर पर लक्ष्यभेदी तीरदांज सम्राट पृथ्वीराज चौहान को सुलतान गौरी ने अंधा करवा दिया। ताकि सम्राट चौहान कारावास से भाग नहीं सके। सुलतान गौरी ने धुरन्धर सम्राट के अनेक किस्से सुने थे। वह यह प्रत्यक्ष में देखना चाहता था कि क्या पृथ्वीराज चौहान वास्त्व में स्वरभेदी बाण चलाने में महारथ रखते हैं? सुलतान ने राजधानी के विशाल प्रेक्षाग्रह में दरबार लगाया। राजधानी घोर या गौर और आसपास के निवासी दिल्ली के सम्राट पृथ्वीराज चौहान का अचूक निशान देखने जमा हुए। यह भी कहा गया कि यदि चौहान का निशाना सटीक रहा तो उन्हें और चन्द बरदाई को कैद से आजाद कर भारत भेज दिया जाएगा। दूर ऊंचे सिंहासन पर मोहम्मद

गौरी बैठे। वहीं समीप में विशाल घंटा लगाया गया। घंटे पर प्रहार होते ही सम्राट पृथ्वीराज को तीर चलाना था।

महाकवि चन्द बरदाई ने सम्राट पृथ्वीराज चौहान को कहा कि वे सुलतान के बैठे होने की दूरी शब्दों में बखान कर गायेंगे और सुलतान को चिल्लाने पर विवश करेंगे। जिससे स्वरभेदीबाण आक्रामक सुलतान का सिर कलम कर सके। पर सम्राट उनका हाथ पकड़े रहें और सुलतान के चिल्लाने पर ही बाण चलायें। घोर में खचाखच भीड़ सम्राट पृथ्वीराज चौहान की धनुर्विद्या का चमत्कार देखने के लिए सांस रोके थी। बन्दी सम्राट चौहान महाकवि चन्द बरदाई का हाथ पकड़े आये। अंधे सम्राट ने अपना तीर कमान सम्हाला। उन्होंने धनुष की प्रत्यंचा खींची। सुलतान गौरी के इशारा करते ही घंटा बजा। अंधे सम्राट पृथ्वीराज चौहान ने बाण नहीं छोड़ा। चन्द बरदाई ने ओजस्वी स्वर में गायाः चार बांस चौबीस गज, अंगुल अष्ट परमाण, ताहू ऊँचे सुलतान है, मत चूके चौहाण। उधर कुद्ध सुलतान मोहम्मद गौरी ने पृथ्वीराज चौहान से गरजकर बाण नहीं चलाने का कारण पूछा। सुलतान गौरी की आवाज सुनते ही सम्राट पृथ्वीराज चौहान ने स्वरभेदी बाण छोड़ा। सम्राट चौहान के बाण से सुलतान गौरी का सिर कट कर दूर गिरा। चारों तरफ हाहाकार मच गया। गजनी के सेनापति ने गुस्से में सम्राट चौहान और उनके महाकवि चन्द बरदाई को मार डाला। सम्राट चौहान और उनके महाकवि चन्द बरदाई के शवों को वहीं दफनाया गया। चन्द बरदाई पृथ्वीराज चौहान की मिथकीय महान्ायकी छवि निर्मित करने में सफल रहे।

राजधानी दिल्ली में सम्राट पृथ्वीराज चौहान की महारानी संयोगिता की समाधि, उनकी राजकुमारी बेला का सत्ी स्थल भी विस्मृत है। दिल्ली में कुतुब मीनार के समीप श्री पृथ्वीराज चौहान के किले रावपिथोरा की दीवारें हैं। अफगानिस्त्ान में अंतिम हिन्दु सम्राट पृथ्वीराज चौहान, महाकवि चन्द बरदाई स्थल पर प्रति वर्ष जूतों से पीटने का कथित रिवाज बतायी जाती है, पर सच क्या है? केन्द्र सरकार और राजस्थान सरकार ने अंतिम हिन्दू सम्राट पृथ्वीराज चौहान वंशजों के अंतिम नीमराणा किले को राष्ट्रीय पुरातात्विक स्मारक घोषित नहीं किया है।।ऊँ।।

मेरु प्रासाद वर्णन
गुह्यकाल्युपनिषत्

तास्ते् वदामि यत् प्रोक्त ध्यानं कुर्वन्ति देवताः।
विराट्ध्यानं हि तज्ज्ञयं महापातकनाशनम् ।। 6।।
ब्रह्माण्डाद्वहिरूर्ध्व हि महत्तत्त्वमहङ्.कृतिः।
रूपाणि पाँच तन्मात्राः पुरूषः प्रकृतिर्नव ।।7।।
महापातालपादान्तलम्बा तम्या जयं स्मरेत्।
ब्रह्माण्डार्ध कपालं हि शिरम्तम्या विभावयेत।।8।।
देवलोको ललाटं च पट्विंशल्लक्षयोजनम्।
मेरुः सीमन्तदण्डोऽस्या ग्रहरन्नमसाकुलः।।9।।
अन्तर्बाथी नागवीथी भ्रुवावम्याः प्रकीर्तिते।
शिवलोकश्श्र वैकुण्ठलोकः कर्णावुभौ मतौ।।10।।
लोहितं तिलकं ध्यायेन्नासा मन्दाकिनी तथा।
चक्षुषी चन्द्रसूर्यो च पक्ष्माणि किरणास्त्था।।11।।
गण्डो न्यातां तपोलोकसत्यलोको यथाक्रमम्।
जनोलोकमहर्लोकौ कपोलौ परिकीर्तितौ।।12।।
स्यातां हिमाद्रिकैलासौ तस्या देवयास्तु कुंडले।
स्वर्लोकश्व भुवर्लोको देवया ओष्ठाधरौ मतौ।।13।।
दिक्पतीनां ग्रहाणां च लोकाश्याथ रदावली।
गन्धर्वसिद्धसाध्यानां तितृकिन्नग्रक्षसाम्।।14।।
पिशाचयक्षाप्सरसां मरीचीयायिनां तथा।
विद्याधराणामाज्योप्मपाणां सोमैकपायिनाम्।।15।।
सप्तर्षीणां ध्रवस्यापि लोका ऊर्ध्वरदावली।
मुखं च रोदसी जेयं द्यौर्लोकश्विवुकं तथा।।16।।
ब्रह्मलोको गलः प्रोक्तो वायवः प्राणरूपिणः।
वनम्पतय ओपध्यो लोमानि परिचक्षते।।17।।

विद्युद्दृष्टिरहोरातं निमेषोन्मेषसंज्ञकम्।
विश्वं तु हृदयं प्रोक्तं पृथिवी पाद उच्चते।।18।।
तलं तलातलं चैव पाताले सुतलं तथा।
रसातलं नागलोकाः पादाङ्गुल्यः प्रकीर्तिताः।।19।।
वेदा वाचः स्यन्दमाना नदा नद्योऽमिता मताः।
कलाः काष्ठा मुहूर्ताश्व ऋतवोऽयनमेव च।।20।।
पक्षा मासास्त्था चाव्दाश्वत्वारोऽपि युगाः प्रिये।
कफोणिर्मणिबन्धश्व तदृरूकटिबन्धनाः।।21।।
प्रपदाश्व स्फिचश्वैव सर्वाड.गनि प्रचक्षते।
वैश्वानरः कालमृत्युर्जिह्वत्रयमिदं स्मृतम्।।22।।
आब्रह्मस्त्म्बपर्यन्तं तनुमस्याः प्रचक्षते।
प्रलयो भोजने कालस्तृप्तिस्त्ेन च नासिका।।23।।
ज्ञेयः पार्श्वपरीवर्तो महाकल्पान्तरोद्भवः।
बिराड्रपस्य ते ध्यानमिति संक्षेपतोऽर्पितम्।।24।।
तस्याः स्वरूपविज्ञानं सपर्या परिकीर्तिता।
तदेव हि श्रुतिप्रोक्तमबधारम पार्वति।।25।।
यथोर्णनाभिः सूत्राणि सृजत्यपि गिलत्यपि।
यथा पृथिव्यामोषध्य संभवन्ति गिलन्त्यपि।।26।।
पुरूषात् केशलोमानि जायन्ते च क्षरन्त्यपि।
उत्पद्यन्ते विलीयन्ते तथा तम्यां जगत्यपि।।27।।
ज्वलतः पावकाद्यद्वत् स्फुलिड.गः कोटिकोटिशः।
निर्गत्य च निश्चन्ति विश्वं तस्यास्त्था प्रिये।।28।।
ऋचो यजूंषि सामानि दीक्षा यज्ञाः सदक्षिणाः।
अश्वर्युर्यजमानश्व भुवनानि चतुर्दश।।29।।   ।। ॐ।।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. ऋग्वेद के भाष्य की भूमिका : श्री टी.वी. कपाली शास्त्री, अरविन्द आश्रम, पुदुच्चेरी : 1952
2. आर्यों का आदिदेशः डॉ. सम्पूर्णानन्द, भारती भण्डार, इलाहबाद : 1944
3. पश्चिम एशिया और ऋग्वेद : डॉ. राम विलास शर्मा, दिल्ली विश्वविद्यालय
4. ऋग्वेद संहिता : श्री श्रीपाद दामोदर सातवलेकर, स्वाध्याय मण्डल, किला पारडी :1940
5. ऋग्वेद संहिता–सायणभाष्य : वेदीक संशोधन मण्डल, पूणे : 1933–1951.
6. दर्शन दिग्दर्शन : श्री राहुल सांकृत्यायन, किताब महल, इलाहबादः 1944.
7. कैलास–मानसरोवर : स्वामी प्रणवानन्द, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, इलाहबाद : 1943

8. ए स्कैच ऑफ जॉग्राफी ऑफ दी हिमालया माउण्टेन्स एण्ड टिबेट : एस.सी.बरार्ड–एच.एच.हाईडेन, सर्वे ऑफ इण्डिया:1908
9. भारत भूमि : पण्डित जयचन्द्र : सम्वत 1834.
10. ए ट्रिप टू कैलास मानसरोवर : स्वामी शिवान्द
11. दा होली माउण्टेन : श्री पुरोहित स्वामी
12. कैलास दर्शन : श्री रामशरण विद्यार्थी
13. डायरी ऑफ ए पिलग्रिमेज टू लेक मानसरोवर एण्ड माउण्ट कैलास विद एच.एच.दा महाराजा ऑफ मैसूर :श्री रंगाचार : 1931
14. हिन्दूधार्मिक कथाओं के भौतिक अर्थ : श्री त्रिवेणी शरण सिंह, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् : 1970
15. भारतीय प्रतीक विद्या : डॉ. जनार्दन मिश्र, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद : 1980
16. ऋत : निर्मल कुमार, भारतीय विद्या भवन : 1981
17. सिक्रेट डॉक्टराइन ऑफ टिबेट बुक्स ऑफ दा डैड : श्री डेटेल्फ इन्गो लाउफ, शाम्भाला पब्लिकेशन्स : 1989
18. एक्सप्लोरेशन इन टिबेट : स्वामी प्रणवानन्द, कोलकाता विश्वविद्यालय : 1939
19. हिस्ट्री ऑफ कैलास मानसरोवर : स्वामी प्रणवानन्द, एस.पी.लीग लिमिटेड, कोलकात्ता : 1949
20. दा तांत्रिक मिस्टिसिज्म ऑफ टिबेट : श्री जॉन ब्लोफेल्ड, चार्लेस्टन बुद्धिस्ट फैलोशिप : 2002
21. ए गाईड टू तशिला : श्री जॉन मार्शल, सरकारी मुद्रणालय, कोलकाता : 1918
22. दा लाईफ एण्ड टीचिंग्स ऑफ नरोपा : श्री हर्बट वी. गुन्थर, आक्सफोर्ड यूनिवसिर्टी प्रेस : 1974
23. शैवमत : डॉ. यदुवंशी, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद : 1955
24. पाँचरात्रागम : डॉ. राघव प्रसाद चौधरी, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद : 1987
25. दैवत संहिता : श्री श्रीपाद् दामोदर सातवलेकर, स्वाध्याय मण्डल, किल्ला पारडी

26. अथर्ववेद संहिता : श्री श्रीपाद दामोदर सातवलेकर , स्वाध्याय मण्डल, किल्ला पारडी
27. निरूक्त : निर्णय सागर प्रेस, मुम्बई : 1930
28. निरूक्त – यास्क : श्री लक्ष्मण स्वरूप, लंदन : 1927
29. नीलमत पुराण : श्री के.डी. ब्रीज, लंदन : 1936
30. शतपथ ब्राह्मण : दा एशियाटिक सोसायटी, कोलकाता : 1903
31. वाल्मीकि रामायण : स्वाध्याय मण्डल, किल्ला पारडी : 1946
32. भारतीय संस्कृति : श्री श्रीपाद दामोदर सातवलेकर, स्वाध्याय मण्डल, किल्ला पारडी : 1989
33. हनुमद् रहस्य : वेंकटेश्वर प्रेस, मुम्बई
34. हनुमद रहस्य : श्री शिवदत्त मिश्र, वाराणसी : 1994
35. हनुमद उपासना : पं. राधारमण दुर्वार शास्त्री, श्रीपीताम्बरा संस्कृत परिषद, दतिया : 1993
36. मन्त्र कोश : पण्डित रमादत्त शुक्ल, कल्याण मन्दिर प्रकाशन, प्रयाग
37. एकाक्षरनामकोष संग्रह : राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान : 1964
38. वेदीक विज्ञान और भारतीय संस्कृति : पं. गिरधर शर्मा चतुर्वेदी, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद : 1960
39. शरभ तन्त्रम् : श्रीस्वामी संकलन : श्री पीताम्बरा संस्कृत परिषद, दतिया
40. स्फोट दर्शन : पण्डित रंगनाथ पाठक, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद : 1967
41. वेद प्रवेशिका : श्री गुरुदत्त, हिन्दी साहित्य सदन : 1972
42. मैक्समूलर द्वारा वेदों का विकृतिकरण : डॉ. कृष्ण वल्लभ पालीवाल, हिन्दू राइटर्स फोरम, दिल्ली
43. सिद्धभूमि ज्ञानगंज : डॉ. गोपीनाथ कविराज, विश्वविद्यालय प्रकाशन/भारतीय विद्या प्रकाशन, दिल्ली
44. मनीषी की लोकयात्रा : डॉ. भ.श.सिंह, विश्वविद्यालय प्रकाशन
45. शैव उपनिषद् : दा थियोसोफिकल सोसायटी, चेन्नई
46. दा थर्टी टू विद्याज : श्री के. नारायणस्वामी अय्यर, अडयार, चेन्नई : 1916

47. विचार शक्ति : सुश्री एनी बेसेन्ट, इण्डियन बुक शॉप : 2003
48. दा मास्टर्स पथ : बिशप सी. डब्लू. लीडबीटर, दा थियोसोफिकल सोसायटी, चेन्नई
49. वेदामृतम् 20 भाग : डॉ. कपिलदेव द्विवेदी, विश्वभारती अनुसंधान परिषद, ज्ञानपुर
50. सविता देवता : पं. भगवद्दत्त, सरस्वती सदन, दिल्ली : 1980
51. बृहस्पति देवता : पं. भगवद्दत्त, सरस्वती सदन, दिल्ली : 1980
52. तृच भास्कर : श्री भास्कराचार्य, ओरियंटल इन्स्टीट्यूट, बडौदा : 1982
53. भारद्वाज मुनि का वैमानिक शास्त्र : आर्य प्रतिनिधि सभा, दिल्ली
54. महर्षि भारद्वाजकृत अंशुबोधिनी : सुबोध एण्ड संस, बंगुलुरू
55. सूर्यगीता : भारत धर्म महामण्डल, वाराणसी : 1967
56. सूर्य विज्ञान : श्री गोपीनाथ कविराज, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी
57. जय संहिता : प्रो. के. के. शास्त्री, भण्डारकर ओरियन्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट (बोरी)
58. अर्जुनोपाख्यान : सं. श्री आर. डी. कर्माकर, बोरी : 1956
59. उत्तरगीता : सं.डॉ. एस.वी.ओक, बोरी : 1957
60. एस्टोरिक राईटिंग्स : श्री टी. सुब्बाराव, अडियार :1910
61. पाँचतंत्र : सं. डॉ. बुहलर, बोरी : 1891
62. पद्मनेत्रा : श्री भगवतीशरण मिश्रा, आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली
63. धर्मशास्त्र का इतिहास : डॉ. पी.वी. काणे, उत्तरप्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ
64. साध्य और साधन : श्री सुदर्शन सिंह चक्र, कृष्ण जन्मस्थल सेवा संघ : 1979
65. अप्रकाशित उपनिषद् : सं. डॉ. कुन्नन राज, अडियार : 1933
66. इन्ट्रोडक्शन टू अहिर्बुध्न्य संहिता : श्री ओटो श्रेडर, अडियार : 1916
67. अहिर्बुध्न्य संहिता : अडियार : 1916
68. महातीर्थ के अंतिमयात्री : श्री बिमल दे, लोकभारती, इलाहबाद
69. सीक्रेट डाक्ट्रइन : सुश्री बी.पी. ब्लैवत्स्की, अडियार : 1891

70. मैन विजीबल एण्ड इन्वीजिबल : श्री सी.डब्लू लीडबीटर : 1902
71. साइंस एण्ड आक्लटिज्म : श्री आई.के. टेमिनी, अडियार : 1974
72. अणिमा : श्री स्टीफन फिलिप्स, अडयार : 2003
73. अग्नि : महर्षि अरविन्द, अरविन्द आश्रम, पुदुच्चेरी : 1974
74. लाईट ऑफ वेद : श्री टी.वी. कपाली शास्त्री, अरविन्द आश्रम : 1947
75. क्लेक्टेड वर्क्स ऑफ कपाली शास्त्री : अरविन्द आश्रम
76. दा वेदीक गोडस ऐज फीगर ऑफ बॉयलोजी : श्री वी.जी. रेले : 1916
77. नाईन अननोन : श्री टालबोट मुण्डी : 1924
78. बुक ऑफ लाईज : श्री फ्राटर पेरडूराबो, लंदन : 1913
79. इजिप्शीयन बुक ऑफ डैड : श्री ई.ए. वालिस वुजः 1895
80. देवयान संस्कृति का विकास एवं वेद : श्री अरूण कुमार, फैजाबाद : 1996
81. सूर्य तन्त्रम् : श्री शत्रुघन लाल शुक्ल, भाषा भवन, मथुरा : 2012
82. सूत संहिता : श्रीमाघवाचार्य, आनन्दआश्रम, पूणे : 1924
83. शिव दृष्टि : काश्मीर तन्त्र सीरिज : 1910
84. गरूड पुराण : श्री मन्मथनाथदत्त शास्त्री, कोलकाता : 1908
85. भुशण्डि रामायण : विश्वविद्यालय प्रकाशन : 1975
86. गीता पैशाच भाष्य : श्री हनुमान, आनन्द आश्रम, पूणे : 1938
87. लिस्ट ऑफ तीर्थ : श्री पी.वी. काणे, बोरी : 1953
88. शिव गीता : खेमराज कृष्णदास : 2001
89. वेदमन्त्रों के देवता : श्री गुरुदत्त, हिन्दी साहित्य सदन : 1999
90. वेद विद्या निदर्शन : श्री भगवद्दत्त, प्रणव प्रकाशन : 1995
91. वेदीक देवता दर्शन : श्री प्रभुदयाल अग्निहोत्री, ईस्टर्न बुक लिंकर्स : 1989
92. वेदीक देवताओं का अध्यात्मिक एवं वैज्ञानिक स्वरूप : डॉ. कपिल देव द्विवेदी, विश्व भारती अनुसंधान परिषद : 2007
93. गौ गौरव : श्री तेजपाला धामा, हिन्दी साहित्य सदन : 2014
94. पुराणों में गंगा : श्री रामप्रताप त्रिपाठी, हिन्दी साहित्य सम्मेलन : 1995

95. धर्म कोश : डॉ. राजबलि पाण्डे, उत्तरप्रदेश हिन्दी संस्थान : 2003
96. हिन्दूत्वकोश : श्री रामदास गौड, ज्ञानमण्डल, वाराणसी : 1993
97. श्री शिव पुराण : नाग प्रकाशन : 1981
98. श्री लिंग पुराण : मोतीलाल बनारसीदास : 1980
99. अगस्त्य संहिता पाण्डुलिपि : परमार्थ न्यास
100. मनुस्मृति : श्री जुलियस जोली, दा एशियाटिक सोसायटी
101. श्रीमद्भगवद्गीता भाष्य : श्रीशंकराचार्य समग्र, वाणीविलास प्रेस, श्री रंगम : 1910
102. घोष्ट लैण्ड : सुश्री ऐमा हार्डिंग ब्रिटन, बोस्टन : 1864
103. पराशर संहिता (हनुमदचरित) : श्री अन्नदान चिदम्बरम् तिरूपति, 1997
104. शिव रहस्य : श्री शिवदत्त मिश्र शास्त्री, ठाकुरदास, वाराणसी : 2008
105. श्रीशरभेश्वर : श्री सी.एस.मुरूगसन, शंकर पतीपगम, चेन्नई : 2000
106. तिब्बत में बौद्ध धर्म का इतिहास : श्री अभयज्ञान वज्रपाद, हिमाचल प्रदेश सरकार : 2004
107. नीलमत पुराण : डॉ. वेदकुमारी घई, जम्मू काश्मीर सरकार
108. महर्षि रमण वचन : श्री टी.वी. कपाली शास्त्री
109. श्रीविद्या का मूलतत्त्व : श्री टी.वी. कपाली शास्त्री, अरविन्द आश्रम
110. श्रीविद्यामन्त्र भाष्य : आचार्य पं. रविशंकर द्विवेदी शास्त्री, नरसिंहपुर : 2016
111. गुप्त भारत की खोज : श्री पॉल ब्रण्टन, मानस ग्रन्थागार, वाराणसी : 2001
112. नीब करौरी के बाबा : श्री बदरीनाथ कपूर, विश्वविद्यालय प्रकाशन : 2001
113. गुर्जियेफ : अनुवाद श्री अवध बि.पाठक, गुर्जियेफ फाउण्डेशन
114. कृष्णचरित : श्री बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय : 1886
115. एक्सप्लोरेशन इन टिबेट : श्री ग्राहम सेण्डबर्ड, डब्लू. थाकर एण्ड कं., लंदनः 1904
116. जयाख्य संहिता : सं. श्री बी. भट्टाचार्य, बडौदा ओरियन्टल, बडोदा : 1931

117. शेष संहिताः श्रीमद्राजकीया शाखा मुद्रणालय, मैसूर : 1935
118. श्रीकृष्णयामलतन्त्र : प्राच्य प्रकाशन, वाराणसी
119. कृष्णयामरितन्त्रम् : सारनाथ, वाराणसी
120. महामठाम्नाय : निर्णय सागर प्रेस, मुम्बई (सम्वत 1948 सन् 1891)
121. पौष्कर संहिता

कैलास महातीर्थ : तिब्बती हिन्दी शब्द

तिब्बती		हिन्दी
तिसी	–	कैलास
कड.रिंपोछे	–	पवित्र कैलास
कड.रि	–	हिमनदी कैलास
गड.री	–	हिमनदी
ड.री	–	पश्चिमी तिब्बत
कड.री करछक	–	श्री कैलास पुराण
छोमफम्	–	सरोवर माता
छो मवड.	–	मानस सरोवर
जंबूलिड.	–	जम्बूद्वीप
छानादोर्जे	–	वज्रपाणि (शिव)
जंबयड.	–	मंजूश्री (ब्रह्मा)
चेनरेसी	–	अवलोकितेश्वर (विष्णु)
तमडिन	–	ह्यग्रीव
गेलबो	–	महाकाल
देमछोक–देमछोग–पावो	–	धर्मपाल (अघोरेश्वर अघोरेश्वरी)
पलदेन ल्हमो	–	महाकाली

थिदम	–	ईष्टदेवता
शिड.न्डे चाइग्येल्पो	–	यमराज
हनुमानजू	–	कपिराज पर्वत
खडो, एकाजती	–	देवी
ल्हा	–	देवता
चकड.	–	नित्यपूजा देवघर
ल्हखड. ल्हड.	–	देवघर
खोचर करछक	–	खोचरनाथ पुराण
लस	–	कर्म
न्याड.डा	–	निवार्ण
डजड.	–	मन्दिर चैत्य प्रमुख
गोम्पा	–	मन्दिर, मठ, विहार, चैत्य
खतक	–	देवताओं को माला रूपी वस्त्र
रिंपोछे	–	पवित्र
ग्यूट	–	तन्त्र शास्त्र
जुड.	–	बीजाक्षर मन्त्र
चकजा	–	मुद्रा
जिलब	–	प्रसाद
छेमे	–	घी का दीपक
नमकड.	–	अमावस्या
चोड.ा	–	पूर्णिमा
न्यीमा	–	सूर्य वार
ल्हा मा थिन	–	असुर
डाल	–	नरक
छन	–	रात
ड.री	–	पश्चिमी तिब्बत
अनवत्तप्त	–	शीतोष्णादि दुखों से मुक्त
देवछेन	–	सुखती स्वर्ग
पोनधर्म	–	प्राचीन तिब्बती वाममार्ग धर्म
तंजूर	–	धर्मशास्त्र अनुवाद
कंजूर	–	श्रीबुद्धके प्रवचन, 108 खण्ड
लड.गक छो	–	रावणह्रद, राक्षसत्ताल, रक्षताल
ममोनामी	–	गुरला मांघाता
पो	–	धूप (सुगन्धित)
सेर	–	स्वर्ण, सोना, हिरण्य
मे	–	आग
चेमनिडन	–	पाँचरंगी मानस रेत

गोंबोफेड.	–	राक्षसराज
रब्युड.	–	तिब्बत का षष्टि संवत्तसर चक्र
तालो	–	कैलास में आयोजित बारह वर्ष का मेला
ल्हो कोर चूड.ी	–	बारह वर्ष का चक्र
पोंबोल्होसर	–	नववर्ष–माघ शुक्ल प्रतिपदा
छोपा	–	बलि की मूर्ति
सपटा	–	वर्ष
टुलकू	–	अवतारी
चंबा/मैत्रेय	–	भावी बुद्ध
बोधिसत्त्व	–	बुद्ध होने को साधनारत
जिनसेक चिनसेग	–	स्वाहा
शाक्य थुब्बा	–	शाक्यमुनि शपजे
शपजे	–	पवित्र पदचिन्ह
पुक/उड्यार	–	गुफा
री	–	पहाड़
पो. बोत	–	तिब्बत
कोरलो	–	हाथ का मणि चोंगा
याडन्ती	–	नदी
छो	–	छोटी नदी, नाला
सिंगीखंबब	–	सिंह मुख सिंधु
तमचोक खंबब	–	अश्वमुख ब्रह्मपुत्र
मप्चा खंबब	–	मयूर मुख करनाली
लडन्चेन खंबब	–	हस्ति् मुख शतद्रु
तरचोक	–	बहुरंगी पताका/झड़ियां/झंड़े
योक	–	पाताल
पेमाजूने	–	गुरु पद्मसंभव जयन्ती
ल्हो नुप	–	नैऋत कोण
चड.शर	–	ईशान दिशा
ल्हो	–	दक्षिण
चड.	–	उत्तर
शरल्हो	–	आग्नेय
नुपचड.	–	वायव्य
तंक	–	उर्ध्व आकाश
नुप	–	पश्चिम
शर	–	पूरब
दून	–	घाटी

हूणिया	–	तिब्बती
लामा	–	भिक्षु, सिद्ध
डाबा	–	सामान्य भिक्षु
चोमो	–	भिक्षुणी
याक	–	तिब्बती गौवंश
छोकपाला एक्ता	–	श्याम जल कुंड
छोकपाला दुरची	–	श्वेत जल कुंड
लम	–	मार्ग
श्री दलाई लामा	–	गुरु समुद्र
थांका	–	पट चित्र
छरबा	–	वर्षा
शरभ	–	शिव का अष्टपाद रौद्रावतार
त्रिविष्टप किंपुरूष	–	तिब्बत